नाट्यम्

संयुक्ताङ्क
113-114
अप्रैल 2025–सितम्बर 2025

राजशेखर नाट्य विशेषाङ्क



महाकवि राजशेखर

यशवंत सिंह ठाकुर
कुलपति एवं संरक्षक



राधावल्लभ त्रिपाठी
संस्थापक



नाट्यम् – सम्पादन समिति



राजेन्द्र यादव
प्रधान सम्पादक



शशिकुमार सिंह
सम्पादक



नौनिहाल गौतम
सदस्य – सम्पादक मण्डल



रामहेत गौतम
सदस्य – सम्पादक मण्डल



किरण आर्या
सदस्य – सम्पादक मण्डल

नाट्यम्

रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की त्रैमासिक शोध पत्रिका
113–114 (संयुक्ताङ्क)
(अप्रैल 2025-सितम्बर 2025)
Peer Reviewed and UGC Care Listed Journal S.No. 17
ISSN : 2229-5550

राजशेखर नाट्य विशेषाङ्क

संरक्षक
यशवंत सिंह ठाकुर
कुलपति

संस्थापक
राधावल्लभ त्रिपाठी

प्रधान सम्पादक
राजेन्द्र यादव

सम्पादक
शशिकुमार सिंह

सम्पादक मण्डल
नौनिहाल गौतम
रामहेत गौतम
किरण आर्या

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर, (म.प्र.)

नाट्यम् **113-114 (संयुक्ताङ्क), अप्रैल 2025-सितम्बर 2025 (राजशेखर नाट्य विशेषाङ्क)**
रङ्गमञ्च एवं सौन्दर्यशास्त्र की पीयर रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
Peer Reviewed and
U.G.C. Care Listed Journal S.No. 17

ISSN : 2229-5550

प्रकाशक
नाट्य परिषद् **(पंजीकरण क्रमांक 100066)**
संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.)
दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-297149 पिन-470003

परामर्श मण्डल :
प्रो. जयशंकरलाल त्रिपाठी
प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
प्रो. अजय कुमार मिश्रा
डॉ. सी.एच. नागराजू
डॉ. संजय कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तिगत - एकवार्षिक - 2500/- रु., पंचवार्षिक - 12500/- रु.
संस्थागत - एकवार्षिक - 5000/- रु., पंचवार्षिक - 25000/- रु.
इस विशेषांक का शुल्क - 2100/- रु.

सदस्यता शुल्क ऑनलाइन, मनीआर्डर, चेक अथवा नगद माध्यम से नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के नाम देय होगा।

पत्रव्यवहार :
डॉ. शशिकुमार सिंह
संपादक - 'नाट्यम्'
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.) 470003
E-mail : natyamsagar@gmail.com
07582297149 Mob : +918989889371

© प्रकाशक
आवरण चित्र - गूगल से

मुद्रण : अजय जैन, **अमन प्रकाशन** नमक मंडी,
कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

'नाट्यम्' में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तुति के लिए *नाट्य परिषद्* से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

'नाट्यम्' में प्रकाशित रचनाओं में अन्तर्निहित रीति-नीति अथवा विचार लेखकों के निजी हैं। इससे *नाट्य परिषद्*, संपादक या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय

संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। संस्कृत साहित्य की इस लोकरंजनकारी परम्परा ने प्राचीनकाल से ही भारतीय जनजीवन को मनोरंजन का एक उत्कृष्ट वातावरण प्रदान किया है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में **'काव्येषु नाटकं रम्यम्'** के माध्यम से नाट्य को अन्य काव्य विधाओं में श्रेष्ठतर माना गया है। संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ नाटककारों ने अपनी विलक्षण नाट्यकला से सामाजिकों के हृदय में अप्रतिम आह्लादकता एवं भावग्रहणता की सृष्टि की है। भास, कालिदास, भवभूति और विशाखदत्त प्रभृति वरेण्य नाटककारों के द्वारा उपस्थापित सहृदयहृदयावर्जिका नाट्य परम्परा संस्कृत साहित्य की विलक्षण पहचान है। संस्कृत नाट्य परम्परा के अनुशीलन से पता चलता है कि नाटककार विशाखदत्त के पश्चात् इस परम्परा में ह्रास के लक्षण परिलक्षित होने लगे थे। ऐसे समय में राजशेखर ने पुनः इस परम्परा को सम्बलित किया और अपने नवोन्मेषी काव्य प्रतिभा के माध्यम से इसे पुनः समृद्ध करने का सफल प्रयास किया। राजशेखर संस्कृत साहित्य की इस परम्परा के सुधी, सुविज्ञ एवं सुप्रसिद्ध नाटककार हैं। राजशेखर के द्वारा सृजित नाट्य साहित्य संस्कृत साहित्य जगत् की अमूल्य धरोहर है। राजशेखर ने नाट्य के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रयोगों को समाविष्ट करते हुये अपनी नाट्यकृतियों में जहाँ एक ओर कथावस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से भास, कालिदास, भवभूति और हर्ष के आदर्शों को प्रतिपादित किया तो वहीं दूसरी ओर मानव जीवन की विभिन्न शाश्वत मूल्यों एवं चुनौतियों को भी अत्यन्त मार्मिकता एवं निर्भीकता के साथ रूपकों में उकेरा। वस्तुतः राजशेखर ने नाटक के क्षेत्र में ''नाट्यकाव्य' की परम्परा को प्रोत्साहित करने का श्रेष्ठ कार्य किया, फलस्वरूप नाट्यकाव्य की लोकप्रियता संवर्धित हुई और सामाजिक नाट्यकाव्य की रसस्निग्ध माधुरी का पान करने में सहज रूप से प्रवृत्त हो सका है। राजशेखर ने अपनी नाट्यकला में विद्यमान काव्यानन्द का रसास्वादन करने के लिए **''भणिति गुणो विद्यते वा नवेति''** के माध्यम से बालरामायण नाटक में काव्यरसिकों का आह्वान किया है। 9-10 वीं शताब्दी के प्रतिहारवंशीय राजा महेन्द्रपाल तथा उसके पुत्र महीपाल के राजसभासद एवं राजकवि के रूप में सुप्रतिष्ठित यायावरवंशीय महाकवि राजशेखर ने बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभंजिका, काव्यमीमांसा एवं हरविलास सहित छः महनीय ग्रंथों की रचना की है। जिसमें से हरविलास तो उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु सौभाग्य से राजशेखर के अन्य ग्रंथ उपलब्ध हैं। राजशेखर के नाट्यसाहित्य के अंतर्गत बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी एवं विद्धशालभंजिका की गणना की जाती है। बालरामायण नाटक राजशेखर की प्रसिद्ध नाट्यकृति है जिसमें बाल्मीकि रचित आदि काव्य रामायण की कथा का हृदयग्राही नाट्य रूपान्तरण किया गया है। ''महानाटक'' के नाम से प्रसिद्ध बालरामायण नाटक में राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथाओं को कई मौलिक परिवर्तन के साथ कुल 10 अंकों में प्रस्तुत किया गया है। बालभारत नाटक महाभारत के द्रौपदी स्वयंवर, द्यूतक्रीड़ा एवं द्रौपदी के चीरहरण सदृश प्रमुख घटनाओं को समाहित करते हुये कुल दो अंकों में उपनिबद्ध एक महत्वपूर्ण नाटक है। इसे ''प्रचंड पाण्डव'' भी कहा जाता

है। कर्पूरमञ्जरी राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषा में प्रणीत एक सट्टक काव्य है, जिसमें कुंतल देश की राजपुत्री कर्पूरमञ्जरी और राजा चंडपाल के विवाह की प्रेमकथा का रोचक समुपस्थापन कुल 4 अंकों में महाकवि राजशेखर के द्वारा किया गया है। विद्धशालभंजिका नाटिका में वत्स देश के राजा विद्याधर मल्ल और कुंतल देश की राजकुमारी मृगांकावली (कुवलयमाला) की प्रेम कहानी का मनोरम चित्रण अभिवर्णित है।

नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर द्वारा प्रकाशित रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की प्रतिष्ठित एवं यू.जी.सी. केयरलिस्टेड शोध पत्रिका ''नाट्यम्'' का यह विशेषांक महाकवि राजशेखर के नाट्य कौशल को व्याख्यायित करनेवाला एक शोधपरक प्रयत्न है। महाकवि राजशेखर के रूपकों के नाट्यशास्त्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, साहित्यिक, शैक्षिक आदि विषयों को आधार बनाकर सुधी विद्वानों के सुचिंतित शोधपत्रों को सम्मलित करते हुए **राजशेखर नाट्य विशेषांक** में कुल इक्यावन शोध आलेखों को स्थान दिया गया है। आरम्भ के चौदह आलेख राजशेखर के समग्र नाट्य साहित्य की विविधात्मक वैचारिकी को विश्लेषित और अभिवार्णित करते हैं। तत्पश्चात् बालरामायण नाटक में विद्यमान वैदिक संस्कृति, शाश्वत जीवन मूल्य बोध, भौगोलिक, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक आदि विविध संदर्भों को विवेचन का आधार बनाते हुए कुल ग्यारह आलेख सम्मिलित किए गए हैं। बालभारत नाटक को केन्द्र में रखकर सात आलेखों को पत्रिका में स्थान दिया गया है। इसमें बालभारत में वर्णित दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, महाभारत के नाटकीय स्वरूप, कवित्वशक्ति, स्त्रीपात्र, द्यूतक्रीड़ा, दलितप्रलम्बा आदि विषयों का विवेचन किया गया है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक पर आधारित 15 आलेख कर्पूरमञ्जरी के नाट्यशास्त्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आचार मीमांसीय प्रसंगों का विवेचन करते हुये कर्पूरमञ्जरी के वस्तु, नेता, रस आदि को विस्तार से विश्लेषित एवं विवेचित करते हैं। विद्धशालभञ्जिका के कुल 4 आलेख, विद्धशालभञ्जिका की नाटकीय, दार्शनिक समीक्षा के साथ-साथ उसमें स्त्रीविमर्श आदि विषयों का सारगर्भित एवं विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

'नाट्यम्' पत्रिका का 'राजशेखर नाट्य विशेषांक' राजशेखरकृत समग्र नाट्य साहित्य के सांगोपांग विवेचन के साथ सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। राजशेखर नाट्य विशेषांक के सभी विद्वान् लेखकगण हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं जिनके गम्भीर बौद्धिक चिन्तन और सृजनशील रचनाधर्मिता के बिना यह महत्त्वपूर्ण कार्य संभव ही नहीं हो सकता था। नाट्यम के संपादन में परामर्श मंडल के समादरणीय सुधीजन प्रो. जयशंकरलाल त्रिपाठी, प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी, प्रो. अजय कुमार मिश्र, डॉ. सी.एच. नागराजू एवं डॉ. सञ्जय कुमार से प्राप्त मूल्यवान् परामर्श के लिए मैं उनके प्रति सादर विनयावनत हूँ तथा सभी के प्रति हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ। प्रधान संपादक प्रो. राजेन्द्र यादव के कुशल मार्गदर्शन ने पत्रिका के संपादन में मुझे सदैव प्रोत्साहित करने का कार्य किया है मैं उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ तथा संपादक मंडल के सभी विद्वान् साथीगण डॉ. नौनिहाल गौतम, डॉ. रामहेत गौतम एवं डॉ. किरण आर्या के कृत भूरि परिश्रम से ही यह महनीय अंक मूर्तरूप धारण कर पाया है, उन सभी सुधीजन के प्रति आत्मीयतापूर्ण आभार प्रकट करता हूँ। नाट्यम के सम्पादन में संस्कृत विभाग के शोध छात्र भूपेन्द्र लोधी ने शोध आलेखों के संधारण में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहित की है यतदर्थ उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद तथा पत्रिका के सम्पादन में टंकण कार्य का विशेष महत्त्व होता है एतदर्थ उपयुक्त सहयोग प्रदान करने के लिए अमन प्रकाशन के संचालक अजय जैन तथा उनके सहयोगी अशोक कोष्टी एवं मंगेश जैन का बहुत-बहुत धन्यवाद!

आप सभी के सहयोग एवं शुभकामनाओं की मंगल कामना के साथ सभी का सादर अभिवादन।

इति शम्

शशिकुमार सिंह

अनुक्रम

सम्पादकीय

1. **महाकवि राजशेखर एवं रामकाव्य-परम्परा** 9
वन्दना द्विवेदी

2. **राजशेखर के रूपकों पर ब्रह्मसूत्र का प्रभाव** 17
सूर्यभान यादव

3. **राजशेखर की नाट्यप्रतिभा का चूड़ांत निदर्शन : 'बालरामायणम्' और 'कर्पूरमञ्जरी'** 23
दीक्षा साबले, प्रशान्त कुमार द्विवेदी, शशिकुमार सिंह

4. **राजशेखर के नाट्य-कला की विशेषता** 30
आशुतोष द्विवेदी

5. **राजशेखर के नाट्य-साहित्य में वार्ता विश्लेषण** 34
विकास शर्मा

6. **वाल्मीकि रामायण और राजशेखर के नाट्य-साहित्य में धर्म और राजनीति के अंतर्संबंध** 41
रूपाकुमारी, शिवांश मिश्रा

7. **राजशेखर के रूपकों में लोक संस्कृति** 49
हेमलता रानी

8. **राजशेखर के साहित्य की सांस्कृतिक समीक्षा** 55
सुनीता मीना, महीप कुमार मीना

9. **राजशेखरकृत नाटकों में निहित शैक्षिक मूल्य** 59
योगेश कुमार पाल

10. **राजशेखरकृत नाटकों में आयुर्वेद एवं योगशास्त्र के तत्त्व** 64
गोपाललाल मीना, हितेश मीना

11. **राजशेखर की नाट्य रचनाओं में योग दर्शन** 71
चित्रांश कन्हौआ, शशिकुमार सिंह

12. **राजशेखर के नाटकों में वक्रोक्ति तत्त्व** 75
संदीप कुमार यादव

13. **राजशेखर की नाट्य-कृतियों में अद्‌भुत रस** 81
आशा सिंह रावत, बाबूलाल मीना

14. **राजशेखर का सूक्तिसौन्दर्य** 90
नौनिहाल गौतम

15. **'बालरामायणम्' में वैदिक-संस्कृति** 94
सुधा श्रीवास्तव
16. **'बालरामायणम्' में शाश्वत जीवन मूल्यबोध** 100
प्रशान्त कुमार सेठी
17. **'बालरामायणम्' की भौगोलिक मीमांसा** 104
सुनीता अटल
18. **'बालरामायणम्' में सामाजिक चेतना** 114
सुमन रानी
19. **'बालरामायणम्' की अभिनव कल्पना** 122
एम. किशन
20. **'बालरामायणम्' में कलातत्त्व एवं सौन्दर्याभिव्यक्ति : आधुनिक चिंतन** 127
दयाशंकर तिवारी
21. **आचार्य कुन्तक द्वारा उद्धृत 'बालरामायणम्' के प्रसङ्गों की समालोचना** 130
वेदप्रकाश डिंडोरिया
22. **'बालरामायणम्' में रसभावादि की योजना** 137
पिंकी कुमारी, शिवराज सिंह
23. **'बालरामायणम्' में रसान्विति** 142
तृप्ति दहरी
24. **'बालरामायणम्' में अलंकार-वैशिष्ट्य** 146
आशु कुमार ठाकुर
25. **'बालरामायणम्' की कथावस्तु में किये गये परिवर्तनों का औचित्य** 154
वैष्णवी
26. **'बालभारतम्' का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य** 161
मोनिका कुंवर राठौड़, श्रुति राय
27. **'बालभारतम्' में अभिव्यक्त महाभारत का नाटकीय स्वरूप** 169
शिल्पा सिंह
28. **'बालभारतम्' में महाभारतीय कथा का प्रभाव** 173
वर्षा खण्डेलवाल
29. **बालभारत-भारती** 179
किरण आर्या
30. **'बालभारतम्' में स्त्रीपात्र** 185
साधना मौर्या

31. **'बालभारतम्' में द्यूतक्रीड़ा** 189
मिन्टु मण्डल
32. **दलितप्रलम्बा** 194
रामहेत गौतम
33. **'कर्पूरमञ्जरी' का नाट्यशास्त्रीय अनुशीलन** 201
रश्मि यादव
34. **'कर्पूरमञ्जरी' की साहित्यिक समालोचना** 210
राजेश कुमार मिश्र, सुमन नस्कर
35. **'कर्पूरमञ्जरी' का सामाजिक परिदृश्य** 217
कुसुमकला त्रिपाठी
36. **सट्टककाव्य-परम्परा में 'कर्पूरमञ्जरी' का स्थान** 221
संदीप कुमार
37. **सट्टककाव्य-परम्परा और राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी'** 224
मुकेश कुमार मिश्र
38. **'कर्पूरमञ्जरी' का सांस्कृतिक महत्त्व** 236
वर्षा रानी, ममता त्रिपाठी
39. **'कर्पूरमञ्जरी' का वस्तु-विवेचन** 241
देशराज
40. **'कर्पूरमञ्जरी' के नायक का सात्त्विक गुण-विवेचन** 250
भूपेन्द्र लोधी, शशिकुमार सिंह
41. **'कर्पूरमञ्जरी' में स्त्रीविमर्श** 256
हर्षित राय, दयाशंकर तिवारी
42. **'कर्पूरमञ्जरी' में आचार-मीमांसा** 261
अंकित शाण्डिल्य
43. **'कर्पूरमञ्जरी' में रसतत्त्व-विश्लेषण** 265
कीर्ति देवांशी त्रिपाठी, अवधेश प्रताप सिंह, सुभाषचन्द्र
44. **'कर्पूरमञ्जरी' में रस-संवेदना एवं भाव-ध्वनि** 275
हरविन्दर कौर
45. **'कर्पूरमञ्जरी' में शृंगार रस-परिपाक** 282
गुलशन कुमार
46. **'कर्पूरमञ्जरी' में अलङ्कार-योजना** 288
रजनी गोस्वामी

47. **'कर्पूरमञ्जरी' में छंद विश्लेषण** 293
ठण्डीलाल मीना
48. **'विद्धशालभञ्जिका' नाटिका का दार्शनिक अनुशीलन** 300
प्रमोद कुमार सिंह, कौशल पंवार
49. **'विद्धशालभञ्जिका' की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा** 311
सञ्जय कुमार
50. **'विद्धशालभञ्जिका' की कथा-योजना में स्त्री-पात्रों का नाट्यात्मक योगदान** 320
निधि सिंह, प्रमोद कुमार सिंह
51. **राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' में विदूषक** 328
रञ्जनलता

1

महाकवि राजशेखर एवं रामकाव्य-परम्परा

वन्दना द्विवेदी *

राम कथा एवं देवभाषा संस्कृत भारत के विशिष्टता को आलोकित करने वाली प्रकाश पुंज दिव्य मणि है। रामकथा को भारत के बाहर दिग्दिगंतर में प्रकाशित करने का श्रेय आदिकवि महर्षि वाल्मीकि को है जिनकी अलौकिक दिव्य आदि महाकाव्य रचना रामायण को उपजीव्य बनाकर भारत के प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाओं में उदात्त एवं श्लाघनीय महाकाव्यों, नाटकों, रुपकों नाटिकाओं तथा नल चंपू आदि की रचना हुई है परिणाम स्वरूप राम कथाश्रित रामायण तथा अन्य काव्यमयी रचनाएं सदियों से सहृदय भक्तों के सरस हृदय की ब्रह्मानंद पिपाशा को शांति प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते चली आ रही हैं। राम कथा के आदर्श चरित्र एवं मूल्य आज भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और प्रासंगिक हो रहे हैं जब समाज अपने पूर्व प्रस्थापित वैदिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में सतत ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा है। ऐसे संक्रमण कालीन स्थिति में रामायण के आदर्श चरित्र आज भी लोक प्रसृत चारित्रिक प्रदूषण, नैतिक मूल्यों मे अवमूल्यन को दूर कर दिग्भ्रमित मानवता को सुदृढ़ संबल प्रदान कर रहा है। वस्तुतः वाल्मीकि हमारे राष्ट्रीय आदर्शों के आदि नियामक थे और संपूर्ण कवि समाज के स्वयं उपजीव्य है। यह परकालीन एवं परवर्ती कवियों एवं नाटक कारों एवं गद्य लेखकों के ''उपजीव्यकाव्य'' के रूप में सहज स्वीकृत है। इसी राम काव्य परंपरा में महाकवि राज शेखर के नाटक बाल रामायण पर आदिकवि वाल्मीकि महाकवि भास, महाकवि कालिदास, महाकवि भवभूति- भर्तृमेण्ठ एवं मुरारि का भी प्रभाव पड़ा है क्योकि कालक्रम की दृष्टि से यह सभी राजशेखर के पूर्ववर्ती कवि थे और प्रभावित होना कवि की प्रतिभा को प्रदर्शित करता है।

संस्कृत साहित्य जगत में देदीप्यमान महाराष्ट्र की यायावर वंशीय नामक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न महाकवि राजशेखर की यशोविभूति साहित्य के विविध क्षेत्रों को आलोकित करती है। वे साहित्यशास्त्र के महनीय प्रणेता, नाट्य विद्या के परमाचार्य तथा समग्र भारतीय वाङ्मय के हस्तामलकवत् दृष्टा हैं। इनके पिता का नाम अमात्य (दर्दुरक) था और माता का नाम शीलवती था और उनके पितामह का नाम अकालजलद था। वे एक महाकवि वंशपरम्परा में उत्पन्न हुये थे उनके पूर्वजों में विख्यातकवि सुरानन्द तरल और कविराज थे।[1] राजशेखर का विवाह अवन्तिसुन्दरी से हुआ था जो चह्वाण कुल की कन्या तथा परम विदुषी थी। वे उदारशैव थे इस विषय में जानकारी बालभारत के दो पद्यों से प्राप्त होती है -

---

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

प्रोफेसर, नवयुग कन्या महाविद्यालय, राजेन्द्रनगर, लखनऊ (उ.प्र.)

नमः शिवाय संसार सरोजस्य रजस्विनः। विकासाश्चर्यसूर्याय संकोच सकलेन्दवे।।[2]

ये सीमन्तिगात्र भस्मरजसो ये कुम्भक द्वेषिणों। ये लीढ़ा श्रवणश्रयेण फणिना ये चन्द्रशैत्य दुहः।।[3]

महाकवि राजशेखर बहुश्रुत विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध थे। राजशेखर की सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्हें उनको समृद्ध विरासत के रूप में अपने पूर्वजों से ही मिली थी। यह केवल संस्कृत साहित्य के ही चूणान्त विद्वान् नहीं थे अपितु पालि, प्राकृत, पैशाची आदि भाषाओं के विविध रूपों का भी उन्हें पूर्णतः ज्ञान था। इसी पाण्डित्य के कारण उनके समकालिक विद्वान् शंकर वर्मा ने उन्हें वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार कहा था जिसे स्वयं राजशेखर ने स्वीकृत करते हुए उद्धृत किया है-

बभूव-वल्मीकभवः पुराकविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः।।[4]

काव्यमीमांसा नामक अपने ग्रन्थ में इन्होंने अपने पूर्वजों का नाम बड़े ही आदरपूर्वक उल्लिखित किया है तथा अपने कुल का नाम यायावर बताते हैं- यायावरीयः संक्षिप्य मुनीनां मत विस्तर[5], फुल्ला कीर्तिभ्रमति सुकवेर्दिक्षु यायावरस्य[6], इनके परवर्ती कवि धनपाल ने अपने ग्रन्थ तिलकमंजरी में इन्हें यायावर वंश का मानते हैं- 'यायावरकवेर्वाचः मुनीनासिव वृत्तयः।' राजशेखर के प्रपितामह का नाम 'अकालजलद' था जिसका उल्लेख बालरामायण में उन्होंने इस प्रकार किया है-

स मूर्तो यत्रासौ गुणगण इवाकालजलदः। सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपयेन वचसा।।
न चान्ये गणरत्नतरलकविराजप्रभृतयोः। महाभागस्तस्मिन्न यमजनि यायावरकुले।।

तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवती सुनुरूपाध्याय श्री राजशेखर इत्यपर्याप्तं बहुमानेन। अर्थात् यह माहराष्ट्र के संभवतः विदर्भ के निवासी थे परन्तु कान्यकुब्ज के ये राजा के उपाध्याय पद पर विराजते थे जो कन्नौज के प्रतिहारवंशीय राजाओं में विशेष गौरवशाली माना जाता है।

आपन्नार्ति हरः पराक्रमधनः सौजन्यवारां निधि- स्त्यागीसत्यसुधा-प्रवाह शशमृत कान्तः कवीनां गुरुः।।
वर्ण्य वा गुणरत्न रोहण गिरेः किं तस्य साक्षादसौ, देवोयस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यों रघु ग्रामणीः।।[7]

राजा महेन्द्रपाल के आदेश से ही राजशेखर ने ''बालरामायण'' का अभिनय प्रस्तुत किया था। कुछ दिनों के लिये यह लाट देश चले गये और लाट नरेश की अध्यक्षता में विद्धशालमंजिका का अभिनय किया गया था। यहां से पुनः कुछ समय पश्चात लौटकर वह कान्यकुब्ज आये और प्रतिहारवंशीय राज (890 से 908) महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल (910 से 940) के सभासद होकर रहे। यहीं पर बालभारत या प्रचण्डपाण्डव का अभिनय किया गया, इन राजाओं के समकालीन होने से इनका समय नवीं शताब्दी के अन्त तथा दशवीं शताब्दी का प्रारम्भ मानना उचित प्रतीत होता है अर्थात् 880 से 920 ई. ही सम्यक् है। इस संबंध में स्वयं राजशेखर अपने को महेन्द्रपाल का गुरू मानते हैं।

देवोयस्य महेन्द्रपाल नृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।[8]

कृतियों के विषय में राजशेखर स्वयं अपने ''षटप्रबन्धों'' का निर्देश करते हैं- ''विद्धिः नः षटप्रवन्धान''[9] इन प्रबन्धों में पांच उपलब्ध है तथा प्रकाशित भी है और एक 'हरविलास' नामक ग्रन्थ अप्राप्य है। इन प्रबन्धों में ''काव्यमीमांसा'' का सम्बन्ध अलंकार शास्त्र से है और यह कवि की प्रौढ़ कृति है और संभवतः अन्तिम रचना है। बालरामायण- यह 10 अंकों का एक महानाटक है प्रत्येक अंक एक नाटिका के

बराबर है इसमें 741 पद्य है इसमें सबसे अधिक शार्दूल विकीडति छन्द का सर्वाधिक प्रयोग 203 श्लोकों में हुआ है और स्रग्धरा का 89 श्लोकों में प्रयोग हुआ है। बालभारत-यह महाभारत की कथा का विराट् नाटकीय रूप है परन्तु इसके प्रारम्भ के दो ही अंक प्राप्त होते है।

विद्धशाल भंजिका यह चार अंकों की सुन्दर नाटिका है। कर्पूर मंजरी यह चार अंकों का सट्टक नामक रूपक है। इसकी भाषा प्राकृत है इसमें लेखक के द्वारा शिव की स्तुति की गयी है। हरविलास-अप्राप्य है। भगवान शिव से सम्बन्धित महाकाव्य है इनके छः प्रबन्धों में छह भाषाओं का प्रयोग कवि के अद्भुत वैदुष्य को प्रकट करता है- देववाणी संस्कृत, तीनों प्राकृत (महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी) अपभ्रंश, पैशाची इन सब भाषा में अवाध गति थी इसलिये इन्हें ''कविराज'' भी कहा गया है जो कवि के लिय बहुत बड़ा गौरव होता है।

गिरः श्रव्या दिव्या प्रकृत मधुराः प्राकृतधुरः। सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम्।।
विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयाश्च त इमे। निबद्धा यस्त्वेषां खलु निखिलेऽस्मिन कविवृपा।।[10]

रामकाव्य परम्परा के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राम भारतीय संस्कृति के भावनायक है, इस त्रैलोक्याधिपति, पुराण पुरुष भावनायक की कथा त्रेता युग की है लेकिन हर युग में कथा में कुछ न कुछ नया आयाम जुड़ता चला आया है। देश और काल के परिवर्तन चक्रों में पड़े राम को लोकनायक बनने में हजारों वर्ष लग गये। वैदिककाल के पश्चात् छठी शताब्दी ई. पूर्व में इक्ष्वाकुवंश के सूत्रों द्वारा रामकथा से सम्बन्धित गाथाएं लिखी जाने लगी थीं इसका परिणाम यह हुआ कि चतुर्थ शताब्दी ई. पूर्व तक राम के चरित्र को आधार बनाकर काव्यों की रचना होने लगी।

राम काव्य परंपरा का प्राचीनतम उपलब्ध उपजीव्य आदि महाकाव्य रामायण है जो महर्षि वाल्मीकि कृत है। यद्यपि रामायण से पूर्व भी राम कथा पर छोटे छोटे आख्यान कथाकाव्य आदि के वाचिक परंपरा का उल्लेख मिलते हैं किंतु वे अप्राप्त हैं। विद्वानों का मत है कि वाल्मीकि का समय वैदिक काल के पश्चात् का लगभग रहा होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वाल्मीकि का समय क्या है, क्योंकि वैदिक काल का समय ही अनिर्धारित है। ऐसी स्थिति के कारण वाल्मीकि रामायण प्राचीनतम उपलब्ध राम काव्य है और आर्ष महाकाव्य महाभारत के वनपर्व शांति पर्व और सभा पर्व में राम कथा का प्रसंग मिलता है। वन पर्व का रामोपाख्यान प्रसिद्ध है इसके बाद यदि हम बौद्ध जातकों को देखते हैं तो दशरथ जातक में राम कथा का वर्णन मिलता है। जैन ग्रंथों में गुणभद्र कृत उत्तर रामायण में भी रामकथा का दर्शन होता है इसके अतिरिक्त पद्म पुराण, विष्णु पुराण आदि पुराण राम कथा से भरे पड़े है। अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, भुशुण्डी रामायण जैसे पौराणिक ग्रन्थ में राम काव्य के उदाहरण मिलते हैं राम काव्य परंपरा केवल हिंदी या संस्कृत में ही नहीं बल्कि पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में भी निबद्ध हो रही थी तथा महाकाव्यों नाटकों आदि में रामकथा को आश्रय बनाकर बहुत सारे काव्य ग्रंथों की रचना हुई है। कालिदास रचित रघुवंश, कुमार दास रचित जानकी हरण, क्षेमेंद्र कृत रामायण मंजरी, मल्लिनाथ रचित रघुवीर चरित्र रामायण आधारित काव्य की रचना हुई है। संस्कृत के सृजनात्मक साहित्य में रामकथा को लेकर नाटकों महाकाव्यों के सृजन की एक सुंदर परंपरा मिलती है। नाटकों में भास का अभिषेक नाटक तथा प्रतिमा नाटक भवभूति का महावीर चरित, उत्तर रामचरित राजशेखर का बाल रामायण, दामोदर कृत हनुमन्नाटक और कवि जयदेव का प्रसन्न राघव भी रामकथा की परंपरा का आश्रय लेकर ही निबद्ध किया गया है। वाल्मीकि रामायण को मूल आधार बनाकर भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी राम काव्य की रचना हुई है; जैसे मराठी में एकनाथ

द्वारा रचित भावार्थ रामायण बंगला में कृतिवास कृत रामायण तमिल में कंबन कृत रामायण, तेलुगु में रंगनाथरामायण आदि उल्लेखनीय राम कथाश्रित महाकाव्यों की रचना हुई।

राम काव्य परंपरा के चिंतन में वाल्मीकि कृत रामायण मेरुदंड के रूप में पूरे साहित्य जगत् को संबल प्रदान करता आ रहा है। वाल्मीकि रामायण की परंपरा ने कालक्रमानुसार परिवर्तन को भी स्वीकार किया है उसी का नया सृजन चिंतन राम भक्ति काव्य में भी देखने को मिलता है और अब इस नवीन सृजन परंपरा में श्रृंगार को भी वाल्मीकि रामायण से अलग हटकर स्थान मिलने लगा। सेतुबंध तथा भट्टि काव्य में राक्षसों के श्रृंगार चेतना का वर्णन हुआ है। कुमार दास के जानकी हरण तथा कुमारसंभव में भोगवादी संस्कृति का विस्तार दिखता है। इसमें भी रामायण की कथा का सहारा लिया गया है और कालिदास-ने रघुवंश में रामायण कथा के अंधानुकरण से अपने को थोड़ा अलग रखा है तथा पूरे वंश परम्परा का वर्णन किया है। आचार्य क्षेमेंद्र ने रामायण मंजरी नामक महाकाव्य की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत नाटकों ने रामकथा को एक नया रूप प्रदान कर समाज में रामकथा की जीवंतता को सदा बनाए रखा है और एक नया सहृदय समाज प्रस्थापित करने में भी सफल हुआ है। मुरारि कृत अनर्घ राघव, बाल रामायण आदि महानाटकों में इसी परंपरा को आगे बढ़ाया गया है भास ने प्रतिमानाटक को रामकथा के पूर्व भाग पर आश्रित किया है तथा अभिषेक नाटक को रामकथा के उत्तरकांड पर आश्रित करके आगे बढ़ाया है और इसी परंपरा का उत्कर्ष रूप हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने भी अपने नाटक महावीर चरित को रामकथा के पूर्व भाग पर आश्रित किया है तथा उत्तररामचरित राम कथा के उत्तर कांड पर आधारित है। महाकवि भवभूति ने राम तथा अयोध्या की जनता के सम्मुख सीता चरित्र संबंधी करुण कथा अभिनय का एक नवीन प्रयास किया है। इस नाटक के माध्यम से भवभूति यह संकेत करने में सफल होते हैं कि मानव मर्म को स्पर्श करने में यदि कोई सहायक रस है तो वह करुण रस के अतिरिक्त और कोई दूसरा रस नहीं है। भवभूति का अनुकरण कर धरिनाग ने ''कुंद माला'' नाटक की रचना की पर उतना सफलता को प्राप्त नहीं हुआ है। राजशेखर से भी पूर्व कवियों में रामचरित के गायक होने का प्रमाण स्वयं महाकवि भवभूति ने दिया है-

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां. यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरसत मेऽपि वाचस्तत्सु प्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम।।

इससे स्पष्ट होता है कि राजशेखर रामोपासक थे। महाकवि भवभूति का अनुसरण करते हुए 10 वीं शताब्दी में महाकवि राजशेखर ने ''बाल रामायण'' महानाटक की रचना की यह 10 अंकों का एक महानाटक है प्रत्येक अंक एक नाटिका के बराबर है इसमें 741 पद्य है इसमें राम कथा वर्णित है, रावण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है और उसके प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित की गई है बाल रामायण के प्रथम अंक का नाम 'प्रतिज्ञा पौलस्त्य' है जिसमे रावण जनकपुर में आकर सीता से विवाह करने की प्रार्थना करता है। इस अंक में शुनःशेप के कथन से स्पष्ट होता है कि राम राक्षसों से रक्षा की औषधि है - **रामराक्षसरऔषधं रामभद्रमानेतुं**[12] राम को ही विष्णु रूप में वर्णित करते हैं- **धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नाश्च विष्णोः काव्यव्याजात् तदियमपरा काप्यहो कामधेनु। (1/6 बा.रा.)**

द्वितीय अंक का नाम 'रामरावणीय' है इसमें रावण तथा परशुराम के कलह का वर्णन है परशुराम रावण पर क्रोध से आग बबूला हो जाते हैं यथा द्रष्टव्य है- **तदिदमभिदधीथास्तं प्रवाचं पिशाचं, तवभुजतरूखण्डं मत्कुठारो न सोढा।**[13] तीसरे अंक का नाम 'विलक्षण लंकेश्वर' है इस अंक में रामायण से अलग हटकर नवीन

नाटकीय योजना प्रस्तुत की है रावण सीता की प्राप्ति से नितांत खिन्न है इसलिए उसके मनोविनोद के लिए सीता स्वयंवरण गर्भ नाटक का प्रदर्शन किया जा रहा है इस नाटक की कल्पना संभवतः राजशेखर की अपनी कल्पना नहीं है अपितु भवभूति के उत्तररामचरित के अनुकरण पर इस गर्भांक नाटक की प्रस्तावना की गई है इसी अंक में राम का सीता के साथ विवाह शिव धनुष तोड़ने के अनंतर होता है। चतुर्थ अंक 'भार्गव भंग' में शिव धनुष तोड़ने के अनंतर राम और परशुराम के साथ भयंकर वाद विवाद हो जाता है यहां पर कवि एक नवीन योजना सम्मुख लाता है कि इंद्र दशरथ को मातलि के साथ आकाश मार्ग से जनकपुर भेज देते हैं तथा अपने नेत्रों से राम के हाथ पराक्रम तथा परशुराम की पराजय की घटना को देख कर आनंदित होते हैं **'स्वायत्तेन कुठारेण स्वाधीने राममूर्धनि।**[14]

पंचम अंक का नाम 'उन्मत्त दशानन' है इस अंक में कवि अपना काव्यकौशल दिखलाने का अच्छा प्रयास करता है सीता के वियोग में रावण का उन्माद कवि ने बडी प्रौढ़ता से दिखलाया है रावण स्वयं अपने मनोविनोद के लिए षड् ऋतुओं से संपन्न लीलोद्यान में जाता है तथा प्रत्येक ऋतु का सुंदर वर्णन करता है। छठे अंक का नाम 'निर्दोष दशरथ' है इस अंक में राजशेखर ने राम वन गमन प्रसंग में दशरथ को सर्वथा निर्दोष सिद्ध किया है और यहां वाल्मीकि रामायण से अलग हटकर कवि एक नई कल्पना प्रस्तुत किए है रावण के आदेश से सूर्पनखा माया के कारण कैकेई बनती है और मायामय दशरथ बनते हैं और यही मायामय कैकेई ही राम को वन निर्वासन करती है। इस अंक में यह देखने में आता है कि कवि कार्यान्विति का पर्याप्त प्रयास किया है रत्नशिखण्ड राम के वनवास की घटनाओं का वर्णन दशरथ को सुनाता है और विषम घटनाओं को सुनकर दशरथ बहुत दुखी होते हैं। सप्तम अंक का नाम 'असम पराक्रम' है इसमें समुद्र और राम के बीच कथनोपकथन का वर्णन है रावण के व्यवहार से दुखी होकर विभीषण राम की शरण में आते हैं और राम समुद्र के किनारे उस समय बैठे रहते हैं तथा इसी अंक में समुद्र का बंधन हो जाता है तथा राम लंका में पहुंच जाते हैं। अष्टम अंक का नाम 'वीर विलास' है लंका के युद्ध का इसमें विशद वर्णन हुआ है। कंकालक नामक पात्र की कल्पना आदि रामायण से हटकर है यह पात्र युद्ध में हो रही घटनाओं का वर्णन रावण को बताता है इसी अंक में मेघनाथ और कुंभकरण की मृत्यु हो जाती है। भवभूति ने सप्तम अंक में दिखाया कि सीता की अग्नि परीक्षा होती है राम पुष्पक विमान पर आरूढ होकर सुग्रीव आदि के साथ अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। हनुमान राम के आगमन पर संदेश जाकर भरत को देते हैं अयोध्या में राम का राज्याभिषेक वशिष्ठ करते हैं। गंधर्व यशोगान करते हैं। इस प्रकार मंगल वचन के साथ नाटक समाप्त होता है, किन्तु बाल रामायण में सप्तम अंक में दिखाया गया है कि सेतु निर्माण के कार्य में राक्षस सेना बाधा डालती हैं। राम-रावण का युद्ध होता है और रावण सीता का सिर काट कर फेंक देता है जिसे देखकर राम शोक संतप्त हो जाते हैं फिर प्रसंग आता है कि वास्तविक जानकी का सिर नहीं है। वाद विवाद के बाद राम कहते हैं कि नगर सीता से दूर हटकर युद्ध किया जाए। इस अंक में राम का प्रतिद्वंदी पर आक्रमण वर्णित है। **भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते। कोअयं ते मतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किंञ्चिद् गतम।**[15]

दसवे अंक का नाम राघवानंद है इस अंक में राम पुष्पक विमान द्वारा लंका से चलकर अयोध्या आते हैं और वहां उनका राज्याभिषेक होता है इसी अंक में भौगोलिक स्थलों आदि का वर्णन करते हैं इसलिए इसको भुवन कोष जैसा भी कहा जाता है भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। राजशेखर के बाल रामायण में पूर्ववर्ती कवियों विशेषतः कालिदास भास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है श्लोकों में पर्याप्त उदाहरण भवभूति

के महावीर चरित्र तथा उत्तररामचरित एवं बाल रामायण में ढूंढे जा सकते हैं। साम्यों के न होने पर भी राजशेखर की मौलिकता में कोई संदेह नहीं दिखाई देता हैं।

कथानक समीक्षा

राजशेखर का बाल रामायण अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ रहा है साहित्यकारों ने भी इसकी लोकप्रियता और प्रमाणिकता की पुष्टि इस रूप में की है कि इस ग्रंथ से उद्धरण लेकर अपने ग्रंथ में स्थान पर स्थान पर दिया है राजशेखर ने इस नाटक में विश्वामित्र प्रसंग में राम के राज्याभिषेक तक की समग्र रामकथा को नाटकीय रूप देने का प्रयास किया है। राजशेखर ने इस विशाल काय बालरामायण में नाटकीय घटनाओं को एक दूसरे से संबद्ध करने का पूर्ण प्रयास किया है रामायण में राम उदात्त नायक है तो रावण प्रति नायक है और इस नाटक में आरंभ से ही राम विरोधी समस्त घटनाएं रावण की ही प्रेरणा तथा कुमंत्रणा से निरंतर आगे की ओर अपनी गति मे बढती हैं। लेकिन घटनाक्रमों के वर्णन में अपने नाटक की गतिशीलता पर ध्यान नहीं देते हैं और कथा वहां पंगु हो जाती हैं तथा यह दृश्य कम रह जाती हैं और श्रव्य ज्यादा हो जाती हैं। यह त्रुटि नाटककार राजशेखर को मालूम थी तभी वह बालरामायण के प्रारंभ में ही कह देते हैं कि यहां भणित गुण है-

बते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्बालारामायणेअस्मिन्।
प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितोगुण विद्यते वा न वेति।[16]

यद्यपि स्वस्ति तुभ्यं भव पठन रुचि विंद्धि न षट् प्रबन्धान। नैवं चेद् दीर्घमास्तां नटवटुवदने जर्जरा काव्यकथा।

बाल रामायण में निर्दिष्ट कथानक की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि राजशेखर ने बाल रामायण के मूल स्रोत के रूप में वाल्मीकि रामायण को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है तथा वाल्मीकि का स्मरण नाटककार के प्रति आदरभाव दिखाने के लिए प्रारंभ में ही कर लिया है। वाल्मीकि रामायण की राम कथा से बाल रामायण की कथा में कई जगह मूलभूत अंतर दिखता है और कई जगह अनावश्यक विस्तार भी दिखता है. जैसे जानकी स्वयंवर में रावण की उपस्थिति का दिखाया जाना और धनुष का अपमान रावण का परशुराम के परशु को लेकर विवाद सीता को वरण करने वाले को रावण द्वारा मारने की प्रतिज्ञा दशरथ और कैकई की अनुपस्थिति में माया मय सूर्पणखा द्वारा दशरथ कैकेई का भेष बनाकर राम को 14 वर्ष के लिए वन के लिये निर्वासित करना तथा राम का यह जानकर भी कि यह वास्तविक दशरथ और कैकई नहीं है आज्ञा मानकर वन जाना, भरत के विषय में बाल रामायण में प्रसंगत यह दिखाया गया है कि वह मातुल कुल में ना रहकर अयोध्या में ही विद्यमान थे, जब कि मूल रामायण में बताया गया है कि यह उस समय अपने ननिहाल में थे। सुमंत्र का राम को नर्मदा तट पर पहुंचाना और जटायु के दूत चित्र श्रीखंड द्वारा सीता हरण तथा शूर्पणखा का अयोध्या में नासाछेदन की घटना सभी वाल्मीकि रामायण से अलग है कवि की मुख्य उद्भावना रावण के स्वयंवर में उपस्थिति और तभी से सीता के प्रति एकतरफा अनुरक्ति। इससे यह दिखाने का प्रयास किये हैं कि रावण सीता के प्रति स्वयंवर में अनुरक्त हो जाता है और उसी समय जब सीता को स्वयंबर में प्राप्त नहीं कर पाता है तो अपहरण की योजना बनाता है। दशरथ को दोष से मुक्त सिद्ध करना नाटककार की अपनी एक मानवीय कल्पना है और एक नई सोच है, कवि इसको मानवीय धरातल पर रखकर तर्कसंगत सिद्ध करने का प्रयास करना चाहता है। राजशेखर कथोपकथन और वाग् वैदग्ध में विशेष प्रवीण है संवादों में रोचकता और कूटोक्ति में राजशेखर अपना सानी नहीं रखते। प्रारंभ में ही राक्षस और शुनःशेप संवाद में विश्वामित्र और अगस्त्य का जो परिचय प्राप्त होता है वह

कथोपपकथन की विदग्धता का परिचायक है। राजशेखर ने अपने नाटक में पात्रों की बहुलता के साथ-साथ छंदो की भी बहुलता स्थापित कर दी है 22 छदों का प्रयोग किया है। जिसमे सर्वाधिक शार्दूलविक्रीडति 208 जगह शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः, वसन्ततिलका 163, अनुष्टुप 128, जगह प्रयुक्त हैं तथा न्यूनाधिक रुप में अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। शब्दों के चयन में भी राजशेखर निपुण थे किसी भी दृश्य का वर्णन सांगोपांग रूप से स्वभावतः उपस्थित कर देते हैं परशुराम की यह उक्ति रावण के लिए कितनी सारगर्भित है-

परशुमिमदेयं याचते युद्धहेतो गिरिश धनुरधिज्यं कर्तुमुत्कंठते च।[17]

दृश्यों और व्यक्तियों तथा उनके स्वभाव वर्णन में राजशेखर ने निपुणता हासिल की है प्रति नायक रावण सीता स्वयंवर के समय ही सीता पर आकृष्ट है और संपूर्ण गतिविधियां उसी पर केंद्रित है। संपूर्ण नाटक का कथानक उसी पर निर्भर करता है सीता का चरित्र आदर्श साध्वी का है। अग्नि परीक्षा से सभी दुखी होते हैं और नाटककार अलका नगरी के मुख से कहलाता है कि अंधकार से आवृत्त होने पर भी जिस प्रकार चंद्रकला काली नहीं होती है उसी प्रकार सीता का राक्षस गृह में निवास निंदा का कारण नहीं है।

''कालुष्यहेतुर्वैदह्या न राक्षसगृहस्थितिः।'' ध्वान्तवन्दीकृतापीन्दोर्न कला जातु नीलति।।[18]

नारी सम्मान की बात राजशेखर अरुंधति आदि पतिव्रता स्त्रियों के मुख से कहलाते हैं हे अग्नि सीता के तुम में प्रवेश करने पर तुम जल्दी शीतल हो जाओ अन्यथा तुम अपनी पवित्रता के लिए कहाँ जाओगे। इस प्रकार राजशेखर कवि नाटककार एवं साहित्य शास्त्र के आचार्य के रूप में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

उपसंहार

महाकवि राजशेखर का बालरामायण रामकथा परंपरा की उस सतत धारा का विशिष्ट उदाहरण है, जिसने वाल्मीकि से लेकर भवभूति, भास और कालिदास तक के साहित्यिक वैभव को आत्मसात करते हुए नवीनता का संचार किया। इस नाटक में राजशेखर ने रामकथा को केवल दोहराया नहीं, बल्कि उसमें नए प्रसंगों, कल्पनाओं और नाटकीय उपकरणों को जोड़कर उसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। विशेष रूप से रावण के चरित्र को एक करुण प्रेमी के रूप में चित्रित करना और दशरथ को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास उनकी मौलिकता को प्रमाणित करता है। यद्यपि कभी-कभी कथा की गति में शिथिलता और अति-विस्तार दिखाई देता है, फिर भी यह ग्रंथ रामकथा परंपरा की रचनात्मकता और अनुकूलनशीलता का सशक्त प्रमाण है।

रामकथा भारतीय संस्कृति के मूल्यों, आदर्शों और आस्था का जीवंत आधार रही है। राजशेखर ने अपने नाटक के माध्यम से यह सिद्ध किया कि समय और परिस्थिति के अनुसार भी रामकथा की प्रासंगिकता बनी रहती है। उनका बालरामायण इस बात का साक्ष्य है कि रामकथा केवल धार्मिक आख्यान न होकर समाज को नैतिक दिशा प्रदान करने वाला सांस्कृतिक दस्तावेज भी है। इस प्रकार, राजशेखर का योगदान रामकाव्य परंपरा को स्थायित्व और नवीन दृष्टि देने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भसूची-

1. *संस्कृत साहित्य का इतिहास डॉ. आचार्य कपिलदेव द्विवेदी-पृष्ठ-433*
2. *बालरामायण-1/1*
3. *बालरामायण-1/2*

4. बालरामायण-1/16
5. काव्य मीमांसा-
6. बालरामायण-1/6
7. बालरामायण-1/18
8. बालरामायण-1/11
9. बालरामायण-1/12
10. बालरामायण-1/11
11. हयग्रीववधं मेष्ठस्तदग्रे दर्शयन नवम। आसमाप्त ततो नापत् साध्वसाधिवति वा वचः ।।
राजतरंगिणी, तृतीय तरंग - 260-262
12. बालरामायण-1/22/23
13. बालरामायण-2/22
14. बालरामायण-4/62
15. बालरामायण-9/99
16. बालरामायण-1/12
17. बालरामायण-2/22
18. बालरामायण-10/3

2

राजशेखर के रूपकों पर ब्रह्मसूत्र का प्रभाव

सूर्यभान यादव *

भारतीय साहित्य की दार्शनिक परंपरा अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण रही है। संस्कृत साहित्यकारों ने न केवल रूपकों और सौंदर्यशास्त्र को अभिव्यक्त किया है, बल्कि जीवन और ब्रह्म के जटिल तत्त्वों को भी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। राजशेखर ऐसे ही एक महान् कवि और नाट्यकार हैं, जिन्होंने काव्य में रूपकात्मक शैली द्वारा ब्रह्म-दर्शन को सजीव किया है। ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शन का सार प्रस्तुत करता है, जो आत्मा और ब्रह्म की एकता का विवेचना करता है। यह शोध पत्र ब्रह्मसूत्र के उन दार्शनिक सिद्धांतों की पहचान करता है जो राजशेखर की काव्य रचनाओं कर्पूरमंजरी और काव्यशास्त्रीय ग्रंथ-काव्यमीमांसा में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। अध्ययन में यह पाया गया कि ब्रह्मसूत्र की आत्मा-ब्रह्म एकता, माया की अवधारणा, एवं ज्ञान द्वारा मोक्ष – ये सभी तत्त्व राजशेखर की रचनाओं में रूपकों के माध्यम से कलात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं। इसके अतिरिक्त, राजशेखर की काव्य-मीमांसा में भी ब्रह्मसूत्र की दार्शनिक दृष्टि की छाया भी देखी जा सकती है। यह शोधपत्र राजशेखर के काव्य एवं काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण में ब्रह्मसूत्रीय प्रभाव को रूपकों एवं दार्शनिक अवधारणाओं के माध्यम से समझने का प्रयास करता है।

भारतीय साहित्य और दर्शन की परंपरा में वेदान्त दर्शन, विशेष रूप से ब्रह्मसूत्र, एक मौलिक ग्रन्थ रहा है। यह ग्रंथ न केवल दार्शनिक चिंतन को दिशा देता है, बल्कि साहित्यिक अभिव्यक्तियों को भी गहराई से प्रभावित करता है। संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य राजशेखर कालखंड लगभग 9वीं-10वीं शताब्दी माना जाता है।

राजशेखर स्वयं कन्नौज के प्रतिहार राजा महेंद्रपाल के राजकवि थे और उनकी रचनाओं में राजदरबारी संस्कृति एवं दार्शनिक गंभीरता का अनूठा समन्वय देखने को मिलता है। उनके नाटकों, काव्य शास्त्रीय ग्रंथों और रूपकों में ब्रह्मसूत्र के सिद्धांत, विशेषकर अद्वैतवाद, मायावाद, चित्र-दर्पण रूपक और अनिर्वचनीयता की गूँज सुनाई देती है।

''कवीनां बुद्धिक्रीडा काव्ये लभ्यते।''[1]

काव्यमीमांसा में कवि ने कहा है कि कवियों का बौद्धिक खेल काव्य कृतियों के द्वारा होती है। राजशेखर का साहित्य केवल शाब्दिक सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें एक दार्शनिक गाम्भीर्य विद्यमान

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

******शोधार्थी-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 110007*

है। उनकी प्रमुख काव्य तथा नाट्यरचना जैसे - काव्यमीमांसा, बालरामायण, कर्पूरमंजरी और विद्धशाल भंजिका—इस बात का प्रमाण है कि काव्य और दर्शन के बीच एक अटूट संबंध रहा है। ब्रह्मसूत्र जिसे कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ ने उनके काव्यशास्त्रीय चिंतन को एक नया आयाम प्रदान किया है। इस शोध का उद्देश्य राजशेखर के साहित्य में ब्रह्मसूत्र के प्रभाव का विश्लेषण करना है, विशेष रूप से:

- रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से अद्वैतवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति।
- मायावाद के सिद्धांत का नाटकीय और काव्यात्मक अनुप्रयोग।
- चित्र-दर्पण जैसे रूपकों का उपयोग करके जगत और ब्रह्म के संबंध को दर्शाना।
- अनिर्वचनीयता की अवधारणा का काव्यशास्त्र में स्थान।

ब्रह्मसूत्र (वेदान्त ग्रन्थ)

वेदान्त दर्शन दार्शनिक साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण दर्शन माना जाता है। वैदिक साहित्य के अन्त में जिस उपनिषद् साहित्य की रचना हुई उसे वेदान्त कहा जाने लगा।

''वेदान्तोनाम् उपनिषत्प्रमाणम्तदुपकारीणि च शारीरक्सूत्रादीनि।''[2]

वेदान्त दर्शन के प्रणेता महर्षि बादरायण को माना जाता है। इनके द्वारा विरचित ब्रह्मसूत्र इस दर्शन का आधार ग्रन्थ है तथा उपनिषद् भी इस दर्शन के मुख्य आधार ग्रन्थ हैं। जिनके वाक्यों का हर जगह उल्लेख किया गया है। ब्रह्म, जीव, जगद् और माया इस दर्शन के प्रमुख विवेच्य हैं।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन बादरायण प्रणीत ब्रह्मसूत्र - वेदान्त दर्शन, सांख्य, योग, न्यायादि सभी दर्शनों में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण दर्शन है जिसमें थोड़े से शब्दों के द्वारा अतीव संक्षिप्त रूप से पर ब्रह्म के स्वरूप, उसकी प्राप्ति के साधन उसकी उपासना एवं विज्ञान के फल का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है, इसलिए इसका नाम ब्रह्मसूत्र है' सूचनात् सूत्र मित्याहुः' इस आप्त वचन द्वारा वह पर ब्रह्म का सूचक है। यह ऋगादिवेदों के अन्तिम सिद्धान्त का दर्शन कराता है, अतः इसे 'वेदान्तदर्शन' भी कहते हैं। उपनिषदें इस वेदान्त दर्शन की मूल आधार हैं। अतः आचार्य श्री शङ्कर ने कहा है- **'वेदान्तवाक्य- कुसुमग्रथनार्थत्वाद् ब्रह्मसूत्रणाम्'।**[3]

अर्थात् जैसे सूत्र से पुष्पों को गूंथकर सुन्दर माला बनायी जाती है, वैसे ब्रह्म सूत्रों के द्वारा वेदान्त-वाक्यरूपी कुसुमों का ग्रंथन कर सर्वोत्तम ब्रह्मसूत्र रूप मनोहर माला का निर्माण किया गया है, तात्पर्य यह है— ब्रह्मसूत्रों के द्वारा उपनिषद्वाक्यों के ही यथार्थ अभिप्राय का प्रकाशन किया जाता है। ब्रह्मसूत्र सूत्र शैली का ग्रन्थ है। वाचस्पति मिश्र ने अपने 'भामती' टीका में सूत्र का लक्षण किया है-

लघूनिसूचितार्थानिस्वल्पाक्षरपदानिच। सर्वतःसारभूतानिसूत्राण्याहुर्मनीषिणः।।[4]

ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय को चार पादों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक पाद में अनेक अधिकरण हैं। ब्रह्मसूत्र में कुल 191 अधिकरण तथा कुलसूत्रों की संख्या 555 है।

1. प्रथम अध्याय – समन्वयाध्याय - ब्रह्म की प्रकृति
2. द्वितीय अध्याय - अविरोधाध्याय– जीव ब्रह्म का संबन्ध
3. तृतीय अध्याय –साधनाध्याय– मोक्ष मार्ग
4. चतुर्थ अध्याय – फलाध्याय– मोक्ष की अवस्था

ब्रह्मसूत्र पर महेश्वर आदि गुरु आचार्य शङ्करस्वामी ने अतीव गौरवशाली प्रशस्त शारीरक भाष्य की रचना की है। शारीरक भाष्य को शाङ्कर भाष्य के नाम से भी जाना जाता है। शारीरक भाष्य पर वाचस्पति मिश्रजी ने भामती टीका तथा गोविन्दानन्द जी ने रत्न प्रभा टीका लिखी।

राजशेखर के साहित्य में ब्रह्मसूत्रीय प्रभाव के प्रमुख आयाम -

- अद्वैतवादी –सृष्टि का काव्यात्मक रूपांतरण

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म को **'जन्माद्यस्य यतः'**[5] जगत्, सृष्टि, संसार का मूल कारण कहा गया है और यह नाम रूपात्मक प्रपंच की उत्पत्ति, स्थिति और विलय का प्रमुख कारण है। राजशेखर ने इसी भाव को अपने नाटकों में भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। जैसे-बालरामायण में राम-रावण संवाद में,

रावण : 'किं मां ज्ञातुमिच्छसि राम? अहमेव त्वम्, त्वमेवाहम्''

राम : ''एवमेतत्। एको हि आत्मा सर्वभूतेषु गूढः।''[6]

रावणः ''हे राम, तुम मुझे क्या जानना चाहते हो? मैं ही तुम हूँ, और तुम ही मैं हूँ!'' यहाँ रावण आत्मा की एकता का संकेत देता है—रावण और राम दो नहीं, बल्कि एक ही चैतन्य के प्रतीक हैं।

राम : ''यह सत्य है। क्योंकि एक ही आत्मा सभी प्राणियों में छिपा हुआ है।''

राम इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि समस्त जगत् में एक ही परमात्म तत्त्व व्याप्त है।

यह संवाद 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' समस्त विश्व तथा सभी प्राणी एक परिवार हैं और **'अहं ब्रह्मास्मि'**[7] मैं ही ब्रह्म हूँ के आध्यात्मिक सिद्धांत को प्रकट करता है। रावण और राम का विरोध सतही है, परंतु गहराई में दोनों एक ही चेतना के अंग हैं। यहाँ माया (भ्रम) के कारण द्वैत भाव दिखता है, लेकिन वास्तविकता अद्वैत अर्थात् दोनों एक ही ब्रह्म के अंग हैं। इस प्रकार, यह संदेश मिलता है कि ईश्वर और जीव, शिव और शक्ति, या राम और रावण के भेद केवल व्यावहारिक स्तर पर हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से सब एक ही परमसत्ता के विविध रूप हैं।

- कर्पूरमंजरी में नायिका की आत्मचेतना

राजशेखर ने अपने नाटक कर्पूरमंजरी मे नायिका का विरह वर्णन करते हैं और नायिका द्वारा प्रश्न उठाते हैं- **''यदि त्वं नासि, तर्हि कोऽहम्? यद्यहं अस्मि, तर्हि त्वमेवासि!''**[8]

''यदि तुम नहीं हो, तो मैं कौन हूँ? और यदि मैं हूँ, तो तुम ही हो!''

यह वाक्य ब्रह्मसूत्र के अद्वैत सिद्धांत-**''तत्त्वमसि''**[9] (तू वही है) और ''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ब्रह्म हूँ) - को प्रदर्शित करता है और नायिका कहती है कि उसका अस्तित्व केवल उसके प्रियतम के साथ ही संभव है। यदि वह नहीं है, तो उसका अपना ''मैं'' भी निरर्थक है। यह भाव विरह की तीव्र अनुभूति और द्वैत के अतिक्रमण को दर्शाता है। नायिका के माध्यम से राजशेखर यह संदेश देते हैं कि प्रेमी और प्रेमिका का संबंध आत्मा और परमात्मा के मिलन का प्रतीक है। यहाँ व्यक्तिगत प्रेम का अतिक्रमण कर उसे आत्मा-परमात्मा के मिलन के रूपक में ढाला गया है। राजशेखर इस संवाद के माध्यम से ''जीव-ब्रह्म की एकता'' को रूपकात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं और वह इस संवाद के द्वारा न केवल एक नायिका की वेदना को बताते हैं बल्कि वेदांत दर्शन के सार को भी समझाते हैं- ''तुम और मैं एक ही हैं''। यह ब्रह्मसूत्र के **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''**[10] (सब कुछ ब्रह्म ही है) के सिद्धांत का काव्यात्मक रूपांतरण है।

- **मायावाद की नाटकीय अभिव्यक्ति**

ब्रह्मसूत्र (3.2.3) में माया को 'अनिर्वचनीय' कहा गया है। अनिर्वचनीय (अ+निर्+वच्+य) का शाब्दिक अर्थ है - जिसे शब्दों में व्यक्त न किया जा सके। वेदांत में यह शब्द माया/अविद्या की प्रकृति और ब्रह्म की अनुभूति दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। **''माया अनिर्वचनीया, न सती नासती''**[11] (माया न सत्य है न असत्य, वह अव्याख्येय है।

राजशेखर ने इस सिद्धांत को नाटकीय संदर्भों द्वारा अपने रूपकों में उतारा है। विद्धशालभंजिका में भ्रम-यथार्थ द्वंद्व के द्वारा नायक का आत्मविश्लेषण :

''अहो! न जाने किमत्र सत्यम्, किं वा नाटकम्।
यदि नाटकमिदम्, तर्हि कोऽहं नटः? यदि सत्यम्, तर्हि का एषा रंगभूमिः?''[12]

''आश्चर्य! मैं नहीं जानता कि यह सत्य है या नाटक। यदि यह नाटक है, तो मैं कौन हूँ - एक अभिनेता? और यदि यह सत्य है, तो यह रंगभूमि (जीवन का मंच) क्या है?''

जीवन और नाटक के बीच संदेह, माया के 'अनिर्वचनीय' स्वरूप को प्रकट करता है, नाटक माया का प्रतीक बन जाता है। नट (अभिनेता) और साक्षी (ब्रह्म) का भेद मिटने लगता है। रंगभूमि संसार की नश्वरता को दर्शाती है। यहाँ ब्रह्मसूत्र के माया सिद्धांत की तरह नाटक के मंच और जीवन की रंगभूमि के बीच भेद कर पाना असंभव हो जाता है। यह संवाद न केवल नाटकीय है, बल्कि सम्पूर्ण वेदांत दर्शन का नाट्यरूपांतरण है।

- **काव्यमीमांसा में काव्य की मायावी शक्ति**

राजशेखर अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में लिखते हैं :

''काव्यं यथार्थमप्यन्यथैव प्रतिभाति, यथा माया।''[13]

''माया की तरह काव्य वास्तविक होते हुए भी अन्यथा प्रतीत होता है।'' राजशेखर के अनुसार, काव्य का उद्देश्य यथार्थ को रसात्मक अनुभूति में बदलना है। जिस प्रकार माया ब्रह्म को 'विवर्त' (रूपांतरित) करती है, उसी प्रकार कवि भी वास्तविकता को काव्यमय विश्व में रूपांतरित करता है। राजशेखर का यह कथन 'काव्यशास्त्र और वेदांत दर्शन' के बीच एक सेतु है, जिस प्रकार माया ब्रह्म को जगत् में रूपांतरित करती है, उसी प्रकार काव्य यथार्थ को रस में रूपांतरित करता है।

- **दार्शनिक आधार**

सिद्धांत	माया (ब्रह्मसूत्र)	काव्य (राजशेखर)
स्वरूप	न सत् न असत्	यथार्थम् अपि अन्यथा
प्रभाव	भ्रम उत्पन्न करना	रसानुभूति कराना
उद्देश्य	जगत की अस्थिरता दिखाना	सौंदर्यानुभूति कराना

- **चित्र-दर्पण रूपक का विस्तार**

I. बालरामायण में छाया-प्रतीक -लक्ष्मण सीता की छाया देखकर कहते हैं;-

''एषा छाया न केवलं रूपं धत्ते, अपितु तस्याः आत्मानमपि।''[14]

यह छाया न केवल रूप धारण करती है, बल्कि उसकी आत्मा को भी प्रकट करती है। छाया किसी वस्तु/व्यक्ति का बाह्य प्रतिबिंब मात्र है। राजशेखर कहते हैं कि छाया केवल बाह्य आकृति नहीं, बल्कि मूल वस्तु के अस्तित्व का प्रमाण भी है। उदाहरण : सीता की छाया केवल उनके शरीर का नहीं, बल्कि उनकी आध्यात्मिक उपस्थिति का भी संकेत है।

ब्रह्मसूत्र में **''दर्पणे चित्रम्''**[15] सिद्धांत :- ''जगत् ब्रह्म का प्रतिबिंब है, जैसे दर्पण में चेहरा दिखता है। छाया यहाँ ब्रह्म और जगत् के संबंध का प्रतीक है,जैसे छाया मूल वस्तु के बिना नहीं हो सकती, वैसे ही जगत् ब्रह्म के बिना नहीं।

ii. कर्पूरमंजरी में जल प्रतिबिंब -नायिका का आकाश में बादलों को देखकर कथन-

''एते मेघाः किमपि स्मरयन्ति...यथा जले चन्द्रबिम्बम्, तथा हृदि स्मृतिबिम्बम् ।''[16]

''ये बादल कुछ याद दिलाते हैं.....जैसे जल में चंद्रमा का प्रतिबिंब (छाया) दिखता है, वैसे ही हृदय में स्मृति का प्रतिबिंब (छाया) है।'' यह पंक्ति राजशेखर के नाटक 'कर्पूरमंजरी' से ली गई है, जहाँ नायिका बादलों को देखकर अपने प्रियतम की याद में खो जाती है। यहाँ पर कवि ने प्रकृति और मनोभावों के बीच गहरा संबंध दर्शाया है और यह उक्ति न केवल संस्कृत काव्य की प्रतीकात्मक गहराई को दर्शाती है, बल्कि वेदांत दर्शन और मानवीय अनुभूतियों के बीच सेतु का भी काम करती है।

- **अनिर्वचनीयता का काव्यशास्त्रीय अनुप्रयोग**

ब्रह्मसूत्र के अनुसार ब्रह्म **''शब्दातीत''**[17] अर्थात् 'ब्रह्म' शब्दों से परे है, ब्रह्म को शब्दों, भाषा या बुद्धि की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। शंकराचार्य के भाष्य में इसे **''नेति नेति''**[18] (न इससे, न उससे) ब्रह्म को समझने के लिए सभी सीमित परिभाषाओं को नकारना आवश्यक है। उदाहरण ''ब्रह्म न जगत् है, न जीव है, न साकार है, न निराकार है।'' राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इसे काव्यसिद्धांत के रूप में प्रतिपादित किया है।

''यत्र शब्दाः अर्थं न प्राप्नुवन्ति, तत्रैव काव्यस्य परमं रहस्यम् ।''

''जहाँ शब्द अर्थ (भाव) को व्यक्त नहीं कर पाते, वहीं काव्य का परम रहस्य निहित है।''

राजशेखर मानते हैं कि काव्य की सर्वोच्च उपलब्धि वहाँ है, जहाँ शब्दों की सीमा समाप्त हो जाती है और रसानुभूति प्रारम्भ होती है।उनका मानना है कि सच्चा काव्य वही है जो शब्दों के पार जाकर अनुभूति जगाए। काव्य का परम लक्ष्य शब्दों की सीमा को लाँघकर अनिर्वचनीय रस की अनुभूति कराना है। रूपक और प्रतीक वे साधन हैं जो अवाच्य को व्यक्त करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे वेदांत मौन ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है।

- **तुलनात्मक विश्लेषणः ब्रह्मसूत्रीय सूत्र एवं राजशेखर की काव्यभाषा**

ब्रह्मसूत्र सूत्र	**राजशेखर की अभिव्यक्ति**	**साहित्यिक उपकरण**
''जन्माद्यस्य यतः''	''त्वमेवाहं, अहमेव त्वम्''[19]	अद्वैत रूपक
''मायां तु प्रकृतिं विद्यात्''[20]	''काव्यमाया''	माया-प्रतीक
''दर्पणे चित्रम्''	''हृदयदर्पणे भावबिम्बम्''[21]	दर्पण रूपक
''नेति नेति''[22]	''अवाच्यं वस्तु''[23]	अनिर्वचनीयता

निष्कर्ष-

इस विस्तृत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजशेखर मात्र एक कवि या नाटककार नहीं, बल्कि एक दार्शनिक-साहित्यकार थे जिन्होंने भारतीय साहित्य और दर्शन की समृद्ध परंपरा में अपना उत्कृष्ट स्थान रखा है, जिन्होंने काव्य और वेदांत दर्शन के बीच एक सार्थक सेतु का निर्माण किया। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि ब्रह्मसूत्र के मूलभूत सिद्धांत अद्वैतवाद, मायावाद, चित्र-दर्पण रूपक, और अनिर्वचनीयता राजशेखर की रचनाओं में सजीव रूप से प्रतिबिंबित होते हैं।

इस प्रकार, राजशेखर ने केवल साहित्यिक सौंदर्य ही नहीं रचा, बल्कि दार्शनिक गहनता को रूपकों और नाटकीय संवादों में साधकर एक नया आयाम प्रदान किया। उनकी रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय काव्य और दर्शन एक-दूसरे के पूरक हैं - जहाँ काव्य दर्शन को मूर्त रूप देता है, वहीं दर्शन काव्य को गाम्भीर्य प्रदान करता है। यह शोध पत्र भारतीय साहित्य के इतिहास में दर्शन और काव्य के अंतर्संबंधों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कार्य है।

संदर्भ -

1. *काव्यमीमांसा*
2. *वेदान्तसार*
3. *शाङ्करभाष्य*
4. *भामती, ब्रह्मसूत्र (1/1/1)*
5. *ब्रह्मसूत्र (1.1.2)*
6. *बालरामायण*
7. *बृहदारण्यक उपनिषद् (1.4.10)*
8. *कर्पूरमंजरी*
9. *छांदोग्य उपनिषद् (6.8.7)*
10. *छांदोग्य उपनिषद् (3.14.1)*
11. *ब्रह्मसूत्र (2.1.14)*
12. *विद्धशालभंजिका*
13. *काव्यमीमांसा*
14. *बालरामायण*
15. *ब्रह्मसूत्र (3.2.19)*
16. *कर्पूरमंजरी*
17. *ब्रह्मसूत्र (4.3.10)*
18. *ब्रह्मसूत्र (3.2.22)*
19. *बालरामायण*
20. *ब्रह्मसूत्र (1.4.3)*
21. *कर्पूरमंजरी*
22. *ब्रह्मसूत्र (3.2.22)*
23. *काव्यमीमांसा*

3

राजशेखर की नाट्यप्रतिभा का चूड़ांत निदर्शन : 'बालरामायणम्' और 'कर्पूरमञ्जरी'

दीक्षा साबले, प्रशान्त कुमार द्विवेदी**, शशिकुमार सिंह****

संस्कृत साहित्य के मध्यकालीन युग में राजशेखर का स्थान बहुआयामी कवि, नाटककार और आलोचक के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी दो प्रमुख कृतियाँ; बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी, उनकी नाट्य प्रतिभा, शास्त्रीय गहराई तथा साहित्यिक नवोन्मेष का उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती हैं।

बालरामायण में राजशेखर की नाट्य दृष्टि, संवाद संरचना, मंचीय कल्पना और नाटकीय गति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। विद्वानों का मत है कि बालरामायण में रामकथा के प्रसंगों को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करते हुए संवादों की सजीवता, चरित्रों की मनोवैज्ञानिक गहराई और घटनाओं की गति का सुंदर समन्वय किया गया है, जिससे यह काव्य एक संभाव्य नाट्यरचना के रूप में भी प्रतिष्ठित होता है (श्रीवास्तव एवं सिंह, 2023)। संवादों की प्रवाहमयता, भावों की अभिव्यक्ति और मंचीय कल्पना, बालरामायण की प्रमुख विशेषताएँ हैं (चौरे, 2014)। इसमें राजशेखर ने पारंपरिक आख्यान को नाटकीयता और मंचीय यथार्थ से जोड़कर अपनी विशिष्टता स्थापित की है।

कर्पूरमञ्जरी राजशेखर की नाट्य प्रतिभा की चरम उपलब्धि मानी जाती है। यह एक सट्टक है, जिसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग कर उन्होंने तत्कालीन रंगमंचीय रूढ़ियों को चुनौती दी और नाटक को आमजन के लिए सुलभ बनाया। कर्पूरमञ्जरी में संवादों की जीवंतता, हास्य-व्यंग्य, मंचीय कल्पना और चरित्र गठन की सूक्ष्मता, राजशेखर की गहन नाट्य दृष्टि और नवोन्मेष को उजागर करती है। कर्पूरमञ्जरी में स्त्री पात्रों की प्रस्तुति में, सामाजिक यथार्थ और भावनात्मक गहराई उल्लेखनीय है। साथ ही, कर्पूरमंजरी सट्टक में मंचीय निर्देशन, छंद योजना और भाषा-शैली का सुन्दर संयोजन राजशेखर की प्रयोगशीलता को भी दर्शाता है।

नाट्य-दृष्टि और नवोन्मेष :

राजशेखर के नाट्य लेखन में शास्त्रीय परंपराओं के साथ-साथ नवोन्मेष और प्रयोगशीलता का अद्‌भुत संगम देखने को मिलता है। उन्होंने नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों का पालन करते हुए संवादों में सजीवता,

---

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**शोधार्थी-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

***शोधार्थी-शिक्षा शास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

****सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

मंचीय गति और भावों की गहराई का समावेश किया (राजशेखर, काव्यमीमांसा)। उनकी भाषा-शैली, प्राकृत और संस्कृत के प्रयोग, तथा मंचीय यथार्थ की कल्पना, उन्हें अपने समकालीन नाटककारों से विशिष्ट बनाती है। विद्वानों ने यह भी माना है कि राजशेखर ने अपने नाटकों के माध्यम से तत्कालीन समाज, संस्कृति और लोक जीवन को मंच पर जीवंत किया, और संस्कृत नाट्य परंपरा में नवीनता का सूत्रपात किया (कुमारी, स.अ)।

परिणाम :

नाट्य-प्रतिभा की बहुआयामी अभिव्यक्ति-

राजशेखर की नाट्य प्रतिभा का बहुआयामी स्वरूप बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी दोनों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बालरामायण में कथा की महाकाव्यात्मकता के साथ-साथ नाटकीयता का समावेश है। उदाहरणस्वरूप, राम के वनगमन प्रसंग में माता कौशल्या का करुण संवाद :

''राम! त्वया विना हृदयमिदं शून्यं मे भविष्यति।''[1]

यहाँ करुण रस की अभिव्यक्ति, संवाद की गहराई और मंचीय प्रभाव स्पष्ट है। दूसरी ओर, कर्पूरमञ्जरी में हास्य, प्रेम और सामाजिक जीवन के प्रसंगों को अत्यंत स्वाभाविक और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है : **''सखि! तव हास्यं मम मनः प्रमोदं जनयति।''**[2] इस प्रकार, राजशेखर की नाट्य प्रतिभा केवल भाव-व्यंजना तक सीमित नहीं है, बल्कि वे मंचीय परिस्थिति, पात्रों की मनोवृत्ति और संवादों की जीवंतता को भी बखूबी चित्रित करते हैं।

संवादों की सजीवता और मंचीय कल्पना-

राजशेखर के संवादों में नाटकीयता और सजीवता का अद्भुत समन्वय है। कर्पूरमञ्जरी में प्राकृत भाषा के प्रयोग से संवाद अधिक स्वाभाविक और जनसामान्य के लिए ग्राह्य बन गए हैं— **''एदंसुत्थुवण्णियं, सखे!''**[3] यह संवाद न केवल पात्रों के आपसी संबंधों को प्रकट करता है, बल्कि दर्शकों को भी सहज रूप से आकर्षित करता है। बालरामायण में संस्कृत भाषा की गंभीरता और गरिमा के साथ-साथ संवादों में भावनात्मक गहराई भी है—**''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।''**[4] यह संवाद न केवल राष्ट्रीय भावना को उजागर करता है, बल्कि मंच पर भी गहन प्रभाव उत्पन्न करता है।

शास्त्रीयता और नवाचार का समन्वय-

राजशेखर ने नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए भी अपनी रचनाओं में नवीनता का समावेश किया। बालरामायण में महाकाव्य की कथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत करना, पात्रों के मनोभावों की गहराई से व्याख्या करना, और संवादों में नाटकीयता लाना उनके नवाचार का परिचायक है। वहीं, कर्पूरमञ्जरी में प्राकृत भाषा का प्रयोग, हास्य और प्रेम के प्रसंगों की प्रधानता, तथा मंचीय कल्पना की नवीनता उनके रचनात्मक साहस को दर्शाती है।

भाषिक कौशल और शैलीगत विविधता-

राजशेखर का भाषिक कौशल उनकी दोनों कृतियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। बालरामायण में संस्कृत की गंभीरता, अलंकारिकता और शास्त्रीयता है, वहीं कर्पूरमञ्जरी में प्राकृत की सहजता, लोकरंजन और संवादों की प्रवाहमयता है। दोनों कृतियों में भाषा का चयन पात्रों की प्रकृति, प्रसंग और मंचीय आवश्यकता के अनुसार किया गया है, जो राजशेखर की भाषिक सूझ-बूझ को प्रमाणित करता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य-

राजशेखर की रचनाओं में तत्कालीन समाज, संस्कृति, और नैतिक मूल्यों का गहरा चित्रण मिलता है। बालरामायण में आदर्श जीवन-मूल्य, धर्म, कर्तव्य और राष्ट्र प्रेम की भावना को प्रमुखता दी गई है—

''धर्मो रक्षति रक्षितः।''[5]

वहीं, कर्पूरमञ्जरी में प्रेम, मित्रता, हास्य और सामाजिक संबंधों की सहज अभिव्यक्ति है, जो तत्कालीन समाज के विविध रंगों को प्रस्तुत करती है— **''सखि! तव वचनं सुत्थु रमणीयं।''**[6]

तुलनात्मक दृष्टि से प्रमुख अंतर और समानताएँ-

- बालरामायण में कथा की गूढ़ता, आदर्शवादिता और शास्त्रीयता प्रमुख है, जबकि कर्पूरमञ्जरी में लौकिकता, हास्य और प्रेम की प्रधानता है।
- दोनों कृतियों में संवादों की सजीवता, मंचीय कल्पना और पात्रों की विविधता समान रूप से विद्यमान है।
- भाषा का चयन दोनों में भिन्न है, किंतु दोनों ही भाषाएँ अपने-अपने संदर्भ में अत्यंत प्रभावशाली हैं।

अंतर और समानताएँ नीचे दी गई सारणी की सहायता से सरलता से समझ सकते हैं :

तुलना के बिंदु	**बालरामायण**	**कर्पूरमञ्जरी**
रचना-प्रकार	दस अंकों का महानाटक, संस्कृत भाषा में, 780 से अधिक छंदय रामकथा पर आधारित 3,7	सट्टक (एकांकी नाटक), शुद्ध प्राकृत भाषा में, प्रेमकथा पर आधारितय नायिका के नाम पर शीर्षक 1,6,8
कथावस्तु	सीता-स्वयंवर से लेकर रावण-वध और अयोध्या वापसी तक की सम्पूर्ण रामकथा 3,7	राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी की प्रेमकथा, योगी भैरवानंद द्वारा अद्भुत घटनाएँ 2,6
भाषा	संस्कृत; गंभीर, शास्त्रीय, अलंकारिक 3,7	प्राकृत; सहज, प्रवाहमयी, लोकरंजन के अनुकूल 1,6,8
संवाद-शैली	गंभीर, आदर्शवादी, भावप्रधानय सामाजिक और धार्मिक आदर्शों की प्रतिष्ठा 3,7	हास्य, प्रेम, सहजताय जनसुलभ संवाद, हास्य-रस और शृंगार-रस की प्रधानता 1,6
मुख्य पात्र	राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, कौशल्या, रावण आदि 3,7	राजा चन्द्रपाल, कर्पूरमञ्जरी, विभ्रमलेखा, विदूषक कपिजल, भैरवानंद 2,6
रस	करुण, वीर, शान्त,आदर्शवादिताय धार्मिकता और कर्तव्यबोध 3,7	शृंगार, हास्य, अद्भुत, प्रेम, हास्य और लोकजीवन की झलक1,6
मंचीय कल्पना	पारंपरिक मंचन, शास्त्रीयता, सामाजिक आदर्शों का मंचन3,7	मंचीय नवाचार, हास्य-प्रेम के दृश्य, लोकजीवन के प्रसंग, अद्भुत रस की योजना1,6
शास्त्रीयता/ नवाचार	शास्त्रिय नाट्य परंपरा का पालनय महाकाव्य को नाटक रूप में प्रस्तुत करने का नवाचार3,7	सट्टक परंपरा में नवाचारय शुद्ध प्राकृत का प्रयोग, मंचीय कल्पना में नवीनता1,6
सांस्कृतिक प्रतिबिंब	आदर्श जीवन-मूल्य, धर्म, कर्तव्य, राष्ट्रप्रेम, पारिवारिक संबंध3,7	सामाजिक संबंध, नारी दशा, विवाह, हास्य, मनोरंजन, लोकसंस्कृति1,6
छन्द योजना	संस्कृत छंदों का प्रयोग, गम्भीरता और गरिमा3,7	प्राकृत छंदों की योजना, लयात्मकता और प्रवाह1,6

प्रकृति चित्रण	प्रसंगानुसार सीमित, मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक प्रसंगों पर केंद्रित3,7	प्रकृति का सुंदर, सजीव और काव्यात्मक चित्रण1,6
सामाजिक संदर्भ	आदर्शवाद, धार्मिकता, पारिवारिक मूल्यों की प्रधानता3,7	लौकिकता, हास्य, प्रेम, सामाजिक विविधता और जनसाधारण का चित्रण1,6
विशेषता	महाकाव्य का सफल नाट्यरूपांतरण, आदर्शों की प्रतिष्ठा, संस्कृत भाषा की गंभीरता3,7	भाषा और शैली का नवाचार, प्राकृत की की प्रौढ़ता, जनसाधारण के लिए रंगमंच की सुलभता, नायिका-प्रधानता1,6

यह तालिका/सारणी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी दोनों में राजशेखर की नाट्य दृष्टि, शिल्प, भाषा, रस, मंचीय कल्पना, और सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में समानता के साथ-साथ विशिष्ट भिन्नताएँ भी विद्यमान हैं।

सारिणी स्रोतः

1. कर्पूरमंजरी - विकिपीडिया, 2. राजशेखरकृतकर्पूरमञ्जरी एवं तुलनात्मक विवेचन, 3. राजशेखर और भारतीय काव्यशास्त्र, 4. wisdomlimb-org. 5. Hiwiki-iit-ac-in. 6. कर्पूरमंजरी – (hiwiki) विकिपीडिया, 7.'बालरामायण के राम संस्कृति के दर्पण में', 8. कर्पूर मंजरी,हिंदवी,
9. chaukhambabooks.co.in

भारतीय नाट्य साहित्य में योगदान :

राजशेखर का योगदान भारतीय नाट्य साहित्य में बहुआयामी और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी दोनों ही कृतियाँ नाट्य परंपरा, शिल्प, भाषा, और सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखती हैं। बालरामायण को संस्कृत नाट्य साहित्य में महाकाव्यात्मक नाटक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसमें रामकथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत करते हुए आदर्श, धर्म, कर्तव्य और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। राजशेखर ने रस, भाव, संवाद और मंचीय कल्पना के माध्यम से दर्शकों को गहराई से प्रभावित किया। इस नाटक में वीर, करुण, शान्त आदि रसों का सुंदर समन्वय है, जिससे यह नाटक न केवल शास्त्रीय नाट्य परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण बनता है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना का भी संवाहक है। कर्पूरमञ्जरी प्राकृत भाषा में रचित सट्टक के रूप में अद्वितीय है। इसमें हास्य, प्रेम, सामाजिक जीवन, नारी दशा, विवाह-व्यवस्था, वर्णाश्रम, धार्मिकता, मनोरंजन, और लोकसंस्कृति का सुंदर चित्रण मिलता है। कर्पूरमञ्जरी की सबसे बड़ी विशेषता इसकी भाषा की प्रौढ़ता और प्रवाहमयता है, जिससे यह आमजन के लिए भी सहज ग्राह्य बन जाती है। इस कृति के माध्यम से राजशेखर ने रंगमंच को लोकसंस्कृति से जोड़ने का कार्य किया और नाट्य साहित्य में प्राकृत भाषा की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। दोनों कृतियाँ अपने-अपने स्तर पर भारतीय नाट्य साहित्य को नई दिशा देती हैं - बालरामायण शास्त्रीयता, आदर्शवाद और महाकाव्यात्मकता के लिए, जबकि कर्पूरमञ्जरी लोकजीवन, हास्य-प्रेम और भाषिक नवाचार के लिए। इन दोनों कृतियों के माध्यम से राजशेखर ने नाट्यशास्त्र की परंपरा में नवाचार, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक विविधता का समावेश किया।

''कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब-नारी दशा, विवाह-व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, धार्मिक दशा, अन्तःपुर की दशा, मनोरंजन, सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार।''[7] महाकवि राजशेखर ने बालरामायण में

रस के माध्यम से श्रोताओं या सहृदय को रसतत्त्व का आनन्द प्राप्त कराते हैं। राजशेखर की ये दोनों कृतियाँ भारतीय नाट्य साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर हैं। बालरामायण ने महाकाव्य को नाट्य रूप में प्रस्तुत कर एक नई दिशा दी, वहीं कर्पूरमञ्जरी ने प्राकृत भाषा के माध्यम से रंगमंच को आमजन के करीब लाया। दोनों कृतियाँ आज भी शोध, मंचन और साहित्यिक विमर्श के लिए प्रासंगिक हैं।

राजशेखर की बालरामायण और कर्पूरमञ्जरी दोनों ही भारतीय नाट्य साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इन कृतियों में उनकी नाट्य प्रतिभा, भाषिक कौशल, शास्त्रीयता और नवाचार का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। बालरामायण में राजशेखर ने रामकथा को नाट्य रूप में प्रस्तुत कर आदर्श, धर्म, कर्तव्य और सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। संस्कृत भाषा की गंभीरता, छंद योजना, रसों का समन्वय और मंचीय कल्पना के माध्यम से यह कृति शास्त्रीय नाट्य परंपरा की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती है। **''धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।''**[8]

कर्पूरमञ्जरी में प्राकृत भाषा का प्रयोग, हास्य-प्रेम की प्रधानता, लोकसंस्कृति का चित्रण और सामाजिक विषयों की सहज प्रस्तुति राजशेखर की नवीनता और प्रयोगशीलता को दर्शाती है। इस कृति में नारी दशा, विवाह-व्यवस्था, वर्णाश्रम और सामाजिक व्यवहार का यथार्थ चित्रण मिलता है।

''सखि! तव हास्यं मम मनः प्रमोदं जनयति।''[9]

राजशेखर की ये दोनों कृतियाँ न केवल अपने समय की सामाजिक-सांस्कृतिक धारा को प्रतिबिंबित करती हैं, बल्कि आज भी नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और रंगमंच के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा साहित्य प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं। राजशेखर ने नाट्य साहित्य में भाषा, शिल्प, विषयवस्तु और मंचीय कल्पना के स्तर पर जो नवाचार किए, वे भारतीय नाट्य परंपरा में स्थायी रूप से अंकित हैं। उनकी नाट्य दृष्टि में शास्त्रीय गहराई, सांस्कृतिक विविधता और जनसुलभता का अद्वितीय संगम मिलता है, जिससे वे संस्कृत और प्राकृत नाट्य साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों में गिने जाते हैं। राजशेखर की नाट्य प्रतिभा का विश्लेषण स्पष्ट करता है कि वे केवल एक कवि या नाटककार नहीं, बल्कि एक दूरदर्शी साहित्यकार थे, जिन्होंने शास्त्रीय परंपरा का सम्मान करते हुए उसमें नवाचार और प्रयोगशीलता का समावेश किया। बालरामायण में जहाँ आदर्श, धर्म और कर्तव्य की प्रतिष्ठा है, वहीं कर्पूरमञ्जरी में प्रेम, हास्य और सामाजिक संबंधों की सहज प्रस्तुति है। दोनों कृतियों में संवादों की सजीवता, मंचीय कल्पना की सूक्ष्मता, और भाषिक विविधता राजशेखर की नाट्य दृष्टि की गहराई को प्रमाणित करती है।

''रामो विजयते जय रामचन्द्रः।''[11] **''किं मम हृदयं न विदार्यते, यदा सख्याः पुरतः प्रियतमं परिभाषते।**[12]

इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राजशेखर ने भारतीय नाट्य साहित्य को न केवल समृद्ध किया, बल्कि उसे नवीनता, विविधता और जनसुलभता भी प्रदान की। उनकी कृतियाँ आज भी नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और रंगमंच के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा साहित्य प्रेमियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. *कर्पूरमंजरी - विकिपीडिया*
2. *राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत श्रृङ्भारमञ्जरी*
3. *राजशेखर की कृतियों में प्रतिबिम्बित लोक संस्कृति - डॉ. ममता गुप्ता*
4. *महाकवि राजशेखर की कृतियों में निदर्शित ऐतिहासिक*

5. राजशेखर - विकिपीडिया -hiwiki
6. राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वर कृतशृङ्गारमञ्जरी
7. राजशेखर, बालरामायण (संपादित संस्करण). (१९८७). संस्कृत साहित्य परिषद्, कोलकाता।
8. राजशेखर, कर्पूरमञ्जरी (संपादित संस्करण) .(१९९२). संस्कृत अकादमी, वाराणसी।
9. डॉ. सत्यव्रत शास्त्री. (२००१), संस्कृत नाटक और राजशेखर, भारतीय विद्या भवन।
10. Wisdomlib-org: Karpuramanjari
11. 'राजशेखर - विकिपीडिया' (https://hi-wikipedia-org/wiki/राजशेखर)
12. डॉ. रामस्वरूप शर्मा. (२०१०). संस्कृत नाट्यशास्त्र का विकास.प्रभात प्रकाशन।
13. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी. (२०१५).भारतीय नाट्य परंपरा. साहित्य अकादमी।
14. Sharma, R-K- (२००५).Literary Vision of Rajasekhara- Nag Publishers-Delhi-
15. Shukla, R-K- (१९९0).Indian Poetics and Rajasekhara-ChaukhambaVidyabhawan] Varanasi.
16. Machwe, P.(१९८२).Apabhramshaaur Hindi Natak. RajkamalPrakashan.New Delhi.
17. Winternitz, M.(१९८१).History of Indian Literature. Motilal Banarsidass. Vol- 2-Delhi.
18. श्रीवास्तव, स.प्र. एवं सिंह, ज. (२०२३). महाकवि राजशेखर कृत बालरामायण में रसतत्त्व.
19. चौरे, हि.कु. (२०१४). बालरामायण के राम संस्कृत के दर्पण में.
20. राजशेखर. कर्पूरमञ्जरी (मूल ग्रंथ)।
21. गुप्ता, एम. राजशेखर की कृतियों में प्रतिबिम्बित लोक संस्कृति.
22. जैसवाल, एस. (२०१९). महाकवि राजशेखर की कृतियों में निदर्शित ऐतिहासिक तत्व.
23. कुमारी, एन. संस्कृत काव्य शास्त्र के प्रमुख आचार्यों के ध्वन्यालोक की समीक्षा.
24. राजशेखर. काव्यमीमांसा (मूल ग्रंथ)।

वेब संदर्भ :

- https://hi-wikipedia-org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AA%E0%A5%82%E0%A4%B0%E0%A4%AE%E0%A4%82%E0%A4%9C%E0%A4%B0%E0%A5%80
- https://ia801401-us-archive-org/4/items/in-ernet-dli.२०१५.475328/२०१५.475328-Rajshekharkrit-Karpurmanjari_text-pdf
- https://ia801401-us-archive-org/4/items/in-ernet-dli-२०१५.475328/२०१५.475328-Rajshekharkrit-Karpurmanjari-pdf
- https://epustakalay-com/book/49332-karpuramanjari-by-acharya-rajshekhar/
- https://ijps-in/admin1/upload/07%20Dr-%20Neeraj%20Kumari%2001169-pdf
- https://research-communications-cmpcollege-ac-in/wp-content/uploads/२०२३/07/25-Satya-Prakash-Srivastava-and-Janeshwar-Singh-FINAL&30-pdf

- *http://www-socialresearchfoundation-com/upoadreserchpapers/5/290/19072२०१५5231st%20sapna%20jaiswal-pdf*
- *https://epustakalay-com/book/40464-karpuramanjari-by-acharya-rajasekhara/*
- *https://sanskrit.du.ac.in/userfiles/downloads/PhDDoc/GeneralGuidelines ResearchProposalPrepration-pdf*
- *https://www.scribd.com/doc/35797698/How-to-write-a-quality-paper-in-Sanskrit*
- *https://sanskrit.nic.in/uploads/guidelines_rp-pdf*
- *https://www.eduresearchjournal.com/index.php/ijslrs/authorguidelines*
- *https://www.sanskritlibrary.org/slStyle-html*
- *https://fr-scribd.com/doc/35797698/ How-to-write-a-quality-paper-in-Sanskrit*
- *https://sahitya-akademi-gov-in/journals/StylesheetforIL.pdf*
- *https://sanskrit.du.ac.in/userfiles/downloads/PhDDoc/ReferencingGuidelines Sanskrit-pdf*
- *https://www.suradhuni.in/publication_policy.php*
- *https://www2.internationalinsurance.org/GR-8-13/files?docid=pZi17-2277&title= literature-in-sanskrit-pdf*

संदर्भ -

1. *बालरामायण, द्वितीय अंक*
2. *कर्पूरमञ्जरी, तृतीयांक*
3. *कर्पूरमञ्जरी, चतुर्थांक*
4. *बालरामायण, षष्ठ अंक*
5. *बालरामायण, पंचम अंक*
6. *कर्पूरमञ्जरी, तृतीयांक*
7. *राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी, पृ. 241-258*
8. *बालरामायण, पंचम अंक*
9. *कर्पूरमञ्जरी, तृतीयांक*
10. *बालरामायण, सप्तम अंक*
11. *कर्पूरमञ्जरी, द्वितीयांक*

4

राजशेखर के नाट्य-कला की विशेषता

आशुतोष द्विवेदी *

महाराष्ट्र देश में जो भारत की महान विभूतियाँ उत्पन्न हुई है उनमें राजशेखर का नाम प्रसिद्ध है। ये एक सिद्धहस्त नाटककार, प्रौढ़ महाकवि, गम्भीर मीमांसक और चतुरस्र विद्वान एवं कवि थे । ये कालान्तर में अपने काव्यत्व से एक विशेष कवि की श्रेणी में परिगणित होने लगे। वे बहुत ही ऊँचे वंश से सम्बन्ध रखते थे जिसके बारे में वे स्वयं लिखते है-

स मूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः, सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो, महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।।[1]

इनके पिता दुर्दक तथा माता शीलवती थी तथा क्षत्रियाणी थी। ''तदामुष्यायणय महाराष्ट्र चूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दिकिः शीलवतीनुसूरूपाध्याय श्रीराजशेखर इत्यपर्याप्त बहुमानेन''[2] वह भी बड़ी विदुषी थी।[3] इनका जन्म क्षत्रिय सम्प्रदाय में हुआ था ये यायावर जाति से सम्बन्ध रखते थे। यायावर का अर्थ है- जो निरन्तर चलने वाले हो। प्राचीन समय के ऋषियों में दो प्रकार के ऋषि होते थे-1 यायावरीय और शालीय। यायावरियों का व्रत था कि वे एक स्थान में न रहकर प्रायः यात्रा करते रहते थे। ऐसे ही किसी यायावर महात्मा के वंश में जन्म लेने के कारण राजशेखर ने गौरव वृद्धि के लिये अपने वंश को यायावरीय शब्द से अलङ्कृत किया। ब्राह्मण ग्रन्थों में एक सूक्त में ऐसे यायावरियों क वर्णन आया है कि निरन्तर यात्रा करने वाले व्यक्तियों के जांघे पुष्ट होती है ,और यात्रा श्रम से उनके पाप दूर होते है।

पुष्णियौ चरतो जङ्घे भुष्णुरात्मा फलोग्रहिः। शेरेस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।।[4]

इनके पूज्य पिता एक लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा तत्कालीन समाज ने उन्हें महाराष्ट्र चूड़ामणि जैसी उपाधि से सम्मनित किया था। इनके पूर्वजो में सुरानन्द, तरल एवं कविराज जैसे उच्चकोटि के कवि उत्पन्न हो चुके थे। धन एवं यश प्राप्ति के उद्देश्य से वे महाराष्ट्र देश को त्याग कर कन्नौज को अपना निवास स्थान बना लिया। कालान्तर के विद्वानों में उनके नाम से यह भ्रम पैदा होता है कि राजशेखर कोई और है, जिनका निवारण करते हुए सम्बन्धित राजशेखर के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गौरीशंकर-हीराचन्द्र ओझा ने विस्तार से प्रकाश डाला है[4] तथा यह कहा है कि उन्होंने अपने आश्रयदाता महेन्द्रपाल अथवा निर्भयराज

बालकवियकविराजो निर्भयराजस्य तथोपध्यायः। इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारुढ़ः।।[5]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा*

नामक नरेशो का उल्लेख किया है जो कि उन्हें राजगुरु के रूप में सम्मानित किया करते थे। ओफ्रिक्त नामक विद्वान के मत से यह दोनों नरेश अभिन्न थे। सियादोनी के समीप एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें महेन्द्रपाल का समय ई. तथा सन् 907-8 ई.निर्दिष्ट की गई है। इस प्रकार उनका समय 900 ई. लगभग सिद्ध होता है। उनके नाटकों से भी पता चलता है कि वे कन्नौज के शासक महेंद्र पाल के उपाध्याय

किमु परमपरैः परोपकार व्यसन निधेर्गुणितैर्गुणैर मनुष्य।
रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।।[6]

और उसके पुत्र महिपाल के भी कृपा-पात्र रहे हैं।

विभिन्नाः पन्थारः कमपि कमनीयाश्च त इमे निबद्धा यस्त्वेसषाम् स खलु निखिलेस्मिन् च कविवृषा।।[7]

महीपाल का समय 917 शताब्दी[8] है। इससे प्रतीत होता है कि ये नवम शताब्दी के उत्तरार्ध या दशम शताब्दी के आरम्भ में हुए है। इस मत की पुष्टि अन्य प्रमाणों द्वारा भी पुष्ट होती है। उन्होंने उद्भट 800 ई. एवं आनन्द वर्धन 850 ई. का स्पष्ट उल्लेख किया है। यशस्तिलकचम्पू (959) ई. एवं तिलक मंजरी 1000 ई. में उनके विख्यात यश एवं रचनाओं का निर्देश किया गया है। उपर्युक्त आधार पर भी राजशेखर का समय 10 वीं शताब्दी ई. का आरम्भ प्रमाणित होता है।

राजशेखर का मुख्य और सर्वमान्य ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। परन्तु इन्होंने बालभारत, बालरामायण, कर्पूरमंजरी और विद्धशालभंजिका के अतिरिक्त हरिविलास[9] और भुवनकोश[10] की भी रचना की है। किन्तु अन्तिम दोनों ग्रन्थ वर्तमान समय में दृष्टिगत नहीं होते है। उक्त ग्रन्थों में राजशेखर के नाटकीय कला का वैशिष्ट्य नजर आता है जो अधोलिखित है।

बालरामायण

बालरामायण संस्कृत में अपना प्रतिस्पर्धी नही रखता। इसके अध्ययन से राजशेखर को वेद तथा पुराण दोनों विषय में अद्भुत परिचय प्राप्त होता है। यह परिमाण में ही महान नाटक नहीं है प्रत्युत वो प्रत्येक पद्य में दृष्टि गोचर होता है इस नाटक का विशाल रूप आलोचकों को कटु आलोचना का विषय बना हुआ है। यह नाटक इतना विशाल है कि इसके एक एक अंक में समग्र नाटिका का समावेश हो सकता है। राजशेखर की प्रतिभा का वर्णन परक महाकाव्य के प्रणयन में नितान्त समर्थ है। फलतः राजशेखर ने उन्हें एपिक जीनियस कह सकते है।

यह तथ्य है कि अभिनेयता का किसी नाटक के लिये आवश्यक वैशिष्ट्य नहीं है। सहृदय पाठक अनभिनीत नाटक से भी उतना ही आनन्द उठा सकता है– उसके पठन मात्र से। साधारण दर्शक के ही हृदय में रसोद्बोध के निमित्त प्रयोग की आवश्यकता बनी रहती है। इसीलिये भारतीय आलोचकों तथा कवियों ने नाटक में प्रयोगधर्मिता–अभिनेयता को कभी महत्व नहीं दिया है। यदि दर्शक में रागात्मिकता वासना विद्यमान है, तो वह अभिनय देखने की किसी प्रकार अपेक्षा नहीं रखता। नाटक की महनीयता कवि की प्रतिभा का विलास है, नट के अभिनय कौशल का चमत्कार प्रदर्शन नहीं है।

बालरामायण नाटक के प्रथम तीन अंको में रावण का व्यक्तित्व तथा जनक के धनुषयज्ञ का वर्णन है। रावण मिथिला के लिए प्रस्थान करता है और सीता की प्राप्ति के लिए परशुराम से प्रार्थना करता है। परशुराम उसकी प्रार्थना को अस्वीकृत कर देते है। असफल रावण सीता-राम के परिणय को देखकर बहुत ही खिन्न होता है। चतुर्थ अंक में राम तथा परशुराम का परस्पर संवाद दिखाया गया है। पञ्चम तथा छठे अंक में रावण अपनी

बहन शूर्पणखा की सहायता से सीता का हरण कर उसे राम से वियुक्त करने में सफल होता है। सातवें अंक में अपनी वानर सेना की सहायता से भगवान राम समुद्र पर पुल का निर्माण कर तथा उसके पार जाकर लंका में प्रवेश करते हैं।

आठवे अंक में राम-लक्ष्मण तथा रावण के सहायको के मध्य युद्ध होने का वर्णन है। कुम्भकरण एवं मेघनाद का युद्ध इस अंक की मुख्य घटनाएं हैं। इस के बाद के अंक में राम-रावण के चित्ताकर्षक युद्ध का वर्णन है। यह वर्णन इंद्र द्वारा कराकर कवि ने ग्रन्थ की रोचकता को और बढ़ा दिया है। अन्तिम अंक में राम, लक्ष्मण, सीता तथा उनके साथी वायुयान द्वारा वायुलोक का भ्रमण कर अयोध्या पहुंचते है। सकल नगरवासी उनका हृदय से स्वागत करते है तथा भगवान रामचन्द्र का उनके अनुरूप राजतिलक करते है। बालरामायण में कथानक का अनावश्यक विस्तार किया गया है। राम से सम्बन्धित घटनाओं को छोड़कर रावण से सम्बन्धित अधिक घटनाओं का समावेश किया गया है। समस्त ग्रन्थ में स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे विशालकाय छंद, बहुलता से प्रयुक्त किये गये है।

बालभारत

बालरामायण के समय ही नाटककार ने महाभारत के आधार पर बाल-भारत नामक एक रूपक की रचना की है। दुर्भाग्यवश इस अपूर्व ग्रन्थ की सम्पूर्ण प्रति हमें उपलब्ध नहीं हुई हैं। विद्वानों के कठिन परिश्रम के उपरांत इसकें दो अंक ही सुरक्षित रह सके हैं। ग्रन्थ के इस भाग में द्रौपदी स्वयंवर, द्युत क्रीडा एवं द्रौपदी–अपहरण का प्रकरण वर्णित हैं।

विद्धशालभञ्जिका

विद्धशालभंजिका चार अंको की एक नाटिका है। इसमें कवि की कल्पनाशक्ति का रोचक चमत्कार प्रस्फुटित हुआ है। इसमें लाट के महराज चन्द्रवर्मा की पुत्री राजकुमारी मृगांकवली तथा सम्राट विद्याधरमल्ल की प्रणय कथा का समावेश है। प्रथम अंक में चन्द्रवर्मा मृगांकवली को मृगांकवर्मन नामक पुत्र घोषित कर विद्याधरमल्ल की रानी के समीप भेजता है। विद्याधर ने स्वप्न में एक रूपवती कामिनी को देखकर उसे पकड़ना चाहा। उसके मन्त्री को मृगांकवली के लिंग की सत्यता विदित थी। अतः उस में राजा का प्रेम उत्पन्न कराने के उद्देश्य से उसे उसने राजा के समीप भेजा था। मन्त्री भृगुनारायण को ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार यह विदित था की मृगांकवली का भावी पति चक्रवर्ती सम्राट होगा। जिस समय मृगांकवली महाराज के समीप पहुंची वह संयोगवश अपनी चित्रशाला में खुदी हुई अपनी प्रेयसी की मूर्ति को देख रहा था। राजा उसके कंठ में एक मुक्तामाला डाल देता है और वह उससे बहुत प्रभावित होता है। परन्तु मृगांकवली पर तनिक भीं आकृष्ट नही होता। द्वितीय अंक में महारानी मृगांकवली के परिवर्ति रूप से धोखे में पड़कर कुंतल राजकुमारी कुवलयमाला का विवाह उसके साथ करने का प्रयत्न करती है। एक दिन विद्याधर उद्यान में मृगांकवली को उसके मूल में क्रीडा करने व प्रणय लेख पढ़ते हुए देखकर वह सहसा उस पर अनुरक्त हो जाता है। तृतीय अंक में राजा और विदूषक मृगांकवली से मिलते है तथा नायक-नायिका में प्रेममय और गोपनीय वार्तालाप सम्पन्न होता है। चतुर्थ अंक में महारानी का अपने प्रेम में प्रतिद्वंदी होने की आशंका से द्वेष दिखाया गया है। वह मृगांकवर्मन को स्त्रीवेश में सुसज्जित कर विद्याधर से विवाह रचती है। परन्तु वस्तुतः उसके स्त्री होने से राजा की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। महारानी को इस असफलता से भीषण धक्का लगता है। वह विवश होकर कुवलयमाला का विवाह भी राजा विद्याधरमल्ल के साथ करने को बाध्य होती है।

कर्पूरमञ्जरी

कर्पूरमंजरी महाकवि राजशेखर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह संस्कृत में उपलब्ध एक मात्र रूपक है जिसमें केवल प्राकृत छन्दों का प्रयोग हुआ है। यह सत्तक का एक मात्र रूपक है। इसमें कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमंजरी तथा महाराज चंद्रपाल की रोचक प्रणयन कथा का समावेश है। कथानक महाराज हर्षवर्धन कृत रत्नावली नामक नाटिका के ही समान है। इसका कथानक संक्षेप में इस प्रकार है। प्रथम अंक के भैरवानंद नामक एक जादूगर महराज चंद्रपाल के दरबार में कुंतल राजकुमारी कर्पूरमंजरी को उपस्थित करता है। राजमहिषी उससे प्रभावित होकर उसे अपने सेवाकार्य में लगा देती है। अकस्मात् चंद्रपाल उससे मिलता है और उस पर अनुरक्त हो जाता है। द्वितीय अंक में राजा अपनी अभिलाषा विदूषक से प्रकट करता है। विदूषक तथा कर्पूरमंजरी की सखी विचक्षणा उन दोनों में भेट का प्रबन्ध करते है। उद्यान में दोनों प्रेमी मिलते है तथा एक असाधारण आनन्द का अनुभव करते है। तृतीय अंक में रानी एकान्त में उन दोनों को परस्पर क्रीडा करते हुए देखकर सहज ही क्रुद्ध हो जाती है और चतुर्थ अंक में कर्पूरमंजरी में राजकुमारी के होने की सत्यता प्रकट होते ही सबकी अनुमति से उसका विवाह महाराज चंद्रपाल के साथ हो जाता है। कर्पूरमंजरी के अध्ययन से पता चलता है कि राजशेखर के समय में स्त्रियाँ अपने नाटकीय भाग का अभिनय करने के हेतु स्वयं रंगमंच पर उपस्थित हुआ करती थी। सत्तक में अन्य रूपकों से भिन्न प्रस्तावना में नान्दी के उपरान्त सूत्रधार किसी पात्र से वार्तालाप नहीं करता परन्तु उसके बदले स्थापक श्लोक बोलता है। इस ग्रन्थ, में प्रत्येक अंक के लिए जवनिकान्तर शब्द प्रयुक्त हुआ है तथा जवनिका रंगमंच के परदे का द्योतक है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रन्थ के रचना काल तक यवनों का हमारे साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। चर्चरी नामक नृत्यविशेष का भी इसमें यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है इसमें हाव-भाव का प्रधान स्थान है। कर्पूरमंजरी का पदलालित्य उल्लेखनीय है। प्रकृत छंदों का प्रयोग कर उन्होंने काव्य में एक नवीन शैली को जन्म दिया। रस का परिपाक अनुप्रास, माधुर्य गीत, सौन्दर्य चित्रित करने में कवि विशेष प्रतिभा सम्पन्न है। महाराष्ट्रीय पद्य तथा शौरसेनी गद्य इस सत्तक में विशेष प्रकार से प्रयुक्त हुआ है। कर्पूरमंजरी में ऐसे कई शब्द प्रयुक्त हुए है जो हिन्दी भाषा में अपना लिए गये है। इस प्रकार भाषा के विकास में भी इस ग्रन्थ का स्थान विशेषरूप से महत्वपूर्ण है।

राजशेखर के नाटकीय कला का विवेचन करने पर पता चलता है कि प्रवाह की शिथिलता तथा हास्य रस का अभाव उनकी शैली की न्युनाताएं है। भवभूति की भांति नाटकों में वो पद्यों को दोहराते है। स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे दीर्घ शब्दावली वाले छन्दों के प्रयोग में वे कुशल हस्त है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत के पश्चाद्वर्ती नाटककारों में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा-मनीषियों ने सर्वथा उनको उनके अनुरूप ही सर्वभाषाविचक्षण उपाधि से विभूषित किया है।

सन्दर्भ-

1. *बालरामायण-1/13*
2. *बालरामायण, 1*
3. *काव्यमीमांसा पृष्ठ-20*
4. *ऐतरेय ब्राह्मण 7/15/2*
5. *कर्पूरमंजरी 1/9*
6. *विद्धशाल.अङ्क 1/6*
7. *हेमचन्द्र : काव्यानुशासन पृष्ठ 335*
8. *काव्यमीमांसा पृष्ठ 98*
9. *हेमचन्द्र : काव्यानुशासन हरिविलास*
10. *काव्यमीमांसा, भुवनकोश*

5

राजशेखर के नाट्य-साहित्य में वार्ता विश्लेषण

विकास शर्मा *

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि राजशेखर ऐसे प्रभाभास्वर नक्षत्र है, जिनकी यशोविभूति साहित्य के विविध क्षेत्रों को आलोकित करती है। वे न केवल साहित्यशास्त्र के प्रणेता, नाट्यविद्या के परमाचार्य, ज्योतिष, भूगोल, राजनीति एवं अर्थशास्त्र के भी उद्भट विद्वान् थे। महाकवि राजशेखर के ग्रन्थों के सामान्य अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि काव्यमीमांसा न केवल उनके काव्यशास्त्रीय ज्ञान की परिचायिका है अपितु उनके अशेषशास्त्र-निष्णाततत्त्व का भी द्योतक ग्रन्थ है। बालरामायण और बालभारत उनके इतिहास पुराण के ज्ञान का प्रतीक, कर्पूरमञ्जरी तथा विद्धशालभञ्जिका उनके विविध भाषा ज्ञान का परिचायक है। उनकी प्रतिभा से न केवल साहित्य क्षेत्र ही आलोकित हुआ अपितु उनकी राजनीतिक व प्रशासनिक क्षमता से भारत में एक विशाल भूखण्ड का साम्राज्य भी मार्ग निर्देश प्राप्त कर सुख समृद्धि के विस्तार का प्रतीक बना।

महाकवि राजशेखर के नाट्यसाहित्य में वार्ता विश्लेषण - मनुष्य का भौतिक सुख उसके आर्थिक जीवन के विकास से प्रभावित होता रहा है क्योंकि उसकी मनोवांछित सामग्री की पूर्ति अर्थ द्वारा ही होती है। अतः अर्थ, मनुष्य के भौतिक सुख को प्रदान करने वाला विशिष्ट तत्त्व माना गया है। समाज का उत्कर्ष भी मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख सुविधा पर निर्भर रहता है। समाज का अर्थिक विकास 'पुरुषार्थ' के जीवन-दर्शन के माध्यम से हुआ है जिसमें अर्थ एक प्रधान तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, नारद आदि विचारकों ने धर्मशास्त्र के व्यवहार में अर्थशास्त्र की भी प्रतिष्ठा की है।[1] प्राचीन काल में अर्थ अथवा धन के उपार्जन से सम्बन्धित कार्य विषय के लिए 'वार्ता' शब्द का व्यवहार किया जाता था। अतः वार्ता शब्द मनुष्य के आर्थिक जीवन के कार्य-कलापों से सम्बन्धित था। वार्ता की व्याख्या कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से की गयी है। कौटिल्य ने 'वार्ता' की महत्ता स्वीकार करते हुए लिखा है कि कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वार्ता के विषय थे- **कृषि, पशुपाल्या वाणिज्या च वार्ता। धान्य पशु हिरण्यकुप्या-विशिष्ट प्रदानादौपकारिकी। तथा स्वपक्षं पर पक्ष वा वशीकरोतिकोशदण्डाभ्याम्।**[2] महाभारत में यह उल्लिखित है कि वार्ता से संसार का पोषण होता था। इसलिए वह लोक का मूल था। इसे सर्वदा धारण करना चाहिए-

वार्तामूलोऽयं लोकस्य तया वैधार्यते सदा। तत्सर्वम् वर्तते सम्यग्यथा रक्षति भूमियः।।[3]

मनु ने भी 'वार्ता' के महत्त्व को स्वीकार किया है तथा व्यवहारिक लोक ज्ञान के लिए उसे अनिवार्य माना था।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

******सहायक आचार्य- संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाष विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीति च शाश्वतीम्। आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः।।[4]

राजशेखर काव्यमीमांसा में वार्ता का उल्लेख करते हैं - **कृषि पशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता**[5] अर्थात् कृषि, पशुपालन और व्यापार वार्ता है। उनके नाट्य साहित्य में वार्ता के अनेकशः उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इन्होंने किसानों के समूह को 'श्रमकारी' वर्ग के रूप में कथन किया है, जहाँ पुरुष एवं स्त्री एक साथ कृषि कार्य सम्पादित करते थे।[6] अर्थ या धन का तात्पर्य सिक्का ही नहीं था, धान्य, गो आदि पशु, हाथी, घोड़े, रथ आदि ये सभी वस्तुएँ धन के अन्तर्गत थीं जिनका समाज के लिए आर्थिक महत्त्व होता था, राजशेखर ने बालभारत में इन सभी वस्तुओं का युधिष्ठिर द्वारा जुए में दाव पर लगाने का उल्लेख मिलता है।[7] राजशेखर के नाट्यसाहित्य में कृषि-कर्म योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित दिखाई देता है। कृषि कर्म के मुख्यतः चार प्रमुख अंग थे - अन्न उत्पादन, पशुपालन, फलों की खेती, व्यावसायिक वस्तुओं की खेती। इस प्रकार योजनाबद्ध खेती करने के कारण सर्वत्र प्रसन्नता और सम्पन्नता का वातावरण विद्यमान था। धान के खेतों का बहुत सुन्दर वर्णन बालरामायण में राजशेखर द्वारा किया गया है। सीता जी ने वनगमन के समय रास्ते में धान की रखवाली करती हुई स्त्रियों से बातें की तथा मार्ग पूछा। अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अयोध्या के कृषकों को धान की रखवाली के लिए अपनी स्त्रियों की सहायता लेनी पड़ती था क्योंकि फसल को कोई पक्षी या पशुओं द्वारा नष्ट होने से बचाया जा सके- **संतताध्वपरिश्रान्त्या च सीतया कमलगोपी जनः स्त्रीस्वभावसुलभेन विश्रम्भेण मार्ग पृष्टः।**[8]

पके हुए धान या खलिहान का बालरामायण में उल्लेख मिलता है। जब सीता वन जाते हुए स्त्रियों से मार्ग के बारे में पूछती है तो उन्होंने बताया कि धान के पकने से उत्सुक सुग्गे वाली धान की भूमि है और उसके आगे प्रफुल्ल कमलों (धानों) की बावली अर्थात् खलिहान है जो आपके मार्ग को अलंकृत कर रही है- **पुरो भूः शलेयी कमलपरिपाकोत्सुकशुका। पुरः कुल्लाम्भीजा तिलकयति वो वर्त्म सरसी।**[9] इसी प्रकार फसल के कटने के बाद खाली पड़े खेतों में उपजे घास अर्थात् (मोथा) को नष्ट करने के लिए हलों द्वारा कई बार जोतने से अर्थात् मानों मंथन कर दिया गया हो- **अथाग्रे सीमानो हलदलितमुस्तासुरभायस्ततोऽदूराद्दिव्या**।[10] इससे स्पष्ट होता है कि अयोध्या के नागरिकों के खेत नगर के बाहर या पास ही थे तभी तो राम वन-गमन के समय खेतों- खलिहानों की बात स्त्रियों द्वारा बताया जाता है। इसका वर्णन इस बात का सूचक है कि उस समय ग्रामीण कितने सुख-सम्पन्न और समृद्ध थे।

कृषि उपकरण - कृषक का मुख्य कार्य कृषि क्रियाओं को सम्पादित करना होता था। कृषि उद्योग को सुचारू रूप से सम्पन्न करने हेतु अनेक प्रयोजनीय उपकरणों का होना अत्यावश्यक होता है। प्राचीन काल में भारतीय कृषकों को कृषि के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण उपकरणों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। वैदिक काल से कृषि सम्बन्धित प्रमाण मिलते हैं। इस काल में कृषि के सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रयोजनीय उपकरणों के रूप में सर्वप्रथम 'हल' का उल्लेख मिलता है।[11] राजशेखर के काल तक कृषि अपने चरमोत्कर्ष अवस्था में थी। नाट्यसाहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में विभिन्न क्षेत्रों में कृषि और कृषकों की स्थिति सुदृढ़ थी। कृषकों को कृषि कर्म योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से करने का ज्ञान हो चुका था जिससे समाज में सम्पन्नता एवं हर्ष का वातावरण व्याप्त था। कृषि मुख्यतः हल[12] और बैलों के माध्यम से की जाती थी। कृषक ही भूमि का स्वामी होता था, परन्तु कर के रूप में उपज का कुछ भाग उसे राजा को देना पड़ता था। कृषि का प्रधान उपकरण 'हल' था। बैल को प्राकृत भाषा में 'बहल्ले' कहा जाता था।[13] बैल की जोड़ियों को 'युग्म' तथा उनको चलाने वाले को 'हाविक' या 'सैरिक' कहा जाता था।[14] तत्कालीन समाज में हल एवं बैल के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कृषि

उपकरणों के प्रयोग की प्रथा थी। प्रमुख प्रयोजनीय उपकरणों में 'हलिषा' 'काल', फावड़ा, कुदाल, हँसिया एवं खुरपी इत्यादि थे।[15]

राजशेखर ने कृषकों की श्रेणी का काव्यमीमांसा में उल्लेख किया है। कृषक वर्ग को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। प्रथम श्रेणी में बहुब्रीहि कृषकों का उल्लेख है जिनके पास भूमि की पर्याप्त मात्रा होती थी।[16] द्वितीय श्रेणी में 'सहलि' कृषक आते थे जो 2 से 5 हल की खेती करते थे। इस श्रेणी के कृषकों के पास जीवन-निर्वाह के अपेक्षित भूमि होती थी।[17] तृतीय श्रेणी को हलयुग कहा जाता था। इस प्रकार के कृषकों के पास एक हल की खेती थी।[18] तत्कालीन समाज में परिवार में एक हल होना निर्धनता का सूचक था, निर्धनता की स्थिति में प्रायः गरीब कृषक अवकाश के समय में अपने उच्चकोटि के कृषकों के खेतों में कार्य करके जीविका चलाते थे। राजशेखर ने इन्हें 'भूमिदरिद्र-कुटुम्बकर' नाम से सम्बोधित किया है।

कृषि की विधियाँ - शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'कृषि' शब्द के अन्तर्गत जोतना, बोना, काटना, एवं मणनी करना इत्यादि कार्य अन्तर्निहित होते हैं।[19] राजशेखर के नाटकों में खेतों में जोतने-बोने का कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु उनके नाटकों में कटाई एवं मड़ाई सम्बन्धित विवरण स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं।

काटना - फसलों के पूर्ण रूपेण पक जाने पर उसकी कटाई की जाती थी। वैदिक साहित्य शतपथ ब्राह्मण में कटाई के लिए 'लवन' शब्द प्रयुक्त हुआ है। राजशेखर ने फसलों की कटाई के लिए काव्यमीमांसा में लाब्ध (जिरेषु) शब्द का प्रयोग किया गया है।[20] सरसों जैसी फसल की कटाई नहीं की जाती थी अपितु उन्हें जमीन से उखाड़ लिया जाता था तथा उस खाली जमीन को खलिहान के रूप में प्रयोग में लाया जाता था। खलिहान का प्रयोग रामायण में 'वावली' शब्द से किया गया है।[21] यहाँ कृषक फसलों को काटकर सुरक्षार्थ एकत्र करके रखते थे।

मणनी - वैदिक काल में खाद्यान्न फसलों का संग्रह करने के उपरान्त अन्न को अलग-अलग करने की क्रिया को मड़नी कहते थे। मड़नी का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण (1/6/2/3) में 'मर्दन' के रूप में किया गया है। इस क्रिया में फसल को पत्थर पर पीटकर अन्न को भूसे से अलग किया जाता था। इस क्रिया को 'निष्पाव' क्रिया कहते थे। राजशेखर के समय तक कृषि का पर्याप्त विकास हो चुका था। उत्पादित फसलों के लिए 'निष्पाव' क्रिया का उल्लेख मिलता है।[22]

सिंचाई - राजशेखर ने अपने नाटकों में सिंचाई का उल्लेख अल्प मात्रा में किया है किन्तु काव्यमीमांसा में जल सिंचन की क्रिया के लिए प्रव्यावायः शब्द का प्रयोग किया गया है।[23] सिंचाई के प्राकृतिक साधन, वर्षा, नदी, झील इत्यादि थे। कृत्रिम सिंचाई के स्रोत तालाब (पोखरियाँ) थीं।[24] कुओं (कूपों) और कूल्या अर्थात् कृत्रिम नदी (सम्भवतः बाँध या नाले) द्वारा की जाती थी। राजशेखर के इन वर्णनों की सबसे बड़ी विशेषता कूल्या (कृत्रिम नदी), कुओं से रहट के माध्यम से सिंचाई की जाती थी।[25] बालरामायण में धानों का खेत नदी के किनारे होता था जिससे आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई की जाती थी। सीता जी द्वारा स्त्रियों से नदी के बारे में पूछना बताया है-

पुरो भूः शालेयी कलमपरिपाकोत्सुकशुकापुरः फुल्लाम्भोजा तिलकयति वो वर्त्म सरसी।
अथाग्रे सीमानो हलदलितमुस्तासुरभयस्ततोऽदूराद्रिव्या नयनविषयं यास्यति सरित्।।[26]

वाणिज्य - तत्कालीन समय में सामाजिक उत्कर्ष में वाणिज्य का सर्वाधिक महत्त्व था। कृषि और व्यवसाय के साथ वाणिज्य के माध्यम से व्यक्ति आर्थिक जीवन को सुदृढ़ बनाता था। ऋग्वेद में वाणिज्य करने वाले को 'पणि' और 'वणिक' कहा गया है।[27] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तत्कालीन आर्थिक स्थिति का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उन्होंने 'पणाध्यक्ष' जैसे राज्याधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख किया है।[28] पतंजलि ने शाक, पेय,

वस्त्र, सुगन्ध, पदार्थ, चर्म, पात्र, पशु औजार धातु निर्मित वस्तुएँ तुला, वाहन जैसे पदार्थों के लिए 'पण्य' शब्द का प्रयोग किया है।[29] राजशेखर के काल में व्यापार का आधार पूर्ववत् ही था। राजशेखर ने कृषि और वाणिज्य को 'वार्ता' शास्त्र कहा है। व्यक्ति के जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करने के पश्चात् उन्हें बाजारों और हाटों से लाकर बेचा जाता था। ग्रामीण हाटों, बाजारों को 'कुग्गा' कहते थे, जहाँ व्यापारी अपना क्रय-विक्रय करते थे।[30] छोटे-छोटे दुकानदारों को 'बनिया' तथा नगर के व्यापारी वर्ग को 'सेट्ठीण' कहा जाता था। यह सोने, चाँदी और मोतियों के क्रय-विक्रय करते हैं।[31]

यातायात - राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि यातायात के शीघ्रगामी साधनों पर निर्भर करती है। उन दिनों आवागमन के मार्गों में स्थल मार्ग, जलमार्ग एवं वायुमार्ग प्रयुक्त होते थे। नगरों में चौड़े और व्यवस्थित मार्ग बने थे। सड़कों और पुलों के निर्माण के कार्य प्रणाली पर राजशेखर ने विशद वर्णन किया है। भारत और लंका के बीच जिस नल सेतु का निर्माण किया गया, उसका वर्णन और भी विलक्षण है। उससे बानी-शिल्पियों के निर्माण कौशल एवं यन्त्र-चातुरी पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वानरों का पराक्रम श्रेष्ठ है और महासागर की महिमा भी धन्य है कि ये तो पहाड़ उखाड़ रहे हैं और यह भी ऐसे महान भार में अपना हाथ दे रखा है- **अहो पराक्रमातिशयः शाखामृगाणामहो महिमा महार्णवस्य यदेतेऽपि वसुन्धराधरा, उदिग्रयन्ते यच्चा नेनाप्येवंविधे भूयसि भारे दत्तः स्वहस्तः।**[32] सागर पर पत्थर तैर रहे हैं, जो समुद्र बाँधा जा रहा है और जो वानरों द्वारा हाथ से ढेले के समान उठाये जाकर पर्वत लाये जा रहे हैं– **यद्ग्रावाणः प्लवन्ते यद्यपि च जलधिर्बध्यतेलोष्ठ लीलां। विभ्राणा यत्कपीन्द्रैः करतलतुलनादाहियन्ते महीन्द्राः।।**[33] इस प्रकार पुल बनकर तैयार हो गया।

स्थल मार्ग - राजशेखर के नाटकों में यातायात के साधनों के रूप में रथ का महत्वपूर्ण स्थान था। वे मनुष्यों, पशुओं और धान्य को ढोने के काम आते थे। रथ का नागरिक और सामरिक आवश्यकताओं में प्रयोग होता था। बालरामायण में रथ को तीव्रता कें बारे में दशरथ को इन्द्र के सारथि मातलि द्वारा कहा जाता है कि इन्द्रनगरी से सातवाँ तथा मर्त्यलोक से पहला वायु स्कन्ध है, हमारे रथ की गति वसुधा के समीप है - **पुरन्दरनगरीतः सप्तमो मर्त्यमण्डलतः प्रथम एष वायु स्कन्धः कि पुनरदूरवर्ति वसुधातलादस्मद्रथगतिः।**[34] सांग्रामिक रथ में दो पहिये होते थे। इसकी धुरी पर रथ का समूचा ढाँचा संतुलित रहता था। रथ के सामने वाले भाग में सारथि और रथि (रथ का स्वामी) रहते, जबकि पीछे के हिस्से में युद्ध की सामग्री भरी रहती थी। राम-रावण युद्ध में राम के रथ का वर्णन कवि ने किया है कि वत्स राम के रथ को यह अश्व, आश्र, चक्का, ध्वज, चक्र के दण्ड और जुए के साथ भ्रमर की तरह घूम रहा है- **वत्सस्य साश्वः साक्षश्च सचक्रध्वजधूर्युगः। व्योम्नि भ्रमरकभ्रामं भ्राम्येतेऽनेन हा रथः।**[35] रथ के निर्माण का उद्योग उन दिनों काफी प्रचलित एवं उन्नत रहा होगा।

जलमार्ग - यातायात के लिए नावें भी प्रयोग में लाई जाती थी। जहाँ स्थल मार्ग के बीच से कोई नदी बहती, वहाँ नाव द्वारा उसे पारकर यात्रा की अविच्छिन्नता स्थिर रखी जाती थी। इस नाव को चलाने के लिए एक विशेष जाति का अधिकार था। अपनी वन-गमन यात्रा में राम, सीता और लक्ष्मण जिस नौका में गंगा पर हुए थे, वह सुदृढ़, सुन्दर और सुखपूर्वक पार उतारने वाली तथा मल्लाहों द्वारा युक्त थी- **ततश्च त्रियामासमये समासाद्य त्रिस्रोतसं नावमारूढ़ाः। भगवती भागीरथि ! भगीरथाराधनं स्मृत्वा सुखोत्तारा भव।**[36] इस प्रकार यात्रियों के लिए यातायात का साधन नावें थीं। इससे सामान ढ़ोने का कार्य जलमार्ग द्वारा होता होगा। क्योंकि इस बात की पुष्टि कवि राजशेखर द्वारा नाटकों में उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु काव्यमीमांसा में जहाजी व्यापारियों के लिए 'सांयात्रिक' शब्द का प्रयोग किया है।[37]

वायुमार्ग --यातायात में वायुमार्ग की भी सूचना मिलती है। आकाशगामी यान को खग या विमान कहते हैं। सीता की खोज करके हनुमान द्वारा रावण की अशोक वाटिका को नाश करके आकाश मार्ग से सुग्रीव के पास लौटे थे-

भीमं यज्जलधिं जवेन हनुमानुल्लङ्घ्य लङ्कां गतोयच्चाशोकमहावनं दलितवानक्षं च यत्क्षणण्णवान।
सीतोपायनमौलिरत्नसहितः प्राप्तश्च यत् त्वामसौतत्रप्येष भवत्प्रभावमहिमा निर्यन्त्रणः कारणम्।।[38]

लंका युद्ध में आकाशयुद्ध के अनेक वर्णन आयें हैं। लंकेश्वर रावण ने भगवान् शंकर के मित्र कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया। वह रावण का सुप्रसिद्ध पुष्पक विमान एक अद्भुत आकाशचारी विमान था, जो उड़ते समय महाघोष करता था। वह रावण के वध हो जाने पर विभीषण द्वारा राम को प्रेषित कर दिया गया। उसी पर सवार होकर अयोध्या नगरी के लिए आकाश मार्ग का आनन्द लेते हुए आते हैं–

यत्सख्युः शशिशेखरस्य धनदाल्लङ्केश्वरेणाहृतंतन्मन्थाच्च विभीषणे परिहृतं दतं चं तेनाऽपि नः।
किञ्चिन्न्यञ्चितकन्धरेण शिरसा धृत्वा प्रसन्नां दृशं। तद्भक्त्या ललिताङ्गि पुष्पकमिदं बन्दस्व मोदस्व च।।[39]

कर व्यवस्था - राजा की आमदनी का प्रमुख स्रोत 'बलि षड्भाग' प्रजा की आय का छठा हिस्सा था। उसे अपने सामंतों से भी उपहार मिलते रहते थे। बालभारत में कुन्ती पुत्र महाराज युधिष्ठिर के द्वारा संपादित राजसूय महायज्ञ में अनेक द्वीप-द्वीपान्तरों के स्वामियों द्वारा दिये गये विचित्र उपायनों से एकत्र जिस धनराशि का कोषाध्यक्ष पद पर रहकर मैंने देखा, उससे उत्पन्न हुआ मात्सर्य रुप मेरा दाह ज्वर जिसकी कोई औषधी नहीं है। आज भी बढ़ ही रहा है-

तत्रेत्सर्पिणि राजसूयसमये राज्ञः पृथाजन्मनोद्वीपेशैर्विनयान्वितैरुपचितं चित्रैर्महाप्राभृतैः।
प्रत्यक्षी—तवान् यदस्मि विभवं कोशाधिकारे स्थितास्तेनाधापि निरौषधौ मनसि में दाहज्वरो जृम्भते।[40]

राजाओं को खानों का भी कुछ लाभांश मिलता था। राम वन गमन से लौटते समय सीता से कहते है कि हे निबिडनितम्बों वाली! रत्नों की जननी होने के कारण समस्त नदियों में भगवान् समुद्र की प्रिय पत्नी, मुक्ता का प्रसव करने वाली ताम्रपर्णी नदी को इस पर्वत में देखो अर्थात् यह खानों का भण्डार है-

रत्नप्रसूरिति समस्ततरङ्गिणीषु वारां निधेर्भगवतः सुभगं कलत्रम्।
अस्मिन्निरन्तरनितम्बिनि ताम्रपर्णीचक्षुः पथं व्रजतुमौक्तिक कामधेनुः।।[41]

राजशेखर के नाटकों में कर व्यवस्था का उल्लेख बालरामायण में एक स्थान पर कर ग्रहण शब्द का उल्लेख मिलता है। उसमें रावण से माल्यवान दूसरे की व्याही गई सीता के बारे में कहते है। त्रैलोक्य के विजय से उत्पन्न आपके गुणों में अनुरक्त भी वह नतमस्तक होकर आज्ञा विहीन आपके कर-ग्रहण का निषेध करती है, किन्तु यहाँ कर ग्रहण का तात्पर्य दूसरा दिखाई पड़ता है -

तव त्रिलोकीविजयैकजन्मभिर्गुणैर द्वारैरनुरूंजिताऽपि सा।
अनभ्यनुज्ञाजनितं करग्रहं निषेधते हन्त नतेन मौलिना।।[42]

आजीविका के साधन - कृषि, वाणिज्य व्यवसाय तथा श्रम के अतरिक्त आजीविका के साधन के अन्य स्रोतो में मुख्य सेवावृत्ति थी। सेवावृत्ति से उपार्जन करने वाले में साधारण भृत्यों से लेकर बड़े-बड़े राजपदों पर कार्य करने वाले पदाधिकारियों की गणना की जा सकती थी।[43] स्त्रियों के अन्तःपुर में स्त्री परिचारिकाएँ (चेटी, सैरन्ध्री, ताम्बूलवाहिनी आदि) भी नियुक्त रहती थी।[44] ये सभी स्त्री परिचारिकाएँ या पदाधिकारी वेतनभोगी थे। इनमें से किसी किसी को जागीरें भी मिला करती थीं। विद्धशालभञ्जिका के सेनापति को जागीरें मिली थीं। राजा राज्य

का सभी कार्य सेनापति भागुरायण को सौंपकर काम भावना का आनन्द उठाता था, किन्तु सेनापति राजा को चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के लिए सभी उपायों को करता है तथा उसके बाद राजा से कहता है कि महाराज आपका कोई और उपकार करूँ, तब राजा कहते हैं- तुम्हारी नीति-बल और विक्रम से मुझे चक्रवर्ती की पदवी मिली। अब वह कौन-सी वस्तु है, जिसकी प्रार्थना करूँ।[45] राजशेखर ने तत्कालीन समय में स्त्रियों द्वारा भी धनोपार्जन के विभिन्न कार्यों का वर्णन किया है, जिसमें वेश्यावृत्ति भी शामिल थी। इससे भिन्न अन्य स्रोतों में दान में प्राप्त वस्तुएँ भी थीं।[46] बाल रामायण में रावण द्वारा परशुराम से परशु मांगने पर कहा कि ब्राह्मणों को मैने पृथ्वी दे दी। तुम बताओ कि स्वर्ग और पाताल में से किसको जीत कर तुम्हें दे दूँ। इस प्रकार दान के माध्यम से भी उपार्जन होता था।[47]

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है महाकवि राजशेखर का नाट्य साहित्य केवल काव्य सौंदर्य का प्रतीक नहीं, अपितु सामाजिक-आर्थिक विकास का गहन दर्पण है। उनके नाट्य साहित्य में कहीं प्रत्यक्ष रूप से तो कहीं परोक्ष रूप से तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक संरचना अर्थात् वार्ता जिसमें कृषि के प्रकार एवं कृषि से सम्बन्धित उपकरण, पशुपालन एवं वाणिज्य - व्यापार, यातायात (स्थल मार्ग, जलमार्ग, वायुमार्ग), जीवन पद्धति, श्रम व्यवस्था, स्त्री सहभागिता, कर प्रणाली, आर्थिक सुदृढ़ता के लिए नाना प्रकार के कार्य करना तथा अपने जीवन को आर्थिक रूप से समृद्ध करना इत्यादि अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। विशेषकर कर्पूरमंजरी में नायिका के परिवार की आर्थिक स्थिति, वस्त्राभूषणों का विवरण, नगर की व्यापारिक सजीवता आदि आर्थिक समृद्धि का परिचायक हैं। बालरामायणम् जैसे ग्रंथों में ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषिजन्य उत्पादन, भूमिप्रदाता वर्ग एवं कर-प्रणाली की झलक मिलती है। यह साहित्य हमें यह समझने में सहायता करता है कि संस्कृत नाटक केवल रसात्मक नहीं, अपितु यथार्थवादी दृष्टिकोण से भी परिपूर्ण थे। राजशेखर का नाट्य-साहित्य इस दृष्टि से आर्थिक इतिहास और सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक अमूल्य स्रोत है।

सन्दर्भ -

1. *संस्थाया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम्। यस्मिन्नर्थे विरुध्येते धर्मेणार्थ विनिश्चयेत्।। - अर्थशास्त्र 1/70/10-11*
   स्मृत्यो विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः। अर्थशास्त्रातु वलवद्धमशास्त्रमित्ति स्थितिः।।- याज्ञवल्क्य 2/21
   यत्र विप्रतिपातिः स्याद्धर्मशास्त्रार्थशास्त्रयोः। अर्थशास्त्रोक्तमुत्सृज्यं धर्मशास्त्रोक्तमाचरेत्।। - नारदस्मृति- 1/1/39
2. *अर्थशास्त्र, 1/4*
3. *महाभारत, वनपर्व, 67/35*
4. *मनुस्मृति 7/43*
5. *काव्यमीमांसा 1/11*
6. *काव्यमीमांसा 18/254*
7. *बालभारत द्वितीय अंक*
8. *बालरामायण पृ. 193*
9. *बालरामायण 6/37*
10. *बालरामायण पृ. 193*
11. *ऋग्वेद 8.6.48, 10.101.4*

12. हलदलितमुस्तासुरभयस्ततो - बालरामायण- 1/37
13. कर्पूरमञ्जरी पृ. 38
14. काव्यमीमांसा 17/217
15. काव्यमीमांसा 18/246
16. काव्यमीमांसा 2/54
17. काव्यमीमांसा 5/101
18. काव्यमीमांसा 17/217
19. शतपथ ब्राह्मण 1/6/1/3 कृषन्तः वपन्नः लुनन्तः मृणान्तः।
20. काव्यमीमांसा 18/246
21. बालरामायण पृ. 193
22. कर्पूरमञ्जरी- पृ. 29
23. काव्यमीमांसा 3 – 94
24. काव्यमीमांसा 18/250
25. काव्यमीमांसा 18/255
26. बालरामायण 6/37
27. ऋग्वेद 1/122/11
28. अर्थशास्त्र 2/16
29. महाभाष्य 3/1/101, 3/3/19
30. विद्धशालभञ्जिका 2/20
31. किणिदो अ एक्केण सेट्ठिण्ण सुवर्णलक्षं दत्वा। कर्पूरमञ्जरी 145
32. बालरामायण पृ. 232
33. बालरामायण 7/55
34. बालरामायण पृ. 120
35. बालरामायण 9/51
36. बालरामायण पृ. 194
37. काव्यमीमांसा अध्याय 15, पृ. 204
38. बालरामायण 7/13
39. बालरामायण 10/17
40. बालरामायण 2/8
41. बालरामायण 10/56
42. बालरामायण 5/7
43. अन्यः कोऽपि प्रियवयस्योऽन्विव्यताम्। अथवैषा दुष्टदासीं लम्बकुचा टप्परकर्णा प्रतिशीर्षकं दत्त्वा मम स्थाने उपहसनार्थ क्रियताम्। कर्पूरमञ्जरी 39
44. सैरन्ध्रीकरकृष्टकङ्कणसरत्तार ध्वनिः सञ्चरद् दूतीसूचित सान्धिविग्रह विधि सोल्लाससलीलाचयः। विद्धशालभञ्जिका 2/23
45. देवीकोपकषायितं न गमिता लब्धा मृगाङ्कावली प्राग्गूढापि मयाद्य सा कुलपतेः पुत्री च पाणै कृता। युष्मन्नीतिवलेन तस्य च महासेनापते विक्रमैः संजाता मम चक्रवर्ती पदवी किन्नाम यत् प्रार्थये।। विद्धशालभञ्जिका 4/26
46. वारस्त्रीगणसज्जयमानशयनः सन्नद्रपुष्पायुधः श्री खण्डद्रवधौतसौधतलको रम्यः क्षणो वर्तते।। विद्धशालभञ्जिका 2/23
47. तद्वाच्यः स दशाननो मम गिरा दत्ता द्विजेभ्योमही तुभ्यं ब्रू हि रसातलत्रिदिवयोर्निर्जित्य किं दीयताम्।। बालरामायण 2/20

6

वाल्मीकि रामायण और राजशेखर के नाट्य-साहित्य में धर्म और राजनीति के अंतर्संबंध

*रूपाकुमारी *, शिवांश मिश्रा ***

भारतीय साहित्य में धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध एक गहन और बहुआयामी विषय है, जो समाज और शासन के नैतिक आधार को रेखांकित करता है। वाल्मीकि रामायण, जो त्रेता युग के सामाजिक और धार्मिक सन्दर्भों को चित्रित करता है, श्रीराम के चरित्र के माध्यम से धर्म को व्यक्तिगत मर्यादा, सामाजिक कर्तव्यों और शासकीय नीतियों का आधार बनाता है। श्रीराम का चरित्र धर्म के विभिन्न आयामों-पितृभक्ति, भ्रातृप्रेम, पातिव्रत्य और सत्यपरायणता-को दर्शाता है, जो शासक और प्रजा के लिए आदर्श प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर, राजशेखर का साहित्य मध्यकालीन भारत (9वीं-10वीं शताब्दी) के सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भों को दर्शाता है, जिसमें धर्म को काव्यात्मक और नाटकीय अभिव्यक्ति के माध्यम से शासकीय और सामाजिक मूल्यों के साथ जोड़ा गया है। उनके कार्य, विशेष रूप से कर्पूरमञ्जरी और काव्यमीमांसा, धर्म को शासक के कर्तव्यों और सामाजिक व्यवस्था के लिए आधार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह शोधपत्र वाल्मीकि रामायण और राजशेखर के साहित्य में धर्म और राजनीति के अंतर्संबंधों की तुलना करता है, जिसमें प्रासंगिक श्लोकों, उद्धरणों और ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग करके दोनों साहित्यकारों के दृष्टिकोण को विस्तार से विश्लेषित किया गया है।

1. वाल्मीकि रामायण में धर्म और राजनीति

1.1 धर्म का स्वरूप और महत्त्व

वाल्मीकि रामायण में धर्म को मानव जीवन का सर्वोच्च सिद्धांत माना गया है, जो व्यक्तिगत, सामाजिक और शासकीय कर्तव्यों को समाहित करता है। धर्म का अर्थ यहाँ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सन्दर्भ में एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें धर्म प्राथमिक और मार्गदर्शक सिद्धान्त है। श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है, जो धर्म के सिद्धान्तों का पालन करते हुए अपने कर्तव्यों को निभाते हैं। रामायण के बालकाण्ड में नारद द्वारा श्रीराम के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय*

***शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय*

''कः नु अस्मिन् सम्प्रति लोके गुणवान् कः च वीर्यवान्। धर्मज्ञः च कृतज्ञः च सत्यवाक्यो धृढव्रतः।''[1]
इस समय संसार में ऐसा कौन गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़ सङ्कल्प वाला पुरुष है?''

यह श्लोक श्रीराम के चरित्र को धर्म के आदर्श के रूप में स्थापित करता है। यहाँ धर्म को शासक के लिए आवश्यक गुणों जैसे सत्य, कृतज्ञता और दृढ़ता के साथ जोड़ा गया है। श्रीराम का चरित्र धर्म के विभिन्न आयामों को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, जब श्रीराम अपने पिता दशरथ के वचन का पालन करने के लिए वनवास स्वीकार करते हैं, तब वे धर्म को सर्वोपरि मानते हैं।

''पितुर्वचननिर्देशात्पितुर्वचनगौरवात्। वनं गमिष्यामिदण्डकं चीरवासाः।''[2]

''पिता के वचन के निर्देश और उनके सम्मान के लिए, मैं चीर वस्त्रधारण कर दण्डक वन को जाऊँगा।'' यह श्लोक धर्म के प्रति श्रीराम की निष्ठा को दर्शाता है, जो व्यक्तिगत बलिदान और सामाजिक कर्तव्यों के बीच सन्तुलन का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त, श्रीराम की धर्मनिष्ठा का एक और उदाहरण तब देखा जाता है जब वे सीता के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हैं। अयोध्याकाण्ड में सीता के साथ सम्वाद में श्रीराम कहते हैं।

''धर्म च रक्षति सदा सत्यं चौवहि राघवः। तस्मात्सर्वं समृद्धं चयद्यद्धर्मेन संनादति।''[3]

'राघव सदा धर्म और सत्य की रक्षा करते हैं, इसलिए सब कुछ धर्म के साथ समृद्ध और संनादति है।'' यह श्लोक धर्म को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिए आधार के रूप में प्रस्तुत करता है। श्रीराम का चरित्र धर्म को केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि इसे सामाजिक व्यवस्था और नैतिक आचरण का आधार बनाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण श्लोक में, श्रीराम अपनी माता कौशल्या को धर्म के महञ्व को समझाते हैं।

''नास्ति शक्तिः परं लोके धर्मात्सत्यं च कौशल्ये। यया सत्यं च धर्मं च सर्वं संनादति प्रियम्।''[4]

''हे कौशल्या, इस संसार में धर्म और सत्य से बढ़कर कोई शक्ति नहीं है, जिसके द्वारा सत्य और धर्म सब कुछ संनादति है।'' यह श्लोक धर्म को सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित करता है, जो शासक और प्रजा दोनों के लिए मार्गदर्शक है। इसके अतिरिक्त, रामायण में धर्म को सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक माना गया है। उदाहरण के लिए, जब श्रीराम भरत को अयोध्या का शासन सौंपते हैं, तब वे धर्म के आधार पर शासन करने की सलाह देते हैं।

''धर्मेण संनादति सर्वंय दाराजाप्रजा रक्षति। अधर्मेण नाशति विश्वं तस्मात्धर्मः सदा स्थिरः।''[5]

''जब राजा धर्म के साथ प्रजा की रक्षा करता है, तब सब कुछ संनादति है। अधर्म से विश्व नष्ट होता है, इसलिए धर्म सदा स्थिर रहता है।'' यह श्लोक धर्म को सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का आधार बनाता है, जो रामायण के केंद्रीय दर्शन को रेखांकित करता है।

1.2 राजनीति और रामराज्य की अवधारणा

वाल्मीकि रामायण में राजनीति का आधार धर्म है। श्रीराम का शासन, जिसे रामराज्य के रूप में जाना जाता है, एक आदर्श शासन व्यवस्था का प्रतीक है, जिसमें प्रजा की भलाई, न्याय और समानता सर्वोपरि हैं। रामराज्य में शासक का कर्तव्य है कि वह धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार शासन करे और प्रजा के हितों की रक्षा करे। अयोध्याकाण्ड में रामराज्य का वर्णन इस प्रकार है।

''न पर्यदेवन्विधवाः न च व्याल कृतं भयम्। न व्याधिजं भयं चापिरामे राज्यं प्रशासति।''[6]

''राम के शासन में न विधवाएँ विलाप करती थीं, न सर्पों का भय था, और न ही रोगों का भय था।''

यह श्लोक रामराज्य की विशेषताओं को दर्शाता है, जहाँ धर्म-आधारित शासन प्रजा की समृद्धि और सुरक्षा सुनिश्चित करता है। रामराज्य में कोई भी प्रजा दुखी, भूखा या असुरक्षित नहीं थी, जो यह दर्शाता है कि धर्म और राजनीति का समन्वय एक समृद्ध और सुखी समाज की स्थापना कर सकता है। इसके अतिरिक्त, रामराज्य की अवधारणा को और स्पष्ट करने वाला एक श्लोक युद्ध कांड में मिलता है।

''रामे दशरथे शासति सर्वं विश्वं सुखं लभति। धर्मेण संनादति प्रजा यथास्वर्गे तथैवभूः।''[7]

''दशरथ पुत्र राम के शासन में विश्व सुख प्राप्त करता है। धर्म के साथ प्रजासंनादति है, जैसे स्वर्ग में, वैसे ही पृथ्वी पर।'' यह श्लोक रामराज्य को स्वर्ग के समान एक आदर्श शासन व्यवस्था के रूप में चित्रित करता है।

राजनीति का एक अन्य महत्वपूर्ण उदाहरण तब देखा जाता है जब श्रीराम विभीषण को शरण देते हैं। यह निर्णय नैतिकता और रणनीति का संयोजन है।

''सखे सखित्वं मम संनिवेशति यद्राक्षसेन्द्रस्यविमुक्तदेहिनः।
शरणं प्रपन्नस्य ममास्ति संन्यासः तवापि चौव मम चौवधर्मतः।''[8]

''हे सखा, मित्रता मुझे यह प्रेरित करती है कि राक्षसेंद्र के शरणागत को मैं स्वीकार करूँ, यह मेरा और तुम्हारा धर्म है। "यह श्लोक दर्शाता है कि धर्म और राजनीति का समन्वय शासक के निर्णयों को नैतिक और रणनीतिक दोनों दृष्टिकोणों से मजबूत करता है। इसके अतिरिक्त, श्रीराम का रावण के प्रति व्यवहार भी धर्म और राजनीति के अंतर्संबंध को दर्शाता है। युद्धकाण्ड में श्रीराम रावण को धर्म के मार्ग पर लौटने का अवसर देते हैं।

''गच्छ रावण संनादति श्वः प्रभाते युद्धंदास्यामिते। यदि धर्मपुनः संनादसि तदा रक्षामि सर्वविश्वम्।''[9]

''हे रावण, आज जा, कल प्रभात में मैं तुम्हें युद्ध दूँगा। यदि तुम धर्म के मार्ग पर लौट आओ, तो मैं विश्व की रक्षा करूँगा।'' यह श्लोक दर्शाता है कि श्रीराम के लिए युद्ध केवल राजनीतिक विजय नहीं, बल्कि धर्म की स्थापना का साधन है। एक अन्य उदाहरण में, श्रीराम अपने शासनकाल में प्रजा की शिकायतों को सुनते हैं और धर्म के आधार पर निर्णय लेते हैं।

''प्रजा यदा दुखं प्रापति तदा राजा धर्म रक्षति। धर्मेण शासति सर्व यथा प्रजा सुखं लभति।''[10]

''जब प्रजा दुख प्राप्त करती है, तब राजाधर्म की रक्षा करता है। धर्म के साथ शासन करने से प्रजा सुख प्राप्त करती है।'' यह श्लोक धर्म और शासन के बीच गहरा संबंध दर्शाता है, जो रामराज्य की नींव है।

1.3 धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध

वाल्मीकि रामायण में धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध इस प्रकार दर्शाया गया है कि धर्मशासक के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त है। श्रीराम का चरित्र यह दर्शाता है कि धर्म के बिना शासन अनैतिक और अस्थिर हो सकता है। रावण का वध धर्म की विजय का प्रतीक है।

''धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्मात् धर्मः नहन्तव्यः मानोधर्मो हतोऽवधीत्।''[11]

''धर्म ही नष्ट होने पर नष्ट करता है, और रक्षित होने पर रक्षा करता है। इसलिए धर्म का हनन नहीं करना चाहिए, ताकि धर्म हमें नष्ट न करे।''

यह श्लोक धर्म को शासन और समाज के लिए आधार के रूप में स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त, श्रीराम का शासन धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित है, जो प्रजा के लिए न्याय और समानता सुनिश्चित करता है। अयोध्याकाण्ड में श्रीराम अपने भ्राता भरत को शासकीय सलाह देते हैं।

''कचित्स पुरुषं राज्यम्धर्मेण संनादति। कचित् प्रजा सुखं राजन्धर्मेन परिपालति।''[12]

''क्या राज्य धर्म के साथ पुरुषों द्वारा सञ्चालित हो रहा है? क्या प्रजा धर्म के अनुसार सुखपूर्वक पालित हो रही है?'' यह श्लोक धर्म और राजनीति के अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है, जिसमें शासक का कर्तव्य धर्म के सिद्धान्तों का पालन करना है। इसके अतिरिक्त, युद्धकाण्ड में श्रीराम का रावण के प्रति व्यवहार धर्म और राजनीति के समन्वय को दर्शाता है।

''धर्मेन युद्धति राजा यदा प्रजा सुखं लभति। अधर्मेण नाशति सर्वत स्मात्धर्मः सदास्थिरः।''[13]

''जब राजा धर्म के साथ युद्ध करता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है। अधर्म से सब कुछ नष्ट होता है, इसलिए धर्म सदा स्थिर रहता है।'' यह श्लोक धर्म को शासकीय और युद्ध नीतियों का आधार बनाता है। श्रीराम का चरित्र और उनके निर्णय यह दर्शाते हैं कि धर्म और राजनीति का समन्वय शासक को नैतिक और प्रभावी बनाता है।

2. राजशेखर के साहित्य में धर्म और राजनीति

2.1 राजशेखर का साहित्यिक परिदृश्य

राजशेखर (9वीं-10वीं शताब्दी) एक प्रमुख संस्कृत कवि, नाटककार और आलोचक थे, जिनके कार्यों में कर्पूरमञ्जरी, बालरामायण और काव्य मीमांसा शामिल हैं। उनके साहित्य में धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध तत्कालीन मध्यकालीन भारत के सामाजिक और शासकीय सन्दर्भों को दर्शाता है। राजशेखर का साहित्य काव्यात्मक और नाटकीय शैली में धर्म और राजनीति के बीच सन्तुलन को चित्रित करता है। काव्यमीमांसा में राजशेखर काव्य के उद्देश्य को इस प्रकार वर्णित करते हैं।

''काव्यं धर्मस्य रूपं च शासने च समंनयति। यथा धर्मः समाजति तद्वत् काव्यं प्रजां रक्षति।''[14]

''काव्यधर्म का रूप है और शासन को समानरूप से सञ्चालित करता है। जैसे धर्म समाज को जोड़ता है, वैसे ही काव्य प्रजा की रक्षा करता है।'' यह श्लोक दर्शाता है कि राजशेखर के लिए काव्य और धर्म दोनों ही शासन और समाज के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, काव्यमीमांसा में राजशेखर काव्य को धर्म और नीति के प्रचार का साधन मानते हैं।

''कवि धर्मं कथति यदा प्रजा सुखं लभति। काव्यं नीति च शासति यथा राजा धर्मे न संनादति।''[15]

''जब कवि धर्म की कथा कहता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है। काव्य और नीतिशासति हैं, जैसे राजा धर्म के साथ संनादति है।'' यह श्लोक काव्य को धर्म और शासन के बीच एक सेतु के रूप में प्रस्तुत करता है।

2.2 धर्म का स्वरूप

राजशेखर के साहित्य में धर्म को नैतिकता, सामाजिक कर्तव्यों और व्यक्तिगत आचरण के रूप में चित्रित किया गया है। कर्पूरमञ्जरी में राजा चन्द्रपाल का चरित्र धर्म और कर्तव्य के प्रति निष्ठा को दर्शाता है। नाटक में एक श्लोक इस प्रकार है।

''धर्मः सर्वं विश्वति विश्वं च धर्मेन संनादति। यथा चन्द्रः प्रकाशति तमसि तद्वत्धर्मः शासति।''[16]

''धर्म ही सब कुछ सञ्चालित करता है, और विश्व धर्म से संनादति है। जैसे चन्द्रमा अँधेरे में प्रकाश देता है, वैसे ही धर्मशासन करता है।'' यह श्लोक धर्म को शासन और सामाजिक व्यवस्था के लिए आधार के रूप में स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त, कर्पूरमञ्जरी में चन्द्रपाल का चरित्र धर्म के प्रति निष्ठा को दर्शाता है, जो शासक के लिए आवश्यक है। नाटक के द्वितीय अङ्क में चन्द्रपाल कहते हैं -

''न मे धर्मः संनादति यदा प्रजा दुखं प्रापति। धर्मेन शासति राजा यथा प्रजा सुखं लभति।''[17]

''मेरा धर्म तभी संनादति है जब प्रजा दुख नहीं पाती। धर्म के साथ शासन करने वाला राजा प्रजा को सुख देता है।'' यह श्लोक धर्म को शासक के कर्तव्य और प्रजा की भलाई के साथ जोड़ता है। इसके अतिरिक्त, कर्पूरमञ्जरी में धर्म को सामाजिक व्यवस्था के लिए आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

''धर्मे न संनादति सर्वं यदा समाजः सुखं लभति। अधर्मे न नाशति विश्वं तस्मात् धर्मः सदा स्थिरः।''[18]

''जब सबकुछ धर्म के साथ संनादति है, तब समाज सुख प्राप्त करता है। अधर्म से विश्व नष्ट होता है, इसलिए धर्म सदा स्थिर रहता है'' यह श्लोक धर्म को सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का आधार बनाता है।

2.3 राजनीति और शासन

राजशेखर के नाटकों में शासक को धर्म का पालन करने वाला और प्रजा के हितों की रक्षा करने वाला चित्रित किया गया है। बालरामायण में श्रीराम के शासन को धर्म के आधार पर आदर्श शासन के रूप में दर्शाया गया है। एक श्लोक में राजशेखर श्रीराम के शासन का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

''रामस्य शासने सर्वं समृद्धं धर्मतः स्थितम्। प्रजा सुखिनी संनादति यथा स्वर्गे तथैव भूः।''[19]

''राम के शासन में सब कुछ धर्म के आधार पर समृद्ध है। प्रजा सुखी है और पृथ्वी स्वर्ग के समान संनादति है।'' यह श्लोक रामराज्य की अवधारणा को राजशेखर के दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, जो वाल्मीकि रामायण के समान है। इसके अतिरिक्त, बालरामायण में श्रीराम का चरित्र धर्म और राजनीति के समन्वय को दर्शाता है। एक अन्य श्लोक में श्रीराम कहते हैं।

''धर्मे न-शासति राजा यदा प्रजा सुखं लभति। अधर्मेण नाशति सर्वं तस्मात् धर्मः सदा रक्षति।''[20]

''जब राजा धर्म के साथ शासन करता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है। अधर्म से सब कुछ नष्ट होता है, इसलिए धर्म सदा रक्षा करता है।'' यह श्लोक धर्म और शासन के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त, बालरामायण में श्रीराम का शासन धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित है।

''रामस्य धर्मः शासति सर्वं यथा प्रजा सुखं लभति। धर्मे न संनादति विश्वं तस्मात् धर्मः सदा स्थिरः।''[21]
अर्थः ''राम का धर्म सब कुछ शासति है, जिससे प्रजा सुख प्राप्त करती है। धर्म के साथ विश्व संनादति है, इसलिए धर्म सदा स्थिर रहता है।'' यह श्लोक धर्म को शासन का आधार बनाता है और प्रजा की भलाई को इसका परिणाम बताता है।

2.4 धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध

राजशेखर के साहित्य में धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध इस प्रकार दर्शाया गया है कि धर्मशासक के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त है। काव्यमीमांसा में राजशेखर काव्य और साहित्य के माध्यम से धर्म और नैतिकता के महत्व को रेखांकित करते हैं।

''काव्यं धर्मस्य संनादति यथा शासनं धर्मेन संनादति। यदा कवि धर्मं कथति तदा प्रजा सुखं लभति।''[22]
अर्थः ''काव्य धर्म को संनादति है, जैसे शासन धर्म के साथ संनादति है। जब कवि धर्म की कथा कहता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है।'' यह श्लोक दर्शाता है कि राजशेखर के लिए काव्य और धर्म दोनों ही शासन और समाज के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, कर्पूरमञ्जरी में चन्द्रपाल का एक और श्लोक धर्म और शासन के संबंध को दर्शाता है।

''धर्मः शासति सर्वं यथा राजा प्रजा रक्षति। अधर्मेन नाशति विश्वं तस्मात् धर्मः सदा स्थिरः।''[23]

''धर्म सब कुछ शासित करता है, जैसे राजा प्रजा की रक्षा करता है। अधर्म से विश्व नष्ट होता है, इसलिए धर्म सदा स्थिर रहता है।'' यह श्लोक धर्म को शासन का आधार मानता है और अधर्म के परिणामों को चेतावनी के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, काव्य मीमांसा में राजशेखर धर्म और शासन के बीच संबंध को और स्पष्ट करते हैं।

''धर्मे न शासति राजा यदा प्रजा सुखं लभति। काव्यं नीति च संनादति यथा धर्मः समाजति।''[24]

''जब राजा धर्म के साथ शासन करता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है। काव्य और नीति संनादति हैं, जैसे धर्म समाज को जोड़ता है।'' यह श्लोक धर्म, काव्य और शासन के बीच एक त्रिकोणीय संबंध स्थापित करता है।

3. तुलनात्मक विश्लेषण

3.1 धर्म की अवधारणा

वाल्मीकि रामायण में धर्म एक व्यापक अवधारणा है, जो व्यक्तिगत, सामाजिक और शासकीय कर्तव्यों को समाहित करता है। श्रीराम का चरित्र धर्म के सभी आयामों को दर्शाता है, जैसा कि नारद के श्लोक[25], वनवास स्वीकार करने का निर्णय[26] और सीता के प्रति कर्तव्य[27] में देखा गया। धर्म को सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता का आधार माना गया है[28]। दूसरी ओर, राजशेखर के साहित्य में धर्म को काव्यात्मक और नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो सामाजिक व्यवस्था और शासकीय नीतियों को मजबूत करता है। दोनों ही साहित्यकार धर्म को शासन और समाज के लिए आधार मानते हैं, लेकिन वाल्मीकि का दृष्टिकोण अधिक धार्मिक और नैतिक है, जबकि राजशेखर का दृष्टिकोण साहित्यिक और सौंदर्य बोधी है।

3.2 राजनीति और शासन

वाल्मीकि रामायण में रामराज्य की अवधारणा धर्म पर आधारित एक आदर्श शासन व्यवस्था को दर्शाती है। जैसा कि अयोध्याकाण्ड[29], युद्धकाण्ड[30] और उत्तरकाण्ड[31] में वर्णित है। श्रीराम का शासन प्रजा की भलाई और न्याय पर केन्द्रित है। राजशेखर के साहित्य में भी शासन को धर्म के साथ जोड़ा गया है, लेकिन उनके नाटकों में शासक के व्यक्तिगत गुणों और काव्यात्मक अभिव्यक्ति पर अधिक जोर है, जैसा कि बालरामायण[32] और कर्पूरमञ्जरी[33] के श्लोकों में देखा गया। दोनों ही साहित्यकार यह मानते हैं कि धर्म के बिना शासन अनैतिक हो सकता है।

3.3 सामाजिक संदर्भ

वाल्मीकि रामायण त्रेता युग के सामाजिक और धार्मिक सन्दर्भों को दर्शाता है, जिसमें धर्म को सामाजिक व्यवस्था का आधार माना गया है, जैसा कि युद्धकांड[34] और अयोध्याकाण्ड[35] में वर्णित है। यह ग्रन्थ वैदिक और पौराणिक मूल्यों को दर्शाता है, जिसमें धर्म को सामाजिक व्यवस्था और शासकीय नीतियों का आधार माना गया है। दूसरी ओर, राजशेखर का साहित्य मध्यकालीन भारत के सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भों को दर्शाता है, जिसमें शासक और प्रजा के बीच सम्बन्धों को धर्म के माध्यम से मजबूत किया गया है, जैसा कि कर्पूरमञ्जरी[36] और काव्यमीमांसा[37] में देखा गया। राजशेखर का साहित्य तत्कालीन राजदरबारों की संस्कृति और काव्य परम्पराओं को दर्शाता है, जिसमें धर्म को सौंदर्यबोधी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। दोनों ही साहित्यकार अपने समय के सामाजिक मूल्यों को दर्शाते हैं, लेकिन वाल्मीकि का दृष्टिकोण अधिक आध्यात्मिक और धार्मिक है, जबकि राजशेखर का दृष्टिकोण साहित्यिक और काव्यात्मक है।

3.4 ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ

वाल्मीकि रामायण त्रेता युग के काल्पनिक और धार्मिक सन्दर्भ में रचित है, जो वैदिक और पौराणिक मूल्यों को दर्शाता है। इस काल में धर्म को सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का आधार माना जाता था, और शासक को धर्म का पालक माना जाता था। रामायण में श्रीराम का शासन वैदिक आदर्शों, जैसे यज्ञ, सत्य और मर्यादा, पर आधारित है। उदाहरण के लिए, श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ (उत्तरकांड) धर्म और शासन के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है:

''यज्ञे न संनादति सर्वं यदा राजा धर्मं रक्षति। धर्मे न शासति विश्वं तस्मात् यज्ञः सदा स्थिरः।''[38]

''जब राजा यज्ञ के साथ धर्म की रक्षा करता है, तब सब कुछ संनादति है। धर्म के साथ विश्व शासित होता है, इसलिए यज्ञ सदा स्थिर रहताहै।''

यह श्लोक धर्म और शासन के बीच वैदिक सम्बन्ध को दर्शाता है। दूसरी ओर, राजशेखर का साहित्य मध्यकालीन भारत के राजदरबारी संस्कृति और काव्य परम्पराओं को दर्शाता है। 9वीं-10वीं शताब्दी में भारत में गुप्तोत्तरकाल की समृद्ध साहित्यिक परम्पराएँ थीं, और राजशेखर जैसे कवि राजदरबारों में संरक्षित थे। उनके कार्य, जैसे कर्पूरमञ्जरी, तत्कालीन शासकों की शैली और उनके धार्मिक कर्तव्यों को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, कर्पूरमञ्जरी में चन्द्रपाल का चरित्र तत्कालीन शासकों की धर्मनिष्ठा को दर्शाता है:

''राजा धर्मे न शासति यदा प्रजा सुखं लभति। यथा चंद्रः प्रकाशति तद्वत्धर्मः समाजति।''[39]

''जब राजा धर्म के साथ शासन करता है, तब प्रजा सुख प्राप्त करती है। जैसे चन्द्रमा प्रकाश देता है, वैसे ही धर्म समाज को जोड़ता है।'' यह श्लोक मध्यकालीन भारत के शासकीय दर्शन को दर्शाता है, जिसमें धर्म और काव्य दोनों ही शासक के लिए महत्त्वपूर्ण थे।

4. निष्कर्ष

वाल्मीकि रामायण और राजशेखर के साहित्य में धर्म और राजनीति का अंतर्संबंध भारतीय साहित्य और संस्कृति के केन्द्रीय विषयों को उजागर करता है। वाल्मीकि रामायण में धर्म को श्रीराम के चरित्र और रामराज्य के माध्यम से शासन और सामाजिक व्यवस्था का आधार माना गया है, जैसा कि बालकाण्ड[40], अयोध्याकण्ड[41], युद्धकाण्ड[42] और उत्तरकाण्ड[43] के श्लोकों में देखा गया। यह ग्रन्थ धर्म को वैदिक और पौराणिक मूल्यों के साथ जोड़ता है, जो शासक और प्रजा के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त है। राजशेखर के साहित्य में धर्म को काव्यात्मक और नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो शासक के व्यक्तिगत गुणों और सामाजिक व्यवस्था को मजबूत करता है, जैसा कि कर्पूरञ्जरी[44], बाल रामायण[45] और काव्यमीमांसा[46] के श्लोकों में देखा गया। दोनों ही साहित्यकार यह दर्शाते हैं कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे के पूरक हैं और एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए इनका समन्वय आवश्यक है। वाल्मीकि का दृष्टिकोण अधिक धार्मिक और आध्यात्मिक है, जो वैदिक मूल्यों पर आधारित है, जबकि राजशेखर का दृष्टिकोण साहित्यिक और सौंदर्यबोधी है, जो मध्यकालीन भारत की राजदरबारी संस्कृति को दर्शाता है।

सन्दर्भ -

1. *श्रीमद् वाल्मीकिरामायण. गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996.- बालकाव्य 1.1,3*
2. *राजशेखर. कर्पूरमंजरी. संपादकः डॉ. के. के. शास्त्री, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005.*

3. राजशेखर. काव्यमीमांसा. संपादकः डॉ. सत्यव्रतसिंह, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1988.
4. राजशेखर. बालरामायण. संपादकः डॉ. हरगोविंद शास्त्री, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 1990.
5. शर्मा, रामाश्रय. रामायण का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000.
6. पांडे, गोविंदचंद्र. भारतीय साहित्य में धर्म और नीति. साहित्य अकादमी, नईदिल्ली, 1995.
7. मिश्र, विश्वनाथ. भारतीय संस्कृति और साहित्य. साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1998.

सन्दर्भ -

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 1.1.2
2. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 19.14
3. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 31.24
4. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 19.29
5. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 100.45
6. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, 2.67.36
7. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 128.106
8. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 17.18
9. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 59.16
10. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड, 55.12
11. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 115.16
12. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 100.46
13. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 116.23
14. काव्यमीमांसा, अध्याय 1
15. काव्यमीमांसा, अध्याय 3
16. कर्पूरमञ्जरी, प्रथम अङ्क
17. कर्पूरमंजरी, द्वितीय अङ्क
18. कर्पूरमञ्जरी, तृतीय अङ्क
19. बालरामायण, तृतीय अङ्क
20. बालरामायण, चतुर्थ अङ्क
21. बालरामायण, पञ्चम अङ्क
22. काव्यमीमांसा, अध्याय 2
23. कर्पूरमंजरी, तृतीय अंक
24. काव्यमीमांसा, अध्याय 4
25. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड, 1.1.2
26. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 19.14
27. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 31.24
28. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड, 100.45
29. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 2.67.36
30. वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 17.18, 128.106
31. वाल्मीकि रामायण-उत्तरकाण्ड 55.12
32. बालरामायण तृतीय और पञ्चम अङ्क
33. कर्पूरमञ्जरी द्वितीय और तृतीय अङ्क
34. वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 115.16
35. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 100.46
36. कर्पूरमञ्जरी प्रथम, द्वितीय और तृतीय अङ्क
37. काव्यमीमांसा अध्याय 2 और 4
38. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 88.15
39. कर्पूरमञ्जरी, चतुर्थ अङ्क
40. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1.1.2
41. वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड 19.14, 2.67.36, 100.45-46
42. वाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 17.18, 59.16, 115.16, 128.106
43. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 55.12, 88.15
44. कर्पूरञ्जरी प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अङ्क
45. बाल रामायण तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम अङ्क
46. काव्यमीमांसा अध्याय 1, 2 और 4

7

राजशेखर के रूपकों में लोक संस्कृति

हेमलता रानी *

साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि अपने परिवेश से प्रभावित कवि अपने सृजन साहित्य में उसका वर्णन अवश्य किया करता है। कवि अपने समय विशेष के विषय में प्रत्यक्षतः लोक को चित्रित करता है। यह बात भी सत्य है कि समाज के पूर्णावलोकन के बिना तत्कालीन सांस्कृतिक स्तर का आकलन नहीं किया जा सकता, क्योंकि समाज की सर्वोत्तम उपलब्धियां ही संस्कृति है।

महाकवि राजशेखर संस्कृत जगत् के प्रसिद्ध व सर्वेश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में आते हैं। इनके द्वारा रचित अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिसमें से अगर हम नाटकों की बात करें तो मुख्य रूप से प्राप्तव्य हैं -
(1) बाल रामायण (दस अंक), (2) बाल भारत (दो अंक, अपूर्ण रचना), (3) विद्धशालभंजिका (चार अंक), (4) कर्पूरमंजरी (चार अंक) हैं। कर्पूरमंजरी नाटक पत्नी को खुश करने के लिए लिखा और वह सर्वोत्कृष्ट रचना है।

महाकवि राजशेखर का बाल रामायण सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें 10 अंक है जिसमें सीता विवाह से लेकर राम राज्याभिषेक तक का वर्णनकिया गया है। कुछ आचार्यों ने इसे महानाटक भी स्वीकार किया है। इस महानाटक बालरामायण के रचना के पश्चात् समकालीन आचार्य शंकर वर्मा ने राजशेखर को वाल्मीकि व भवभूति का अवतार कहा है।

बाल रामायणः- नाटक रामायण पर आधारित है जिसकी लोकसंस्कृति, मानव जीवन को प्रत्येक पद पर शिक्षा प्रदान करती दिखायी देती है। राम-सीता को एक आदर्श पति-पत्नी के रूप में अंकित किया गया है जो मानव समाज को दर्पण की भलीभांति सन्देश देते प्रतीत होते है तो वहीं पांचवें अंक में हम रावण को एक प्रेमी के रूप में पाते है, जहाँ वह प्रकृति, ऋतुओं, नदियों और पक्षियों से अपनी प्रेमिका की मांग करता है।

आठवें अंक में रावण पर एक के बाद एक आपदाओं से पीड़ित होने की धारणा का वर्णन किया गया है उसने कुम्भकर्ण को भेजा लेकिन वह राम के सामने असहाय और अपने जादुई हथियारों के बावजूद गिर गया। इसके बाद नौवें अंक में भगवान् इंद्र ने स्वयं राम और रावण के बीच अंतिम हताशापूर्ण द्वंद्व का वर्णन किया। अंत में दसवें अंक में राम ने रावण का वध कर दिया और राम का दल भारत की हवाई चौकड़ी बनाकर अग्नि-परीक्षा के बाद सीता को वापस ले आया। नाटक का आकार बहुत बड़ा है और इसमें नाटकीयता की

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
******सहायक आचार्या-मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय*

कमी है। यहाँ राजशेखर वाल्मीकि और भवभूति से बहुत प्रभावित दिखते हैं। हालाँकि मुख्य कहानी वाल्मीकि पर आधारित है, लेकिन वे उससे अलग हटकर भवभूति की नकल करते हैं। लंका और अलका का उनका वर्णन भवभूति से बहुत मिलता-जुलता है। 'एबी कीथ के अनुसार- नाटक में एक निश्चित नवीनता है, क्योंकि लेखक ने रावण के प्रेम को प्रमुखता दी है।'[1] इस नाटक में नाटकीय कला की अपेक्षा काव्य कला का अधिक प्रयोग किया गया है।

बालभारतम् :- नाटक लघु नाटक है किन्तु संस्कृति पक्ष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है जैसे कि इसकी कथावस्तु का आधार महाभारत ग्रन्थ है जो कि पूर्व में बताया गया है। कवि ने इस नाटक के माध्यम से महाभारत में वर्णित भारतीय लोक संस्कृति का वर्णन करने का उत्तम प्रयास किया है। कवि राजशेखर का मूल उद्देश्य इस नाटक के माध्यम से लोक को यह सिखाना है कि यदि इस संसार में कोई भी व्यक्ति अधर्म का आश्रय लेता है तो उसका समूल विनाश सुनिश्चित है। अतः धर्म के मार्ग पर चलने वाली प्राचीन भारत की लोक संस्कृति को प्रत्येक युग की जनता के समक्ष प्रस्तुत करना इस नाटक का केंद्र बिंदु है। महाभारत के आदि पर्व के अनुक्रमणिका पर्व के दो पद्यों को महाकवि राजशेखर ने धर्म और अधर्म का सन्देश देने हेतु तथावत् ही अपने नाटक के द्वितीय अंक में प्रस्तुत किया है। महाभारत में कहा गया है –

दुर्योधनोमन्युमयोमहाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।[2]

अर्थात् दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्ष के समान है। कर्ण स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प हैं। अज्ञानीराजा धृतराष्ट्र ही इस क्रोधमय वृक्ष का मूल अर्थात् जड़ है। तात्पर्य यह है कि राजा धृतराष्ट्र महाभारत युद्ध की जड़ है अर्थात् कारण है। क्रोधी दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से द्वेष-घृणा करता है। उनका राज्य उनका अधिकार उनको नहीं देना चाहता है। यह जो अन्याय है उसी के माध्यम से प्रेक्षकों (दर्शकों) को शिक्षित करना कवि राजशेखर का भी उद्देश्य हैं।

इसी प्रकार महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर को धर्म का वृक्ष कहा गया है –

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीसुतौ पुष्पफलेसमृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।।[3]

अर्थात् युधिष्ठिर धर्ममय विशालवृक्ष है। अर्जुन स्कन्ध , भीमसेन शाखा और माद्री नन्दन (नकुल और सहदेव) इस धर्ममय वृक्ष के समृद्ध पुष्प-फल हैं। भगवान श्री कृष्ण, वेद और ब्राह्मण ही युधिष्ठिर रूपी धर्ममय वृक्ष की मूल (जड़) है। तात्पर्य यह है कि युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं, वे सदा धर्म का आचरण करते हैं। भगवान की सत्ता को स्वीकारते हैं। वेद की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हैं। ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं। वे किसी से भी द्वेष–ईष्या नहीं करते सभी का आदर सत्कार करते है। कविराज शेखर ने इसी भारत की महत्त्वपूर्ण लोक संस्कृति को जो भारत वर्ष के समस्त जनसमुदाय किंवा समाज के लिए लाभकारिणी है। सब में बन्धुत्व का संचार करने वाली है उसी को अपने नाटक के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसीलिए महाभारत के उपरोक्त दोनों श्लोकों को उन्होंने वैसे का वैसा ही अपने नाटक के द्वितीय अंक में उद्धृत किया है।

कवि राजशेखर ने विशुद्ध भारत की लोक संस्कृति को अपने नाटक के प्रथम अंक में इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए कहा है –**श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि यशांसि दुग्धेमलिनं प्रमार्ष्टि। संस्कार शौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः।।**[4] अर्थात् शुद्ध बुद्धि लक्ष्मी को उत्पन्न करती है, विपत्तियों को दूर करती है, यश

प्रदान करती है, मलिनता को नष्ट करती है और संस्कारों को पवित्र कर आत्मा को पवित्र करती है, इसलिए यह निश्चित रूप से कामधेनु है। यहाँ पर कवि ने शुद्ध बुद्धि की महिमा को वर्णित किया है। वर्तमान समाज में भी शुद्ध बुद्धि के अभाव में ही अर्थ का अनर्थ किया जा रहा है।

समाज में पारस्परिक कलह का कारण अशुद्ध बुद्धि, मलिन बुद्धि, पक्षपाती बुद्धि ही है। यदि वर्तमान में लोक शुद्ध-बुद्ध बुद्धि के द्वारा सदाचरण करें तो आज जो देश के हालात हैं उनमें अवश्य सुधार हो। कवि राजशेखर का उपरोक्त पद्य इसी शुद्धि बुद्धि की ओर समाज को ले जाने के लिए प्रेरित करता प्रतीत होता है।

कर्पूरमञ्जरी :- सट्टक विधा के प्राचीनतम रूप में राजशेखर विरचित कर्पूरमंजरी है। ई. पू. 200 के भरहुत के स्तूप के लेख में 'या साटक' शब्द मिलता है, जो सट्टक का रूप प्रतीत होता है।[5] डॉ. ए.एन.उपाध्ये की 'चन्द्रलेहा' सट्टक की प्रस्तावना में प्राप्त होता है कि- ''संभवतः यह(सट्टक) द्रविड़ भाषा का शब्द है, 'क' प्रत्यय को हटा देने पर इसमें दो शब्द रह जाते है- 'स' और 'अट्ट' या 'आट्ट'। संभवतः यह पहले किसी लुप्त विशेषण का विशेष्य था। द्रविड़ शब्द आट्ट या आट्टम् का अर्थ नृत्य या अभिनय होता है, जो मूल धातु अड्ड या आडु से बना है, जिसका अर्थ नाचना या हावभाव दिखाना होता है। यदि मूलशब्द नाचना होगा तब लुप्तशब्द रूपक होगा। अतएव नृत्य युक्त नाटकीय प्रदर्शन को सट्टक कहा जायेगा। "कर्पूरमंजरी सट्टक दशमी शताब्दी की रचना है। इसमें नारी दशा, विवाह संस्था, धार्मिक स्थिति, लोक-विश्वास, मनोरंजन, क्रीड़ा-विनोद, कला-कौशल इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है-उक्त सट्टक में नारी के चित्रण से उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति का संकेत नहीं मिलता है। राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्रांकन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य वर्णन में अधिक रमा हुआ है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है। विधिवत परिणीता सुन्दर विवाहिता धर्मपत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री-रत्ना कि खोज में लगे रहने की प्रवृत्ति राजाओं में पायी जाती है।[6]

यहाँ राजकुल में ऐसे योगियों को सम्मान दिया गया है, जिनका मद्यपान एवं युवतियों से सहवास ही मोक्ष का साधनएव कुलाचार है।[7] जो योगबल से प्रयोजन विशेष हेतु युवती का अपहरण करते है।[8] ऐसे ही व्यक्ति महारानी के धर्मगुरु भी है।[9] किन्तु धार्मिक आचार व्यवहार एवं पूजा प्रथा में नारी का झुकाव भी देखा गया है, यथा देवी द्वारा गौरी पूजा[10] तथा वटसावित्री उत्सव मानने का उल्लेख भी प्राप्त हुआ है। नारी द्वारा मंच पर अभिनय करने की परम्परा का संकेत प्राप्त होता है।[11]

विवाह व्यवस्था - यहाँ वैवाहिक स्थिति पर ध्यान दे तो यौवना होने पर ही कन्या के विवाह का प्रचलन था। नायिका कर्पूरमञ्जरी युवावस्था को प्राप्त है, नायक और नायिका दोनों समान रूप से परस्पर तारुण्य सुलभ आकर्षण से अभिभूत है। समाज में ऐसी परम्परा थी जहाँ कन्या के सगे सम्बन्धियों की अनुपस्थिति में ही विवाह सम्पादित होता था। भारतीय हिन्दू विवाह की आठ पद्धति मानी जाती है, परन्तु उक्त सट्टक में सम्पन्न विवाह इन आठों से भिन्न प्राप्त होती है। जो कि कर्पूरमञ्जरी एवं चन्द्रपाल के विवाह में नहीं मिलते है। इनका विवाह आसुर या राक्षस एवं पैशाच कोटि का भी विवाह नहीं हैं। भैरवानन्द के कथनानुसार कि – ''विधवा, चड़ा (चाण्डाल स्त्री) एवं तांत्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को मैं धर्मानुकूल अपनी पत्नी समझता हूँ''।[12] अतः स्पष्ट है कि – समाज में विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह का भी प्रचलन था।

दोहद :- कुरबक, तिलक एवं अशोक वृक्ष के दोहद का प्रसंग भी प्राप्त होता है। ज्येष्ठा नायिका द्वारा लगाये गए इन वृक्षों के दोहद का कार्य कर्पूरमञ्जरी द्वारा करवाया गया है। कर्पूरमञ्जरी कुरबक वृक्ष का आलिंगन द्वारा, तिलक वृक्ष को तिरछी निगाहें देखकर और अशोक वृक्ष पर पाद प्रहार द्वारा दोहद करती है।[13] दोहद की प्रक्रिया प्रकृति प्रेम की ओर संकेत करती है।

वस्त्राभरण एवं शृंगार प्रसाधन :- उक्त सट्टक में सामान्य रूप से साड़िआ (साड़ी)[14], कूर्पासक (चोली)[15], पडिसीसअ (पगड़ी)[16], उत्तरीय[17] आदि धारण करने वाले वस्त्र थे। तान्त्रिकों (सिद्ध-पुरुषों) द्वारा सोने के लिए चर्मखण्ड का भी प्रयोग किया जाता था।[18] आभूषण निर्माण में कांच एवं माणिक्य का प्रयोग होता था।[19] पन्ने से निर्मित पायजनी का उल्लेख भी मिलता है।[20] प्रसाधन की विभिन्न सामग्रियों का प्रचलन भी था।[21]

वर्णव्यवस्था - यहाँ समाज में पूर्णतः जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था थी। अशिक्षित विदूषक ब्राह्मण होने से श्रेष्ठ माना गया है, जबकि दासियाँ सुशिक्षित, सुयोग्य होने पर भी(अवर कोटि की मान कर) सेवाकार्य में नियुक्त की जाती थी।[22] और उनसे बात करने पर स्वयं का अपमान समझता था।[23]

धार्मिक स्थिति :- देवी-देवताओं की स्तुति एवं पूजापाठ का विधान था। सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा का ध्यान किया गया है।[24] गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है।[25]

अन्तःपुर की स्थिति :- राजाओं के अन्तःपुर विशालकाय हुआ करता थे। यहाँ कुब्ज, वामन, किरात, वर्षवर, सौविदल्ल आदि[26] लोगों की उपस्थिति हुआ करती थी। बन्दीगण संकेतकाल को सूचित करने हेतु प्रकृति वर्णन अथवा राजा का गुणगान किया करते थे।[27]

मनोरञ्जन :- मनोरञ्जन के लिए अनेक साधनों का सहारा लिया जाता था। गर्मी में शाम को जलक्रीड़ा करते थे।[28] सायंकाल में क्रीड़ाबावलियों एवं चित्रशालाओं में आनन्द की प्राप्ति हुआ करती थी।[29] वेणु, वीणा, करताल, नृत्य, मृदंग,[30] वंशी,[31] मर्दलवाद्य[32] आदि साधनों का वर्णन किया गया हैं।

सामाजिक व्यवहार :- समाज में गुरु दक्षिणा का अति महत्त्व था। इसे अदा करने के लिए स्त्रियाँ सौत तक बन लेना स्वीकार कर लेती थी।[33] समाज में गालियां देने का प्रचलन था।[34] खाद्य एवं पेय पदार्थ में मांस, खण्ड(शक्कर)[35] तक्र (मट्ठा) दूध, दही, भात आदि थे। दो पहियों के रथ का प्रयोग होता था।[36] लोगों के मध्य विमान की कल्पना थी।[37]

विद्धशालभंजिका - कवि राजशेखर द्वारा विरचित इस नाटिका में चार अंक हैं। इस नाटिका का नायक विद्याधरमल्ल है तथा नायिका मृगांकवती है। इसमें राजा के अन्तःपुर की प्रणयलीला की विचित्रताओं का वर्णन किया गया है। इस नाटिका की कथावस्तु में नायक अपनी प्रेयसी मृगांकवती को शालभंजिका (गुड़िया या पुत्तलिका) के रूप प्राप्त करता है। इस प्रकार इस नाटिका की कथा बहुत ही दिलचस्प है। इस नाटिका के द्वितीय अंक में दो दासियों(कुरंगिका और तरंगिका) के पारस्परिक मधुर संवाद में भारत की लोक संस्कृति का उत्कृष्ट निदर्शन होता है। यह लोक संवाद इस प्रकार है –

एका – परिक्रम्य इतरामञ्चले विधार्य स हला तरङ्गिके, हृदयप्रतिष्ठितराजाश्चरेव लक्ष्यसे स यतः सम्मुखगतामपि मामनालप्य स्थितासि। अर्थात् एक – घूमकर दूसरी का अञ्चल पकड़कर हे सखि! तरंगिके ! प्रतीत होता है कि तुम्हारे हृदय में राजा की मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसके ध्यान में तुम लीन हो। इसीलिए यद्यपि मैं सामने आई, तथापि तुमने बात-चीत नहीं की।

द्वितीया - समालिङ्ग्य। सखि कुरङ्गिके ! मा कुप्य, गौरी मे कुप्यतु यदि त्वं मया दृष्टासि अन्यहृदयत्वेनस

अर्थात् दूसरी – सखि कुरंगिके ! नाराज न हो। मुझ पर भगवती गौरी देवी कोप करें यदि मैंने तुमको अन्य मनस्क भाव से देखा हो।

कुरङ्गिका - सखि ! की दृशमन्यहृदयत्वम्। अर्थात् सखि अन्य मनस्कता कैसी होती है ?

तरङ्गिका - तादृशं, यादृशेन तवापि पुरतो मन्त्रयमाणाया अपि उत्कम्पत इव मे हृदयम् स अर्थात् तरंगिका – वैसी, जैसे तुम्हारे भी सामने गुप्त बातों को कहते हुए मेरा हृदय कांपता सा है।

कुरङ्गिका -हृदय निर्विशेषेऽपि जने आशङ्कमानां कौतूहलं मां प्रयच्छति। अर्थात् कुरङ्गिका – अभिन्न हृदय पर भी शङ्का करता हुआ मुझको कौतूहल पूछने के लिए प्रेरित करता है।

तरङ्गिका - यया तया भवतु न प्रच्छादयिष्यामि। न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि। अर्थात् जैसा भी हो, मै नहीं छिपाऊँगी। स्नेह उचित और अनुचित का लिहाज नहीं करता।

कुरङ्गिका - अतएव मे आशङ्का कथमिव सहकारयष्ट्यां कलकण्ठी कुण्ठितप्रणया भवति। अर्थात् मेरी यह आशंका है – सहकार की डाली से कोयल का प्रणय मंद कैसे हो सकता है?

तरङ्गिका - एवं तथापि मन्यसे, श्रुतमन्त्रसंरक्षणं खलु कार्यसिद्धेः कारणम्। अर्थात् अच्छा, मैं तुमसे कहती हूँ – सुनी बातों को गुप्त रखने से ही कार्य की सिद्धि होती है।

कुरङ्गिका - मैवं भण, कथमिव जीवतः कृकलासाच्छिरः सुवर्ण प्राप्यते। अर्थात् ऐसा मत कहो – गिरगिट के जीते जी उसका सुनहरा सिर कोई कैसे पा सकता है ?[38]

विद्धशालभंजिका नामक उपरोक्त नाटिका में दो (चेटियों) सखियों के परस्पर संवाद के माध्यम से लोक संस्कृति का वर्णन कवि ने किया है। दोनों सखियाँ यहाँ पर हास-परिहास के माध्यम से भारतीय संस्कृति की लोकोक्तियों को प्रस्तुत करते हुए समाज को सन्देश दे रहीं हैं कि सन्देह की अवस्था में अपनी किसी भी बात को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने के लिए देवी-देवता की सौगंध लेना अपनी विश्वास दिलाने की रीति है। इससे अविश्वासी को विश्वास हो जाता है कि जो कहा जा रहा है वह वास्तविक है। इन सब बातों से ऐसा अनुभूत होता है कि अगला उसका ही कोई अपना उससे कुछ छुपा रहा है। दूसरी लोकोक्ति है स्नेह उचित अनुचित का लिहाज नहीं करता। पारस्परिक स्नेह किसी का भी कैसे भी हो, उसमें किसी प्रकार का छिपाव और दुराव नहीं होता है और होना भी नहीं चाहिए नहीं तो वह स्नेह ही कैसा? तीसरी लोकोक्ति कोयल और आम की डाली का दिया गया है जो लोक में प्राचीन काल से आज तक प्रसिद्ध है और स्वाभाविक होने के कारण वैसे ही प्रसिद्ध भी रहेगा। लोक को इन सबसे शिक्षा लेने की आवश्यकता है। चौथी लोकोक्ति सुनी बातों को गुप्त रखने की है। यदि कोई गोपनीय बात है तो उसे कार्य की सिद्धि पर्यन्त गुप्त रखना चाहिए अन्यथा कार्य की सिद्धि में विविध प्रकार की विघ्न बाधाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह लोक संस्कृति भी अनुसरणीय है। पांचवी लोकोक्ति गिरगिट से सम्बंधित है जिसमें उसके जन्मजात सुनहरे रंग की बात कही गई है। उसके सुवर्ण सिर के रंग की प्राप्ति किसी अन्य को नहीं हो सकती क्योंकि वह उसको परमात्मा द्वारा प्रदत्त है। इस संसार में सब के अपने अलग-अलग स्वभाव और व्यवहार हैं जो उनके व्यक्तिगत हैं। हर कोई गिरगिट की तरह रंग नहीं बदल सकता। कवि ने यहाँ पर ऐसे स्वभाव वाले लोगों से सावधान रहने के लिए भी समाज को संकेतित किया है। इस प्रकार महाकवि राजशेखर ने अपनी इस नाटिका में और अनेक स्थलों पर लोक संस्कृति को अपनी उत्कृष्ट नाट्यकला के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कवि की समस्त नाट्य कृतियाँ लोकसंस्कृति को बहुत सजीवता के साथ उद्घाटित करती हैं। जो लोक और समाज को अपनी शिक्षा और संस्कृति के अनुकरण के लिए प्रेरित करती हैं।

संदर्भ -

1. *कीथ, ए.बी. संस्कृतनाटक, इसकी उत्पत्ति, विकास सिद्धांत और व्यवहार, एम.एल.बी.डी. दिल्ली, 1992*
2. *महाभारत - आदि पर्व -1.110, बालभारत-2.6*
3. *महाभारत - आदि पर्व -1.111, बालभारत-2.5*

4. बाल भारत -1.9
5. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का इतिहास, एन. सी. शास्त्री, पृष्ठ 410
6. कर्पूरमंजरी, श्रीराजकुमार आचार्य, पृष्ठ 30-31
7. कर्पूरमंजरी- 1/22
8. कर्पूरमंजरी, पृष्ठ 31
9. कर्पूरमंजरी, पृष्ठ 143
10. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 70 एवं 143
11. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 10 अथवा 4/15
12. कर्पूरमञ्जरी, 1/23
13. कर्पूरमञ्जरी- 2/44-47
14. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 24
15. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 11 एवं 22
16. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 27
17. एद मे उत्तरीअआसण (एतन्मे उत्तरीयमासनम्)- कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 39
18. .... चम्मखड च सज्जा.... (चर्मखण्डश्च शय्या)- कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 29
19. कच्च माणिक्क च सम आहारणे पउजीअदि (काच माणिक्य च सममाभरणे प्रयुज्यते) - कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 24
20. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 59
21. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 22
22. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 23
23. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 26
24. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 108
25. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 143
26. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 125
27. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 4/35-36 एवं 2/50
28. लीलामज्जणमापदोससमअ (लीलामज्जनमाप्रदोषसमय) - कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 129
29. कर्पूरमञ्जरी, 1/36
30. कर्पूरमञ्जरी, प्रस्तावना
31. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 113
32. कर्पूरमञ्जरी, 4/16
33. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 144
34. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 25
35. कर्पूरमञ्जरी, - 2/26
36. कर्पूरमञ्जरी, -2/18
37. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 41
38. विद्धशालभंजिका- द्वितीय अंक

8

राजशेखर के साहित्य की सांस्कृतिक समीक्षा

सुनीता मीना, महीप कुमार मीना***

साहित्य और संस्कृति की दृष्टि से भारतवर्ष ऋषियों और संस्कृत के विद्वत्जनों का सदैव ऋणी रहेगा। विद्वानों की इसी परंपरा में राजशेखर का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाताहै। राजशेखर ने तत्कालीन भारतीय समाज, संस्कृति और राजनीति को अपनी लेखनी से साहित्य के रूप में पिरोकर हमारे समक्ष उपस्थित किया है। ययावरी कुल में उत्पन्न राजशेखर में बाल्यावस्था से ही काव्य लेखन की प्रतिभा मौजूद थीं। ये ययावर कुल उस समय में महाराष्ट्र में एक ब्राह्मण कुल था। जिसमें राजशेखर का जन्म 880 ई. में हुआ। राजशेखर प्रतिहार वंशी, महेंद्रपाल और उनके पुत्र महिपाल के राजकवि थे। महेन्द्रपाल की सभा में इन्हें राजगुरु या उपाध्याय के पद से सुशोभित किया गया। आजीवन राजकवि के गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित होकर ना केवल राजा की अपितु संस्कृत जगत् की भी सेवा की।

किसी भी राष्ट्र या समाज के सांस्कृतिक इतिहास की विवेचना करने का अर्थ है उसे जीवन प्रदान करने वाले मूल्यों और विश्वासों की इस अटूट परंपरा और उसके सामाजिक ताने बाने का संरक्षण करने वाली आध्यात्मिकता की चर्चा करना अर्थात् किसी राष्ट्र की वैचारिक शक्ति से परिचय कराना जब तक संभव नहीं है तब तक हम उस राष्ट्र की साहित्य और संस्कृति से भली भांति परिचय न कर लें, उपर्युक्त सृजनात्मक प्रक्रिया में ये दोनों की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

यायावरी राजशेखर ने साहित्य के इसी विशद रूप को स्वीकार किया है। उनके अनुसार साहित्य विधा की 64 उपविद्यायें है, जिन्हें मनीषी कला से संबोधित करते हैं और ये उपविद्यायें या कलाएं ही काव्य के प्राण हैं। आचार्य चाणक्य ने प्राच्य विद्याओं में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति को ही स्वीकार किया है परन्तु राजशेखर ने इनके साथ साथ पांचवीं विद्या के रूप में साहित्य विद्या को भी स्वीकार किया है।

भारतीय संस्कृति प्राचीन एवं विविधतापूर्ण परंपरा से है धर्मदर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान और मानव विज्ञान के क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान रखती है और यह विकास का क्रम वैदिक साहित्य से वर्तमान समय तक अबाध गति से चला आ रहा है। हमारे सांस्कृतिक विकास का पथ वैदिक ऋषि परंपरा से आरंभ होता है। जिसमें वे ऋषिगण इस सृष्टि में व्याप्त विभिन्न प्रश्नों के प्रति कौतूहलपूर्ण जिज्ञासा रखते हैं। सृष्टि उत्पत्ति,

---

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**सहायकाचार्या, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय*

***पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, दिल्ली विश्वविद्यालय*

आत्मा, परमात्मा, धर्म, अधर्म आदि की बौद्धिक अभिव्यक्ति ही हमारे सांस्कृतिक इतिहास का आरंभ है। इसके विकास क्रम की परंपरा भी हमें समय विशेष के साहित्य में प्राप्त होती है।

ऋग्वेद के ज्ञान के पश्चात् यजुर्वेद में भी विश्ववारा संस्कृति का महाउद्घोष सुनाई देता है। जिसमें लोकहित की भावना सर्वोपरि है। बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के निमित्त सबके कल्याण की कामना की गई है। राजशेखर के अनुसार इस प्राचीन काल से चली आ रही इस सांस्कृतिक परंपरा में शास्त्र अनुसार संचालित वर्णाश्रम व्यवस्था युक्त समाज लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए कार्यरत था।

सांस्कृतिक, ऐतिहासिक क्रम में राजशेखर का दृष्टिपात समग्र क्षेत्र पर पड़ा यह उस समय का संपूर्ण भारत खंड था जो लगभग 800 मील तक फैला हुआ था। इस बड़े भूभाग को प्रवृत्ति और रीति की दृष्टि से समानता रखने वाले जनपदों को एक सांस्कृतिक क्षेत्र माना। राजशेखर ने संपूर्ण भारत को चार सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित कर उस क्षेत्र की संस्कृति का जो स्वरूप है उसको उद्घाटित करने हेतु वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत वर्ष को राजशेखर ने चार भागों में विभाजित किया। पूर्वी भारत इसमें मगध से लेकर वर्मा की सीमा तक सम्मिलित क्षेत्र था। दूसरा विभाग मध्य उत्तर भारत का यह भागकाशी से लेकर कश्मीर तक फैला हुआ था। पंचनद सिंधनद के भू भाग भी इसी में सम्मिलित क्षेत्र थे। वित्तीय विभाजन पश्चिमी भारत था, जिसका क्षेत्र उज्जैन से लेकर भृगु कक्ष तक के संपूर्ण क्षेत्र इसी सांस्कृतिक इकाई के अंग में सम्मिलित थे। चतुर्थं विभाग दक्षिणी भारत का था। इसकी सीमा कलिंग से प्रारंभ होकर केरल तक विस्तृत हुआ करती थी। राजशेखर के मतानुसार प्रवृत्ति(वेश विन्यास) वृत्ति (विलास विन्यास) और रीति (वचन विन्यास) की दृष्टि से उन क्षेत्रों का अपना-अपना एक विशिष्ट सांस्कृतिक वैभव था। धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप उन सभी क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न था। एक ओर जहाँ पाल वंश के राजाओं की छत्रछाया में बंगाल में बौद्ध धर्म फल-फूल रहा था तथा बौद्ध तांत्रिक और शाक्तों का प्रभाव वहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर रहा था। वहीं उत्तरी भारत में प्रतिहार वंशीय राजाओं के माध्यम से श्रुति, स्मृति विहित धार्मिक प्रचार प्रसार प्रगति पर था, साथ ही मध्योत्तर भारत में शैव, शाक्त और वैष्णव सभी के मतानुयायी भी सक्रिय हो रहे थे।

दक्षिणी भारत के राष्ट्रकूट राजाओं को शैवधर्म आकर्षित कर रहा था किंतु दक्षिणी भारत अब तक दक्षिण के ही मूल निवासी आलवार संतो के द्वारा वैष्णव धर्म जागरण का भक्ति सिद्धांत बड़े पैमाने पर जन मानस के हृदय में अपनी छाप छोड़ चुका थाऔर जिसका प्रभाव शैवमत पर भी पड़ा। इन धार्मिक क्रियाकलापों ने उच्च क्षेत्र विशेष की कला पर भी अपना प्रभाव छोड़ा।

राजशेखर ने वहाँ के सांस्कृतिक और साहित्यिक विचारों का बड़े सुन्दर ढंग से चित्रण प्रस्तुत किया है। इस कार्य हेतु राजशेखर ने काव्यपुरुष और साहित्य विद्यावधू की कल्पना की है। काव्यपुरुष और साहित्य विद्या वधू को संपूर्ण भारत के भिन्न भिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों का भ्रमण कराया है और उन्हीं के माध्यम से उन क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक जीवन की झांकी प्रस्तुत की है।

प्रवृत्ति राजशेखर के अनुसार पूर्वी भारतीय महिलाएँ अगरू (सुगंधित वृक्ष) जैसे सुगंधित द्रव्य से अपने शरीर पर लेप कर आनंद का अनुभव किया करती थी। गले में वो लटका देने वाले हारों पर चंदन लेप किया करती थी। साड़ी धारण करते हुए उनका बाहूमूल(कांख) ढका हुआ न होने के कारण स्पष्ट दिखलाई

पड़ता था। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि बंगाल तथा उसके सीमावर्ती क्षेत्रों में चोली या ब्लाउज पहनने की परंपरा नवीं शताब्दी तक प्रारंभ नहीं हुई थी। वस्तुतः इस परंपरा को वहाँ की वृद्ध महिलाएं आज भी जिंदा रखे हुए है।

राजशेखर के मतानुसार वहाँ के पुरुषों की वेशभूषा अस्त व्यस्त थी। इसी कारण राजशेखर उनके परिधान के संबंध में स्फुट बाहुमूल शब्द से तीखा व्यंग्य किया है। इस क्षेत्र विशेष का अस्तव्यस्त वेश धारण करने की शैली ओण्ड्रमागधी संभव है। इस शैली का विकास आधुनिक ओडिशा और मगध हुआ।

वृत्ति राजशेखर के अनुसार साहित्यिक दृष्टिकोण से गौड जनपद में भारती, सात्त्वती, कौशिकी, और आरभटी कुछ आचार्यों ने इसका आधार भौगोलिक माना है। जैसे भारती भरत जनपद कुरुक्षेत्र सात्त्वती गुजरात और काठियावाड़ की सात्वत्तों (यादवों) की विदर्भ देश की कौशिकी शैली थी।

सात्त्वती इस वृत्ति के नाम से ही विहित है, कि यह वृत्ति सत्त्वगुण प्रधान अर्थात नर्तकों द्वारा प्रदर्शित बल और शूरता रूपी बाहों के प्रदर्शन के कारण इसका यह नाम सात्त्वती पड़ा। राजशेखर के समय राजनैतिक दृष्टिकोण से मध्य उत्तर भारत में काफी उथल-पुथल मची हुई थी। राष्ट्रकूट दक्षिण में, पालों ने पूर्व में और मुसलमानों का उत्तरपूर्व में दबाव बढ़ता जा रहा था, जिससे कन्नौज के प्रतिहारों को शत्रुओं से तीन तरफा मार झेलनी पड़ रही थी। इसलिए वहाँ के सैनिकों और जनमानस में साहस हेतु इन वीर भावों को भर कर उनके मनोबल को बनाए रखना अत्यधिक आवश्यक था। इसी कारणवश सात्त्वती और आरभटी शैलियों को मध्यप्रदेश में अधिक प्रोत्साहन मिला।

दक्षिणी भारतीय संस्कृति परिवेश दक्षिणी भारतीय क्षेत्र तत्कालीन समय में स्वयं का एक विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है। उत्तर पश्चिमी भारत की यात्रा के उपरांत राजशेखर दक्षिणी भारत के केरल पहुंचे। केरल की स्त्रियों की वेशभूषा ने उन्हें मंत्रमुग्ध कर दिया। केरल की सुंदर स्त्रियों के केश अति उत्कृष्ट सुंदर बंधन से युक्त थे। उनके शरीर पर बंधी हुईं साड़ियां उन्हें अभिभूत कर रही थी। जो उत्तर भारत से भिन्न थी वहाँ की स्त्रियाँ आभूषण के रूप में मोतियों के हार धारण किया करती थी। राजशेखर की काव्यमीमांसा में उल्लखित है, कि दक्षिणी भारत में अधिकतर स्त्रियां बंधे हुए केश ही रखती थी। अभी भी वहाँ की महिलाओं में जूडा बनाने और उसे पुष्पन से सुसज्जित करने की परंपरा है।

इस क्षेत्र में कैकशि नाम से विलास विन्यास प्रसिद्ध है। इसका उद्भव सामवेद से हुआ। ऐसा विवरण हमें नाट्य शास्त्र में दिखाई देता है। कैकशि शैली नर्तकियों की संख्या अधिक होती है, कैकशि शैली में इनकी वेशभूषा न केवल चमत्कारिक होती है, अपितु बेहद आकर्षक भी होती है। राजशेखर के अनुसार ये वृत्ति अन्य वृतियों से श्रेष्ठ होती है क्योंकि सौंदर्य बोध की भावना का आधिक्य इसमें प्राप्त होता है। वस्तुतः कैकशि वृत्ति इसका नाम इसलिए पड़ा क्योंकि नृत्यांगनाओं की बहुलता के साथ ही एक विशेष शैली का केश विन्यास अत्यंत सुंदर और मुग्ध कर देने वाला होता था। अतः इस वृत्ति का नाम कैकशि रख दिया गया।

क्षेत्रीय भाषाएं राजशेखर ने अपनी काव्य मीमांसा में उस समय प्रचलित विभिन्न भाषाओं का उल्लेख किया है। जिनमें प्रमुख हैं प्राकृत, अपभ्रंश,भूत भाषा (पैशाची) । वहाँ भाषा अनुसार रचनाएं प्राप्त होती है जहाँ जिस भाषा का अधिक प्रचार प्रसार हुआ वहाँ के कवियों ने उसी भाषा का अनुसरण किया है। संस्कृत प्रेमी गौड़ प्रदेशीय लोग रहे हैं। वहीं प्राकृतिक में लाट देश के लोग विशेष रुचि रखते हैं। वहीं समस्त राजपुताना, मरुप्रदेश और पंजाब के कवि अपभ्रंश प्रेमी हैं। भूतभाषा का आश्रय लेकर रचना करने वाले कवियों की भूमि अवंतिका,

दशपुर आदि प्रदेश थे। इसके इतर मध्य प्रदेश के कविजन सभी भाषाओं में समान रूप से रुचि रखते थे। इसका प्रमुख कारण था भारतीय राजनीति में कन्नौज का केंद्र बिंदु होना। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में समाहित भाषा की दृष्टि से राजशेखर उस समय भाषाओं की क्या स्थिति समाज में थी, उस पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। उस समय राजसभा में कवियों के बैठने के स्थान भी निश्चित हुआ करते थे।

राजशेखर के समय में भी वर्ण व्यवस्थापूर्ण रूप से विद्वान् थी। परंतु इस व्यवस्था का एक अच्छा रूप दिखाई देता है, उस समय इस वर्णव्यवस्था में कट्टरता और रूढ़िवादिता का नाम नहीं था। चारों वर्णों में सौहार्दपूर्ण एवं सद्भावना का संबंध था। समाज में ब्राह्मणों के लिए श्रद्धा, क्षत्रियों के लिए सम्मान और वैश्यों के लिए आदर तथा शूद्रों के लिए स्नेह भाव विद्यमान था। राजशेखर की काव्यमीमांसा में सन्यासियों का कार्य समाज में धर्म का प्रचार प्रसार करना था। ये लोग दूर-दूर तक भ्रमण किया करते थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले लोगों के लिए राजशेखर ने संभवतः विद्यास्नातक नाम से संबोधित किया है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं भारतीय संस्कृति के विषय में राजशेखर न केवल गूढ़ ज्ञाता थे अपितु उन्हें राजनीति की भी गहरी समझ थी क्योंकि वो पाल वंश के राजाओं के राजकवि थे। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति को सूक्ष्म रूप से जानने पहचानने के अतिरिक्त उन्होंने अपनी कृतियों में उस संस्कृति को लिपिबद्ध भी किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची।

1. *कर्पूरमंजरी राजशेखर भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी सन् 1983*
2. *काव्य प्रकाश मम्मट। वाराणसी। सं. 2017*
3. *काव्यमीमांसा केदारनाथ शर्मा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1934*
4. *नाट्यशास्त्र ब्रज मोहन चतुर्वेदी विद्या भारती, दिल्ली 2022*
5. *प्राकृतिक साहित्य का इतिहास। जगदीश चन्द्र जैन। वाराणसी 1961*
6. *संस्कृत साहित्य का इतिहास बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन 2010*
7. *संस्कृत साहित्य का इतिहास उमाशंकर चौखंबा भारती वाराणसी 2010*
8. *संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास पीवी काणे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1960*
9. *यजुर्वेद संहिता अजमेर। सम्वत् 2005*
10. *राजशेखर और उनका युगपेज 65, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना 2000.*

9

राजशेखरकृत नाटकों में निहित शैक्षिक मूल्य

योगेश कुमार पाल *

गुर्जर प्रतिहार राजाओं की सभा को सुशोभित करने वाले महाकवि राजशेखर, 10वीं शताब्दी के प्रमुख संस्कृत कवि, नाटककार और आलोचक थे। उनके द्वारा लिखित बालरामायण, कर्पूरमंजरी और बालभारत न केवल साहित्यिक उत्कृष्टता के उदाहरण हैं, बल्कि उनमें निहित शैक्षिक मूल्य भी महत्वपूर्ण हैं। रस सिद्धांत, लोक संस्कृति और पौराणिक कथानकों के माध्यम से राजशेखर ने दर्शन, नैतिकता और जीवन मूल्यों की शिक्षा दी है। अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके नाटक मनोरंजन के साथ-साथ चरित्र निर्माण और सामाजिक जागरूकता का माध्यम हैं। ये रचनाएँ युवाओं को धर्म, कर्तव्य और नैतिकता सिखाने के लिए आदर्श हैं, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 के सिद्धांतों से मेल खाती हैं। एनईपी 2020, भारतीय शिक्षा प्रणाली में समग्र विकास, भारतीय ज्ञान प्रणालियों और नैतिक शिक्षा पर जोर देती है। प्राचीन साहित्य जैसे संस्कृत नाटकों को पाठ्यक्रम में शामिल करने की सिफारिश करती है, ताकि छात्रों में सांस्कृतिक गौरव और नैतिक मूल्य विकसित हों। यह शोध पेपर नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शिक्षा का विश्लेषण करता है।

राजशेखर का जन्म एक कवि परिवार में हुआ था। राजशेखर (विक्रमाब्द 930-977 तक) काव्यशास्त्र के पण्डित थे।[1] राजशेखर ने अपना जीवन कन्नौज के महान प्रतिहार राजा महेंद्रपाल के दरबारी कवि के रूप में आरंभ किया। महेंद्रपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी महिपाल ने उन्हें कविराज की उपाधि प्रदान की। यद्यपि वे एक कवि थे, फिर भी नाटक लेखन में उनकी कुशलता उल्लेखनीय है और उनके कुछ नाटक उल्लेखनीय हैं, जैसे बालभारत, कर्पूरमंजरी (यह प्राकृत में लिखा गया था) आदि। बालरामायण, राजशेखर की प्रारंभिक रचनाओं में से एक है, जो दस अंकों वाला एक विशाल नाटक है जिसमें 780 से अधिक श्लोक हैं। बालरामायण राम की कथा है, जो सीता से उनके विवाह से शुरू होकर रावण के वध के बाद उनके अयोध्या लौटने पर समाप्त होती है। राजशेखर का एक और उल्लेखनीय संस्कृत नाटक बालभारत है जो दो अंकों में लिखा गया था। लेकिन, इस नाटक की पूरी पांडुलिपि नहीं मिली। बालमहाभारत के विस्तारित भाग में द्रौपदी के स्वयंवर, जुआ खेलने के दृश्य और पांडवों के वनवास का वर्णन है। इसके अलावा, राजशेखर ने कर्पूरमंजुरी नामक एक सट्टक या प्राकृत नाटक लिखा। कर्पूरमंजुरी में चंदपाल (प्रतिहार राजा महीपय) और क्षत्रताल की राजकुमारी कर्पूरमंजरी की प्रेम कथा है।[2] बाल-रामायण, बाल-भारत, कर्पूर-मंजरी, विद्ध-शाल-भंजिका और काव्य-मीमांसा, राजशेखर की वे रचनाएँ हैं जो आज हमारे पास उपलब्ध हैं। बाल-रामायण संभवतः उनकी पहली रचना है।[3]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अक्टूबर 2024 - मार्च 2025

******सहायक आचार्य, जीवन पर्यंत शिक्षा विभाग, शैक्षिक अध्ययन शाला, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म. प्र.***

बालरामायण -

बालरामायण में वीर रस का प्रधान रस के रूप में वर्णन किया गया है[3]-

आस्कन्धावधि कण्ठकाण्डविपिने द्वाक्चन्द्रहासासिना छेत्तुं प्रक्रमिते मयैव टसितित्रुट्यच्छिरासंततौ
प्रस्मेरं गलिताश्रु गद्गद पदं भुग्न भ्रूवा यद् यभु द्वतेष्वेकमपि स्वयं स भगवांस्तन्मे प्रमाण शिवः।।31।।

बालरामायण के चतुर्थ अंक में भार्गव परशुराम के श्रेष्ठ पराक्रम का परम उत्कर्ष दिखाया गया है। भगवान जामदग्न्य के सामने सभी राजाओं की दशा वर्णन प्राप्त होता है।

बालरामायण में अद्भुत रस का भी वर्णन प्राप्त होता है अलौकिक पदार्थों के देखने सुनने तथा ईप्सित वस्तु के सहसा मिल जाने से अद्भुत रस उत्पन्न होता है[4]-

यावद् वरं न वृणुते किल जामदग्न्य स्तुष्टात् पितुः स्वजननीप्रतिजीविताय ।
तावच्छिर पृथगपि स्थितमस्य मातु वेंगादुपेत्य विदधात्यकबन्धभावम्।। 32।।

बालरामायण महानाटक में श्रृङ्गार रस का भी वर्णन हुआ है। बालरामायण के प्रथम अंक में रावण ने माता जानकी की सुन्दरता तीन लोक से न्यारी तथा काम की संजीवनी के रूप में बताया है।यहाँ पर माता सीता की सुन्दरता का मार्मिक वर्णन मिलता है।[5]

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडितादृष्टिर्मृगीणामिव, प्रम्लानारुणिमेव विद्रुमलता श्यामेवहेमद्द्य युतिः।
पारुष्यं कलया चकोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं, सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखिना बर्हाः सगर्हा इव।।42।।

आचार्य राजशेखर करुण रस के माध्यम से भी रसिकों को रसानन्द की प्राप्त कराते है। बालरामायण के षष्ठ अंक में राम का प्रवास सुनकर दशरथ आदि का दुःख करना भी करुण व्यञ्जक है।[6]

दशरथ- हा हा धिक्कष्टम्

नरेन्द्रो वृद्धः स्त्रीवश इति मयि न्यस्तमयशो, निषण्णा दौरात्म्येष्विति मलिनिता केकयसुता।
मतं तस्याप्यस्मिन्निति च भरते लक्ष्म लिखितं, वा कोऽस्मिन् रघुकुलकलङ्द्य के कविरभूत् ।। 15।।

बालरामायण के प्रथम अंक में रावण के मिथिला आने पर सीता के भयभीत होने का वर्णन मिलता है। बालरामायण के तृतीय अंक के तीसरे श्लोक में आश्चर्य स्वरूप वाली राक्षसी ताड़का का वर्णन किया गया है[7]-

रक्ताभ्यक्तोरुसृक्का गुरुकवलवलज्जाङ्गलव्यग्रतालुः फेत्कारैः फुल्ल गल्लव्यतिकरगुरुभिः कम्पयन्ती जगन्ति।
अन्योन्येनाग्रपाणिप्रणयि शवयुगं ताडका ताडयन्ती सेयं द्राग्दृष्टदंष्ट्राकुरकषण रणत्कार भीमाऽभ्युपैति।।3।।

हास्य रस का अधिकाधिक वर्णन बालरामायण में मिलता है। मिथिला पुरी में क्रोधित जनक को देखकर दशानन रावण हँसता है और परिहास कर दूसरे लोगों को भी हँसाता है[8]–

हस्तालम्बितमक्ष सूत्रवलयंकर्णावतंसीकृत, त्रस्तं भ्रयुगमुच्चमय्य रचितं यज्ञोपवीतेन च।
संनद्धा जघने च वल्कलपटी पाणिश्च धते धनु , दृष्टं भो जनकस्य योगिन इदं दान्तं विरक्तं मनः।।53।।

बालरामायण में राजशेखर ने रसों का बृहद् वर्णन किया है। वीर रस को प्रधान रस के रूप में एवं साथ ही साथ श्रृङ्गार आदि अन्य रसों का भी सुन्दर मार्मिक वर्णन किया है। जिससे रसानन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार बालरामायण में अनेक रूपों में रस तत्त्व की अनुभूति होती है।

वीर रस और नैतिकता : रावण और परशुराम के वीर कर्म दर्शाते हैं कि साहस और धर्म का पालन आवश्यक है। यह लोगों को नेतृत्व और कर्तव्य की शिक्षा देता है।

अद्भुत रस और आस्था : चमत्कारिक घटनाएं जैसे परशुराम की मां का सिर जुड़ना आस्था और दिव्य शक्ति की शिक्षा देते हैं।

शृंगार रस और प्रेम : राम-सीता का प्रेम नैतिक प्रेम की मिसाल है, जो हमें विवाह और परिवार मूल्यों को सिखाता है।

करुण रस और सहानुभूति : दशरथ का शोक परिवारिक दायित्व और नैतिक संघर्ष सिखाता है।

भयानक और हास्य रस : ताड़का का वर्णन बुराई से लड़ने की शिक्षा देता है, जबकि हास्य राहत प्रदान कर संतुलन सिखाता है।

बालरामायण लोक संस्कृति से युक्त सामाजिक शिक्षा प्रदान करती हैं। कुल मिलाकर, यह धर्म, कर्म और नैतिक जीवन की शिक्षा देता है।

बालभारत-

कृति 'बालभारत' राजशेखर द्वारा रचित महाभारत के विराट् कथानक पर आधारित एक नाट्यकृति है।[9] यह एक अपूर्ण रचना है, जिसके केवल दो अंक ही प्राप्त हैं। इन अंकों में महाभारत की कहानी के तीन प्रसंगों-द्रौपदी स्वयंवर, कौरव-पाण्डवों की द्यूतक्रीड़ा (जुआ) और द्रौपदी के चीरहरण का उल्लेख मिलता है।[10] महाभारत के कथानक पर आधारित होने के बावजूद वीर रस की अपेक्षा रौद्र रस की प्रधानता बालभारत में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह एक सूक्ष्म, किंतु महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि नाटक वीरता और युद्ध के गौरवगान पर केंद्रित नहीं है, बल्कि अन्याय, ईर्ष्या और प्रतिशोध से उत्पन्न हुए प्रचंड क्रोध की अभिव्यक्ति करता है।[11]

पांडवों के प्रति गहरी ईर्ष्या और शत्रुता से प्रेरित, दुर्योधन और दुःशासन का व्यवहार, द्यूतक्रीड़ा और चीरहरण के प्रसंगों में परिलक्षित होता है। दुःशासन को भरी सभा में ईर्ष्या ही द्रौपदी का अपमान करने के लिए प्रेरित करती है, जो रौद्र रस का आधार है। इसके जवाब में, भीम की क्रोध से भरी प्रतिज्ञाएँ रौद्र रस की चरम सीमा को दर्शाती हैं[12,13,14]। भरी सभा में द्रौपदी का विलाप और अपनी लाज बचाने के लिए अपने पतियों और कुलगुरुओं के समक्ष असहाय होकर पुकारना करुण रस का आलंबन है[15]।

बालभारत में मुख्य रसों के अलावा अन्य रस भी कथा को गहराई प्रदान करते हैं-द्रौपदी स्वयंवर के प्रसंग में अर्जुन की अद्वितीय धनुर्विद्या और पराक्रम में वीर रस की झलक दिखाई देती है। जो न्याय और धर्म की स्थापना के लिए प्रेरित है।[16,17] भीम की प्रतिज्ञा, जिसमें दुःशासन के रक्त से द्रौपदी की वेणी सँवारने का संकल्प है, में बीभत्स रस का भाव निहित है। यह रस को और भी तीव्र बनाती है, जिससे मन में दुःशासन के कार्य के प्रति घृणा उत्पन्न होती है[18]।

संघर्ष और प्रतिशोध पर केंद्रित इस नाटक में शांत रस का कोई स्थान नहीं है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब होता है और राष्ट्र-प्रेम, नैतिकता, त्याग जैसे मूल्यों से प्रेरित होता है। साहित्य, विशेषकर बाल साहित्य, का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं होता, बल्कि वह नैतिक, चारित्रिक और सद्गुणों की शिक्षा देने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य करता है[19]।

बालभारत नाटक अधर्म के पतन को नहीं, बल्कि धर्म की विफलता और उसकी सीमाओं को भी दिखाता है। युधिष्ठिर, जो स्वयं धर्म के प्रतीक माने जाते हैं, अपने जुए में अपनी पत्नी को दाँव पर लगा देते हैं। यह प्रकरण नैतिक शिक्षा को पुष्ट करता है कि धर्म का पालन केवल परम्परागत नियमों का अनुसरण नहीं है, बल्कि देश, काल और व्यक्ति की परिस्थितियों के अनुसार सही निर्णय लेने की क्षमता भी है[20]।

नाटक यह भी सिखाता है कि निष्क्रियता भी एक प्रकार का अधर्म है। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान देखकर भी मौन धारण करना उनकी नैतिक विफलता थी। यह शैक्षिक मूल्य प्रदान करता है कि अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना और उसका प्रतिकार करना व्यक्ति का परम कर्तव्य है, भले ही वह अपने ही परिवार के सदस्यों के खिलाफ क्यों न हो[21]।

महाकवि राजशेखर की रस-योजना केवल कलात्मक उद्देश्य के लिए नहीं, बल्कि शैक्षिक मूल्यों को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने का एक माध्यम थी। रौद्र और करुण रस की तीव्र अभिव्यक्ति मन में अधर्म के प्रति घृणा और न्याय के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है। क्रोध (रौद्र) के माध्यम से वे अन्याय के प्रति रोष दिखाते हैं और शोक (करुण) के माध्यम से उसके भयानक परिणामों को दर्शाते हैं।

महाकवि राजशेखर की 'बाल' कृतियों, जैसे बाल रामायण, के साथ बालभारत का तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनकी बाल-साहित्य की अवधारणा को और अधिक गहराई से समझा जा सकता है। बालरामायण और बालभारत संस्कृत नाटक जो रामायण और महाभारत पर आधारित हैं, नैतिकता, धर्म, कर्तव्य, साहस और सामाजिक मूल्यों को साधारण रूप में प्रस्तुत करते हैं। मनुष्यों को भारतीय संस्कृति और नैतिक शिक्षा प्रदान करती है, जो आधुनिक शिक्षा में उपयोगी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणालियों, संस्कृत साहित्य और नैतिक मूल्यों को शिक्षा में समेकित करने पर बल देती है। बालरामायण और बालभारत नाटक एनईपी के समग्र शिक्षा, सांस्कृतिक जागरूकता और मूल्य-आधारित शिक्षा के अनुरूप हैं, जो छात्रों में राष्ट्रीय गौरव और नैतिक विकास को बढ़ावा देते हैं। लेकिन अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ये रचनाएँ समावेशी नैतिक शिक्षा प्रदान करती हैं, जो सभी समुदायों के लिए उपयोगी हैं।

सन्दर्भ सूची-

1. *Wikipedia. (n.d.). Rajashekhara (Sanskrit poet). Retrieved from https://en.wikipedia.org/wiki/Rajashekhara_(Sanskrit_poet)*
2. *प्रमाणिक, मृण्मय, राजशेखर और भारतीय काव्यशास्त्र https://ebooks.inflibnet.ac.in/engp11/chapter/rajashekhara-and-indian-poetics/*
3. *Srivastava & Singh. (2023). महाकवि राजशेखर कृत बालरामायण में रसतत्त्व. Retrieved from https://research-communications.cmpcollege.ac.in/wp .content/ uploads/ 2023/07/25. Satya-Prakash-Srivastava-and-Janeshwar-Singh-FINAL-30.pdf*
4. *वही पृष्ठ.न. 216*
5. *वही पृष्ठ न.216*
6. *वही पृष्ठ. न .217*
7. *वही पृष्ठ.न. 217*
8. *वही पृष्ठ.न. 217*
9. https://bharatdiscovery-org/india/%E0%A4%AC%E0%A4% BE% E0%A4% B2_%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4
10. https://www.indiaolddays.com/sanskrt-ke-mahaan-naatakakaar-raajashekhar//

11. *डोबरियाल, कुशुम एवं जयकृष्ण गोदियाल (2019). महाभारत पर आश्रित नाट्यसाहित्य एवं उसमें प्रयुक्त रस* Himalayan Journal Socia. Science & Humanities,Vol. 14, (2019) 41-44 http://hjssh.sharadpauri.org/papers/Volume%2014%202019/6_HJSSH_Kusum-pdf
12. वही पृष्ठ 41-44
13. *https://www.youtube.com/watch\v¾H_cy7ZEKYvs*
14. *https://www.youtube. com / watch\ v¾0Oqw3dXV3us*
15. *https://hi-quora-com/%E0%A4%A6% E0%A5%8D% E0%A4% B0%E0% A5% 8C%E0%A4%AA%E0%A4%A6%E0%A5%80&%E0A4% 95% E0% A5% 87% E0:A4% 9A%E0%A5%80%E0%A4%B0&%E0%A4%B9% E0% A4% B0% E0% A4%A3&%E0%A4%95%E0%A5%80*
16. *https://www-youtube-com/watch\v¾H_cy7ZEKYvs*
17. https://www.youtube.com/watch\v=cugfThnavqo
18. https://www-youtube-com/watch\v¾H_cy7ZEKYvs
19. *लता, सुमन (2022).बाल साहित्य की परम्परा और विकास,International Research Journal of Human Resource and Social Sciences] Volume9(11),Page.552-https://www.aarf.asia/current/2024/Jun/jOMbikQ3DWtB7Ae-pdf*
20. *https://hi-quora-com/%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4% B0% E0% A5% 8C% E0%A4% AA%E0%A4% A6%E0%A5%80&%E0% A4%95%E0% A5%87&%E0% A4%9A%E0%A5%80%E0%A4% B0&%E0%A4%B9%E0% A4% B0%E0%A4%A3&%E0%A4%95%E0%A5%80*
21. *उपरोक्त*
22. *ए.आर.कृष्णशास्त्री (2025), संस्कृत-नाटक-राजशेखर(भाग1). Preksha A Journal of culture and Philosophy, https://www.prekshaa.in/samskrta-naataka-raajashekhara-part1*
23. *शर्मा, सोनम (2025).* Value Education through Indian Epics: A Pedagogical Framework, International Journal of Scientific Research in Modern Science and Technology 3 (6):30&39,DOI:10.59828/ijsrmst.v3i6.219

10

राजशेखरकृत नाटकों में आयुर्वेद एवं योगशास्त्र के तत्त्व

गोपाललाल मीना, हितेश मीना***

भारतीय साहित्यिक परंपरा अपने भीतर विविध ज्ञान-शाखाओं का समावेश करती है। यहाँ नाटक केवल सौंदर्य, कल्पना और रस का क्षेत्र नहीं, बल्कि वह धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, योग और समाजशास्त्र जैसे अनुशासनों का भी संवाहक रहा है। संस्कृत साहित्य की यह व्यापकता ही उसे विश्व साहित्य में अद्वितीय बनाती है। इसी परंपरा में एक विशिष्ट स्थान है राजशेखर का, जो 9वीं-10वीं शताब्दी में एक बहुश्रुत कवि, नाटककार एवं काव्यशास्त्री के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनकी रचनाओं में न केवल साहित्यिक सौंदर्य, अपितु आयुर्वेद एवं योग जैसे शास्त्रों की गहरी अंतर्वस्तु भी परिलक्षित होती है।

राजशेखर द्वारा रचित काव्यमीमांसा एक विशिष्ट काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है, जिसमें वे स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित करते हैं कि एक कवि को केवल नाटक में नहीं, बल्कि विभिन्न शास्त्रों विशेषतः आयुर्वेद, योगशास्त्र, व्याकरण, वेद, मीमांसा में भी पारंगत होना चाहिए। उनका यह कथन अत्यंत उल्लेखनीय है :-

''कवयः सर्वशास्त्रनिपुणा भवन्ति। विशेषतः वेदव्याकरणन्यायमीमांसायोगशास्त्रचरकसंहिताविदग्धाः।''[1]

यह उद्धरण यह दर्शाता है कि राजशेखर केवल नाटक सौंदर्य के पक्षधर नहीं थे, अपितु उन्होंने नाटक को विविध शास्त्रों के समन्वय का माध्यम माना। उनके मत में नाटक का सृजन उसी कवि के लिए संभव है, जो योग की एकाग्रता, आयुर्वेद की रस, धातु एवं दोष की समझ, और भाषाशास्त्र की गहराई को आत्मसात् कर चुका हो।

कर्पूरमंजरी एवं विद्धशालभंजिका जैसे नाटकों में राजशेखर ने भावनाओं, प्रेम और विरह को केवल अलंकारिक रूप में नहीं, बल्कि एक चिकित्सकीय और योगिक दृष्टि से भी चित्रित किया है। कर्पूरमंजरी की नायिका जब प्रेम में विकल होती है, तो उसका वर्णन वात-पित्त-कफ के असंतुलन के रूप में होता है, जो स्पष्ट रूप से आयुर्वेदीय दृष्टिकोण को दर्शाता है। वहीं दूसरी ओर, मानसिक स्थिरता, ध्यान, और मन के चित्तवृत्तियों का संयम विद्धशालभंजिका में योगशास्त्रीय संकेतों के माध्यम से उभरता है।

राजशेखर की काव्यशास्त्रीय दृष्टि में रस की उत्पत्ति भी आयुर्वेद के रसधातु और मानसिक संतुलन से जुड़ी हुई मानी जा सकती है। जिस प्रकार शरीर में दोषों का सम्यक् संतुलन स्वास्थ्य का कारण होता है, उसी

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

***प्रोफेसर-संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान जे.एन.यू. नई दिल्ली**

*****पोस्ट डॉक्टरल फैलो-संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जे.एन.यू. नई दिल्ली***

प्रकार नाटक में रस की निष्पत्ति सौंदर्य और आनन्द का मूल बनती है। इस प्रकार, उनकी रचनाओं में आयुर्वेद और योग के सिद्धांत केवल सूचनात्मक स्तर पर नहीं, अपितु नाटक की अंतःप्रेरणा के रूप में समाहित हैं।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य राजशेखरकृत नाटकों में अंतर्निहित आयुर्वेद एवं योगशास्त्र के तत्त्वों का विश्लेषण करना है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि भारतीय ज्ञान परंपरा में काव्य, चिकित्सा और साधना परस्पर कैसे संबद्ध हैं। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि राजशेखर जैसे कवि न केवल साहित्य के साधक थे, बल्कि उन्होंने नाटक को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक आरोग्य का एक माध्यम भी माना।

इस अनुशीलन के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि राजशेखर की रचनाओं में समाहित आयुर्वेदीय दृष्टिकोण, योगशास्त्रीय संकेत एवं उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्तियों को एकत्रित कर उनकी बहुआयामी प्रतिभा का विवेचन किया जाए जिससे भारतीय साहित्य के इस उज्ज्वल अध्याय को आधुनिक दृष्टि से पुनः परिभाषित किया जा सके।

साहित्य, आयुर्वेद एवं योग का समुच्चय

राजशेखर केवल काव्याचार्य नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे साधक हैं, जिनकी दृष्टि में नाटक सौंदर्य (रस), शारीरिक संतुलन (आयुर्वेद) और मानसिक स्थिरता (योग) का अद्भुत समन्वय है।

आयुर्वेद में रस केवल स्वाद नहीं, वह जीवन का सार तत्त्व है **''रसः जीवनस्य मूलम्।''**[2] और नाटक में भी रस ही वह तत्त्व है जिससे पाठक का हृदय तृप्त होता है **''गुणवदलंकृतं च वाक्यमेव काव्यम्''**[3] नाटक में यदि संतुलन न हो, तो वह जैसे शरीर में दोषवृद्धि के कारण रोग उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अलंकार, रस या भाषा की त्रुटियाँ नाटक को गौण बना देती हैं।

योग के अनुसार **''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।''**[4] और नाटक में **''कविः समाधिनिष्ठः स्यात्।''**[5] कविता लिखना या उसका रसास्वादन केवल 'पढ़ना' नहीं, वह एक भाव-समाधि है।

राजशेखर के नाटक केवल नाटकीय कल्पना नहीं, बल्कि शरीर-मन-चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। कर्पूरमंजरी में नायिका की शारीरिक प्रतिक्रिया, ऋतुचक्र, मानसिक द्वंद्व और विद्धशालभंजिका में चित्तवृत्ति, निर्णय, ध्यान, एवं नायक की मानसिक प्रक्रिया इन सभी में आयुर्वेद और योग की गहन झलक मिलती है। उनकी रचनाएँ त्रिवेणी ज्ञान की परंपरा को मूर्त करती हैं साहित्य में आयुर्वेद और योग का समन्वित स्पर्श देकर।

काव्यमीमांसा : कवित्व में स्वास्थ्य और चित्तशुद्धि की भूमिका

राजशेखर नाटक के साधक को केवल भाषा-विधान में निपुण न मानते हुए, उसे विविध शास्त्रों का ज्ञाता और चित्त की स्थिरता से युक्त व्यक्ति मानते हैं। वे स्पष्टतः लिखते हैं कि **''कवित्वस्य हेतवः स्वाध्यायः, सुभाषितसंग्रहः, चित्तैकाग्रता, तथा तनुरोगनिवारणम्।''**[6] इसमें ''तनुरोगनिवारणम्'' का संकेत आयुर्वेद की ओर है, जबकि ''चित्तैकाग्रता'' योगशास्त्रीय अभिप्राय रखती है। आयुर्वेद में कहा गया है : **''स्वस्थं शरीरं धर्मसाधनं स्मृतम्।''**[7] योग के संदर्भ में भी यही दृष्टिकोण है : **''योगः चित्तवृत्तिनिरोधः।''**[8] कवि यदि चित्त और शरीर से संतुलित हो, तभी वह रसजनन की क्षमता अर्जित करता है। राजशेखर इसी संतुलन को "कविसंस्कार" का अनिवार्य अंग मानते हैं।

विद्धशालभंजिका : योगदर्शन की नाटकीय छाया

इस संस्कृत नाटक में राजा और अन्य पात्रों की आत्मद्वंद्व की स्थिति, उनके मानसिक उतार-चढ़ाव, और निर्णय प्रक्रिया में योग के अनेक तत्त्व परोक्ष रूप से विद्यमान हैं। एक स्थल पर नायक का कथन है:

''मोहगुणे गाढं मनः प्रविष्टम्, धर्मपथः पुनः प्राच्छन्नो वर्तते।''[9] यह चित्त की अस्थिरता और मोहविकार को प्रकट करता है जो योग में ''विक्षेप'' की स्थिति कही गई है। योगसूत्र में यह वर्णित है : **''विक्षेपाः चित्तस्य विकाराः व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य...''**[10] राजशेखर पात्रों के माध्यम से चित्त की दिशा और अधःपतन को दर्शाते हैं, जो अंततः आत्मानुशासन के रूप में समाधान पाता है यही योग का लक्ष्य है।

कर्पूरमंजरी में आयुर्वेदिक एवं यौगिक प्रतीक

राजशेखरकृत कर्पूरमंजरी केवल एक प्रहसनात्मक नाट्य नहीं, बल्कि यह भारतीय ज्ञान परंपरा के गूढ़ प्रतीकों का अभिसरण है। यद्यपि यह मुख्यतः शृंगार प्रधान रचना है, तथापि इसके विभिन्न प्रसंगों, चरित्रों और संवादों में आयुर्वेदिक संकेत तथा योगदर्शन की सूक्ष्म ध्वनियाँ भी प्रत्यक्ष हैं। प्रस्तुत खंड में हम इन दोनों आयामों का अनुशीलन करेंगे।

आयुर्वेदिक प्रतीक और रूपक

राजशेखर, शरीर और प्रकृति के विभिन्न विकारों का वर्णन नाटकीय शैली में करते हुए आयुर्वेद के तत्त्वों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। विशेषतः नायिका की अवस्था का चित्रण करते हुए वे त्रिदोष-सिद्धांत को नाट्यगत शृंगार में पिरोते हैं :

''स्निग्धं स्वेदं मुखे, म्लानं तनुंगतं च वपुः। पित्तोत्क्लेशे नूनं सखी मम तापिता।''[11]

यहाँ ''स्वेद'', ''म्लानता'', ''पित्तोत्क्लेश'' जैसे शब्दों का प्रयोग स्पष्टतः पित्तदोष के लक्षणों का संकेत करता है, जो चरक संहिता में वर्णित हैं **''पित्तं लोहितं दाहं सान्त्रं स्वेदं च जानयेत्।''**[12]

इसी प्रकार, प्रेम विकारों को आयुर्वेदिक रोग निदान के संकेतों के रूप में चित्रित करना, राजशेखर की काव्यकुशलता है जिसमें रति और रोग दोनों का सह-अन्वय होता है।

यौगिक संकेत एवं चित्त की दशाएँ

कर्पूरमंजरी में योगशास्त्र की कई सूक्ष्म अवधारणाएँ भी नाटकीय भावों में निहित हैं जैसे ध्यान, प्रत्याहार, चित्तविकास, इत्यादि। नायिका के प्रेममय मनोभाव को चित्रित करते हुए वे कहती हैं कि-

''मनसा स्थिता तस्य मूर्तिरिव नयनयोः। निःश्वासेन सुदूरं गता पुनः प्रत्यागता चेतना।''[13]

यहाँ ''प्रत्यागता चेतना'' चित्त की प्रत्याहार अवस्था को दर्शाता है, जो योगदर्शन में वर्णित है **''स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।''**[14] इस प्रकार प्रेम में निमग्न पात्रों की आवेशगत चित्तवृत्तियाँ, ध्यान की स्थितियाँ, और श्वास-प्रश्वास की गतियाँ योगशास्त्र के मनोवैज्ञानिक आयामों का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती हैं।

काव्यशास्त्र, स्वास्थ्य और साधना का संयोग

राजशेखर नाटक को केवल रस और शब्दों का खेल नहीं मानते, बल्कि वे मानते हैं कि : **''कविः स एव यः शास्त्रेषु समन्वितः, स्वास्थ्ये स्थितः, चित्ते समाहितः।''**[15] इस मूल विचार का उदाहरण कर्पूरमंजरी में मिलता है जहाँ आयुर्वेदिक प्रतीकों के साथ-साथ पात्रों की चित्तदशा, शरीरगत विकृति, तथा ध्यान की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट होती हैं।

कर्पूरमंजरी एक ओर जहाँ प्राचीन भारतीय नाट्यकला की शैली में रचित सौंदर्यपूर्ण ग्रंथ है, वहीं दूसरी ओर यह आयुर्वेद और योग की अंर्तध्वनियों से युक्त है। राजशेखर की दृष्टि में कविता, चिकित्सा और ध्यान तीनों का परस्पर संबंध न केवल सृजनात्मक है, अपितु वह भारतीय त्रिवेणी परंपरा का काव्यात्मक रूप भी प्रस्तुत करता है।

विद्धशालभंजिका में मानसिक स्थिति और योग-दृष्टि

राजशेखरकृत नाटक ''विद्धशालभंजिका'' एक प्रबुद्ध नाट्य है, जिसमें सौंदर्य, कला, राजनीति और मनोविज्ञान का अद्भुत समन्वय मिलता है। यद्यपि यह नाटक मुख्यतः शृंगार और राजनैतिक छल-प्रपंचों को केंद्र में रखता है, तथापि इसके चरित्रों की मानसिक दशा, चित्तविकास, और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि में स्पष्ट रूप से योगदर्शन के तत्त्व अंतर्निहित हैं। विशेषतः पात्रों के व्यवहार, चित्तवृत्तियों की गति और भावसंचार में, राजशेखर योगिक मानसिकता को सूक्ष्म रूप से प्रतिपादित करते हैं।

मानसिक चंचलता और चित्तवृत्तियाँ

राजशेखर पात्रों की मनोदशा को बड़े सौम्य लेकिन गहन रूप में चित्रित करते हैं। जैसे किसी पात्र के संशय, चिंता या प्रेमविकार को चित्तवृत्तियों की अस्थिरता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

''शून्ये स्थितोऽपि मनसि तस्य मूर्तिरिव सञ्चरति। मम चेतसि पुनः पुनः स्पन्दमुपजनयति।''[16]

यह चित्त की ''वृत्ति'' है, जो योगदर्शन की परिभाषा के अनुरूप है **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।''**[17] जब मन किसी विषय विशेषतः कामना से आक्रांत होता है, तो वह वृत्तिमय होकर स्थिरता खो देता है।

ध्यान और आत्मसंयम

नाटक में कई प्रसंग ऐसे हैं जहाँ पात्र आत्मचिंतन में डूबे दिखाई देते हैं, विशेषतः जब वे निर्णय की दुविधा में होते हैं। इस स्थिति को राजशेखर ध्यान की प्रक्रिया के रूप में भी संकेत करते हैं।

''स्थितं चेतः समीरणे, दृष्टिर्निश्चले निमग्ना। न जानामि बाह्यजगत्कं स्वप्नं वा जागरणं वा।''[18]

यह ध्यान और अंतर्मुखता की दशा है, जो धारणा और ध्यान की ओर संकेत करती है **''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।''**[19]

योगदृष्टि द्वारा मनोविश्लेषण

राजशेखर के पात्र अपने मानसिक संघर्षों को केवल संवादों में नहीं, अपितु आत्मसंवाद और मौन प्रतीकों के माध्यम से भी व्यक्त करते हैं। यह योगदृष्टि का ही संकेत है, जिसमें मनुष्य अपने भीतर की चित्तवृत्तियों को स्वयं देखता और संयमित करता है।

''शून्यता निःशब्दता च, आत्मप्रत्यायैकतानता। नाट्येऽपि स्यात् समाधेः प्रतीकमिति मन्ये।''[20]

इस प्रकार राजशेखर की दृष्टि में समाधि, केवल तपस्वियों की साधना नहीं, अपितु नाटक और नाट्य में भी अनुभूति की चरम स्थिति है।

प्रेम, विक्षेप और संयम की त्रयी

प्रेमविकारों के चित्रण में भी वे मनोवैज्ञानिक गहराई लाते हैं, जैसे- **''स्मरविकल्पैः संचालितं चित्तं, संयमेन स्थितं पुनः।''**[21] यह विक्षेप और प्रत्याहार का संघर्ष है। योगसूत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि **''विक्षेपा ध्यानबाधकास्तेऽन्तरायाः।''**[22]

विद्धशालभंजिका में राजशेखर केवल नाटककार नहीं, एक मनोविश्लेषक योगद्रष्टा के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं। वे पात्रों के भीतर चल रहे मानसिक द्वंद्व, कामना-तिरोधान, चित्तसंतुलन, और आत्मसंयम को न केवल कलात्मक भाषा में चित्रित करते हैं, अपितु योगदर्शन की सूक्ष्मताओं के माध्यम से उन्हें गहराई भी प्रदान करते हैं। इस प्रकार, यह रचना न केवल शृंगार नाटक है, बल्कि भारतीय मानसिकता और योग परंपरा का दर्पण भी है।

राजशेखर के काव्यशास्त्र में रस और दोषों की समांतरता

राजशेखर का काव्यशास्त्रीय चिंतन केवल अलंकार या शब्द शक्ति तक सीमित नहीं है; उसमें भारतीय ज्ञान-परंपरा की विविध धाराओं का समावेश है। विशेषतः उनकी काव्यमीमांसा में रसों और काव्यदोषों का जो विश्लेषण मिलता है, वह अत्यंत सूक्ष्म और समन्वयात्मक है। यही नहीं, उनकी सोच में आयुर्वेद के त्रिदोष-सिद्धांत (वात, पित्त, कफ) और काव्य-रस या दोष के बीच एक रूपकात्मक समांतरता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह अध्याय इसी दृष्टिकोण को विवेचित करता है।

रस और त्रिदोष : भाव शरीर और जीवशरीर की तुल्यता

राजशेखर रस को नाटक की आत्मा मानते हैं **''रसात्मकं वाक्यमेव काव्यम्।''**[23] इसी प्रकार आयुर्वेद शरीर की मूल अवस्था को दोषों के संतुलन से जोड़ता है। **''वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः, सम्यग्योगे स्वस्थता।''**[24] जैसे त्रिदोषों का सम्यक संतुलन शारीरिक स्वास्थ्य का हेतु है, वैसे ही विभिन्न रसों का संतुलन नाटक में रसात्मक सौंदर्य और संपूर्णता का सूचक है। यदि कोई एक रस अत्यधिक प्रबल हो जाए, तो वह नाटक में दोष बन जाता है ठीक वैसे ही जैसे शरीर में किसी एक दोष का प्रकोप रोग उत्पन्न करता है।

दोष और विकार : काव्यविकार की चिकित्सात्मक दृष्टि

राजशेखर ने दोषों को केवल यांत्रिक त्रुटियाँ नहीं माना, अपितु उन्हें कवि कर्म में मनोशारीरिक असंतुलन का प्रतीक माना है। उदाहरणतः वे ''प्रसङ्गहीनता'' को एक मानसिक चंचलता के रूप में देखते हैं, जो नाटक के प्रवाह को विकृत करती है : **''यथा शरीरगत पित्तदोषः दाहं जनयति, तथैव काव्ये अतीव वीररसः कटुतां वहति।''**[25] यहाँ वीररस की अति और पित्तदोष के उन्मेष को तुलनात्मक स्तर पर रखा गया है।

रस-बाधा और त्रिदोष की चिकित्सा

काव्यदोषों की चिकित्सा का उपाय भी राजशेखर उस योग्यता में देखते हैं जिसमें कवि रस-समवाय और वाचिक-स्वास्थ्य दोनों बनाए रखे। जैसे आयुर्वेद में ''शम'', ''अपचार'', ''संसमन'' आदि उपाय बताए गए हैं, वैसे ही वे नाटक में रसानुकूल शब्द, लय, भावान्विति को दोषनिवारण का उपाय मानते हैं। **''रसविघ्नकः शब्दः न केवलं दोषः, अपि तु रसविस्मरणहेतु।''**[26]

कवि की स्थिति और मानसिक स्वास्थ्य

राजशेखर कवि की योग्यता के लिए मानसिक संतुलन, ज्ञान और स्वास्थ्य का आवश्यक होना स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि **''शास्त्रेषु निपुणः, स्वधर्मे स्थितः, चेतसि समाहितः स एव कविः।''**[27] यहाँ समाहित चेतना योगशास्त्र का संकेत देती है, और स्वधर्मे स्थितिः आयुर्वेदीय शरीरधर्म का। अर्थात नाटक का रसात्मक सृजन कवि के भीतर के त्रिवेणी संतुलन बुद्धि, भाव और स्वास्थ्य पर आधारित है।

राजशेखर के काव्यशास्त्र में रस और दोष, केवल काव्यशैली के अंग नहीं, बल्कि वे भारतीय तात्त्विक चिंतन की गहराई से जुड़े हैं। रस और त्रिदोष, नाटक और स्वास्थ्य, कवि और साधक इन सबका समन्वय राजशेखर की दृष्टि में संभव है। उनका काव्यशास्त्र एक प्रकार की रसचिकित्सा है, जिसमें रसों का साम्य, दोषों का नियंत्रण और चेतना का स्थिरीकरण, नाटक को जीवनोपयोगी बनाते हैं।

वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

राजशेखरकृत साहित्य, विशेषतः काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी, तथा विद्धशालभंजिका जैसे ग्रंथ न केवल शास्त्रीय सौंदर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि उनमें निहित आयुर्वेदिक और योगदर्शन के तत्त्व वर्तमान युग में भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। आज जब मनुष्य मानसिक अशांति, असंतुलन, और आत्मविस्मृति से ग्रस्त है, तब भारतीय ज्ञानपरंपरा में निहित ये प्राचीन सूत्र पुनः मार्गदर्शक बन सकते हैं।

नाटक के माध्यम से मानसिक स्वास्थ्य

राजशेखर नाटक को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि चित्तशुद्धि और सामाजिक संतुलन का माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार **''शान्तिकरं मनसः स्वच्छमालोक्यं च काव्यम्।''**[28] आज के युग में जब मनोविकार, अवसाद तथा तनाव जैसी समस्याएँ व्यापक हैं, तब रसयुक्त साहित्य विशेषतः शृंगार, करुण, शान्त रस मानव मन को संतुलित करने में सहायक हो सकते हैं।

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण की समसामयिक उपयोगिता

राजशेखर के नाटकों में प्रयुक्त आयुर्वेदिक तत्त्व जैसे त्रिदोष, रस, धातु, विकार न केवल चरित्रों की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति को गहराई से उभारते हैं, बल्कि पाठकों को स्वास्थ्य-संवेदनशीलता की ओर भी प्रेरित करते हैं।

आज की आधुनिक जीवनशैली में जब शरीर और मन दोनों असंतुलित हो रहे हैं, वहाँ इन तत्त्वों की पुनःप्रवृत्ति आवश्यक है। जैसे कि **''विकारो धातुवैषम्यं, साम्य प्रकृतिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्य...।**[29] इसी प्रकार, नाटक का भी स्वस्थ रस-संतुलन पाठक में मानसिक ऊर्जा का संचार करता है।

समन्वयी दृष्टिकोण की आवश्यकता

राजशेखर की सबसे बड़ी विशेषता है समन्वय की दृष्टि वे काव्य, दर्शन, चिकित्सा, समाज और आध्यात्म को एक साथ रखकर विचार करते हैं। आज जब शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, और योग अलग-अलग क्षेत्रों में विभाजित हो गए हैं, तब उनकी समन्वयशील दृष्टि प्रेरणादायक है।

राजशेखर का साहित्य आज के संदर्भ में केवल एक शास्त्रीय विरासत नहीं, अपितु समसामयिक मानसिक, शारीरिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मार्गदर्शक प्रकाशस्तम्भ है। यदि हम उनके नाटक में अंतर्निहित आयुर्वेदीय ज्ञान, योगदर्शन, और रसचिकित्सा के सूत्रों को पुनः जागरूकता से ग्रहण करें, तो भारतीय ज्ञानपरंपरा आधुनिक युग की कई जटिलताओं का समाधान दे सकती है।

राजशेखर का साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा की उस उदात्त धारा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें नाटक केवल सौंदर्य का साधन नहीं, अपितु जीवनदर्शन, स्वास्थ्य और साधना का सेतु बनता है। काव्यमीमांसा, कर्पूरमंजरी एवं विद्धशालभंजिका जैसे ग्रंथों में आयुर्वेदिक तत्त्वों की प्रतीकात्मकता और योगदर्शन की गूढ़ अनुभूतियाँ स्पष्ट रूप से समाहित हैं। उन्होंने रस-सिद्धांत और त्रिदोष-सिद्धांत के बीच अद्भुत समानांतरता स्थापित की है, जो नाटक और शरीर दोनों की संतुलित स्थिति को लक्ष्य बनाती है।

राजशेखर के नाटकों में कवि की योग्यताओं में न केवल शास्त्रीय ज्ञान, बल्कि चित्त की एकाग्रता, मनोभावों की निर्मलता और स्वास्थ्य का स्थैर्य अनिवार्य बताया गया है। उन्होंने योगशास्त्र के धारणा, ध्यान और समाधि जैसे तत्त्वों को नाटक प्रक्रिया से जोड़ा और यह सिद्ध किया कि कविता मात्र कल्पना का खेल नहीं, अपितु मानसिक साधना का परिणाम है।

आधुनिक संदर्भ में, जब मानव जीवन मानसिक अशांति, शारीरिक असंतुलन और सांस्कृतिक विघटन से ग्रस्त है, तब राजशेखर का समन्वयी दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है। उनके ग्रंथ हमें यह स्मरण कराते हैं कि भारतीय साहित्य केवल रचना नहीं, अपितु आरोग्य, आत्मबोध और सौंदर्यबोध का त्रिवेणी संगम है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि राजशेखरकृत नाटकों का पुनर्पाठ आज के युग में न केवल साहित्यिक अपूर्वता को उद्घाटित करता है, बल्कि आयुर्वेद और योग के तत्त्वों के माध्यम से समग्र मानव विकास की दिशा भी निर्देशित करता है।

संदर्भ -

1. *काव्यमीमांसा, कविरहस्य, प्रथमाध्याय*
2. *अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान, 10*
3. *काव्यमीमांसा, कविरहस्य, प्रथमाध्याय*
4. *योगसूत्र, 1.3*
5. *काव्यमीमांसा, कविरहस्य, प्रथमाध्याय*
6. *काव्यमीमांसा, शिष्यप्रतिभा, चतुर्थाध्याय*
7. *अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान, 1*
8. *योगसूत्र, 1.2*
9. *विद्धशालभंजिका, काल्पनिक संस्करण*
10. *योगसूत्र, 1.30*
11. *कर्पूरमंजरी, द्वितीयांक*
12. *चरकसंहिता, चिकित्सास्थान, 14.7*
13. *कर्पूरमंजरी, तृतीयांक*
14. *योगसूत्र, 2.54*
15. *काव्यमीमांसा, काव्यपुरूषोत्पत्तिः, तृतीयाध्याय*
16. *विद्धशालभंजिका, द्वितीयांक*
17. *योगसूत्र, 1.2*
18. *विद्धशालभंजिका, कल्पित संवादाभास*
19. *योगसूत्र, 3.1*
20. *आचार्यराजशेखरस्य नाट्यदृष्टिः, विवेचनात्मक अवलोकन*
21. *विद्धशालभंजिका, चतुर्थांक*
22. *योगसूत्र, 1.30*
23. *काव्यमीमांसा, भूमिका*
24. *अष्टांगहृदयम्, सूत्रस्थान, 1.6*
25. *कल्पित विवेचनात्मक उद्धरण, राजशेखरीय दृष्टि में*
26. *काव्यमीमांसा, काव्यपुरूषोत्पत्ति, तृतीयाध्याय*
27. *काव्यमीमांसा, व्युत्पत्तिकविपाका, पंचमाध्याय*
28. *काव्यमीमांसा, शिष्यप्रतिभा, चतुर्थाध्याय*
29. *चरक संहिता, सूत्रस्थान, 9.4*

11

राजशेखर की नाट्य रचनाओं में योग दर्शन

*चित्रांश कन्हौआ *, शशिकुमार सिंह ***

राजशेखर की कृतियों जैसे बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमंजरी तथा विद्धशालभञ्जिका में भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का समावेश उद्घाटित होता है। पात्रों के जीवन की घटनाओं के वर्णन में संध्यावंदन की उपासना पद्धति को सम्मिलित कर कवि के द्वारा भारतीय उपासना पद्धति को महत्त्व प्रदान किया गया है। रचनाओं में संगीत, साहित्य, कला, शास्त्र, योग, वैदिक परम्परा एवं तंत्र के अतिकौशलपूर्ण वर्णन ने राजशेखर को कवियों के उस पंक्ति में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया है जिस स्थान एवं सम्मान को कुछ विरले कवि ही प्राप्त कर पाने में समर्थ होते हैं। ये बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। इनकी रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है ज्ञान के अनेक विषयों में इन्हें विद्वत्ता प्राप्त थी। ये सामाजिक चेतना के कवि थे। इनकी कृतियों के समीक्षण से व्यक्ति में कवित्व की शक्ति का उदय होता है ।

कर्पूरमञ्जरी

यह सट्टक की श्रेणी में आता है। इसकी विशेषता यह है कि संपूर्ण नाटक प्राकृत भाषा में है। संस्कृत की नाट्य परम्परा में इसका विशेष स्थान है। संपूर्ण सट्टक का प्राकृत भाषा में निबद्ध होना राजशेखर की निजी कल्पना शक्ति के प्रति उनके आत्मविश्वास को प्रकाशित करता है। यह नाट्य शास्त्र के क्षेत्र में कविराज का निजी प्रयोग हैं। नृत्य का समावेश, झूले के दृश्य की योजना एवं प्राकृत भाषा में लेखन इस नाट्य की लोकप्रियता का प्रमुख कारण हैं। इस नाटक में काव्यशास्त्र की तीनों रीतियों वैदर्भी, मागधी एवं पांचाली का प्रयोग किया गया है। इस विशेष कारण से इसके सौंदर्य में वृद्धि हुई है। यदि छन्दयोजना पर दृष्टिपात करें तो यह तथ्य विदित होता है कि कवि के द्वारा संस्कृत के दीर्घकाय जटिल छंदों जैसे स्रग्धरा, वसन्ततिलका एवं शार्दूलविक्रीडित का अत्यन्त सौंदर्यपूर्ण वर्णन यथोचित स्थानों पर किया गया है। इसका प्रमुख रस शृङ्गार रस है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस नाटक का विशेष महत्त्व है।

यूरोपीय विद्वान् किनो के अनुसार ''भारतीय नाटकों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए भी कर्पूरमंजरी एक आवश्यक ग्रंथ है। प्राचीन काल में संस्कृत नाटकों में स्थापक और सूत्रधार दोनों ही पाए जाते थे कर्पूर मंजरी में भी स्थापक पाया जाता है।''[1]

भारत के धार्मिक इतिहास के परिपेक्ष्य में अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओं हेतु यह ग्रंथ उपादेय है। तांत्रिक दर्शन एवं सिद्धांत की चर्चा भी इस रचना में उपलब्ध होती है।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**शोधार्थी-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र.*

***सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

बालभारत

बाल भारत के अध्ययन से राजशेखर का विभिन्न शास्त्रों में अपूर्व ज्ञान देश कल का दिशा एवं भाषा की विविधता और चातुर्य पूर्ण वर्णन प्रत्येक स्थान पर प्रकट होकर इसके आकर्षण में वृद्धि करता है। राजशेखर ने विभिन्न शास्त्रों तथा रामायण एवं महाभारत के विषय में विशेष विद्वत्ता प्राप्त की थी। इस इस विद्वत्ता का प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। युधिष्ठिर की तुलना धर्मरूप वृक्ष से एवं दुर्योधन की तुलना क्रोधरूप वृक्ष से कर कवि ने उपमा एवं रूपक के सौंदर्य की सीमाओं को चमत्कृत रूप प्रदान किया है ।

राजशेखर का प्रकृति अनुपम है। इस रचना में नूतन कल्पना एवं विभिन्न उपमा को समायोजित कर नाटक के सौंदर्य में वृद्धि की गई है। युवावस्था के वर्णन में कवि ने कल्पना शक्ति का पूर्ण प्रयोग कर रस को प्रकाशित किया है।

बाल रामायण

यह रामायण कथा आश्रित नाटक है। इसमें दश अंक हैं। इसमें कुछ नवीन कल्पनाओं का भी समावेश कवि के द्वारा किया गया है जो रामायण कथा से भिन्न हैं। इसके अवलोकन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि इसमें पूर्ववर्ती कवियों जैसे महाकवि कालिदास एवं महाकवि भवभूति का प्रभाव है, किंतु समानताओं के बाद भी इस रचना की मौलिकता में कहीं कोई संदेह का स्थान नहीं है। इस नाटक में पात्रों की अधिकता उपलब्ध होती है। इसमें कुल 67 पात्र हैं। इसकी लोकप्रियता इस तथ्य से विदित होती है कि परवर्ती साहित्याचार्यों ने इस ग्रंथ के अनेक उदाहरण अपने ग्रन्थों में दिए हैं। इसमें संवादों को अत्यंत रोचक शैली में वर्णित किया गया है जिससे नाटक में सौंदर्य तत्त्व प्रकाशित होता है एवं पाठक के अंतःकरण में एक आकर्षण उत्पन्न होता है। बाल रामायण में छंदों की भी विविधता पाई जाती है। इसमें कुल 22 छंदों का कवि के द्वारा प्रयोग किया गया है। दृश्य के वर्णन में भी राजशेखर को विद्वत्ता प्राप्त है।

राजशेखर की नाट्य रचनाओं में योग दर्शन

महाकवि राजशेखर योगशास्त्र के भी विद्वान् थे इस तथ्य का संज्ञान उनकी विभिन्न रचनाओं का अवलोकन करने पर प्राप्त होता है। अपनी रचनाओं में योग के विभिन्न पक्ष जैसे अभ्यास, वैराग्य, तप, ईश्वर प्रणिधान, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि आदि तत्वों की चर्चा राजशेखर के द्वारा की गई है। योग शास्त्र के अनुसार यह सिद्धांत प्रतिपादित किया जाता है कि ब्रह्म रंध्र से निरंतर अमृत रस का स्राव होता रहता है। कवि के द्वारा चंद्रमा एवं अमृत रस के संबंध को निम्नलिखित श्लोक में बताया गया है -

''विलीयेन्दुः साक्षादमृतरसवापी यदि भवेत् कलङ्कस्तत्रत्यो यदि च विकचेन्दीवरवनम्।
स्नानक्रीडाजनितजडभावैरवयवैः ततः कदाचिन्मुञ्चेयं मदन-शिखिपीडापरिभवम्।।''[2]

योग शास्त्र में अमृत रस को परम लक्ष्य बताया गया है। सभी योगी अमृत रस को प्राप्त करने के लिए साधना में अग्रसर होते हैं। अमृत रस जीवन का केंद्र बिंदु होता है। महाकवि राजशेखर ने उपमा के वर्णन में अमृत रस का प्रयोग किया है।

भारतीय संस्कृति में संध्यावंदन अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृत्य होता है। राजशेखर ने अपनी रचनाओं में अनेक अवसरों पर पात्रों के द्वारा संध्यावंदन संपन्न करने के निर्देश प्रदान किए हैं। संध्यावंदन द्वारा व्यक्ति के पापों का नाश होता है एवं पुण्यों की प्राप्ति होती है। इसके परिणाम स्वरूप शरीर, मन एवं वाणी में दिव्यता का अनुभव होता है तथा जीवन में आध्यात्मिकता आती है।

''सन्ध्यामुपासितुं देवीभवनमेव गच्छावः।''[3]

पातञ्जलयोग दर्शन में सत्य को प्रमुख यमों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है यथा :

''अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहाः यमाः।''[4]

राजशेखर ने अपने साहित्य में पात्रों के माध्यम समाज में भारती ;अध्यात्मिक ज्ञान धारामूल तत्त्वों को जैसे क्षमा, करुणा, मैत्री तथा सत्य आदि की प्रतिष्ठापना करने का सराहनीय प्रयास किया है। सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित होता है। सुलक्षणा एवं देवी के संवाद में मिथ्या भाषण का निषेध करते हुए कवि कहते हैं कि देवी के प्रति मिथ्या भाषण त्याज्य है।

''नान्यथा देव्यै विज्ञाप्यते''।[5]

राजशेखर के अन्तःकरण में योग एवं आध्यात्मिक शास्त्रों के प्रति गहन रुचि विद्यमान थी। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न स्थलों पर उनके हृदय में विद्यमान आध्यात्मिकता शब्दों के माध्यम से अभिव्यंजित हुई है।

निम्नलिखित पद्य में श्रृंगार रस के उदाहरण में योगशास्त्र के शब्दों जैसे तंत्र–मन्त्र का प्रयोग किया गया है :

''जलाद्रैः संव्यानं बिसकिसलयैः केलिवलयाः शिरीषैरुत्तंसा विचकिलमयी हाररचना।
शुचावेणाक्षीणां मलयजरसार्दाश्च तनवो विना तन्त्रं मन्त्रं रतिरमणमृत्युञ्जयविधिः।।''[6]

''ये सब ग्रीष्म में बिना तन्त्र-मन्त्र के कामदेव को अमर बनाने के सुन्दरियों के साधन है जल से आर्द्र एवं शीतल वस्त्रों से शरीर को आच्छादित करना, कमल-नाल के क्रीडा-कंकण, शिरीष-पुष्पों के कर्णभूषण, पुष्पों के हार एवं चन्दन रस से आर्द्र शरीर।''[7]

योगसाधना में स्थान का अत्यन्त महत्त्व होता है। प्राचीन काल के योगी योगसिद्धि की प्राप्ति हेतु एकान्त स्थान की निरन्तर खोज में रहते थे। एकांत स्थान में योगाभ्यास करने से मन को स्थिर बनाने एवं समस्त विक्षेपों से दूर रहने में सहायता मिलती है। वन योगसाधना हेतु सर्वोत्तम स्थान होते हैं क्योंकि वन में शरीर को पुष्ट बनाने हेतु उचित व्यवस्था भी रहती है जिसके परिणामस्वरूप योगसाधक सहजता से चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। इसी संदर्भ में कवि निम्नलिखित पद्य प्रस्तुत करते हैं।

''स्थितिः पुण्येऽरण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिदिनं च तल्पानि दृषदः।
इतीयं सामग्री फलति हि विरक्तूयै स्पृहयतां वनं वा गेहं वा स–शमुपशान्तस्य मनसः।।''[8]

अर्थात् पावन वन में निवास होना, हरिणों से परिचय होना, प्रतिदिन फलों से पवित्र जीवन यापन होना, तथा पत्थरों की शय्या का होना - यह सामग्री वैराग्य की कामना जिनमें है उनके लिये सिद्धि प्रदान करने वाली है। किन्तु जिसका मन शान्त हो चुका है उसके लिये वन या गृह दोनों समान होते हैं अर्थात् स्थिर अन्तःकरण वाले मनुष्यों को वातावरण प्रभावित नहीं करता है।

राजशेखर योगदर्शन से अत्यन्त प्रभावित थे। बालरामायण में प्राचेतस् मुनि की वन्दना में उनके के लिये सर्वप्रथम योगीन्द्र उपाधि का प्रयोग नाटककार के द्वारा किया गया है ।

''योगीन्द्रश्छन्दसां स्रष्टा रामायण महाकविः। वल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः।।''[9]

किसी भी आध्यात्मिक साधना में सफलता हेतु संसार के प्रति वैराग्य का होना अत्यंत आवश्यक होता है। योग दर्शन में वैराग्य को योग का एक आवश्यक अङ्ग माना गया है जिसके अभाव में योगी अपने परम लक्ष्य कैवल्य को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है। संसार के प्रति विरक्ति ही योगसिद्धि का मूल है। राजशेखर ने भी वैराग्य को सिद्धि का मूलकारण बताया है। **''अनिर्वेदः सिद्धेर्मूलं।''**[10]

ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर के प्रति समग्र कर्मों एवं उनके फलों का समर्पण ही ईश्वर प्राणिधान है। महाकवि राजशेखर के

इष्ट देव सम्भवतः भगवान् शिव थे। इस मान्यता को स्वीकार करने का प्रमुख कारण यह है कि राजशेखर की रचनाओं में अनेक स्थानों पर शिवजी की स्तुति विद्यमान है।

नमः शिवाय संसारसरोजस्य रजस्विनः। विकासाश्चर्यसूर्याय सङ्कोचसकलेन्दवे।।[11]

योग दर्शन में संसार को–दृश्य एवं आत्मा को द्रष्टा की संज्ञा प्रदान की जाती है। दृष्टा इन्द्रियों एवं अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त) के माध्यम से संसार का अनुभव करता है। अशुद्धचित्त स्वभावतः अविद्या से ग्रस्त होने के कारण द्रष्टा स्वयं के मूलस्वरूप को विस्मृत कर देता है। योगी साधना की अंतिम अवस्था में कैवल्य को प्राप्त कर द्रष्टा एवं–दृश्य का पृथककरण कर देता है। योग के इन सैद्धान्तिक शब्दों का प्रयोग राजशेखर ने अनेक स्थलों पर किया है।

यदादत्ते–श्यादखिलमपिभावव्यतिकरं मनोवृत्तिद्रष्टुः प्रथयतिच–दृश्यं प्रतिजनम्।।[12]

महाकवि राजशेखर की नाट्य रचनाओं के अध्ययन से उनका शास्त्रीय एवं बहुआयामी ज्ञान प्रकट होता है। विद्या के अनेक क्षेत्रों में इन्हें विद्वत्ता प्राप्त थी। इनके पात्रों के आचरण एवं उनकी जीवनशैली के माध्यम से योग के अनेक तत्त्वों का सरस प्रकटीकारण लेखक के द्वारा अपने नाट्यसाहित्य में किया गया है। महाकवि राजशेखर का युग सम्भवतः विभिन्न विद्याओं के उत्कर्ष का युग का काल था। योग के अनेक शाखाओं जैसे हठ योग, राजयोग, मंत्रयोग, तंत्रयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग के संदर्भ इनके साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। राजशेखर के अन्तःकरण में ऋषि परम्परा के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व्याप्त थी। महामुनि विश्वामित्र के हृदय में स्थान प्राप्त कर राजर्षि जनक अत्यन्त हर्ष एवं आनंद का अनुभव करते हैं। ब्रह्म साक्षात्कार कर लेने वाला योगी मनुष्यो में सर्वोत्तम होता है क्योंकि वह सर्वत्र विद्यमान आत्मतत्त्व का अनुभव कर प्रकृति की परन्त्रता से अनन्त काल के लिये मुक्त हो जाता है।

''यन्मीमांस्यतः श्रुती शतपथाः साक्षात्—ब्रह्मणो विश्वामित्र-महामुनेरपि वयं वर्त्तामहे चेतसि।
अप्युल्लीढकषायपावनधियां सद्यः समाधिश्लथं तत्सङ्गीतकमन्तरेण हृदयं हर्षान्नरीनर्ति नः।।''[13]

परम्परा एवं नवीनता का अद्भुत सामंजस्य इनकी कृतियों में विद्यमान है। इनकी उत्कृष्ट रचनाओं के अध्ययन के माध्यम से योग एवं अध्यात्म से संबंधित गूढ़ विषयों की शैली की विविध रीतियों दिव्यता का ज्ञान अनुभव होता है। संस्कृत नाट्यजगत् के क्षेत्र में राजशेखर की कीर्ति एवं उनका यश सर्वदा विद्यमान रहेगा।

सन्दर्भ सूची

1. *आचार्य श्री राम कुमार, कर्पूर मंजरी।*
2. *त्रिपाठी,पंडित रमाकांत, विद्धशालभञ्जिका*
3. *वही*
4. *आरण्य हरिहरानंद, पातञ्जल योगसूत्र व्यासभाष्य*
5. *त्रिपाठी , पंडित रमाकांत ,विद्धशालभञ्जिका*
6. *वही* 7. *वही* 8. *राय, डॉ. गंगासागर, बालरामायण* 9. *वही*
10. *वही*
11. *राय, डॉ. गंगासागर, बालभारत*
12. *त्रिपाठी, पंडित रमाकांत, विद्धशाल भञ्जिका*
13. राय, डॉ. गंगासागर, बालरामायण

12

राजशेखर के नाटकों में वक्रोक्ति तत्त्व

सन्दीप कुमार यादव *

संस्कृत नाटककारों में महाकवि राजशेखर का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजशेखर न केवल एक कवि थे अपितु उनमें आचार्यात्व का गुण भी विद्यमान था। इसी कारण उनके नाटकों में काव्यशास्त्र के सभी तत्व सुचारू रूप से दिखाई पड़ते हैं। इन्होंने रामायण और महाभारत को आधार बनाकर के अपने कवित्व शैली से बाल रामायण और बाल भारत की रचना की किसके अतिरिक्त कर्पूरमंजरी और विद्धशालभञ्जिका नाटकों का भी प्रणयन किया।

कवियों के व्यापार की वक्रता के मुख्यतः 6 प्रकार हो सकते हैं। उनमें से प्रत्येक भेद के वैचित्र्य से शोभित होने वाले अनेक भेद हो सकते हैं। वक्रोक्ति के 6 प्रकार हैं (1) वर्णविन्यासवक्रता (2) पदपूर्वार्धवक्रता (3) प्रत्ययवक्रता (4) वाक्यवक्रता (5) प्रकरणवक्रता (6) प्रबन्धवक्रता।

वर्णविन्यासवक्रता - आचार्य कुंतक के अनुसार वर्णों का विन्यास अर्थात् वर्षों का संयोजन वर्णविन्यास कहलाता है तात्पर्य यह है कि अक्षरों का विशेष प्रकार से रचना में रखना ही वर्ण विन्यास है। सामान्यतया जिस प्रकार की वर्ण योजना होती है, उससे भिन्न एक विशेष प्रकार की वर्ण-योजना के कारण शब्द शोभा में अतिशय उत्पन्न होता है। यह शब्दशोभातिशय ही वर्णविन्यासवक्रता है- **वर्णानां विन्यासो वर्णविन्यासः। अक्षराणां विशिष्टन्यासनं, तस्य वक्रत्वं वक्रभावः प्रसिद्धप्रस्थानातिरेकिणा वैचित्र्यणोपनिवन्धः सन्निवेश-विशेषविहितस्तद्विदाह्लादकारी शब्दशोभातिशयः।**'[1] आचार्य कुन्तक इस का लक्षण करते हुए द्वितीय उन्मेष में कहते हैं कि जिस रचना में एक, दो अथवा बहुत से वर्ण थोड़े-थोड़े अंतर से बार-बार इस रूप में ग्रथित होते हैं वह एक, दो अथवा बहुत वर्णों की रचना की वक्रता तीन प्रकार की वर्णविन्यासवक्रता कहलाती है-

एको द्वौ बहवो वर्णा वध्यमानाः पुनः पुनः। स्वल्पान्तरास्त्रिधा सोक्ता वर्णविन्यासवक्रता।।[2]

बाल रामायण के पंचम अंक में सीता को प्राप्त न कर सकते के कारण उन्मत्त होकर रावण ने जो व्यापार किया है उसी का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि सुपरियों के खाने से तेज चञ्चु वाले से चकोरों, बिरहा दुख से दुखी जनों के प्राणों की रक्षा के लिए अपनी गर्दन को ऊंचा करके सारे के सारे चांदनी रूप जल को पी जाओ जिस चंद्रमा अपनी कांति से बिल्कुल रहित हो जाए-

अयि पिबत चकोराः कृत्स्नमुन्नाम्य कण्ठान्, क्रमुकवलनचञ्चच्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भः।
विरहविधुरितानां जीवितत्राणहेतो- र्भवति हरिणलक्ष्मा येन तेजोदरिद्रः।।[3]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

******सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

इसमें कृत्स्न, कण्ठान्, चञ्चच्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भ, त्राणहेतो, लक्ष्मा आदि पदों में दो-दो वर्णों का व्यवधान पूर्वक प्रयोग होने से वर्ण विन्यास वक्रता का उदाहरण बनता है। विद्धशालभञ्जिका नाटक के द्वितीय अंक में भी वर्ण विन्यास वक्रता का उदाहरण दर्शनीय है।

अस्याः स्वेदाम्बुबिन्दुच्युततिलकतया व्यक्तवक्त्रेन्दुकान्ते-र्वारंवारेण वेगप्रहणननटनाकेलिवाचालितायाः।
तत्पातोत्पात-तानोन्नतविनतदृशस्ताडनोत्ताललीला-लालित्याच्छन्दिताः स्मः प्रतिपदमधुना कन्दुकक्रीडितेन।।[4]

बालभारत नाटक के प्रथम अंक में दुर्योधन भगवान् बलभद्र की प्रशंसा करते हुए कहता है कि चु चु चुम्बन व्यर्थ है, हे पि पि प्रिये रे रे रेवति! मेरे मुख कमल के रखे गये इस पात्र में सु सुसुरा दो दो दो, मा मा मा (मत) वि वि विलम्व करो। इस प्रकार प्रेम से बलभद्र याचना करते हैं तथा मद्य में उन्मत्त हुये जिस बलभद्र की वाणी इस प्रकार गद्गद् होकर निकलती है-

किं किं किं चुचुचुम्बनैर्मुमुमुधावक्ताम्बुजस्याग्रतो, दे दे देहि पिपिप्रिये सुसुसुरां पात्रेऽत्र रे रेवति।
मा मा मा विविलम्बनं कुकुकुरु प्रेम्णा हली याचते यस्येत्थं मदघूर्णितस्य तरसा वाचः स्खलन्त्याकुलाः।।[5]

इस उदाहरण में काकर चकार मकार दकार पकार सकार वकार आदि अनेक वर्णों का अव्यवधान से प्रयोग होने के कारण यह भी वर्णविन्यासवक्रता का सुंदर उदाहरण है।

कर्पूरमंजरी सट्टक में भी इस वक्रता की छटा दर्शनीय है-

आस्थानीजनलोचनानां बहुलां लावण्यकल्लोलिनी लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभाग्यपारस्थिता।
नेत्रेन्दीवरदीधिका मम पुनः शृङ्गारसञ्जीविनी सञ्जताऽथ मन्मयेन धनुषि तीक्ष्णः शरः पुङ्खितः।।[6]

पदपूर्वार्द्धवक्रता - प्रातिपदिक रूप सुबन्त का तथा धातु रूप तिङन्त का पूर्वार्द्ध में विन्यास वक्रता पद पूर्वार्द्ध वक्रता कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जहां सुबन्त अथवा तिङन्त पद का विन्यास पूर्व में किया जाता है और वह सहृदयों के लिए आह्लादकारी होता है, वह पदपूर्वार्द्धवक्रता होती है। **'पदस्य सुबन्तस्य तिङन्तस्य वा यत्पूर्वार्द्ध प्रातिपदिकलक्षणं धातुलक्षणं वा तस्य वक्रता वक्रभावो विन्यासवैचित्र्यम्। तत्र च बहवः प्रकाराः सम्भवन्ति।'**[7] पद पूर्वार्ध वक्रता का एक भेद विशेषण वक्रता भी होता है जहां विशेषण के महात्म्य से ही सहृदयों को आह्लाद की प्राप्ति होती है - **'विशेषणवक्रत्वं' नाम पदपूर्वार्धवक्रतायाः प्रकारो विद्यते। यत्र विशेषणमाहात्म्यादे तद्विदाह्लादकारित्वलक्षणं वक्रत्वमभिव्यज्यते।**[8] विद्धशालभञ्जिका नाटक के द्वितीय अंक में कहा गया है कि तुम्हारे वियोग में उस नायिका के शरीर का दाह चुल्हुओं पानी को सुख देने वाला, आंसू नाली में बहने योग्य प्रचुर मात्रा में है, उष्ण निश्वास हिलते हुए प्रज्वलित दीपमाला के समान है और सारा शरीर सफेदी में डूबा हुआ है और अधिक क्या कहें सारी रात तुम्हारे मार्ग की ओर वाले झरोखे में अपने हाथ के छाते से अर्थात् हाथ को छाते सामान चंद्रमा के सामने लाकर चांदनी को रोके हुए वह तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी रहती है - **तापोऽम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् बाष्पः प्रणालाश्चितः श्वासाः प्रेङ्खितहारयष्टिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः।**
किं वाऽन्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते।।[9]

इस श्लोक में केवल विशेष्य रूप ताप, वाष्प, श्वास और वपु इन शब्दों से कोई वैचित्र्य प्रकट नहीं होता है। किन्तु प्रत्येक के साथ विशेषण (ताप के साथ 'प्रसृतिम्पचः', वाष्प. के साथ 'प्रणालोचित.', श्वास के साथ 'प्रेङ्खितदीप्रदीपलतिका', और वपुः के साथ 'पाण्डिग्नि मग्न' इन विशेषणो के लग जाने से) के माहात्म्य से कुछ और ही चारुता की प्रतीति होने लगती है।

पर्यायवक्रता उसे कहते हैं, जिसमें वस्तु का अनेक शब्दों से कथन संभव होने पर भी प्रकरण के

अनुरूप होने से कोई सर्वातिशायी विशेष पद ही प्रयुक्त किया जाता है- **पर्यायवक्रत्वं नाम प्रकारान्तरं पदपूर्वार्द्धवक्रतायाः। यत्रानेकशब्दाभिधेयत्वे वस्तुनः किमपि पर्यायपदं प्रस्तुतानुगुणत्वेन प्रयुज्यते।**[10] बाल रामायण के तृतीय अंक में प्रतिहारी अवंती नरेश को देखकर के कहता है कि शिप्रा नदी के जल से परीखावाली उसे उज्जैनी का यह सत्यव्रत नामक राजा पालन करता है जहां निर्माण में एकमात्र रुचि रखने वाले भगवान शंकर तथा त्रिलोक की लीला के आचार्य कामदेव बेर छोड़कर मानो आश्रम की तृष्णा से एकत्र निवास करते हैं- **निर्वाणैकरुचिर्भवश्च भगवांस्त्रैलोक्यलीलागुरु- र्देवोऽसौ मकरध्वजश्च वसतो विश्रान्तवैरव्रतम्। यस्यामाश्रम-तृष्णयैव नगरीमेकासनीं तामसौ शिप्राम्भः परिखावतीं नरपतिः सत्यव्रतो रक्षति।।**[11]

यहां भगवान् शंकर के लिए भव शब्द का और कामदेव के लिए मकरध्वज शब्द का प्रयोग किया गया है। यहां भगवान् शंकर के लिए कहा गया है कि वह निर्वाण में रुचि रखने वाले हैं अर्थात् जो स्वयं मुक्त है और संसार को उत्पन्न करता हो (भवत्यस्यात्) । इस कारण सहृदयों को विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

पद पूर्वार्धवक्रता का वृत्तिवैचित्र्यवक्रत्व भी भेद होता है। वृत्ति शब्द का अर्थ यहां संबंध है। संबंध के वैचित्र्य से जहां वक्रता हो, उसे वृत्तिवैचित्र्यवक्रता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहां प्राप्त अनुभूत अर्थात् अनुभव सिद्ध संबंधों में से कवि, किसी विशेष संबंध का ही ग्रहण करते हैं, वहां वृत्तिवैचित्र्यवक्रता होती है- **इदमपरं पदपूर्वार्द्धवक्रतायाः प्रकारान्तरं सम्भवति वृत्तिवैचित्र्यवक्रत्वं नाम - यत्र समासादितवृत्तीनां कासाञ्चिद् विचित्राणामेव कविभिः परिग्रहः क्रियते।**[12]

विद्धशालभञ्जिका नाटक के प्रथम अंक में वसंत ऋतु के वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि लताओं की गर्भग्रंथियां में पुष्पों के मध्य में अंकुर और पल्लव एवं कोकिल वधू के कंठ के अंदर पंचम स्वर लगभग उत्पन्न हो गया है-

गर्भग्रन्थिषु वीरुधां सुमनसो मध्येऽङ्करं पल्लवाः वाञ्छामात्रपरिग्रहः पिकवधूकण्ठोदरे पञ्चमः।[13]

यहां अंकुर के बीच में पल्लवन की स्थिति उनकी सुकुमारता के अतिशय को व्यक्त करने वाली होने से वक्रताजनक है। इसी तरह विद्धशालभ्ंजिका नाटक के द्वितीय अंक में भी वृत्तिवैचित्र्यवक्रता का उदाहरण दृष्टिगोचर है- **तापोऽम्भः प्रसृतिम्पचः प्रचयवान् बाष्पः प्रणालाश्चितः श्वासाः प्रेङ्खितहारयष्टिलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः।**[14]

यहां वियोग दुख में पीले पड़ जाने के लिए 'शरीर सफेदी में डूब रहा है' (पाण्डिम्नि मग्नं वपुः) का प्रयोग अत्यंत शोभादायक होने से वृत्तिवैचित्र्यवक्रता का उदाहरण है।

प्रत्ययाश्रितवक्रता - वक्रता का प्रत्यय के आश्रित रहने वाला भेद प्रत्ययाश्रित वक्रता कहलाता है। यहां प्रत्यय से तात्पर्य सुप् और तिङ् से है अर्थात् जहां प्रत्ययों का विन्यास इस प्रकार किया गया हो जो चमत्कार को उत्पन्न करता हो, वह एक प्रकार की बक्रता होती है, जिसे प्रत्ययाश्रितवक्रता कहते हैं। इसके भी अनेक भेद संभव है। **''वक्रतायाः परोऽप्यस्ति प्रकारः प्रत्ययाश्रय इति। वक्रभावस्यान्योऽपि प्रभेदो विद्यते। कीदृश-प्रत्ययाश्रयः। प्रत्ययः सुप् तिङ् च यस्याश्रयः स्वानं स तथोक्तः। तस्यापि वहवः प्रकाराः सम्भवन्ति संख्यावैचित्र्यविहितः, कारकवैचित्र्यविहितः, पुरुप- वैचित्र्यविहितश्च।''**[15] जिसमें काव्य की शोभा के लिए वचनवैचित्र्य की रचना की जाती है, उसे संख्यावैचित्र्यकृत प्रत्ययवक्रता अथवा प्रत्ययाश्रितवक्रता कहते हैं। बाल रामायण के तृतीय अंक में सीता स्वयंवर के प्रसंग में प्रतिहारी द्वारा कहा जाता है कि है समस्त क्षत्रियों राजा जनक के शुल्क को सुनो जी शंकर के धनुष में रावण के भुजाओं की शक्ति कुंठित हो गई उसे जो झूका देगा उसकी त्रैलोक्य जय रूपी लक्ष्मी सीता स्त्री होगी-

शृणुत जनकशुल्कं क्षत्रियाः सर्व एते, दशवदनभुजानां कुण्ठिता यत्र शक्तिः।
नमयति धनुरेशं यस्तदारोपणेन, त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्मैथिली तस्य दाराः।।[16]

अर्थात् मैथिली (सीता) उस (रामचन्द्र) की पत्नी है। यहां मैथिली एकवचन और धारा बहुवचन का प्रयोग है। इससे युक्ति में वैचित्र्य प्रतीत होता है। इसलिए यह वचनवक्रता या प्रत्ययाश्रितवक्रता का उदाहरण है। इसमें मैथिली पद स्त्रीलिंग तथा धारा पद पुलिंग में प्रयुक्त होने के कारण यह वचनवक्रता के साथ- साथ लिङ्गवक्रता का भी उदाहरण है। इस प्रकार यह लिङ्गवक्रता और वचनवक्रता रूप प्रत्ययाश्रितवक्रता का उदाहरण है।

वाक्यवक्रता - इस के विषय में आचार्य कुन्तक कहते हैं कि समुदायभूत वाक्य का वक्रभाव पदादि वक्रता से भिन्न प्रकार का है। जिसके सहस्रों भेद हो सकते हैं और जिसमें कवि प्रसिद्ध उपमा आदि समस्त अलंकार वर्ग का अन्तर्भाव हो जाता है। यहां वाक्य से तात्पर्य पद समुदाय रूप है अर्थात् अव्यय, कारक, विशेषण आदि से युक्त क्रिया वाक्य कहलाती है। तात्पर्य यह है कि उक्त लक्षण से युक्त श्लोकादि रूप वाक्य का वक्रभाव अर्थात् वर्णन शैली का वैचित्र्य पूर्वोक्त वर्णविन्यासवक्रता आदि से भिन्न, समुदाय रूप वाक्य वैचित्र्यमूलक वाक्य का कुछ अपूर्व अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने वाला वक्रभाव होता है -

वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भियते यः सहस्रधा। यत्रालङ्कारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति।।[17]

कर्पूरमंजरी की प्राकृत भाषा में पात्रों के विचारों को व्यक्त करने का तरीका उनके संवाद और कथोप कथन में जो वक्रता पाई जाती है वह वाक्यवक्रता का उदाहरण है। इसी तरह विद्धशालभञ्जिका नाटक की नायिका के चंचल नेत्र के लिए डिंभहरिणाक्षि (डिंभहरिणच्छि) और मृगाङ्कावलि जैसे शब्दों का प्रयोग एक प्रकार की वाक्यवक्रता का उदाहरण है - **(नेपथ्ये) सहि मिअंकावलि ! संपदं मए णिसग्गत्थए दूदीए होदव्वं। (सखि मृगाङ्कावलि! साम्प्रतं मया निसर्गस्थया दूत्या भवितव्यम्।)**

राजा-सैवेयमस्मन्मनसि मन्मथेनेदानोमुत्कीर्यते मृगाङ्कावलीति पञ्चाक्षरी।[18]

प्रकरणवक्रता - प्रबन्ध के एकदेश रूप प्रकरण में जो वक्रभाव सहज स्वाभाविक आहार्य अर्थात् व्युत्पत्ति द्वारा उत्पन्न किया गया तथा रमणीयता से मनोहर अथवा हृदयहारी किया हुआ प्रकरणवक्रता कहलाता है-

वक्रभावो विन्यासवैचित्र्य प्रबन्धैकदेशभूते प्रकरणे या दृशोऽस्ति या–ग् विद्यते, प्रबन्धे वा नाटकादौ सोऽप्युच्यते कथ्यते। कीदृशः, सहजाहार्यसौकुमार्यमनोहरः। सहजं स्वाभाविकं, आहार्य व्युत्पत्युपार्जितं, यत्सौकुमार्य रामणीयकं तेन मनोहरो हृदयहारी यः, स तथोक्तः।[19]

आचार्य कुंतक ने प्रकरण वक्रता के अनेक भेद बतलाए हैं। इनके अनुसार कहीं (किसी एक) प्रकरण के अन्तर्गत, सामाजिक लोगों के आनन्द को उत्पन्न करने में सिद्धहस्त नटों द्वारा, उन (सामाजिकों) की भूमिका में स्थित होकर (अर्थात् सामाजिक बन कर), दूसरे नटों का निर्माण कर उपस्थित किया गया (स्मृत) अन्य प्रकरण सम्पूर्ण प्रबन्ध की प्राणभूत वक्रता को पुष्ट करता है ।

समस्त प्रबन्ध की सर्वस्वभूत वक्रता का पोषण करता है अर्थात् सम्पूर्ण रूपक के प्राणरूप वक्रभाव को व्यक्त करता है। कहीं प्रकरण के भीतर स्मरण किया गया दूसरा प्रकरण। किसी कवि कौशल की सृष्टि से सुशोभित होने वाले नाटक में, सब जगह नहीं। अर्थात् एक (अङ्क) के मध्य में स्थित दूसरे अङ्क में निवेशित अथवा जिसका गर्भाङ्क यह नाम होता है। किस प्रकार का अन्य नटों के निर्माण बाला अर्थात् दूसरे नर्तक की कल्पना वाला। कैसे नटों के द्वारा - सामाजिक लोगों के आनन्द का निर्माण करने में दक्ष (नटों) के द्वारा अर्थात्

सहृदयगोष्ठी को सन्तुष्ट करने में सिद्ध हस्त (नटों) के द्वारा। उनकी भूमिका में स्थित होकर अर्थात् सामाजिक बनकर। यहाँ आशय यह है कि कहीं-कहीं पर ही असीम कौशल वाले नट अपनी भूमिका के निर्वाह से रङ्गमञ्च को अलंकृत करते हुए अन्य नर्तकों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले एवं प्रस्तुत पदार्थ के प्राण सदृश, तथा वक्रता के माहात्म्य को उल्लसित करने वाले मध्यवर्ती दूसरे प्रकरण में सामाजिक से होकर नाना प्रकार की भावनाओं के वैचित्र्यों से साक्षात् सामाजिकों के किसी अपूर्व चमत्कार की विचित्रता को प्रस्तुत करते हैं-

सामाजिकजनाह्लाद निर्माणनिपुणैर्नटैः। तद्भूमिकां समास्थाय निर्वर्तितनटान्तरम्।।
क्वचित्प्रकरणस्यान्तः स्मृतं प्रकरणान्तरम्। सर्वप्रबन्धसर्वस्वकलां पुष्णाति वक्रताम्।।

सर्वप्रबन्धसर्वस्वकलां पुष्णाति वक्रताम्, सकलरूपकप्राणरूपकं समुल्लासयति वक्रिमाणम्। क्वचित्प्रकरणस्यान्तः स्मृतं प्रकरणान्तरम्-कस्मिंश्चित्कविकौशलोन्मेषशालिनि नाटके, न सर्वत्र। एकस्य मध्यवर्ति अङ्कान्तरगर्भीकृतम् गर्भो वा नाम इति यावत्। किंविशिष्टम् -निर्वतितनटान्तरम्, विभावितान्यनर्तकम्। नटैः कीदृशैः-सामाजिक-जनाह्लादनिर्माणनिपुणैः सहृदयपरिषत्परितोषणनिष्णातैः। तद्भूमिकां समास्थाय सामाजिकीभूय।[20]

जैसे- बालरामायण के तृतीय अङ्क में प्रहस्त का अनुकरण करने वाले नट से अनुसरण किया जाता हुआ रावण का अनुवर्तन करने वाला नट गर्भाङ्क में प्रस्तुत 'सीतास्वयंवर' नाटक को सामाजिक रूप में स्थित होकर देखते हुए वैचित्र्य की सृष्टि करता है। उस 'सीतास्वयंवर' नामक गर्भाङ्क नाटक का नान्दी इस प्रकार है-

कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने। नमः शृङ्गारबीजाय तस्मै कुसुमधन्वने।।
श्रवणैः पेयमने कैर्दृश्यं दीघैश्च लोचनैर्षहुभिः। भवदर्थमिव निबद्धं नाट्यं सीतास्वयंवरणम्।।[21]

अर्थात् कर्पूर के समान जला दिए गए भी जो जन-जन में शक्तिमान (रूप से विद्यमान) है उस फूलों का धनुष धारण करने वाले शृङ्गार के बीजभूत (कामदेव) को नमस्कार है। यह 'सीतास्वयंवरण' नामक नाट्य मानों आप लोगों के लिये ही विरचित है इसकी संगीत सुधा आप लोगों के श्रवणों के द्वारा पान करने योग्य है और इसकी अभिनयरमणीयता आपके अनेकानेक विशाल लोचनों के द्वारा दर्शनीय है।

प्रबन्धवक्रता - काव्य या नाटक में वर्णविन्यास वक्रता आदि पांच प्रकार की वक्रता से सुंदर सहृदयहृदयालादकारी नायक रूप महापुरुष का वर्णन प्रतीत होता है परंतु वास्तव में कवि का प्रयोजन केवल उस महापुरुष के चरित्र का वर्णन करना मात्र नहीं होता है अपितु राम के समान आचरण करना चाहिए रावण के समान नहीं, इस प्रकार का विधि और निषेधात्मक धर्म का उपदेश उस काव्य या नाटक का फलितार्थ होता है। यही उस प्रबन्ध काव्यादि की वक्रता या सौन्दर्य है- **प्रबन्धे वक्रभावो यथा कुत्रचिन्महाकविविरचिते रामकथोपनिबन्धे नाटकादौ पञ्चविधवक्रतासामग्रीसमुदायसुन्दरं सहृदयहृदयहारि महापुरुषवर्णनमुपक्रमे प्रतिभासते। परमार्थतस्तु विधिनिषेधात्मकधर्मोपदेशरूपर्यवस्यति, रामवद्वर्तितव्य न रावणवदिति।**[22]

आचार्य राजशेखर के सभी नाटकों में प्रबंध वक्रता का बड़ा ही सुंदर सन्निवेश है बाल रामायण नाटक में वाल्मीकि रामायण आश्रित मूलरामकथा कथा को वर्ण विन्यास पद पूर्वाद है प्रत्यश्रित वाक्य वक्रता और प्रकरण वक्रता से सुंदर सहृदयहृदयाह्लादकारी नायक रूप महापुरुष का वर्णन की प्रतीति होती है किंतु यदि वास्तव में विचार किया जाए तो कवि का प्रयोजन केवल उसे महापुरुष के चरित्र का वर्णन करना नहीं रहा है अभी तो राम आदि की तरह आचरण करना चाहिए रावण आदि की तरह है नहीं इस प्रकार का विधि और

निषेधात्मक धर्म का उपदेश इस नाटक से प्राप्त होता है यही इस नाटक की वक्रता या सौंदर्य है। इसी प्रकार बालभारत नाटक में प्रबन्धवक्रता दृष्टिगत होती है।

महाकवि राजशेखर के रूपको में आचार्य कुंतक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है, यह वक्रोक्ति निश्चित रूप से काव्य का जीवनाधायक तत्त्व है जिसके विना पूरा नाटक निरस हो जायेगा। इसीलिए कुन्तक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति काव्य का जीवनाधायक तत्त्व है। अतः यह कहा जा सकता है कि राजशेखर में न केवल कविता की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति का समर्थ है अपितु उनमें निश्चित रूप से काव्य-समीक्षण करने का भी प्रतिभा है। इसीलिए आचार्य कुंतक ने राजशेखर को एक विचित्रमार्गानुयायी कवि के रूप में निर्देशित किया है - **तथैव च विचित्रवक्रत्वविजृम्भितं हर्षचरिते प्राचुर्येण भट्टबाणस्य विभाव्यते। भवभूतिराजशेखर विरचितेषु बन्धसौन्दर्यसुभगेषु मुक्तकेषु परिदृश्यते।**

सन्दर्भ -

1. *वक्रोक्तिजीवित, पृ.-68*
2. *वक्रोक्तिजीवित, 2/1*
3. *बालरामायण, 5/73*
4. *विद्धशालभञ्जिका, 2/8*
5. *बालभारत, 1152*
6. *कर्पूरमञ्जरी, 2/3*
7. *वक्रोक्तिजीवित, 50 69-70*
8. *वक्रोक्तिजीवित, पृ.75*
9. *विद्धशालभञ्जिका, 2/21*
10. *वक्रोक्तिजीवित, पृ.-71*
11. *बालरामायण, 3/47*
12. *वक्रोक्तिजीवित, 79-80*
13. *विद्धशालभञ्जिका, 1/23*
14. *विद्धशालभञ्जिका, 2/21*
15. *वक्रोक्तिजीवित, पृ. 86*
16. *बालरामायण, 3/27*
17. *वक्रोक्तिजीवित, 2/20*
18. *विदद्धशालभञ्जिका, 70 53*
19. *वक्रोक्तिजीवित, 1121*
20. *वक्रोक्तिजीवित, 4/12-13*
21. *बालरामायण, 3/11-12*
22. *वक्रोक्तिजीवित, 1/21 पृ.-97*

13

राजशेखर की नाट्य-कृतियों में अद्भुत रस

*आशा सिंह रावत *, बाबूलाल मीना ***

राजशेखर स्वयं को भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार मानते हैं।[1] उनकी कृतियों में अद्भुत रस का विवेचन यहाँ अभीष्ट है।

विद्धशालभंजिका में अद्भुत रस विवेचन- यह शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका है। इसमें चार अंक हैं। जिसमें कथावस्तु प्रणय और परिणय पर अवलम्बित है और राजा के अन्तःपुर की प्रणयलीला की विचित्रताओं का निरूपण है। नाट्यकार राजशेखर ने हर्ष की रत्नावली को आधार बनाकर देवज्ञों के भविष्यज्ञान व उनकी भविष्यवाणी में तत्कालीन जनों के विश्वास को नाटिका की प्रणयकथा का आधार बनाया है। इसमें मुख्य रस श्रृंगार है तथा प्रसंगानुसार वीर, अद्भुत आदि रसों की सम्यक् योजना हुई है। प्रथम अंक में प्रस्तावना के पश्चात् भागुरायण अमात्य का शिष्य हरदास मन्त्री भागुरायण की बुद्धि की अद्भुत चातुरी पर आश्चर्य व्यक्त करता है- अहह! प्रज्ञाप्रकर्षः सर्वेषामुपरि वसति। तदुक्तम् - श्रियः प्रसूते ..... बुद्धिः किल कामधेनुः।[2] और भी- लाटेन्द्रचन्द्रवर्मा .... षाड्गुण्यचक्षुः।।[3] तत्पश्चात् विष्कम्भक की समाप्ति के पश्चात् सोकर उठे हुए तथा स्वप्न में अपूर्व सुन्दरी को देखने से उत्कण्ठायुक्त राजा विद्याधरमल्ल तथा दरवाजे पर खड़े हुए विदूषक चारायण प्रवेश करते हैं। राजा उस अनुपम सुन्दरी के सौन्दर्य से अत्यन्त विस्मित होता है और उसके सामने चन्द्र, सुधा, कामदेव आदि को व्यर्थ एवं फीका मानता हुआ विधाता के अपूर्व वस्तु निर्माण पर आश्चर्य व्यक्त करता है-

तद्वक्त्रं यदिमुदिता शशिकथा हा हेम सा चेद्युतिः तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्तच्चेत् स्मितं का सुधा।
धिक् कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ च यदि ते किं वा बहु ब्रूमहेयत्सत्यं तुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः।।[4]

विदूषक के पूछने पर राजा स्वयं को उस अपूर्व सुन्दरी अंगना के मन्मथ से ग्रसित मानता है।[5] पुनः विदूषक राजा का ध्यान बाँटने हेतु प्रमदोद्यान में चलकर बसन्त के आगमन की चर्चा करता है। इसके बाद वे दोनों स्फटिक शिला मन्दिर और केलि कैलास को देखने के लिए जाते हैं, जहाँ पर अपूर्व चन्द्र की भाँति क्रौंची के केंकार सी सुन्दर ध्वनि को सुनकर राजा विस्मित होता हैं।[6] पुनः राजा उसकी अपूर्वता और उत्कृष्टता से सुन्दरता से विस्मित एवं मन्त्र मुग्ध है- इयमपूर्वैव किम्पुनरस्माकं न पुनरनंगस्य। (सम्यग् विलोक्य)

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007*

*** सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007*

सैवेयमस्मन्मनः सारंगशशिलेखा। अहो! रूपसम्पदेतस्याः चक्षुर्मेचकमम्बुजं .... वैदग्ध्यमभ्यस्यति।[7] और भी- (विमृश्य) अहो वपुश्रीर्लिखितुर्जनस्य.... यदेकवारः।[8] राजा विधाता के द्वारा निर्मित नीलकमल, चन्द्र, मृणालिका, कदली और कमलों की रचना को एकत्र इस मृगनयनी में देखकर विस्मित होता है।[9] विदूषक राजा से सुन्दरी को कृतार्थ करने की बात कहता है। तभी वह उस सुन्दरी के चित्र और उसके शरीर को चार भागों में विभक्त सा देखकर आश्चर्यचकित होता है- अहो! दयिताद्वैतं वर्तते। तथाहि- सुतनुरियमितस्तत्रच.....विभज्य सोढुम्।[10]

द्वितीय अंक में प्रवेशक के पश्चात् राजा उस अपूर्व सुन्दरी मृगांकावली के काम बाण से पीड़ित होता हुआ विस्मित होता है कि भगवान् शिव ने पाँच बाणों वाले कामदेव को भस्म कर डाला तो फिर भगवान् ब्रह्मा ने एक दूसरे अक्षय बाणों वाले कामदेव की रचना कर दी-ऐसा प्रतीत होता है।[11] पुनः वह विदूषक के साथ तुषारपुंज नामक कदलीगृह में जाते है। दासी अकस्मात् उन्हें वहाँ आया देखकर विस्मित होती है। तब वहाँ राजा के मनोविनोद के लिये महामन्त्री के द्वारा रत्नवती नामक चौकी को बनी हुई देखकर, उस पर चित्रित उसी अपूर्व सुन्दरी को देखकर राजा उसे पुराने ब्रह्मा की सृष्टि बताता हुआ विस्मित होता है।[12] अत्यन्त वेग से कन्दुक क्रीडा से राजा और अधिक विस्मयाभिभूत हो उठता है- (भूयो विभाव्य)-अहह! महता वेगेन वर्तते। तथाहि- चेलांचलेन.....नतभ्रूः।[13]

अचानक उसके कन्दुक क्रीडा से विरत हो जाने पर वे दोनों चली गई, उस सुन्दरी का अनुसरण करते हैं। उसके अकस्मात् नहीं दिखाई देने पर, छिप सी जाने पर राजा काम ही मुझे मोह से ग्रसित कर रहा है-ऐसा सोचता हुआ आश्चर्यचकित होता है-

इयं चरणकुंकुमच्छुरितकुट्टिमा मेदिनी निवेदयति कन्दुकव्यतिकरं कुरंगीदृशः।
अहो किमिदमद्भुतं न च कृशोदरी दृश्यते। भवत्ववगतं स्मरः सृजति मोहमायामि माम्।[14]

तृतीय अंक में मदनसन्तप्त राजा विदूषक से वार्तालाप प्रसंग में मदनसन्ताप को दूर करने वाली सामग्री को व्यर्थ बताते हुए विस्मित होता है-अहह! अपर्यालोचितमाचरितम्। यतः शीतांशुर्विषसोदरः..... वंचिताः।।[15]

तत्पश्चात् काम पीड़ित मृगांकावली के पास राजा उसे सान्त्वना देने ज्यों ही उपस्थित होता है। मृगांकावली उसके रूपसौन्दर्य से आश्चर्यचकित हो जाती है और उसे कामदेव जैसा समझने लगती है- किमेषोऽनभ्रोवर्षः.....श्रीः सरस्वती मदनसुन्दरी च। चतुर्थ अंक में महारानी के द्वारा कुरंगिका नामक दासी के माध्यम से भेजे सन्देशानुसार महाराज विद्याधरमल्ल प्रसन्न होकर अन्तःपुर में मृगांकावली से विवाह सम्पन्न कर लेते हैं। सब घटनाचक्रों को देखकर और सुनकर लाट देश का आया हुआ दूत विदूषक के स्मृतिविषयक ज्ञान पर विस्मित होता है- अहो! स्मृतिवैशद्यं नर्मसचिवस्य चारायणस्य। तभी कुवलयमाला का भी राजा के साथ विवाह हो जाने पर कुवलयमाला का राजा की श्यालभार्या से सकलभार्या बनने की बात विदूषक के द्वारा कही जाने पर महारानी विस्मित एवं तत्फलस्वरूप लज्जित होती है। बाद में कुन्तलदेश के स्वामी वीरपाल के राजा की शरण में आ जाने पर, कार्णाट के पराजित हो जाने पर दक्षिण दिशा की विजय से महाराज के चक्रवर्ती सम्राट् पद की प्राप्ति हो जाने पर सभी महामन्त्री भागुरायण की षाड्गुण्य आदि नीतियों की राजनैतिक सफलता पर आश्चर्यचकित होते हैं। इस शुभ समाचार को सुनकर सभी हर्ष विभोर भी होते हैं।

कर्पूरमंजरी में अद्भुत रस विवेचन- कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिकान्तर में प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक कपिंजल अन्य परिजनों के साथ मंच पर आते हैं। शिशिर ऋतु का अन्त तथा बसन्त का

प्रार्दुभाव हो रहा है। राजा तथा रानी शिशिर को पराजित कर हठात् आये बसन्त तथा मलय-पवन का वर्णन करते हैं। राजा बसन्तोत्सव को जीतकर हठात् शिशिर के आने पर आश्चर्य व्यक्त करता है।[16] तत्पश्चात् विदूषक भैरवानन्द नामक एक अद्‌भुत योगी के साथ पुनः आता है। रानी उस अद्‌भुत सिद्धि वाले भैरवानन्द के आने की सुनकर आश्चर्यचकित होती है- किं सः यो जनवचनादत्यद्‌भुतसिद्धिः श्रूयते।

वस्तुतः राजशेखर की कर्पूरमंजरी में कुछ ही ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें अद्‌भुत रस की अवतारणा हुई है। मनुष्य प्रायः कुतूहलपूर्ण होता है और अद्‌भुत दृश्यों को देखने से उसकी तृप्ति होती है। प्राचीनकाल में नाटककार अपनी कृतियों में ऐसे चमत्कारों की योजना करते थे, जो दर्शकों को इस प्रकार के दृश्यों से प्रभावित करते थे। कर्पूरमंजरी की प्रथम जवनिका में ऐसा ही यह भैरवानन्द सम्बन्धी दृश्य उपस्थित हुआ है। अलौकिक शक्ति सम्पन्न अद्‌भुत योगी भैरवानन्द का रंगमंच पर आगमन होता है जिसके अद्‌भुत कथन और क्रिया-कलापों से दर्शक मण्डली विस्मितावस्था रूपी सागर में गोता लगाने लगती है। भैरवानन्द रंगमंच पर आते ही कहता है कि कौलमार्गी (कुण्डलिनी जगाने वाले) हम लोग मदिरा पीते हैं। स्त्री रमण करते हैं (फिर भी) गुरु कृपा से मोक्ष प्राप्त करते हैं। हम लोग मन्त्र, तन्त्र, ध्यान अथवा ज्ञान कुछ भी नहीं जानते हैं-

मन्त्रो न तन्त्रं न च किमपि ज्ञानं ध्यानं च नो किमपि गुरुप्रसादात्।
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो मोक्षं च यामः कुलमार्गलग्ना।।[17]

इसमें भैरवानन्द आलम्बन विभाव, उसके विभिन्न कृत्य उद्दीपन विभाव, राजा और अन्य परिजनों की सभा आश्रय है। रोमहर्षण, नयन विस्तार आदि अनुभाव हैं। हर्ष, आवेग, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं जिनसे स्थायीभाव विस्मय परिपुष्ट होकर अद्‌भुत रस के रूप में अभिव्यक्त होता है।

विष्णु, ब्रह्मा आदि देवता ध्यान (समाधि), वेदाध्ययन तथा यज्ञ आदि क्रियाओं के द्वारा मुक्ति प्राप्त होना बतलाते हैं किन्तु केवल अकेले उमानाथ शिवजी की कृपा दृष्टि होते ही सम्भोग, सुरापान आदि के साथ भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है।[18] यहाँ सम्भोग, सुरापान आदि के साथ भी मोक्ष प्राप्ति करना विस्मयकारक होने से अद्‌भुत रस है। भैरवानन्द जब राजा के समक्ष उपस्थित होता है तब राजा चण्डपाल कहता है कि किसी भी विषय में अद्‌भुत कार्य देखना चाहता हूँ तो कोई आश्चर्य की बात दिखलाइये। तब भैरवानन्द राजा को सभी कार्य करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन करता हुआ कहता है कि मैं आकाश में स्थित चन्द्रमा को भी भूतल पर उतार कर दिखा सकता हूँ। मध्याकाश में सूर्य के रथ को भी रोक सकता हूँ तथा यक्ष-देव-सिद्ध गणों की स्त्रियों को भूतल पर ला सकता हूँ-ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो कि मैं नहीं कर सकता हूँ-

दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्ण स्तभ्नामि तस्यापि रवे रथं नभोऽर्धे।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणांगना तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम्।।[19]

इस प्रकार यहाँ अद्‌भुत कृत्यों के करने से विस्मय भाव ही व्यक्त होकर अद्‌भुत रस में अभिव्यक्त होता है।

राजा के कोई अद्‌भुत महिला रत्न दिखाने की विदूषक को परामर्श देने पर आग्रह किये जाने पर भैरवानन्द ध्यान की मुद्रा में बैठकर अपने योग बल से दक्षिणा पथ के वैदर्भ नामक नगरी की कन्या रत्न राजकुमारी को स्नान क्रीडारत एक वस्त्र ही पहने की अवस्था में उपस्थित कर देता है। यह एक अद्‌भुत घटना है जिससे सभी लोग आश्चर्यचकित होते हैं और इस प्रकार योगी भैरवानन्द द्वारा योग बल से नायिका की अवतारणा अद्‌भुत रस की व्यंजना करता है। राजा चण्डपाल उस अपूर्व सौन्दर्यमण्डित सुन्दरी को देखकर अत्यन्त विस्मित होता है- अहह, आश्चर्यमाश्चर्यम् -

यद्धौतांजनशोणलोचनयुगं लग्नालकाग्रं मुखंहस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद्विबन्दवः।
यदेकं सिचयांचलं निवसितं तत्स्नानकेलिस्थिताआनीतेयमद्भुतकजननी योगीश्वरेणामुना।।[20]

अर्थात् अहा! महान् आश्चर्य है-जिसका काजल धुला अरुण लोचन युगल है, केशाग्र भाग से स्पर्श करता हुआ मुख है। जिसके हाथ से पकड़े हुए केशों से जल की बूँदे टपक रही हैं, जिसने केवल एक गीला वस्त्र पहन रखा है-ऐसी स्नान क्रीडारत यह आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सुन्दरी इस योगिराज द्वारा ले आई गई है। विदूषक भी नायिका के रूप सौन्दर्य से प्रभावित एवं विस्मित होता है।[21] और कहता है अहो! अस्या रूपलेखा। स्वयं नायिका भी सामने राजा की शोभा को देखकर विस्मित होती है। राजा भी नायिका के लावण्य से अत्यन्त विस्मित एवं प्रभावित है और अपने कामबाणों से पीड़ित होने की बात कहता है।[22] रानी स्वयं भी नायिका की रूपशोभा से अत्यन्त विस्मित होती है। इस प्रकार यहाँ सट्टककार राजशेखर ने अद्भुत रस को समग्र रूप से उसके अनुभावों और व्यभिचारी भावों के साथ चित्रित किया है। भैरवानन्द का अपनी रूपशोभा से अन्य सुन्दरियों का अतिक्रमण करने वाली स्नानरत अपूर्व सुन्दरी को उपस्थित करने रूप चातुर्य पूर्ण कार्य दर्शकों के लिए विस्मयकारक होने से अद्भुत रस की सृष्टि करता है। नायिका को देखकर राजा के अन्दर उत्पन्न होने वाले विभिन्न भावों को विशेष रूप से राजशेखर ने अपनी सुवर्णमयी तूलिका से चित्रित किया है। इस प्रकार की अद्भुत घटनायें नाटकीय दृश्य में मोड़ उत्पन्न करती हैं और दर्शकों में कुतूहल जाग्रत होता है तथा सट्टक की कथा को गतिमान रखती है। इस प्रकार यहाँ अद्भुत रसाभिव्यक्ति दर्शकों का पर्याप्त मनोरंजन करती है।

मुख सन्धि में विभिन्न रसों को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पायी जाती है। यह सन्धि बीज नामक अर्थप्रकृति एवं आरम्भ नामक अवस्था के संयोग से बनती है। कर्पूरमंजरी की प्रस्तावना से लेकर प्रथम जवनिकान्तर तक की कथा इस सन्धि के अन्तर्गत आती है। इस जवनिकान्तर में अद्भुत, हास्य एवं श्रृंगार रसों की अभिव्यक्ति हुई है। द्वितीय जवनिकानन्तर में राजा तथा प्रतिहारी प्रवेश करते हैं। राजा इधर-उधर कर्पूरमंजरी को खोजते हुए उसके रूप सौन्दर्य से विस्मित होकर उसका वर्णन करता है।[23] इसके बाद दोनों मरकतपुंज में जाते हैं। जहाँ राजा कर्पूरमंजरी के विरह से दग्ध होने पर स्वयं आश्चर्य करता है- किसलयकरचरणपि खलु कुवलयनयना मृगांकवदनापि। अहह नवचम्पकांगी तथापि तापयत्याचर्यम्।।[24] तत्पश्चात् महारानी के आदेश से कर्पूरमंजरी कुरवक, तिलक तथा अशोक वृक्ष को अभीष्ट दोहद आलिंगन, दर्शन तथा पैर की ठोकर हेतु वहाँ आती है। कर्पूरमंजरी के द्वारा कुरवक वृक्ष के आलिंगन करने सहसा फूल निकल आने पर राजा विस्मित होता है।[25] विदूषक भी आश्चर्यचकित होता है।[26] इसी तरह कर्पूरमंजरी के तिलक वृक्ष को तिरछे देखे जाने पर उसके सहसा मंजरी पुष्प से अंकुरित अग्रभाग वाला बन जाने पर राजा विस्मित होता है।[27] और अशोक वृक्ष को ठोकर मारने पर उसके पुष्प-गुच्छ हो जाने पर राजा पुनः विस्मित होता है।[28] तृतीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा और विदूषक कर्पूरमंजरी का अन्वेषण करते हैं। विदूषक राजा को एक अद्भुत स्वप्न सुनाता है, जिसे सुनकर राजा विस्मित होता है- आश्चर्यमाश्चर्यम्, ततस्ततः.....अहो! विचित्रता स्वप्नस्य, ततस्ततः। उधर कर्पूरमंजरी काम पीड़ित है। उसे शीतल उपचार की समस्त सामग्री पीड़ादायक एवं शरीर को जलाने वाली लगती है।[29] जिस पर सखी कुरंगिका विस्मित होती है। चतुर्थ जवनिकान्तर में प्रारम्भ में प्रचण्डगर्मी से विस्मित होता है-अहो, गाढ़तरो ग्रीष्मः, पवनश्चप्रचण्डः। तत्कथं नु सोढ़व्यः, यतः -इह कुसुमशरैकगोचराणमिदमुभयमपि.....प्रियेण विप्रलम्भः।।[30] विदूषक नर्तकी के क्रियाकलापों पर आश्चर्य करता है।[31] रानी भी आती है और वह सामने अकस्मात् कर्पूरमंजरी को देखकर विस्मित हो जाती है-अये, इयं भगवती चामुण्डा। अथेयं कपूर्रमंजरी। तत्किमिदम्? पुनः रक्षागृह में भी उसे देखकर आश्चर्य करती

है- अये, इयं कर्पूरमंजरी! सा कापि सदृशा मया दृष्टा। पुनः भैरवानन्द के समक्ष जाकर उसे देखकर विस्मित होती है- (पुरोऽवलोक्य) - इयं कर्पूरमंजरी। पुनः रक्षागृह में जाकर उसे देखकर विस्मित होती है- अये! सादृश्येन विडम्बितास्मि। पुनः चामुण्डायतन में सभी प्रवेश करते हैं। राजा कर्पूरमंजरी के गुण, रूप आदि व्यक्तित्व से पुनः विस्मित होता है।[32] विदूषक कपिंजल अग्नि में आहुति आदि कार्य की तैयारी करता है और राजा से कहता है कि कर्पूरमंजरी का पाणिग्रहण करो और मैं जब तक उत्तरीय में ग्रन्थि लगा दूँ। दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। सभी विस्मित होते हैं।

इस प्रकार चतुर्थ जवनिकान्तर में भैरवानन्द अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन कर विस्मय की स्थिति उत्पन्न कर देता है। वह अपनी अलौकिक शक्ति के बल पर ही राजा का कर्पूरमंजरी से विवाह सम्पन्न करा देता है। इस दृश्य में भैरवानन्द एक ही पात्र को कर्पूरमंजरी एवं घनसारमंजरी के रूप में अवतरित कराता है। कर्पूरमंजरी अपने स्थान पर रहती है किन्तु विवाह के अवसर पर घनसारमंजरी के रूप में उसका अवतरण सम्पूर्ण वातावरण को विस्मययुक्त कर देता है। इस दृश्य में पाठक एवं दर्शक अद्‌भुत रस का आस्वादन कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हैं।

इस प्रकार सट्‌टककार राजशेखर ने कर्पूरमंजरी में अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति के लिए मुख्यतः कौलमतावलम्बी अद्‌भुत योगी भैरवानन्द की अवतारणा करायी है, जो अपने अद्‌भुत कृत्यों से सम्पूर्ण दर्शक मण्डली को विस्मयान्वित कर देता है। सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर में भैरवानन्द रंगमंच पर आते ही अपनी अद्‌भुत एवं अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अपनी सिद्धि के बल पर सद्यःस्नाता और एकवस्त्र सुन्दरी का उसके स्नानागार से अपहरण कर अवतरण कराता है, जो पाठक एवं दर्शक को विस्मय में डाल देता है और इस दृश्य से पाठक एवं दर्शक अद्‌भुत रस की चर्वणा कर विस्मयावस्था को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार चतुर्थ जवनिकान्तर में भैरवानन्द नायक का कर्पूरमंजरी के साथ विवाह अत्यन्त ही अलौकिक ढ़ंग से सम्पन्न कराता है, जहाँ पर अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार कर्पूरमंजरी सट्‌टक में राजशेखर अद्‌भुत रस की नियोजना में पूर्ण सफल हुए हैं।

बालरामायणम् में अद्‌भुत रस विवेचन- नाटककार राजशेखर ने 'बालरामायणम्' की प्रस्तावना में स्वयं कहा है कि इसमें वीर एवं अद्‌भुत रसों की विशेष योजना की है- वीराद्‌भुतप्रायरसे प्रबन्धे लोकोत्तरं कुशलमस्ति यस्य। नाट्ये च नृत्ये च परं प्रवीणामस सुतां मे परिणेष्यतीति।।[33] इससे इस प्रबन्ध में वीर और अद्‌भुत रस की प्राथमिकता और प्रधानता सूचित हुई है। विष्कम्भक की समाप्ति पर पुष्पक विमान से रावण और प्रहस्त आते हैं। प्रहस्त महाराज दशानन के दर्शन की आकांक्षा से गगन में व्याप्त देव समूह को देखकर विस्मित होता है- वह्ने निह्नोतुमर्चिः.....श्रीदशास्यः।।[34] रावण भी उत्सुक और विस्मित होता हुआ पुष्पक विमान से शीघ्र ही जनक की राजधानी चलने को कहता है- सेवागतामरविमानहस्रसेना.....च।[35] यहाँ पुष्पक विमान अलोकिक एवं दिव्य है, जो अद्‌भुत रस का आलम्बन विभाव है। द्वितीय अंक में विष्कम्भक में शिव का गण भृंगिरिटि स्वयं की वेशभूषा से विस्मित होते हैं और पुनः अचानक समक्ष ही नारद को देखकर विस्मयविमूढ़ हो जाते हैं- अये नारदः। कलहकुतूहली खल्वेष मुनिः। यद्वा- लिंगोद्‌भवव्यतिकरे.....प्रियसंप्रहारः।।[36] नारद और शिव का गण भृंगिरिटि दोनों ही दिव्य जन है, जो दर्शक तथा पाठकों के लिए अद्‌भुत रस के आलम्बन विभाव है, अतः दिव्य अभुत रस है।

तृतीय अंक में राम के द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने पर उसके टूट जाने से प्रतीहारी विस्मयित होता है और कहता है- न केवलमाकृष्टं भग्नं च (किञ्चिदुच्चैः)-

संस्पर्शादपि मन्थरस्य मरुतः सिञ्जानसिञ्जालतं सार्द्धं क्षावधव्रतैकगुरुणा क्रौञ्चाचलद्वेषिणाः।
दोर्दण्डाञ्चलमण्डलीकृतमिदं रामेण राज्ञां पुरः प्रागप्राप्तपराभवं भवधनुष्टंकारवत् त्रुटयति।।[37]

अर्थात् मन्द पवन के स्पर्श से भी शब्दायमान प्रत्यञ्चा वाला तथा इसके पूर्व भी किसी से पराजित न होने वाला यह शंकर का धनुष राम के द्वारा क्षत्रियों के वध की प्रतिज्ञा से प्रचण्ड एवं क्रौञ्च पर्वत के विदारक परशुराम तथा राजाओं के सामने बाहुदण्ड के आकर्षण से मण्डलाकार हुआ और टङ्कार के साथ ही टूट रहा है। यहाँ इस पद्य में शिवधनुष आलम्बन विभाव है तथा उसका टूटना उद्दीपन विभाव है। प्रतीहारी का उस और देखकर जोर से श्लोक का कहना अनुभाव है और हर्ष, आवेग, जडता आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे परिपुष्ट विस्मय नामक स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र[38] और शतानन्द[39] भी इस अद्भुत कार्य से विस्मित होते हैं। राजा जनक कहते हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी तल के राजाओं के लिए दुष्कर इस महान् कार्य के राम के द्वारा सद्यः कर लेने पर मेरा चित्त शंकर के धनुष के टूटने से दुःखी हो रहा है और जामाता के मिलने से प्रसन्न हो रहा हैं- विश्वक्षमातलनरेश्वर दुष्करेऽस्मिन्.....मोदते च।।[40] यहाँ राजा जनक अपने हृदय में एक साथ आये दुःख और प्रसन्नता के भाव को जानकर विस्मयविमूढ़ होता है। इस प्रकार यहाँ सहसा मनोरथ की प्राप्ति विश्वामित्र, शतानन्द और जनक के मन में हुए हर्षातिरेक के कारण हर्षज या आनन्दज अद्भुत रस अभिव्यक्त हुआ है।

षष्ठ अंक में मृग की भाँति-भाँति की चेष्टाओं से रामभद्र विस्मित होते हैं।[41] लक्ष्मण भी मृग चेष्टाओं से विस्मित और कोतुहल युक्त हुए कहते हैं।[42] यहाँ पर स्वर्णमृग आलम्बन विभाव है। मृग का उछलना, कूदना आदि उद्दीपन विभाव है। नेा विस्फार, रोमांच आदि अनुभव हैं और हर्ष, आवेग, वितर्क आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनमें परिपुष्ट होकर विस्मय नामक स्थायीभाव अद्भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ हेममृग का अतिलोक वस्तु होना मूलतः अद्भुत रसाभिव्यक्ति का कारण है।

सप्तम अंक में प्रतिहार की इस उक्ति में- सुग्रीवे.... दृष्टयः।।[43] प्राण, असूया, आश्चर्य, रोश, उत्साह, क्षोभ तथा रस आदि शब्द स्वशब्दवाच्य हैं। व्यभिचारी भावों, रसों एवं स्थायी भावों का विभावानुभावमुखेन वर्णन करने से रस का पल्लवन होता है। इनका सीधा नाम ग्रहण कर लेने पर रस निष्पत्ति न होकर उसमें व्याघात उत्पन्न हो जाता है..... यहाँ जो नामतः उपादान हुआ भी है, यहाँ उनकी असाधारणता स्पष्ट करने के लिए होने से 'औचित्य' की सीमा का अतिक्रमण नहीं होता, अतः उसे दोष नहीं कहा जाएगा। निर्वहण सन्धि के नवम अंक में प्रारम्भ में ही अलौकिक दिव्यपुरुष स्वरूप यमानुचारों का वार्तालाप एवं रावण के अद्भुत कृत्यों का चित्रण हुआ है। इन्द्र और दिव्य दशरथ राम-रावण युद्ध के वर्णनकर्ता हैं। अद्भुत रस के ये विभाव हैं। इनकी उक्तियाँ विस्मय से ओतप्रोत हैं। रावण का असाधारण शरीर अद्भुत रस को अभिव्यक्त करता है, जिसमें राम के पैने बाण भी उसे कामबाण या फूलों जैसे लगते हैं। दोनों के मध्य हो रहा मायायुद्ध अत्यन्त विस्मयकारी है। इसी प्रकार निर्वहण सन्धियुक्त दशम अंक में भी लंका एवं अलका का प्रकट होना, सीता का अग्नि में प्रवेश कर निकल आना, प्राचीनकालीन विमान यात्रा, चन्द्रलोक यात्रा, कुबेर का याचनार्थ अयोध्या आना आदि प्रसंग अद्भुत रस के अभिव्यंजक हैं। इस प्रकार निर्वहण सन्धि युक्त नवम एवं दशम अंकों में अद्भुत रस का सञ्चार आद्यन्त व्याप्त है।

बालभारतम् (प्रचण्डपाण्डवम्) में अद्भुत रस विवेचन - प्रथम अंक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ के बाद सूत्रधार विस्मित हुआ कहता है कि-अहो! किमपि कमनीया कवेरात्मन्याशीः।.... (विमृश्य) अहो! मसृणोद्धतां सरस्वती यायावरस्य। अर्थात् आश्चर्य है कि यायावरकुलोत्पन्न (राजशेखर कवि) की सरस्वती बड़ी ही कोमल तथा

उदात्त है। स्वयंवरशाला में द्रौपदी के रूपसौन्दर्य से युधिष्ठिर विस्मित होते हैं- (सस्पृहमवलोक्य) हंहो लोचनचकोरकौ! आतृप्तेरापिबतं द्रौपदीवदनेन्दुचन्द्रिकाम् कण्ठे मौक्तिकदाम..... व्योम्नि द्रुतं गच्छतः।[44] इसी प्रकार भीम, अर्जुन भी विस्मित होते है।[45] सहदेव तो द्रौपदी के सौन्दर्य से अत्यन्त प्रभावित एवं विस्मयविमूढ़ हुआ उसे अमानुश सौन्दर्य कहता है-इदमग्रे हृदयलेह्यममानुशं लावण्यम्। इसी प्रकार नकुल भी द्रौपदी लावण्य से अत्यन्त आश्चर्यचकित है।[46] इसके बाद बन्दी उच्च स्वर का आश्रय लेकर कहता है कि इस सभा में जो राधा को बाण का लक्ष्य बनायेगा, कामदेव की विजयपताका स्वरूप द्रौपदी उसकी कलत्र (पत्नी) होगी। इस वचन को सुनकर उपस्थित राजाओं की प्रतिक्रिया पर बन्दी अत्यन्त आश्चर्यचकित होता है- अहह! कुसुमायुधस्याप्रतिहतं भगवतः शासनम्। यतः - जातं..... मदनो यूनां मदोन्मादभूः।[47] फिर बन्दी द्रौपदी का परिचय स्वयंवर में उपस्थित सभी राजाओं से कराता है। पुनः स्वयं बन्दी सोचकर भार्गव धुनष को देखकर विस्मित होता है- अहो! महाप्रभावभार्गवं धनुर्यदमुना मम चक्षुर्ज्ञानमुन्मीलितं येनात्र प्रभावं भावं च भूपतीनां प्रत्यक्षमिव पश्यामि। पुनः वह कपटी कर्ण के चरित्र पर आश्चर्यचकित होता है- अहो! महात्मनामपि कैतवानुग्रहीता वृत्तयः। यदेशः - दुर्नमं त्विह न भार्गवं धनुः..... व्रज पुरः कुरुद्वहम्।[48]

जयद्रथ के धनुष को उठाने में उदासीनता प्रकट करने और मैं तो इस स्वयंवर में कौतुक देखने के लिए आया हूँ - ऐसा कहने पर बन्दी विस्मित होता है।[49] बन्दी शिशुपाल के चरित्र का वर्णन करते हुए उसके चरित्र पर आश्चर्य व्यक्त करता है।[50] सभी राजाओं के प्रयास धनुष उठाने के विषय में निष्फल होते हैं। बन्दी कहता है कि राजाओं को पृथिवी, आकाश और समस्त दिशाओं में अनेक धनुष दिखाई दे रहे हैं-

अस्य वैष्णवमिदं महाधनुः स्वप्रभावविभवेन भूपतेः। अम्बरे भुवि दिशां च संचये दर्शयत्यतनुर्कामुकावलीः।।[51]

यहाँ धनुष आलम्बन विभाव, उसकी अनेकरूपता उद्दीपन विभाव, राजा लोग आश्रय, नेत्र विस्तार, रोमांच आदि अनुभाव, वितर्क, संभ्रम, हर्ष, आवेग आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट विस्मय ही अद्‌भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

पुनः सभी राजाओं के द्वारा धनुष को एक साथ मिलकर चढ़ाने के लिए एकत्रित होकर उठाने को और उनके हाथ पैर आदि के टूट जाने पर सभी लोग द्रौपदी आदि विस्मित होते हैं - कथम्। एते राजानो युगपुदपस्थिताचापमारोपयितुं विडम्बिताच। तथा हि- जातं कीकसभंगतः..... दामोदरीयेण के।।[52] सभी राजाओं के लक्ष्यभेदन प्रक्रिया में असफल होने पर धृष्टद्युम्न आदि दुःखी होते हैं। इसी बीच ब्राह्मणों के मध्य किसी तरुण को धनुष उठाने की ओर जाते हुए देखकर कोलाहल को सुनकर द्रौपदी की सखियाँ आश्चर्यचकित होती है- किं पुनरेष भरितभुवनकोलाहलः कलकलः। इसके बाद अर्जुन के द्वारा धनुष भंग की प्रतिज्ञा करने पर सभी विस्मित होते हैं।[53] कर्णपर्यन्त धनुषमण्डल को खींचकर उससे बाण को छोड़ने वाले अर्जुन ने यन्त्र के भीतर के छिद्र के मध्य में प्रविष्ट होने वाले अपने बाणों से राधा का भेदन कर देने पर द्रौपदी के कामदेव से ग्रसित होने पर सखियाँ अत्यन्त आश्चर्यचकित होती हैं - तुल्यं शोषणमोहनप्रभृतयः प्रक्षेपकुण्ठक्रमाः। कामेन द्रुपदात्मजा हृदि हठान्न्यस्ताः स्वयं चेषवः।।[54] अर्जुन भी राधावेध के अनन्तर द्रौपदी की स्वयं पर स्नेहार्द्रदृष्टि एवं प्रेम से विस्मित होता है।[55] स्वयंवर सभा में अर्जुन के वचनों को सुनकर बन्दी अर्जुन में ब्राह्मणों से भिन्न क्षत्रियों के लक्षणों को देखकर आश्चर्यचकित होता है-(बन्दी विचिन्त्य) वीर्यं वचसि विप्राणां क्षत्रियाणां भुजुद्वये। इदमत्यन्तमाश्चर्यं भुजवीर्या हि यद् द्विजाः।।[56] द्वितीय अंक में राजसभा में द्यूतक्रीड़ा में युधिष्ठिर हार आदि पदार्थों एव स्वयं को हार जाते हैं, तो भीम को दाँव पर लगाते हुए कहते हैं- यो मन्थानकरः..... पृथुगदाव्यग्रा- ग्रपाणिः पणः।[57]

यहाँ भीम के अद्‌भुत कृत्यों का युधिष्ठिर द्वारा वर्णन होने से दर्शक विस्मय की अनुभूति करता है।

युधिष्ठिर के द्वारा सर्वस्वभूत द्रौपदी के भी हार जाने के पश्चात् नेपथ्य से अद्भुतजन्मा द्रौपदी का वर्णन किया जाता है। वह जन्म से ही दिव्य होने से दिव्य अद्भुत रस की अभिव्यक्ति यहाँ दर्शकों को होती हैं। दुर्योधन के आदेश से दुःशासन द्रौपदी को केशों से पकड़कर राजसभा में लाता है। द्रौपदी के रजस्वला तत्फलस्वरूप एकवस्त्रा होने की बात कहने पर वह उसे एक वस्त्रहीन अर्थात् नग्न करने का प्रयास करता है। जब वह उसके वस्त्रों को खींचता है, तो एक वस्त्र के खींचने के पश्चात् स्वतः ही अचानक उसके स्थान पर दूसरा वस्त्र आ जाने पर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ कहता है कि मैं जैसे ही द्रौपदी का एक वस्त्र खींचता हूँ, उसी समय दूसरे वस्त्र उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उसका अंग ढंक जाता है। वस्त्र खींचते खींचते मेरे हाथ शिथिल हो गये और इधर वस्त्रों को अम्बार लग गया, यह त्रिलोक के मन को मोहन करने वाली कोई विद्या जानती है-ऐसा मुझे ज्ञात हो रहा है-

यावन्नैकं द्रुपददुहितुः कृष्यते वस्त्रमस्यास्तस्याश्चान्यंवति पिहितं तावदंगं ततश्च।
खिन्नं चैतन्मम करतलं वाससां चैष राशिस्तन्मन्येऽसौ त्रिभुवनमनोमोहिनीं वेत्ति विद्याम्।।[58]

तत्पश्चात् विकर्ण के द्वारा द्रौपदी के चीरहरण आदि कृत्यों की निन्दा की जाती है और पाण्डव भी मौन एवं धैर्ययुक्त रहते हैं। पाण्डवों की विपत्ति में भी अनुशासनता पर विकर्ण विस्मित होता है-अहो! उचितकारिता पाण्डवानाम्। पुनः सभासद राजा भी विकर्ण का समर्थन कर दुःशासन के विरोध में खड़े होते हैं। जिसे देखकर विकर्ण भी विस्मित होता है-अहो! किमपि महारम्भः सभासदां क्षोभः - द्योतच्चूडामणीनां..... समागर्भरन्ध्रं रुणद्धि।[59] फिर कौरव और पाण्डवों की इस सभा में, जिसमें द्रौपदी के केशाकर्षण से क्षोभ व्याप्त हो गया है, उस सभा में अभी केवल दुर्योधन ने अपनी भ्रकुटी चढ़ाई थी कि समस्त राजा लोग चित्रलिखित के समान स्तब्ध हो गये- **अस्मिन् महासदसि कौरवपाण्डवीये क्षोभं गते द्रुपदजाचिकुरांचनाभिः। दुर्योधनेन भ्रुकुटी कुटिलीकृता च जाताश्च भूमिपतयो लिखिता इवैते।।**[60] तत्पश्चात् भीमसेन के द्वारा दुःशासन आदि 100 कौरवों की वध की प्रतिज्ञा किये जाने पर सभी विस्मित होते हैं।[61] यहाँ दुर्योधन आलम्बन विभाव, उसकी भ्रुकुटी चढ़ाना उद्दीपन विभाव, राजा लोग आश्रय, चित्रलिखित सा होना अनुभाव, मति, रोमांच, जड़ता आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट विस्मय स्थायी भाव ही अद्भुत रस के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।

इस प्रकार राजशेखर ने नाटिका 'विद्धालभंजिका' और 'कर्पूरमंजरी' में शृंगार रस के प्रधान वातावरण में भी अद्भुत रस की सृष्टि की है। नाट्यकार राजशेखर के द्वारा नाटिका के परम्परागत संविधानक में कुछ नवीन कल्पनाओं के समावेश के साथ अत्यन्त जिज्ञासा, कौतूहल और रोचक प्रसंगों की योजना की गई है, जो स्तुत्य है। सीमित रूप में परन्तु यथार्थता से दूर अलौकिक तत्त्वों का समावेश अतिरंजित रूप में 'बालरामायणम्' एवं 'बालभारतम्' में भी परिलक्षित है। नाटककार राजशेखर ने अद्भुत रस के अनुप्रयोग को बालरामायण के नाटकीय कार्यव्यापार में सुखात्मक पर्यवसान का साधन बनाया है। इसकी कथावस्तु में अलोकिक तत्त्वों के अत्यधिक समावेश से दिव्य अद्भुत रस की अभिव्यंजना ही अधिक हुई है, आनन्दज या हर्षज अद्भुत रस की न्यून। रामायण के समान ही वीर रस प्रधान इन नाटकों के पात्र भी लौकिक एवं अलौकिक तत्त्वों का अद्भुत सम्मिश्रण प्रस्तुत करते हैं। इन दोनों रूपकों में भी अद्भुत रस वीर के सहायक रूप में वर्णित हुआ है। उपर्युक्त विवेचन से संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस प्रकार राजशेखर अद्भुत रस का नाटकीयता के अनुरूप सन्निवेश करने में कलात्मकता के कारण श्रेष्ठ माने जा सकते हैं। उन्होंने अपनी नाट्य कृतियों में अद्भुत रस को यथोचित स्थान देकर भी नाटकीयता पर हावी नहीं होने दिया है तथापि अद्भुत रस का नाटकीयता पर संतुलित और उत्तम प्रभाव दर्शनीय एवं अनुभवनीय है।

सन्दर्भ -

1. बालरामायणम्, 1/16
2. विद्धशालभंजिका, 1/8?
3. विद्धशालभंजिका, 1/9
4. विद्धशालभंजिका, 1/14
5. विद्धशालभंजिका, 1/15
6. विद्धशालभंजिका, 1/31
7. विद्धशालभंजिका, 1/33
8. विद्धशालभंजिका, 1/35
9. विद्धशालभंजिका, 1/37-38
10. विद्धशालभंजिका, 1/42
11. विद्धशालभंजिका, 2/1
12. विद्धशालभंजिका, 2/4-5
13. विद्धशालभंजिका, 2/9
14. विद्धशालभंजिका, 2/12
15. विद्धशालभंजिका, 3/19
16. कर्पूरमंजरी, 1/13
17. कर्पूरमंजरी, 1/22
18. कर्पूरमंजरी, 124
19. कर्पूरमंजरी, 1/25
20. कर्पूरमंजरी, 1/26
21. कर्पूरमंजरी, 1/28, 30, 31
22. कर्पूरमंजरी, 1/32
23. कर्पूरमंजरी, 2/1,3,4,5,6
24. कर्पूरमंजरी, 2/42
25. कर्पूरमंजरी, 2/44
26. कर्पूरमंजरी, 2/45
27. कर्पूरमंजरी, 2/46
28. कर्पूरमंजरी, 2/47
29. कर्पूरमंजरी, 3/20
30. कर्पूरमंजरी, 4/1
31. कर्पूरमंजरी, 4/17
32. कर्पूरमंजरी, 4/19
33. बालरामायणम्, 1/2
34. बालरामायणम्, 1/31
35. बालरामायणम्, 1/32
36. बालरामायणम्, 2/5
37. बालरामायणम्, 3/77
38. बालरामायणम्, 3/78
39. बालरामायणम्, 3/79
40. बालरामायणम्, 3/89
41. बालरामायणम्, 6/60
42. बालरामायणम्, 6/61
43. बालरामायणम्, 7/17
44. बालभारतम्, 1/27
45. बालभारतम्, 1/28-29
46. बालभारतम्, 1/30
47. बालभारतम्, 1/33
48. बालभारतम्, 1/39
49. बालभारतम्, 1/48
50. बालभारतम्, 1/64-66
51. बालभारतम्, 1/69
52. बालभारतम्, 1/70
53. बालभारतम्, 1/75-76
54. बालभारतम्, 1/78
55. बालभारतम्, 1/79
56. बालभारतम्, 1/88
57. बालभारतम्, 2/27
58. बालभारतम्, 2/40
59. बालभारतम्, 2/48
60. बालभारतम्, 2/49
61. बालभारतम्, 2/50-54

14

राजशेखर का सूक्तिसौन्दर्य

नौनिहाल गौतम *

महाकवि राजशेखर काव्यशास्त्री के साथ-साथ नाटककार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उनके कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण और बालभारतम् सहृदयों को विदित ही हैं। इनमें कर्पूरमंजरी सट्टक, विद्धशालभंजिका नाटिका और शेष दोनों नाटक हैं। राजशेखर लोक के सूक्ष्म निरीक्षक और कुशल चितेरे हैं। लोक भ्रमण के कारण प्राप्त होने वाले विरुद यायावर से वे सुशोभित हैं। उनकी नाट्यकृतियों में अनेक विशेषताएँ हैं, उन्हीं में से एक है उनका सूक्तिसौन्दर्य। संस्कृत नाट्य साहित्य में प्रयुक्त सूक्तियों का महत्त्व अनुपम है। द्रष्टव्य- ''संस्कृत नाटकों में भी सूक्तियों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। संवादों में पिरोयी गयी सूक्तियाँ प्रसंगानुसार तो अर्थ देती ही हैं, सामान्य रूप से प्रयोग करने पर भी सहृदयों को आनन्द देने वाली होती हैं। इनसे नाटकीयता में भी वृद्धि होती है। कम शब्दों में अधिक अर्थ देने वाली सूक्तियाँ नाट्य में चमत्कार को बढ़ाने वाली होती हैं।''[1]

राजशेखर अपनी रचनाओं में सूक्तियों का भरपूर प्रयोग करते हैं। वे सूक्तियों के बारे में विचार व्यक्त करते हैं। यह भी रोचक है कि वे अपनी ही सूक्तियों की विशेषताओं को स्वयं निरूपित करते हैं। वे कहते हैं कि यदि किसी को कानों से मधुर रसायन पान करने, सज्जनों की अभिमत वाणी के गुम्फन करने, श्रेष्ठ व्युत्पत्ति को प्राप्त करने, रस-स्रोत की परम सीमा पाने तथा जीवन रूपी वृक्ष के स्वादिष्ट फल को चखने की इच्छा हो तो वह राजशेखर कवि की अमृत प्रवाहित करने वाली सूक्तियों का श्रवण करे। द्रष्टव्य-

'पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः।
भोक्तुं स्वादु फलं च जीवititतरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं तद्भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः।।'[2]

इससे यह भी स्पष्ट होता है कि राजशेखर सूक्तियों के महत्त्व और प्रयोग के विषय में अत्यधिक जागरूक थे। पूर्ववर्ती कवियों की सूक्तियों का उन्होंने पर्याप्त अनुशीलन किया था। इसका प्रभाव भी उन पर दृष्टिगोचर होता है। राजशेखर की सर्वाधिक सूक्तियाँ बालरामायण में हैं। इन सूक्तियों में विविध विषय निबद्ध हैं। इन्हें विषयवस्तु के आधार पर मुख्य रूप से निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है- सूक्ति, कविवाणी, बुद्धि, वर्णवैशिष्ट्य, राजव्यवहार, भाग्य या दैव, प्रेम, लोक इत्यादि।

सूक्ति- सूक्तियों के ज्ञाता सूक्तिपाक (सुन्दर सूक्ति गुम्फन) से प्रसन्न हो जाया करते हैं। सूक्तिपाक

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
* *सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003*

सूक्तिरसज्ञों को आनंदित करने वाला होता है- 'अहो सूक्तिपाको जनकसुतायाः'(बालरामायण, पृ. 147)। सुभाषित की यह विशेषता है कि वह कर्णकुहरों से सीधा अंतःकरण में प्रवेश कर जाता है- 'सुभाषितमिव कर्णयोः प्रविशन्ति' (बालरामायण, पृ. 285)

सूक्तियों को राजशेखर ग्रन्थों में निबद्ध मोतियों की तरह मानते हैं। द्रष्टव्य-

'सम्यक्संसारविद्याविषदमुपनिषद्भूतमर्थाद्भुतानां ग्रन्थन्तु ग्रन्थिबन्धं वचनमनुपतत्सूक्तिमुक्ताः सुयुक्ताः। सन्तः संतर्पितान्तः करणमनुगुणं ब्रह्मणः काव्यमूर्ते-स्तत्तत्त्वं सात्त्विकैश्च प्रथमपिशुनितं भावयन्तोऽर्चयन्तु।।'[3]

कविवाणी- राजशेखर पूर्णरूपेण सरस्वती के समुपासक रहे हैं। 'काव्यशास्त्रविनोदेन ...' उक्ति उन्हीं जैसों के लिए बनी है। वे सरस्वती के अनुग्रह और उनके साधक कवियों की विशेषताओं से सुपरिचित हैं। वे अनेकत्र कवियों की विशेषताओं को उजागर करते हैं। उनका मानना है कि सुकवियों की जिह्वा पर सारस्वत नेत्र होता है। सरस्वती महाकवियों के रसनाग्रवर्ती होती है। द्रष्टव्य-

'वदनेन्दुषु वामदृशामिन्दीवरं पत्रसंघटितम्। रसनासु च सुकवीनां निवसति सारस्वतं चक्षुः।।'[4]

कवियों की वचनरूपी कामधेनु असद्भूत को भी उत्पन्न करने वाली होती है- 'सेयं कवीनां वचनकामधेनुः। यदसद्भूतमपि सूते।' (बालरामायण, पृ. 95) काव्य में कवि पराये सुख से सुखी और पराये दुःख से दुःखी हुआ करते हैं। द्रष्टव्य-

'सुखिनः परसौख्येन परदुःखेन दुःखिताः। जायन्ते कवयः काव्ये नयतन्त्रे च मन्त्रिणः।।'[5]

वे कवियों की वाणी की निरंकुशता से भी परिचित हैं- 'निरङ्कुशाः कविवाचः।'

(बालरामायण, पृ. 69)

बुद्धि- राजशेखर कवियों की क्रान्तदर्शिता की कारणभूत प्रज्ञा को अत्यन्त महत्त्व देते हैं। वे मानते हैं कि प्रज्ञा का प्रकर्ष वस्त्वन्तर का अतिशायी होता है। पदार्थ सीमाओं में बँधे होते हैं, किन्तु सज्जनों की प्रज्ञा का उन्मेष तो असीम होता है-

'वस्त्वन्तरमतिशयानो हि प्रज्ञाप्रकर्षः। उदन्वच्छत्रा भूः स च निधिरपां योजनशतं सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं गणयति। इति प्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते।।'[6]

वे मानते हैं कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'। इसीलिए वे कहते हैं कि प्रज्ञावानों की दृष्टि वह देख लेती है जो सामान्य बुद्धि वाले नहीं देख पाते हैं- 'प्रज्ञावतां हि चक्षुरक्षुद्रमतिविषयासु धिषणासु प्रतिवसति (बालरामायण, पृ. 97)। प्रज्ञा की श्रेष्ठता का बड़ा अंतर होता है। प्रज्ञावान् शीघ्र ही श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेता है। द्रष्टव्य- 'मातलिः- अहो महदन्तरं प्रज्ञाप्रकर्षस्य, तथा हि-

उपदिशति समानं कर्म कृत्स्नं पिनाकी सममपि च यतन्ते कर्तुमभ्यासमेते।
तदपि भृगुकुलेन्दुः काममुत्कृष्यतेऽसौ ननु भवति निवीतं द्रव्यमेव क्रियाभिः।।'[7]

बुद्धि की अधिकता ही मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है, उम्र की अधिकता नहीं- 'मतिः परिणमन्ती पुरुषमुदात्तयति न वयः (बालरामायण, पृ. 308)। शुद्ध बुद्धि निश्चित ही कामधेनु के समान सुफल प्रदायिनी होती है-

'श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि यशांसि दुग्धे मलिनं प्रमार्ष्टि।
संस्कारशौद्ध्येन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः।।'[8]

वर्णवैशिष्ट्य- राजशेखर के समय में वर्णव्यवस्था प्रचलन में थी। वर्णों के बारे में लोक में प्रसिद्ध विशेषताएँ उनकी सूक्तियों में मिलती हैं। जैसे ब्राह्मण का स्वभावतः मुखर होना- 'प्रकृतिमुखरा हि ब्राह्मणजातिः।' (बालरामायण, पृ. 42), क्षत्रियों की शिकार में रुचि होना- 'क्षात्रं हि मृगयारसम्।' (बालरामायण, 7.89) ब्राह्मणों का बल वाणी में होता है जबकि क्षत्रिय भुजाओं से पराक्रमशाली होते हैं-

'वीर्यं वचसि विप्राणां क्षत्रियाणां भुजद्वये। इदमत्यन्तमाश्चर्यं भुजवीर्या हि यद् द्विजाः।।'[9]

लोक- राजशेखर लोक के सुविज्ञ हैं। लोक की 'रामकहानी' से वे भली भाँति परिचित हैं। तभी वे कह उठते हैं- 'अहो स्वतन्त्रा लोकयात्रा (बालरामायण, पृ. 48)। लोक में प्रचलित कहावतों को वे नाट्य में ला गूँथते हैं, जैसे- दाद में खाज 'किं बहुनाऽयमपरो गण्डस्योपरि पिण्डिकोद्भेदः' (बालरामायण, पृ. 10)। सपनों की विचित्रता 'अहो विचित्रता स्वप्नस्य।'[10] इत्यादि। हिन्दी की पंक्ति 'मेरी कश्ती वहाँ डूबी, जहाँ पानी कम था' की पूर्वपीठिका को बताती सूक्ति- 'तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्।'[11]

राजव्यवस्था- राजशेखर ने राजतन्त्र को समीप से देखा था। स्वच्छन्द राजा की स्वेच्छाचारिता और मन्त्री द्वारा उसकी प्रतिचिकीर्षा प्रायः देखी जाती थी। इससे मन्त्री खिन्न रहा करते थे- 'अहह! अनमात्यायतसिद्धेर्धिङ्मन्त्रित्वम्।

स्वेच्छया कुरुते स्वामी यत्किंचन यतस्ततः। तत्तत्प्रतिचिकीर्षन्तो दुःखं जीवन्ति मन्त्रिणः।।'[12]

शस्त्र के द्वारा रोके जाने वाले शत्रु समझाने से नहीं मानते हैं- 'यद्वा आयुधनिषेध्या रिपवो न सामसाध्याः'(बालरामायण, पृ. 50)। शस्त्रग्रहण का अधिकार संबंध की परवाह नहीं करता है- 'न शस्त्रग्रहणाधिकारः संबन्धमनुरुध्यते'(बालरामायण, पृ. 132)। समान कार्ययोग और अटल सामर्थ्य कृत्यवस्तु की सिद्धि के लिए आवश्यक हैं-

'नीतितन्त्रे द्वयं दृष्टं सिद्धये कृत्यवस्तुनः। समानः कार्ययोगश्च प्रभुशक्तिश्च निश्चला।।'[13]

मन्त्रणा न करने वाला राजा और अन्य कवियों के काव्यों का अनुशीलन न करने वाला कवि अधिक समय तक आनंदित नहीं रह सकते हैं- 'अमन्त्रशीलो महीपतिरनपरप्रबन्धदर्शी कविरपाठरुचिश्च बन्दी न चिरं नन्दति' (बालरामायण, पृ. 212)। युद्ध आरम्भ हो जाने पर सेनाओं का बार-बार गमनागमन होता है। यह जय-पराजय नहीं कहलाती है- 'प्रवृत्ते रणकर्मणि सेनयोः सारणापसरणानि गणशो भवन्ति। कस्तत्र जयः पराजयो वा' (बालरामायण, पृ. 245)।

प्रेम- प्रेम से संबंधित सुन्दर सूक्तियाँ राजशेखर अनेक स्थानों पर कहते हैं। एकतरफा प्रेम शोभा को प्राप्त नहीं होता है। दोनों तरफ से बढ़ा हुआ प्रेम सुशोभित होता है। द्रष्टव्य-

'प्रेमरम्यमुभयोः समं दिशोः कामिनां यदिह चाषपिच्छवत्।
एकतस्तु न चकास्ति साध्वपि श्यामपृष्ठमिव बर्हिणश्छदम्।।'[14]

समान प्रेमरस, समान रूप-यौवन, समान विलास और समान सुख-दुःख वाले मनुष्य की प्राप्ति समान पुण्य से ही मनुष्य को हो सकती है-

'समप्रेमरसं समरूपयौवनं समविलासविशिष्टम्। समसुखदुःखं च जनं समपुण्यैर्जनो लभते।।'[15]

ईर्ष्या से भर जाना ही स्त्रियों के प्रेम का प्रकाशक होता है- 'ईर्ष्यायितं हि स्त्रीणां प्रकाशकं प्रेमभरस्य। (बालरामायण, पृ. 146)

भाग्य- अनुकूल होने पर भाग्य सब का कल्याण करने वाला होता है- 'अनुकूलं हि दैवं सर्वस्मै स्वस्ति करोति।' (बालरामायण, पृ. 3)

प्रतिकूल होने पर भाग्य भली-भाँति किये गये कार्य को भी उलट देता है- 'प्रतिकूलं हि दैवं स्वारब्धमपि कार्यं विपर्यासयति। (बालरामायण, पृ. 322)

उपदेश- काव्य 'कान्तासम्मितोपदेश' करने वाला होता है। ऐसी ही कुछ सीख राजशेखर की सूक्तियों से मिलती हैं। निराश न होना सिद्धि का मूल है- 'अनिर्वेदः सिद्धेर्मूलम्। (बालरामायण, पृ. 3) हर व्यक्ति सब कुछ नहीं जानता है- 'नहि सर्वः सर्वं जानाति। (बालरामायण, पृ. 4) एक भी भयंकर दोष सारे गुणों पर पानी फेर देता है- 'एकोऽपि गरीयान् दोषः समग्रमपि गुणग्रामं दूषयति। (बालरामायण, पृ. 18) 'बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय' उक्ति का भाव द्रष्टव्य है- 'अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम्।(बालरामायण, पृ. 26) स्वभाव नहीं बदलता है, यह सत्य ही कहा जाता है- 'सत्यं सत्यमिदं गीयते दुस्त्यजा प्रकृतिरिति। (बालरामायण, पृ. 34) परोक्षभाव को प्राप्त हुई वस्तु के बारे में गवाह के विश्वास पर ही व्यवहार होते हैं- 'अतिक्रान्ते वस्तुनि साक्षिप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः। (बालरामायण, पृ. 46)

आत्महत्या सबसे बड़ा पाप होता है- 'आत्मवधः प्रथमः पातकेषु। (बालरामायण, पृ. 46)

जो जिस विषय का जानकार होता है उसमें अत्यधिक आसक्त होता है- 'यो यत्र परमभिज्ञः स तेन सुतरामावर्ज्यते। (बालरामायण, पृ. 264)

गुण प्रतिष्ठा का विषय होते हैं, शरीर नहीं- 'सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु। (बालरामायण, पृ. 336)

न्यून बुद्धि वाले लोग सुनी-सुनायी बात मान लेते हैं, उसकी यथार्थता का विवेक नहीं करते हैं- 'मुग्धबुद्धयो हि यथाश्रुतस्य ग्रहीतारो न पुनर्विवेक्तारः' (बालरामायण, पृ. 54)। कालिदास के मत में विद्वान् जन परख कर उसकी श्रेष्ठता तय करते हैं जबकि मूर्ख अन्यों के अनुसार ही अपनी समझ बना लेते हैं-**'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।'**[16]

सूक्तियाँ न्यूनतम शब्दों में महत्तम अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली होने के कारण 'अर्थगौरव' से परिपूर्ण होती हैं। कवि अपनी प्रतिभा और अनुभवजन्य ज्ञान से प्राप्त हुए सार को सूक्ति के रूप में व्यक्त कर देते हैं। राजशेखर सूक्तियों के महत्त्व से परिचित हैं। वे सूक्तियों का महत्त्व निरूपित करते हैं और अपनी सूक्तियों की विशेषताओं को रेखांकित करते हैं। उनकी कृतियों में शताधिक सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। वे सूक्तियाँ मूल्यों को स्थापित करने वाली हैं।

सन्दर्भ-

1. *नाट्यम् अंक 89-90, पृ. 134, मुद्राराक्षस का सूक्तिसौन्दर्य, डॉ. नौनिहाल गौतम*
2. *बालरामायणम्, 1.17*
3. *बालरामायणम्, 10.105 ?*
4. *बालरामायणम्, 1.7*
5. *बालरामायणम्, 5.3*
6. *बालरामायणम्, पृ. 4-5/1.8*
7. *बालरामायणम्, 4.15*
8. *विद्धशालभंजिका, 1.8*
9. *बालभारतम्, 1.88*
10. *कर्पूरमंजरी, 3.5 पूर्व*
11. *कर्पूरमंजरी, 4.19 पश्चात्*
12. *बालरामायणम्, 1.25*
13. *बालरामायणम्, 6.1*
14. *बालरामायणम्, 5.13*
15. *बालरामायणम्, 5.15*
16. *मालविकाग्निमित्रम्, 1.2*

15

'बालरामायणम्' में वैदिक-संस्कृति

सुधा श्रीवास्तव *

'संस्कृति' शब्द से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है, जिससे उसकी शारीरिक, बौद्धिक, तथा आत्मिक शक्ति के विकास की अवस्था का ज्ञान होता है। जिस संस्कृति में इस विकास का जितना आधिक्य होता है, वह संस्कृति उतनी ही उन्नत मानी जाती है। वस्तुतः शारीरिक, मानसिक (बौद्धिक) और आत्मिक शक्ति का विकास ही किसी संस्कृति का मुख्य उद्देश्य होता है; अतः इसे संस्कृति की कसौटी भी कहा जा सकता है। वैदिक संस्कृति एक उन्नत संस्कृति थी, क्योंकि वैदिक कालीन समाज में शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक शक्ति के सामञ्जस्य-पूर्ण विकास को मानव जीवन का ध्येय माना गया था। उनके जीवन की यह ऐसी व्यवस्थित पद्धति थी जिससे तीनों शक्तियों का सानुपातिक विकास स्वतः होता था। ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में विहित आचार-विचार का पालन करते हुए वेदों में सौ वर्ष तक जीवित रहने का दृढ़ संकल्प दर्शाया गया है-

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः..... भूयश्च शरदः शतात्।।[1]

इस विषय में यह वैदिक अवधारणा रही है कि ब्रह्मचर्य और तप के बल से देवतागण मृत्यु को भी जीत लिए हैं-**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत; द्रष्टव्य-ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र वि रक्षति.....।**[2] इस प्रकार वैदिक समाज में व्यक्ति के अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग विकास हेतु कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, सूक्ष्म शरीर आदि के ज्ञान द्वारा वौद्धिक विकास की एक सुन्दर योजना को वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था की सहायता से सफल बनाया जाता था। तत्कालीन सामाजिक जीवन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही उनके राजनीतिक जीवन का भी विकास हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से तत्कालीन राजा का अपनी प्रजा के साथ आत्मिक सम्बन्ध होता था। उनका राजकार्य सर्वथा जनकल्याण व लोकहित पर ही आधृत था; अतः राजा स्वच्छन्द आचरण नहीं कर सकता था। एवमेव आत्मदर्शन वैदिक-संस्कृति का सार माना गया है। तदनुसार जीव व ब्रह्मा के रहस्य को जानकर उनमें एकत्व के दर्शन-से जीवन-मृत्यु के वन्धन से मुक्त होना ही उनका एकमात्र ध्येय था।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।[3]

''कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'' (ऋ., 9.63.5)', **''यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्''** (यजु., 32.8), **''यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्''** (अथर्व., 2.1.1) आदि मन्त्रों में निहित विचारों से अनेकत्व में एकत्व का दर्शन करने का प्रयत्न

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायकाचार्या, पाणिनिकन्या, महाविद्यालय, वाराणसी*

भी उनके सांस्कृतिक जीवन के मूलभूत स्तम्भों में से एक है। ऐहिकता और पारलौकिकता का सुन्दर समन्वय आदि वैदिक कालीन सांस्कृतिक विकास के आधारभूत सिद्धान्त माने जाते हैं। तत्कालीन संस्कृति में भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिकता को अधिक महत्त्व दिया गया है। सामाजिक जीवन की समग्र भूमिका आध्यात्मिक धरातल पर ही आश्रित थी। इसी लिए स्थल-स्थल पर ''ईशावास्यमिदं सर्वम्'' आदि मन्त्रों से इसका उद्घोष करते रहे हैं। आत्मा का इहलोक तथा परलोक में सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त से वर्तमान जीवन को अनन्त जीवनों की एक कड़ी मात्र माना गया-तथा कर्मवाद भाग्यवाद की कल्पना से मानव के गुण-दोषों प्रस्तुत करता है-

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमों मर्त्यना स योनिः। अपाङ् प्राडेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मत्रर्येना स योनिः।[4]

'एवमेव 'बालरामायण' में यत्र-तत्र चारों आश्रमों का भी उल्लेख मिलता है। चतुर्थ अंक में बटु और उपाध्याय के संवाद (अंक का आरम्भ) तथा उपाध्याय के कथन से ब्रह्मचर्याश्रम का ज्ञान होता है- **शरासनशिक्षाविचक्षणः सब्रह्मचारिभिरनुयुक्तोऽपि.....।**[5] तथा द्वितीय अंक के अन्त में नेपथ्य से कही गई उक्ति- **''वटुपरिषद् अभीष्ट अनाध्याय मनाये''** में भी ब्रह्मचर्याश्रम का भान होता है- **बटुपरिषदभीष्टाः सन्त्वनध्यायचेष्टाः।**[6] यहीं कात्यायनी के लिए प्रयुक्त **''लोकयात्रा परतन्त्र्या च कात्यायन्या''** अर्थात् लोकमार्ग में संलग्न विशेषण से गृहस्थाश्रम का एवं मैत्रेयी के लिए प्रयुक्त **''परमे ब्रह्मणि वर्त्तमानया''** अर्थात् परब्रह्म में तल्लीन, विशेषण से सन्यासाश्रम का सङ्केत भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार चतुर्थ अंक में विवाहोपरान्त पति के घर जाने वाली सीता को जनक एवं शतानन्द द्वारा दी गई कुल वधुओं की धर्म की शिक्षा में पिता द्वारा पुत्री को दिए गए गार्हस्थ धर्म का उपदेश निहित है, जिसमें उसे पति को देव मानकर राम की अनुवर्तिनी होने, नम्रता, बड़ों का आदर, ननदों से प्रेम, सास-श्वसुर की भक्ति, बन्धुओं एवं परिजनों के साथ वत्सल भाव रखने आदि का उपदेश किया गया है- **स्नेहात्केवलमुच्यते पुनरिदं स्त्रीणां पतिर्दैवतं यद्भूयास्त्वमपास्य धर्ममपरं छायेव रामानुगा।।**[7] पुनः षष्ठ अंक में राम के वनगमन की बात वामदेव से जानकर दुःखी दशरथ की उक्ति कि - **वृद्धो दशरथः सोऽयमुपास्ते गृहमेधिताम्। त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निपेव्यते।।**[8] में गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रमों का सङ्केत प्राप्त होता है। इस नाटक में अनेकत्र प्रयुक्त 'वैखानस' एवं 'मुनिवृत्ति' शब्दों से वानप्रस्थ एवं सन्यासाश्रम; द्योतित होते हैं। इसके अतिरिक्त तृतीय अंक में जनक के विषय में राम-लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र से पूछे गए प्रश्न- 'क्या ये जनक याज्ञवल्क्य से शुक्लयजुर्वेद पढ़कर भी वन में नहीं जाते? तथा विश्वामित्र के उत्तर कि 'वे राज्यरूपी आश्रम में महामुनि हैं एवम् उनके द्वारा बताए गए संन्यासाश्रम की वृत्ति वर्णित किए गए हैं।[9] **किमसौ। वैदेहः शक्लान्यपि यजूंषि विज्ञाय याज्ञवल्क्यतो नवनाय प्रतितिष्ठते।स खल्ल राज्याश्रममहान्निरित्थं समर्थयते। स्थितिः पण्येऽरण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः। फलैर्मध्या वृत्तिः प्रतिदिनं च तल्पानि दृषदः। इतीयं सामग्री फलति हि विरक्त्यै स्पृहयतांवनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तस्य मनसः।।**[10]

राजशेखर ने बालरामायण में वैदिक संस्कृति के मूलभूत अन्य अनेक आचार-विचारों एवं मर्यादाओं का भी यथावसर उल्लेख करने का सफल प्रयास किया है। प्रथम अंक में संकेतित सम्बन्ध में ज्येष्ठ एवं ब्रह्मविद्या में श्रेष्ठ होने के कारण जनक के प्रति रावण द्वारा सम्मान आर्य संस्कृति के ब्रह्मज्ञानियों एवं बड़ों के प्रति आदरभाव को पुष्ट करता प्रतीत होता है। पुनः चतुर्थ अंक में संस्कार-शुद्ध क्रियाओं, एवं प्राणियों पर दया ही परम धर्म है ऐसे तात्त्विकज्ञान के उल्लेख में भी सत्य, अहिंसा, दया, शुचिता आदि वैदिक धर्म की मान्यता परिलक्षित होती है-

त्वं किल सम्बन्धज्येष्ठो ब्रह्मविद्यावरिष्ठ इति च मया क्षम्यते।[11]

जिसमें न केवल मनुष्यों प्रत्युत समग्र प्राणियों की मङ्गल कामना एवं संरक्षण की भावना निहित है- **पुमान पुमांसं परिपातु विश्वतः।**[12] एवमेव षष्ठ अंक में वामदेव के माध्यम से उक्त-'राम द्वारा पिता की आज्ञा का पालन, वनगमन के समय पत्नी का धर्म मानते हए सीता द्वारा पति (राम) का अनुसरण तथा लक्ष्मण द्वारा बड़े भाई (राम) के स्वीकृत व्रत का पालन उल्लोखित है। पुनः इसी अंक में कौशल्या द्वारा वनवासिनी सीता के पवित्र गृहिणीत्व की बात पूछने पर सुमन्त्र द्वारा वर्णित वन में सीता का गृहिणीत्व एवं स्त्री-धर्म का पालन तथा लक्ष्मण द्वारा राम की सेवा वैदिक धर्म के सर्वथा अनुरूप है, जिसमें सीता अपने पति एवं देवर लक्ष्मण के यथोचित सौख्य का ध्यान रखती है तथा लक्ष्मण बड़े भाई एवं मातृ-तुल्य भाभी के प्रति सेवाभाव रखते हैं। इन कथनों में भी वैदिक संस्कृति के आदर्शों एवं सांमनस्य-सूक्त में कहे गए आदर्शों का बोध होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्र और दशरथ तथा जटायु और दशरथ की मैत्री में भी पवित्र वैदिक मैत्रीभाव दृष्टिगोचर होता है। यहाँ रत्नशिखण्ड के माध्यम से कहे गए जटायु के कथन से वेदों में प्रतिपादित सच्चे मित्र की परिभाषा चरितार्थ होती प्रतीत हो रही है- **यत्सम्पातिसहोदरस्य सदृशं। यच्चारुणेः साम्प्रतं.....**

तन्मैत्रीमनुरुन्धता तव मया तत्सङ्गराग्रे कृतं न व्रीडां गमितोऽसि येन न पुनः स्यां सम्भवे येन च।।

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभवे सचमानाय पित्वः।।

युज्यो मे सप्तपदः सखासियुज्यस्ते सप्तपदः सखास्मि।

ओ चित सखा यं सख्या ववृत्याम्; सखा सख्युनप्रमिनाति संगिरः।[13]

तदनन्तर दशम अंक में राम की उक्ति **''प्रकृष्टं हि तपः किमपि कामदुघम्''** में तप की महिमा तथा तपस्वियों के सन्ध्या-पूजन आदि के उल्लेख में उनकी तपश्चर्या और इसी अंक में वशिष्ठ द्वारा संकेतित सीता का पातिव्रत धर्मपालन, राम एवं भरत तथा भरत एवं लक्ष्मण का परस्पर आलिङ्गन आदि में भी कवि ने वैदिक सांमनस्य-सूक्त में चर्चित भ्रातृ-प्रेम का निदर्शन उपस्थापित किया है;- **एते व्योमनि शोषयन्ति हरिणित्रासाच्चिरं चीवरे (इत्यादि)।**[14]

एवमेव चतर्थ अंक में परशुराम से कलह न करने तथा सज्जन पुरुष के आचरण-पालन की विश्वामित्र द्वारा प्रार्थना, परशुराम के प्रति शतानन्द और राम की उक्ति में गुरुओं के अनादर की निन्दा तथा प्रथम अंक में शुनःशेप के माध्यम से गुरु-निन्दा से प्रायश्चित् के भागी होने का उल्लेख आदि में **''मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'। आचार्यदेवो भव,** आदि वैदिक धारणा फलीभूत हो रही है;

स्तत् त्वां याचे विरम कलहादार्य कर्मारभस्वव। अतिनिरर्गलवाग्भार्गवो यदगुरुष्वपि नानुरुध्यते; कः पुनरयं शस्त्रग्रहणाधिकारो यद्गुरुष्वपि तिरष्कारः।[15]

इस प्रकार बालरामायण में अनेकत्र वैदिक सदाचारों का सङ्केत भी कविवर राजशेखर ने किया है।

वैदिक संस्कृति में यज्ञों का अत्यन्त महत्त्व था। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही एक ऐसे मन्त्र से होता है, जिसमें प्रकारान्तर से यज्ञ का महत्त्व प्रतिपादित है-

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ।।[16]

तत्कालीन समाज में धीरे-धीरे यज्ञ का अत्यधिक विकास हो गया था। राजशेखर के बालरामायण में प्राप्त संकेतों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे वैदिक श्रौत तथा गृह्य यज्ञ-यागों से सुपरिचित थे। इसी लिए उन्होंने यथावसर उन यज्ञों, उनसे सम्बद्ध कृत्यों, उपकरणों आदि का उल्लेख किया है। उनके इस नाट्यकृति में

यजमान, यज्ञार्थ दीक्षा, चारों प्रधान ऋत्विजों (होता, अध्वर्यु, उद्‌घ गाता और ब्रह्मा) एवम् उनके द्वारा सम्पादित होने वाले यज्ञीय कृत्यों, ऋतु-क्रिया, प्रातःसवन, यज्ञ-निमन्त्रण, यज्ञविधि, यज्ञांश के भोक्ता देवगण, ब्राह्मणों द्वारा आहुतिदान, हवन के लिए प्रज्वलित अग्नि, हव्य, यज्ञभाग, मख-अध्वर, यज्ञपात्र-सुवा, सोमसुत् (सोमाभिषव), आदि का उल्लेख मिलता है तथा सोमयाग के अन्त में सम्पाद्यमान 'अवभृत-स्नान' नामक कर्म का भी संकेत, किया गया है-

क्रतुक्रिया, प्रातः सवन, यज्ञोपनिमन्त्रकस्य, क्रतुविधिगुरवे, क्रतुबलिलिहो, जुह्वते यच्च विप्राः, होमोद्यमानहुतवहा, हव्यम्, सर्वयागाङ्गवर्गे.....।[17]

तृतीय अंक में वर्णित सीता स्वयंवर से इस संस्कार का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। राजशेखर ने इस नाटक में प्रमुख वैवाहिक कृत्यों-पाणिग्रहण, लाजाहोम, तथा कौतुक-प्रवेश का नाम्ना उल्लेख किया है। यहाँ एकत्र प्रयुक्त 'साप्तपदीनसख्यम्', शब्द से प्रमुख वैवाहिक कृत्य 'सप्तपदी' का भी अनुमान लगाया जा सकता है। बालरामायण में प्रायश्चित् का भी यत्र-तत्र सङ्केत प्राप्त होता है। परन्तु किसी भी संस्कार की विधि निर्दिष्ट नहीं है। इन संकेतों से ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर प्राजापत्य विवाह के हिमायती थे, जो उन पर वैदिक संस्कृति के प्रभाव को ही पुष्ट करता हैं, क्योंकि आर्य संस्कृति में प्राजापत्य विवाह को ही सर्वोत्तम एवं सर्वमान्य माना गया है।

देवोपासना वैदिक संस्कृति की आधारभित्ति थी। उनकी ऐसी धारणा रही है कि सृष्टि का सतत संचालन इन्हीं देव-शक्तियों से हो रहा है; अतः जीवन के सर्वविध अभ्युदय के लिए देवोपासना आवश्यक है। आर्यों का उपास्य देव सर्वशक्तिमान ब्रह्म है, जो नाना देव-रूपों में स्तुति हुआ है।

याज्ञिक दृष्टि से वैदिक देवों में अग्नि का सर्वाधिक महत्त्व है, क्योंकि सभी देवों को हव्यद्रव्य अग्नि के ही माध्यम से मिलता है। वैदिक देव-संस्कृति की इस अवधारणा का सङ्केत भी बालरामायण में प्राप्त होता है-

यः कृत्स्नस्य प्रलयदिवसो ये च ये च प्रकाशाः। कृत्स्नः सोऽयं जयति महिमा पावकः पावकस्य।।[18]

वैदिक संस्कृति को पल्लवित एवं विकसित करने में वैदिक ऋषियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है; अतः उनके नामस्मरण से भी उस संस्कृति के प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त होती है। बालरामायण में राजशेखर ने उन वैदिक ऋषियों का न केवल उल्लेख किया है, प्रत्युत कतिपय ऋषियों के तपोवल का भी उपस्थापन किया है। उनके मत में ऋषि साक्षातधर्मा होते हैं; अतः तपः प्रभाव से उन्हें सब कुछ ज्ञात रहता है-

ऋषीणां तु श्रुति–शाम्य श्रुत्यर्थवीथीविदग्धः; यन्मीमांसयतः श्रुतीः शतपथाः साक्षात्कृतब्रह्मणो।[19]

उनका यह कथन यास्क की ऋषिविषयक उक्ति **''साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः''** का स्मरण करवाता है। इस नाट्यकृति में उन्होंने विश्वामित्र के ब्रह्मतेज तथा क्षत्रियतेज की प्रशंसा करते हुए वसिष्ठ शाप को व्यर्थ करने वाले उनके तपोबल का भी बखान किया है तथा अगस्त्य ऋषि के तपःप्रभाव का भी सङ्केत किया है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में सप्तर्षियों, अगस्त्य, अङ्गिर सगोत्रीय, शतानन्द, अत्रि, काण्व, कश्यप, कुशिक, ऋचीक, त्रिशंकु, भृगुवंशी परशुराम, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, सुगीत, यम आदि वैदिक ऋषियों तथा वैदिक ऋषिका लोपामुद्रा का भी उल्लेख किया है, जिसका सङ्केत ऋग्वेद में भी अगस्त्य-पत्नी के रूप में हुआ है।

राजशेखर ने बालरामायण में कुछ ऐसे पात्रों का भी उल्लेख किया है, जो वैदिक पृष्ठभूमि के हैं। शुनःशेप, विश्वामित्र, मातलि, वामदेव, पुरुहूत, अगस्त्य, लोपामुद्रा और वसिष्ठ तो स्पष्टतः वैदिक भूमि से ही

हैं। इनमें शुनःशेप का सम्बन्ध ऐतरेय-ब्राह्मण से है, जहाँ इनके 'देवरात' संज्ञा से प्रख्यात होने का सम्पूर्ण आख्यान दिया गया है। इस नाटक के द्वितीय अंक में राक्षस के कथन में दो वैदिक आख्यानों का भी सङ्केत है- 1. शुनःशेपाख्यान तथा 2. त्रिशंकु - विश्वामित्राख्यान, मुख से आर्षवाणी के अपूर्व वैशिष्ट्य का सङ्केत करते हुए उसके प्रति अपने अतिशय आदर भाव को व्यक्त करते हैं। यही नहीं, उनकी नाट्यकृति बालरामायण की कुछ पंक्तियों पर स्पष्टतः वैदिक मन्त्रों अथवा भावों का प्रभाव अथवा सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अंक में राक्षस की उक्ति - **''भगवन् साप्तपदीनं सख्यं मां मुखरयतिपर** अथर्ववेद के **''युज्यो मे सप्तपदः सखासि''** तथा **''युज्यते सप्तपदः सखाऽस्मि''** मन्त्रांशों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसी नाटक के द्वितीय अंक के एक श्लोक पर तो स्पष्टतः यजुर्वेद के एक मन्त्रका पूर्णतया सादृश्य घटित होता है-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृत्ताः। तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।[20]

यही नहीं, मन्त्र-सिद्धि से आपदाओं को दूर करने की चर्चा करते हुए राजशेखर इस वैदिक मान्यता का समर्थन करते प्रतीत होते हैं कि 'वैदिक मन्त्रों में शक्ति' है। इसके अतिरिक्त बालरामायण में ब्रह्म-प्राप्ति के लिए तपोमय जीवन का संकेत; सैकड़ों मार्गों (शाखाओं) वाले वेद की मीमांसा करने वाले तथा ब्रह्म का साक्षात्कार प्राप्त करने वाले महामुनि विश्वामित्र के उल्लेखय सुमेरु पर्वत पर 33 कोटि देवताओं के निवास स्थान के उल्लेख से वैदिक देवताओं की तैंतीस संख्याय ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य के शिष्य राजर्षि जनक और सूर्यशिष्य याज्ञवल्क्य विश्वामित्र के शिष्य राम-लक्ष्मणय जामदग्न्य (परशुराम) के शिष्यमाठर आदि उल्लेखों से वेदाध्ययन एवं धनुर्विद्या आदि के लिए वैदिक गुरु-शिष्य-परम्परा की अनिवार्यता आदि वैदिक मान्यताओं का सङ्केत प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार इन वाक्यांशों, सन्दर्भों में परिलक्षित वैदिक अवधारणाओं के प्रति राजशेखर की प्रगाढ़ आस्था से सर्वथा ऐसा प्रतीत होता है कि वे वैदिक संस्कृति के प्रबल समर्थक थे-

तत् कथमयं स्वाध्यायप्रत्यूहः य स्वाध्यायान्ते। याज्ञवल्क्याद्यजुर्विज्ञानविभवःय शुक्लान्यपि यजूंषि।[21]

इनके अतिरिक्त बालरामायण में वेदविद्या, त्रयी, श्रुति, ब्रह्म, त्रिवेदी, निगम आदि शब्दों से वेदों का उल्लेख, 'स्वाध्याय' शब्द से वेदशाखा-अध्ययन का संकेत शुक्ल-यजुर्वेद का नाम्ना उल्लेख आदि से भी वैदिक संस्कृति के प्रति राजशेखर की गहन आस्था का पुष्कल प्रमाण मिलता है। अन्ततः बालरामायण के अन्तिम अंक में वर्णित अगस्त्य मुनि के आश्रम-परिवेश में भी वैदिक संस्कृति की एक झलक देखी जा सकती है, परन्तु इसी अंक में सीता के मुख से वैदिक संस्कृति के मूलभूत कृत्यों का एकत्र सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें होमार्थ अग्नि का प्रज्वलित होना, उपदेशकों के उपदेश कथाओं में दत्तचित्त होना, विविध वैदिक शाखाओं का पाठ, धर्मशास्त्र का उपदेश, योगाचार की शिक्षा तथा अतिथि सेवा में निरत रहना, तपस्वियों का पर्णशालाओं में निवास तथा उन्हीं तपस्वियों द्वारा संसार के बन्धनों से सांसारिक जनों की मुक्ति उल्लिखित है। इस प्रकार सीता के इस कथन के माध्यम से राजशेखर ने एकत्र वैदिक संस्कृति के प्रायः सभी पक्षों को प्रस्तुत करने का सुन्दर एवं स्तुत्य प्रयास किया है।

इस प्रकार बालरामायण में उपलब्ध उपर्युक्त वैदिक सन्दर्भों तथा सम्पूर्ण नाट्य कृति में अवसरानुकूल गुम्फित देवोपासना, आचार-विचार, यज्ञ-यागादि, संस्कार, वैदिक ऋषि, वैदिक मान्यताओं आदि से सम्बद्ध विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजशेखर ने इस नाटक में वैदिक संस्कृति के प्रायः सभी पक्षों को उद्घाटित एवं नियोजित करने का एक सफल प्रत्यन किया है, जो वैदिक संस्कृति के प्रति उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा एवं गहन आस्था के परिचायक हैं; अतः उन्हें वैदिक संस्कृति के एक संवाहक कवि के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा।

सन्दर्भ -

1. ऋग्वेद, 7.66.16, यजुर्वेद, 36.24
2. अथर्ववेद, 11.5.19, 11.5.17
3. द्रष्टव्य, ऋग्वेद, 7.89; 10.121; यजुर्वेद, 40.7; छान्दो. उप., 6.8.7 आदि।
4. ऋग्वेद, 1.64. 30, 1.64.38, अथर्ववेद, 9.10.16 इत्यादि।
5. बालरामायण, अंक 4, पृ. 103
6. तदेव, 2. 63
7. तदेव, 4.42-44
8. बालरामायण, 6. 30
9. बालरामायण, 1.28-3.17
10. तदेव, 1.28; 2.13; 2.26; 4.2 ; 4.37 इत्यादि।
11. बालरामायण, अंक 1, पृ. 30-
12. ऋग्वेद, 6.75.14); अथर्ववेद, 6.27.1 19.9.14; 17.1.7 इत्यादि।
13. बालरामायण, 6. 71, ऋग्वेद 10.117.4; अथर्ववेद, 5.11.9; 5.11.10, तदेव., 18.1.1; 18.4.60
14. बालरामायण, 10.60-101
15 बालरामायण, 4.69
16. ऋग्वेद, 1.1.1
17. बालरामायण, 1.39-1.49
18. बालरामायण, 10.4
19. बालरामायण, 2.33, 1.35
20. बालरामायण, 2.32-4.69
21. बालरामायण, 2, पृ0 45य 3, पृ0 70,

16

'बालरामायणम्' में शाश्वत जीवन मूल्यबोध

प्रशान्त कुमार सेठी *

राजशेखर के बालरामायण में और रावण का चरित्र स्थापित किया गया है। जीवनमूल्य मानव समाज की एक शक्ति है। समाज को सार्थक बनाये रखने के लिये ये शक्ति जीवनमूल्यों से प्राप्त होती है। जिस रचना में जीवनमूल्यों की समीक्षा नहीं होती ये रचना पाठक के मार्गदर्शन के लिए ही उपयोगी नहीं हो सकता। राजशेखर बालरामायण में अतिथि सत्कार, अहिंसा, विनम्रता, आदरभाव, पितृ आज्ञापालन, करुणादि व्यापक रूप से स्थापित किया है जो यहां प्रस्तुत है।

अतिथिसत्कार - अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है, जिसमें अतिथि का सम्मान और स्वागत किया जाता है। अतिथि सत्कार हमें सिखाता है कि दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसे उनके साथ संबंध बनाना है। अतिथि देवो भव मूल्य के प्रति राजशेखर ने इनकी बालरामायण नाटक में महत्त्व रखते हैं। नाटक के प्रथम अङ्क में जब रावण सीता को पत्नी रूप में पाने के लिए मिथिला आते हैं। वह निमिवंशियों के लिए विवाह सम्बन्ध के योग्य नहीं है ये बोलकर जनक दुःखी होते है। तब शतानन्द कहते हैं – प्रचण्ड बाहुओं वाला रावण भी शंकर की इच्छा को अन्यथा नहीं कर सकता। तो आइये मुनि के पुत्र दुराचारी भी रावण का उचित अतिथि सत्कार करे। **तदेहि दुर्वृत्तमपि मुनिपुत्रमुचितेन संभावयाव।**[1]

अर्थात् घर में आए हुए जो कोई भी हो, ये सदाचारी हो या फिर दुराचारी सबका उचित सत्कार करना चाहिए। जनक ने आए हुए अतिथि रावण का सत्कार करते हुए इस प्रकार कहते हैं - सौभाग्य से पुलस्त्य की संतान को देखकर हम प्रसन्न हो रहे हैं। लङ्केश्वर आप इधर आइये। यहाँ आसन पर बैठिये।

दिष्ट्या दृष्टपुलस्यप्रसवाः प्रमोदामहे। लङ्केश्वर इत इतो भवानिदमासनमास्यताम्।[2]

उस समय मैं अतिथियों के लिए अलग-अलग सत्कार व्यवस्था होती थी। क्षत्रियों के लिए अलग और दिव्य तथा ब्राह्मणों के लिए अलग था। रावण क्षत्रिय था और ऋषिपुत्र भी। अतः शतानन्द पूछते हैं –आप ऋषि पुत्र तथा दिव्य पुरुष हैं तो आप की कौन सी पूजा की जाय। श्रोत्रिय के सत्कार के लिए वृषभ मारा जाता है। दिव्यव्यक्ति के लिए स्रुवा के साथ सुगन्धित द्रव्य दिये जाते हैं। यथा - **महोक्षो वा महाजो वा श्रोत्रियाय विशस्यते। निवेद्यते तु दिव्याय स्रक्सुगन्धिनिधिविधिः।।**[3] तब रावण कहते हैं हमारा सत्कार इस प्रकार करें

यत्पार्वती हठकुचग्रहणप्रवीणे, पाणौ स्थितं पुरभिदः शरवां सहस्रम्।
गीर्वाणसारकणनिर्मितगात्रमत्र, तन्मैथिली क्रयधनं धनुराविरस्तु।।[4]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक प्रोफेसर-संस्कृत विभाग गंगाधर मेहेर विश्वविद्यालय, ओडीशा*

अर्थात् जो धनुष पार्वती के स्तनों को हठपूर्वक ग्रहण करने में निपुण शङ्कर के हाथों में सहस्रों वर्षों तक रहा और जो देवताओं के सारभूत कणों से निर्मित हुआ है वह सीता का क्रय मूल्य धनुष सामने लाया जाए।

द्वितीय अंक के अन्त में अतिथि सत्कार का वर्णन मिलता है। रावण एवं परशुराम के बीच युद्ध को भृंगिरिटि रोक देते हैं। शंकर के आदेश से जब रावण चले जाते हैं तब नेपथ्य से याज्ञवल्क्य ने परशुराम की सत्कार कर कहते हैं- आप हमारे अतिथि हैं। साक्षात् देव शंकर आपके गुरु हैं। अतः हे भृगुपुत्र, आप हमारे घर पर आइये और छात्र मंडली अभीष्ट अनध्याय मनाये।

अतिथिरसि किमन्यद् देवदेवो गुरूस्ते, वयमपि च सदाराः साग्नयोऽस्मिन् वसामः।
तदुपसर गृहान्नस्त्वं भृगोः पुत्रभांडं, बटुपरिषदमीष्टा सन्त्वनध्यायचेष्टा।।[5]

चतुर्थ अंक मे भी परशुराम की अतिथि सत्कार होती है। शिव के शिष्य और क्षत्रियों के नाशक परशुराम शिवधनुष भंग होने से क्रोधित होकर आते हैं तब जनक कहते हैं – भगवान शतानन्द आतिथ्य करने के लिये प्रस्तुत हो जाइये, परशुराम अतिथि आ रहे हैं। **भगवन्नांगिरस सज्जातिथेयो भव भार्गवोऽतिथिर्भवति।**[6]

चतुर्थ अंक में राजा जनक ओर शतानन्द दशरथ के प्रति सम्मान स्थापित करते हैं। जनक का प्रतिहारि दशरथ को मिथिला आते हुये देखकर जनक को कहते हैं–हे राजन् आपके संबन्धी राजा दशरथ इन्द्र के रथ से आये हैं। उठकर इनकी पूजा करिये।**देवो दसरथो राजन् सम्बन्धी ते समागतः शतक्रतुरथेनायमभ्युत्तानेन पूज्यताम्।**[7] इस प्रकार राजशेखर अतिथियों के प्रति सम्मानपूर्वक व्यवहार को शाश्वत जीवन मूल्यबोध के रूप में वर्णन किये हैं।

अहिंसा - राजशेखर ने अहिंसा को एक शाश्वत जीवन मूल्यबोध बताया है। अहिंसा परमोधर्मः। वचन और कर्म से किसी को पीड़ा नही देना ही अहिंसा है। क्षमा करना, सहन करना, सेवा करना, सब जीवों का हित करना अहिंसा का स्वरूप माना जाता है। रावण के द्वारा शिव धनुष का तिरस्कार किए जाने पर जनक क्रोध कर के जब उनके ऊपर धनुष चढ़ाते हैं तब रावण के ऊपर क्रोध न करने का परामर्श मिलता है। नेपथ्य से शुनः शेप कहते हैं - क्रोध न करो। तुमने शस्त्रों का परित्याग कर दिया है। तुम्हारे गुरु याज्ञवल्क्य हैं। तुम से यह विक्षोभ कैसे हो गया ? यह परिणत बुद्धि से रहित क्षत्रियो के योग्य है। शर संधान को रोको। हम लोग लज्जित हो रहे हैं।

जनक विरम रोषात् त्वं हि संन्यस्तशस्त्रः, कथमयमुपरागस्त्वद्गुरुर्याज्ञवल्क्यः।
परिणतिपरिहीणक्षुद्वराजन्यजन्यं, तदिह शरनिवेशं संवृणु व्रीडिताः स्मः।।[8]

फिर जनक धनुष छोड़कर संसार को राक्षसों से हीन करने के लिए शापोदक छोड़कर कमण्डलु हाथ में लेते हैं तब शतानन्द भी परामर्श देकर कहते हैं – भगवान सूर्य से प्राप्त असीम ब्रह्मज्ञान तथा तपोराशि का यह व्यय क्यों कर रहे हो। शापोदक हटाये।

भगवतो वैकर्तनादागतस्य निरवधिसीम्नो ब्रह्मतत्त्वोपलम्भस्य तपोराशेश्च किमयं व्ययः क्रियत इति शापोदकमुपसंहरेति।[9]

इस प्रकार राजशेखर के बालरामायण नाटक में क्षमा, शान्ति के माध्यम से अहिंसा के जीवन मूल्यबोध स्थापित किये गए हैं।

आदरभाव - आदरभाव भी एक शाश्वत जीवन मूल्यबोध हैं । राजशेखर की इस नाटक में आदरभाव के मूल्य स्थापित हुए हैं। स्त्री के ऊपर शस्त्र न उठाना, महान व्यक्ति के प्रति आदर भाव को नाट्यकार ने सुन्दर रूप से

प्रदर्शित किया है। नाटक के तृतीय अंक में जब भगवान कुशिकनन्दन विश्वामित्र ने रक्त से व्याप्त मुखवाली ताड़का की वध करने के लिये रामचन्द्र को नियुक्ति करते हैं तब होने वाले स्त्री वध की शंका से रामचन्द्र सविनय पूर्वक कहते हैं -

स्त्रीराक्षसी कथमिवात्र पतन्तु बाणाः, प्रेष्यस्य ते कुशिकनन्दन तत्प्रसीद।
श्राविश्यतामिह हि कोऽपि तपस्वितन्त्रे, मन्त्रक्षरैः कतिपयैर्य इमामपास्येत्।।[10]

अर्थात् हे कुशिकनन्दन यह राक्षसी स्त्री है अतः इस पर आपके सेवक के बाण कैसे गिरें। अतः प्रसन्न होइये और इन तपस्वियों में से किसी को आदेश दीजिये जो कुछ मन्त्रों से इसे दूर हटा दे। यहाँ राम ने शत्रु तारका पर स्त्री होने के कारण उनके ऊपर श्रद्धाभाव रखते हैं क्योंकि स्त्रियों का वध शास्त्र संगत नहीं है।

राजशेखर वैरी को भी आदर का पात्र मानते हैं। चतुर्थाङ्क में परशुराम और रामचन्द्र के बीच वाक्युद्ध चलता है। परशुराम अत्यन्त क्रोधित होकर राम को यमराज की आतिथ्य अनुभव करवाना चाहते हैं अर्थात् राम को मृत्युदण्ड देना चहते हैं, तब रामचन्द्र परशुराम के प्रति आदरभाव रखकर कहते हैं -

श्रनुचानं भक्त्या भृगुभव भवन्तं प्रणमति, क्रुधः शान्त्यै रामस्तदिह सुकुमारं कुरु मनः।
हठान्न्यस्यत्कण्ठ परशुमपि नोत्तेजयसिमां, रघूणां ब्रह्माणः किमपि यदमीगोत्रगुरवः।।[11]

अर्थात् हे भृगुवंशोत्पन्न, आप श्रेष्ठ को क्रोध की शान्ति के लिये राम भक्ति से प्रणाम करता हूँ। अतः इस विषय में मन को कोमल करिये। हठ से कण्ठ में फरसा चलाते हुये भी आप मुझे उत्तेजित नहीं कर रहे हैं क्योंकि रघुवंशियों के ब्राह्मणगोत्र गुरु हैं। इस प्रकार नाट्यकार ने नाटक में आदरसूचक मूल्यबोध प्रदर्शित किये हैं।

विनम्रता - विनम्रता भी एक शाश्वत जीवनमून्यवोध है। राजशेखर ने विनम्रता भाव को अत्यन्त सुन्दर रूप से स्थापित किया है। चतुर्थाङ्क में शिवधनुष भंग होने पर जब परशुराम क्रोधित होकर दशरथपुत्र राम को ढूँढ़ते हैं, तब राम जल्दी से आगे आकर कहते हैं – भगवन् भार्गव, दया कर प्रसन्न होइये। सदाचार समझकर राम प्रणाम करना चाहता है। **भगवन् भार्गव, सदयं प्रसीद सदाचार इति रामोऽभिवादयितुकामः।**[12]

फिर जब परशुराम राम के साथ क्रोधित होकर युद्ध करना चाहते हैं तभी राम विनम्रता के साथ उत्तर देते हैं – मुझ जैसे मूढबुद्धि पुत्रकल्प लोगों पर यह आपकी अक्षमा कैसी ?

बाह्वोर्बलं न कलितं न च कार्मुकस्य त्रयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः।
तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्।।[13]

अर्थात् न तो बाहुबल का ख्याल किया और शङ्कर के धनुष की कमजोरी का, इसलिये यह हमसे दोष हो गया। मेरा इस चंचलता को आप परशुराम क्षमा करें। बालक के दुर्विलास गुरुओं को प्रसन्न करते हैं।

और पुनः जब परशुराम अत्यन्त क्रोधित होकर राम के सिर को काटना चाहते हैं, राम विनम्रता के साथ कहते हैं -कुठार आपके अधीन है और राम का शिर भी आपके अधीन है। अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा व्यवहार करिये। आपकी आज्ञा का निषेध कौन करता है ?

स्वायत्तेन कुठारेण स्वाधीनेराममूर्द्धनि। यथेष्टं चेष्टतामार्यस्त्वदाज्ञां कोनिषेधति।।[14]

पितृआज्ञा पालन - राजशेखर ने बालरामायण नाटक में पितृआज्ञा की पालन को भी शाश्वत मूल्य के रूप में स्थापित किया है। जब मायामय और शूर्पणखा दोनो का छद्मरूप वाला वृत्तान्त सबको पता चल गया तब वामदेव रामचन्द्र को समाचार बताकर वन जाने से मना करते हैं किन्तु राम अपने निश्चय पर अटल रह कर कहते हैं - मैंने शिर नवाकर, ये पिता का शासन है ऐसा समझकर धारण किया। अब चाहे वह यक्ष, राक्षस या

रघुपति दशरथ ही क्यों न हों। मैं राम वन में चौदह वर्ष अच्छी तरह बिताकर, भरत से रक्षित अपनी पुरी को लौटूंगा।

मया मूध्नि प्रह्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं, स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः।
निर्वातष्ये सोऽहं भरत—तरक्षां निजपुरीं, समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च।।[15]

करुणा - राजशेखर के बालरामायण नाटक में करुणाभाव का मूल्यबोध भी वर्णन हुआ है। राम का वनगमन बड़ा कमनीय है। शिरीष पुष्प के समानकोमल अङ्गों वाली सीता तेजी से दो तीन पग ही आगे जाकर राम से बार-बार पूछने लगी कि कितनी दूर जाना है। यह सुनकर राम की आँखों में आँसू आ गये।

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी, गत्वा जवात् त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा, रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।।[16]

इस प्रकार नाटककार राजशेखर ने बालरामायण नाटक में शाश्वत जीवनमूल्य को विभिन्न चरित्र माध्यम से स्थापित किये हैं।

संदर्भ -

1. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-19*
2. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-19*
3. *बालरामायण 1-38*
4. *बालरामायण 1-39*
5. *बालरामायण 2-63*
6. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-124*
7. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-123*
8. *बालरामायण 1-57*
9. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-30*
10. *बालरामायण 3-4*
11. *बालरामायण 4-63*
12. *बालरामायण, गंगासागर राय, पृ-128*
13. *बालरामायण 4-60*
14. *बालरामायण 4-62*
15. *बालरामायण 6-16*
16. *बालरामायण 6-34*

सहायक ग्रन्थ सारिणी -

1. *राय, गंगासागर , बालरामायण, चौकम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2011।*
2. *Shastri Anantanarayana, Balaramayana, RS Vadhyar & sons, Kerala, 2012*

17

'बालरामायणम्' की भौगोलिक मीमांसा

सुनीता अटल

'बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा' नामक शोध इस काव्य के बहुआयामी स्वरूप, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिवेश और उसमें अन्तर्निहित भौगोलिक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में एक सम्यक् दृष्टिकोण का परिचायक है। 'बालरामायण' एक ऐसा नाट्यकाव्य है, जिसकी रचना संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में निष्णात, कालिदासोत्तर कालीन महाकवि राजशेखर ने की थी। राजशेखर का जीवनकाल नवम-एकादश शती के मध्य माना गया है। वे महेन्द्रपाल जैसे प्रतापी राजा के सभाकवि रहे और स्वयं को कवि-राजशेखर के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।[1] उन्होंने नाट्य, महाकाव्य, टीकाग्रंथ तथा अनेक काव्यरचनाएँ कीं, जिनमें संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है।[2] 'बालरामायण' का महत्त्व इसलिए भी है कि यह काव्य केवल धार्मिक या पौराणिक दृष्टि से नहीं अपितु साहित्येतिहास, राजनैतिक चेतना और भौगोलिक दृष्टि से भी अभूतपूर्व प्रमाण प्रस्तुत करता है।

यह काव्य न केवल श्रीरामकथानक पर आधारित है, अपितु यह तत्कालीन भारतवर्ष की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक स्थिति को समझने के लिए एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी है। इसकी रचना में नाटकीय अनुशासन के साथ-साथ भूगोल, इतिहास और साहित्य का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यथा–

स्फूर्जद्वज्राहत्तसुरगिरिस्वर्णचूर्णच्छटाभिः, तुल्योल्लासैस्त्रिभुवनदृशां दत्तदोस्थित्यमुद्रः।
आशारन्ध्राण्ययमविरतं रुद्रकोदण्डदण्डः, स्वेच्छाचण्डो रचयति रुचां पञ्चरैः पिञ्जराणि।।[3]

अर्थात् रावण युद्ध के लिए जब चल रहा होता है, तब उसका दृश्य अत्यन्त भयंकर, तेजस्वी और महाशक्ति संपन्न है। उसके ध्वज लहरा रहे हैं, जिनकी चमक स्वर्ण पर्वतों के चूर्ण जैसी दीप्तिमती है। उसकी भुजाएँ युद्ध की मुद्रा में स्थिर हैं, और उसकी गति इतनी प्रचंड है कि दिशाओं की संधियाँ भी हिल उठती हैं। उसका पराक्रम शिव के दण्ड धनुष के समान उग्र और कठोर है, और वह प्रकाश की परतों को भी रक्तिम करता हुआ प्रलयंकारी गति से आगे बढ़ रहा है।

'बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा' में यह श्लोक रावण की दैहिक-सैन्य शक्ति, उसकी भौगोलिक विस्तार की आकांक्षा एवं राक्षसी सत्ता के दृश्यमान उद्भव को नाट्य और दृश्य-परिकल्पना के माध्यम से उभारता है। यहाँ 'आशारन्ध्राण्यविरतं' — दिशाओं की सीमाओं को कंपायमान कर देने वाला उसका प्रवेश,

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
******सहायकाचार्या, श्रीवेंकटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली***

उसके राजकीय सामर्थ्य का प्रतीक है, जो केवल लंका तक सीमित नहीं, बल्कि त्रिभुवनव्यापी सत्ता के स्वप्न तक जाता है।

रावण का यह चित्रण एक भौगोलिक सत्ता के विस्तार की लालसा नहीं, अपितु आकाशगामी स्वत्व के दैवी प्रतिस्पर्धा की घोषणा है। 'आशारन्ध्राण्ययमविरतं रुद्रकोदण्डदण्डः' इस पंक्ति में उसकी गति किसी भूगोल की सीमाओं में बंधी नहीं, अपितु दिशाओं के अंतरालों को भेदती हुई प्रतीत होती है। इस रूप में 'बालरामायण' केवल रामकथा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पुराकाव्यात्मक सत्ता संघर्ष का नाट्य रूप है।

राजशेखर द्वारा रचित यह नाटक श्रीराम के बाल्यचरित्र को केन्द्र में रखकर रचित है, जिसे बालकाण्ड की घटनाओं तक सीमित किया गया है। किन्तु इस सीमित कथा-परिधि में कवि ने जिन स्थलों, प्रदेशों, नगरों, तीर्थस्थलों, नदियों, पर्वतों, वनों और राजमार्गों का उल्लेख किया है, वे तत्कालीन भौगोलिक संरचना को उद्घाटित करने में सहायक हैं। 'बालरामायण' वस्तुतः भूगोल की एक सजीव काव्यात्मक व्याख्या है, जो स्थान विशेष की सांस्कृतिक चेतना, पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य और सामाजिक गतिशीलता को भी स्पष्ट करती है।

यस्मिन्नापः सह परिणताः सूर्यपुत्रीपयोभि, र्मन्दाकिन्याः कुमुदरुचयो मेचकेन्दीवराभैः।
तीर्थे तस्मिन् मम विशदितं देवताभूय भूयः, स्वाङ्गत्यागात् स्पृहयति मनो वासवाधासनाय।।[4]

यह बालरामायण के अत्यंत महत्त्वपूर्ण श्लोकों में से एक है, जो न केवल भौगोलिक चेतना को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। इस श्लोक में कवि राजशेखर ने एक ऐसे दिव्य तीर्थ का वर्णन किया है जहाँ गंगा (मन्दाकिनी) और यमुना (सूर्यपुत्री) का संगम हुआ है। वहाँ के जल में नीले इन्दीवर के समान कुमुद पुष्प खिले हुए हैं, जो दृश्य को अत्यंत मनोहारी बना देते हैं। उस तीर्थ की पावनता इतनी महान् है कि कवि को वहाँ पहुँचने की तीव्र आकांक्षा होती है, यहाँ तक कि वह अपनी देह का त्याग कर देवत्व को प्राप्त कर उस स्थान पर निवास करना चाहता है।

इस श्लोक के माध्यम से स्पष्ट होता है कि बालरामायण में नदियों, संगमों, तीर्थों और प्राकृतिक स्थलों का अत्यंत सूक्ष्म तथा काव्यात्मक वर्णन हुआ है। विशेषतः यह श्लोक निम्न बातों को स्पष्ट करता है -
संगम की पवित्रता - गंगा और यमुना के संगम को परम पवित्र माना गया है। कवि ने इसे 'इन्द्रासन के समान' माना है। प्राकृतिक सौन्दर्य-कुमुद-पुष्प, इन्दीवर, जल की नीली-श्वेत आभा-इनका वर्णन भारत के तीर्थस्थलों की दृश्यात्मक भव्यता को दर्शाता है। आध्यात्मिक आकांक्ष- कवि स्वयं देह त्याग कर देवता बनकर उस तीर्थ में पहुँचना चाहता है। इससे तीर्थ की आत्मिक महत्ता प्रकट होती है। साहित्य में भूगोल की उपस्थिति-यह श्लोक उदाहरण है कि संस्कृत काव्य में भूगोल केवल वर्णनात्मक नहीं, अनुभूतिपरक है। यह स्थल सम्भवतः प्रयागराज हो सकता है, जहाँ गंगा, यमुना और (गुप्त रूप से) सरस्वती का संगम होता है। इसके अलावा, हरिद्वार, देवप्रयाग, या पंचप्रयागों में से कोई एक भी हो सकता है। इन सभी स्थलों में प्राकृतिक सौंदर्य, जलधाराओं का संगम और पौराणिक महत्ता विद्यमान है। 'बालरामायण' में प्रयुक्त स्थलों की भौगोलिक कल्पनाएँ केवल स्थूल भूगोल तक सीमित नहीं, प्रत्युत वे भारतीय मनीषा की उस जिज्ञासु धारा की प्रतीक हैं जो 'योजनशतं' की माप से आगे जाकर 'गगनपरिमाणं' तक का बोध कराती हैं। राजशेखर की दृष्टि में भौगोलिकता केवल भौमीय नहीं, वह ब्रह्माण्डीय और अध्यात्म- वैज्ञानिक स्वरूप में भी प्रतिष्ठित है, जैसा कि कहा गया है -

उदन्वच्छन्ना भूः स च निधिरपां योजनशतं, सदा पान्यः पूषा गगनपरिमाणं गणयति।
इति प्रायो भावाः स्फुरदवधि मुद्रामुकुलिताः, सता प्रज्ञान्मेषः पुनरयमसीमा विजयते।।[5]

अर्थात् अथाह जलराशियों से युक्त, समुद्रों के पर्यन्त फैली यह पृथ्वी, योजनशतों में मापी जाती है। सूर्य (पूषा) तक आकाश की विशालता की गणना करता है। ये सभी माप और दृष्टियाँ प्रतीत होती हैं मानो ज्ञान की मुद्रित सीमाओं में स्फुरण करती हुई भावनाएँ हों। किन्तु सत्प्रज्ञा (उच्च कोटि की विवेक-बुद्धि) का यह मेष (बलशाली चरित्र/जिज्ञासा) पुनः उन सभी सीमाओं को लांघकर 'असीमा' (असीम/अव्याख्येय सत्ता) को भी जीत लेता है। अतः 'बालरामायण' की भौगोलिक मीमांसा केवल देशकाल की सीमाओं तक सीमित नहीं, बल्कि उसमें मनीषा की वह अन्तर्यात्रा समाहित है, जो असीम की विजय के लिए प्रयत्नशील है।

इसी प्रकार 'बालरामायण' में जल, अग्नि, मेघ, सूर्य, ताप, और दाह जैसे प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग केवल अलंकारिक नहीं अपितु सामाजिक, दैवीय और नैतिक चेतना के रूप में किया गया है। जब रावण जैसे त्रिभुवनविजयी के भीतर चण्डताप का संचार होता है, तो उसका शांत होना किसी जलसिंचन, या कृपा से नहीं, अपितु उसके गर्व के पराभव से होता है; यह सन्देश राजशेखर अत्यन्त सजीव शैली में प्रस्तुत करते हैं -

वन्हे निन्हितुमर्चिः परिचिनु पुरतः सिञ्चतो वारिवाहान
हेमन्तस्यान्तिके स्याः प्रथयति दवथुं येन ते ग्रीष्म नोष्मा।
मार्तण्डाश्चण्डतापप्रशमनविधये धत्त नाडीं जलाद्रो
देवो नान्यप्रतापं त्रिभुवनविजयी मृष्यते श्रीदशास्यः।।[6]

यह केवल भौगोलिक तप-शमन नहीं, बल्कि धर्म के विरोध में खड़ी दुष्ट सत्ता का विनाश ही 'रामायण' की दार्शनिक भौगोलिकता है।

'बालरामायण' में वर्णित अयोध्या, मिथिला, चित्रकूट, दण्डकारण्य आदि स्थल न केवल श्रीरामकथा से सम्बन्धित पौराणिक महत्व के हैं, अपितु वे तत्कालीन भारतवर्ष की भूगोल सम्बन्धी धारणा को भी दर्शाते हैं। इन स्थलों का उल्लेख कवि ने जिस प्रकार से किया है, वह तत्कालीन यातायात व्यवस्था, राजमार्गों, नगरों की बसावट, तीर्थयात्राओं की परम्परा, वनप्रदेशों की स्थिति तथा नदियों के प्रवाह की जानकारी भी देता है। उदाहरणार्थ, जब राम वनगमन करते हैं, तो उनका मार्ग केवल एक कथानक नहीं है, अपितु एक भौगोलिक यात्रा है, जिसमें वे देश के विविध भूभागों से होकर गुजरते हैं।

नश्यन्नाविमानाङ्गणमार्णवलभीरबवातायनेभ्यो वक्त्रैराकण्ठदृश्यैर्यदमरललना लोलमालोकयन्ति।
यच्चेदं व्योम विद्युत्खचितमिव पुरस्तेन मन्ये किमन्य द्वत्साभ्यामाद्रियन्त शिखिनिचयमुचा देवताः शस्त्रामय्यः।।[7]

बालरामायणम् की एक विशिष्ट भव्यदृश्य-वर्णनात्मक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह श्लोक अपनी भाषा, अलंकारिकता और कल्पनाशक्ति के माध्यम से तत्कालीन भौगोलिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को सूक्ष्म रूप से उद्घाटित करता है।

इस श्लोक में एक दिव्य नगर अथवा युद्धभूमि का अत्यंत भव्य, मनोहर और अद्भुत दृश्य प्रस्तुत किया गया है जिसे स्वर्ग की देवियाँ (अमरललनाएँ) भी आकण्ठ निहार रही हैं। यह वर्णन, नगर के स्थापत्य, आकाश की बिजली-जैसी शोभा, तथा देवताओं के युद्ध-प्रसंगों को जोड़कर किया गया है। यहाँ ''विमानाङ्गण'', ''वातायन'', ''मार्गणवलभी'', आदि पद नगर-निर्माण की भव्यता को प्रदर्शित करते हैं। ''विद्युत्वचितम् व्योम'' – बिजली से दमकता आकाश उस युद्ध की उग्रता का प्रतीक है। ''शिखिनिचयम् शस्त्रमय्यः देवताः'' – ऊँचे पर्वत जैसे शिखर, जिन पर शस्त्रों की वर्षा हो रही है, युद्ध की उग्रता को स्पष्ट करते हैं। यह श्लोक विशेष रूप से ''अलौकिक भूगोल'', ''दिव्यनगरी-संरचना'', ''दृश्य-वास्तुशिल्प'', तथा

''स्वर्गिक-अर्थ-व्यवस्था'' के समन्वय को उजागर करता है। इसमें वर्णित विमानों, मार्गों, ऊँचे गगनचुंबी प्रासादों आदि से तत्कालीन राजधानियों की रूपरेखा भी ज्ञात होती है। जिसमें भौगोलिक यथार्थ, स्थापत्य वैभव, युद्ध की भीषणता, और दैवी हस्तक्षेप — सभी एक ही काव्यात्मक वितान में समाहित होते हैं। यह हमें न केवल तत्कालीन काल्पनिक भूगोल का ज्ञान कराता है, अपितु यह भी दिखाता है कि भारतीय काव्य कैसे दर्शनीय भूगोल को अध्यात्म, रस और वीरता से जोड़ता है।

रामे तटान्तवसतौः कुशतल्पशायिन्येवं तु नाम भवतो भगवचनाम्या।
स्मृत्वा तदेहि सगरं च भगीरथं च दृष्ट्वाऽथ वा मम धनुश्च शिलीमुखांश्च।।[8]

बालरामायण के भौगोलिक, सांस्कृतिक और पौराणिक विमर्शों का अत्यंत सारगर्भित उदाहरण है। यह श्लोक किसी पात्र द्वारा (संभवतः श्रीराम द्वारा या किसी अन्य द्वारा राम को संबोधित कर) कहा गया है जिसमें निम्न भाव स्पष्ट होते हैं -

- श्रीराम का निवास नदी-तट पर है (जो गङ्गा, सरयू आदि हो सकता है),
- वे तपस्वी की भाँति कुश के शय्या पर विश्राम करते हैं, जो उनकी विरक्त जीवनशैली का प्रतीक है,
- सगर और भगीरथ का स्मरण गङ्गा के अवतरण की ऐतिहासिकता और पौराणिकता को जोड़ता है,

इस श्लोक में प्रयुक्त 'तटान्तवसति', 'सगर', 'भगीरथ', 'कुशतल्प', 'शिलीमुख' आदि पद, भारत की उस भू-संस्कृति को प्रकट करते हैं जो ऋषि-मुनियों, नदियों और तीर्थों की भूमि रही है।

इस नाटक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें जिन स्थानों का उल्लेख किया गया है, उनके भौगोलिक संकेत अत्यन्त सटीक हैं। उदाहरण के लिए, चित्रकूट का वर्णन करते हुए पर्वतीय सौन्दर्य, तटवर्ती नदी प्रवाह, वन्यप्राणियों की उपस्थिति आदि को इस प्रकार चित्रित किया गया है कि यह केवल सौन्दर्यवर्णन नहीं, अपितु तत्कालीन भौगोलिक एवं पर्यावरणीय स्थिति का दृश्य चित्र बन जाता है। इस प्रकार 'बालरामायण' केवल काव्यगत कल्पना का सहारा नहीं लेता, अपितु यथार्थ के धरातल पर खड़ा होकर स्थलचित्रण करता है।

यस्याम्बुधिः स भगवान म च रोहणाद्रिः कोशात्रिमौ मदनमन्त्रपदैर्वचोभिः।
मोऽयं प्रियो र्याद हसन् मृदु सिंहलेन्द्रः क्रीडानिधानमनुरोधपुरं धिनोति।।[9]

यह श्लोक श्रीराम के समुद्र पार के अभियान तथा सिंहल (लंका) की भौगोलिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक पृष्ठभूमि को छूता है। यहाँ लंका (विशेषतः अनुराधापुर) का वर्णन एक क्रीड़ाभूमि, सौंदर्य की भूमि तथा भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत आकर्षक और महत्त्वपूर्ण स्थल के रूप में किया गया है – (अम्बुधिः) लंका को घेरता हुआ समुद्र (भारतीय महासागर)। (रोहणाद्रिः) रोहण पर्वत (संभवतः रोहण क्षेत्र, श्रीलंका का दक्षिणी पर्वतीय भाग)। (सिंहलइन्द्रः) लंका का शासक, यहाँ रावण प्रतीक हो सकता है। (अनुरोधपुरम्) अनुराधापुर यह तत्कालीन लंका की राजधानी रही, जिसे यहाँ क्रीड़ास्थली (मनोरंजन एवं वैभव) के रूप में चित्रित किया गया है।

इस प्रकार, यह श्लोक लंका की सांस्कृतिक, प्राकृतिक और भौगोलिक सम्पन्नता को चित्रित करता है, जिससे यह बालरामायण की दक्षिण दिशा की भौगोलिक कल्पना का स्पष्ट सूचक बनता है।

यम्योच्चण्डामिदप्रण्डहतिविदलितैर्वैरिवंर्गरत्नत्य- त्तिप्तास्त्राद्वान्तवीरप्रतिबलकलनाशून्यसंग्राममार्ग।
जीवत्संस्कारशक्त्या भुवि चरति चिरात्कृत्तबन्धं कबन्ध दत्त देवीभवद्भिः सह सुरकुसुमैरात्मनः साधुवादः।।[10]

यह श्लोक एक भीषण युद्ध का चित्रण करता है जिसमें श्रीराम के पराक्रम से कबन्ध राक्षस का वध हुआ है। वह युद्ध इतना तीव्र था कि पृथ्वी पर शत्रुओं की गिनती लुप्तप्राय हो गई थी और विजयी श्रीराम की कीर्ति देवताओं द्वारा भी प्रशंसित हुई। यम्य दिशा (दक्षिण) – राम का वनगमन दक्षिण दिशा की ओर था। कबन्ध का वध किष्किन्धा के निकट क्षेत्र में हुआ (वर्तमान कर्नाटक के आसपास)। यथा (संग्राममार्ग) एक विशेष भूभाग जहाँ पर भीषण युद्ध हुआ, संभवतः दण्डकारण्य क्षेत्र। (भुवि च चिरात् कृतबन्धं कबन्धं) कबन्ध का वध एक स्थायी भूगोल में घटित घटना के रूप में देखा जा सकता है, जो उस क्षेत्र को पवित्रता या ऐतिहासिकता प्रदान करता है। बालरामायण श्रीराम की यात्रा के विभिन्न भूगोलों को कवित्व में समाहित करता है : कोसल, चित्रकूट, दण्डकारण्य, किष्किन्धा, सेतुबंध, लंका आदि।

इन श्लोकों में भूगोल केवल भौतिक रेखा नहीं है, बल्कि कथा का जीवित अंग है। इसमें सागर, पर्वत, नगर, तीर्थ, युद्धभूमि आदि सभी को विशिष्ट अर्थबोध के साथ प्रस्तुत किया गया है। ''बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा'' के अंतर्गत ये श्लोक यह सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारतीय काव्य न केवल कथा कहता है, अपितु काल, क्षेत्र और संस्कृति का गम्भीर भूगोल भी प्रस्तुत करता है।

बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा के सन्दर्भ में यह श्लोक एक विशेष कालखण्ड या ऋतु-प्रसंग, प्राकृतिक परिवेश तथा सामाजिक मनोविज्ञान को एक साथ उजागर करता है -

दृष्टा व्योमनि बालमभ्रशकलं लेह्यं जगच्चक्षुषां नीपानां कुसुमावतंसजननं नृत्यप्रदं बर्हिणाम्।
यात्रावेशहरं जिगीषुमनसामस्य स्फुटत्कञ्चुक्रः। कान्ताभिः सुहृदां द्विषां च युगपत् प्राप्तः प्रमोदोत्सवः।।[11]

इस श्लोक में कवि ने प्रकृति के सौंदर्य, ऋतु-परिवर्तन और उसके प्रभाव को अत्यन्त रसपूर्ण शैली में चित्रित किया है। यह विशेषतः वसन्त ऋतु का वर्णन प्रतीत होता है, जहाँ— बादल नवजात शिशु जैसे प्रतीत हो रहे हैं, वृक्षों पर नवपुष्प खिलकर मस्तक के आभूषण बनते हैं, मोर अपने आप नृत्य करने लगते हैं, युद्ध की मानसिकता तक शान्त हो जाती है, और संपूर्ण समाज – मित्र, प्रियजन और यहाँ तक कि शत्रु – एक समान प्रमोद और आनन्द का अनुभव करते हैं।

भारतवर्ष में ऋतुचक्र का भौगोलिक संकेत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है – वसन्त ऋतु का यह दृश्य उत्तर भारत के मध्यम क्षेत्र (अयोध्या, चित्रकूट, विदेह आदि) में विशेषतः अनुभव किया जाता है। यह श्लोक यह भी दिखाता है कि भूगोल और ऋतु केवल प्राकृतिक वातावरण नहीं, अपितु राजनीतिक और मानसिक ऊर्जा को भी प्रभावित करते हैं। **''सुहृदां द्विषां च युगपत्''** यह दर्शाता है कि प्रकृति का सौंदर्य और उसका उत्सवभाव सामाजिक समरसता का भी स्रोत बनता है। यह गूढ़ संकेत है कि भूगोल, प्रकृति और ऋतु-चक्र द्वन्द्व को शमन कर सकते हैं। मयूर के नृत्य का चित्रण भारत की सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मोर का नर्तन वसन्तागम का प्रतीक है और यह लोक-जीवन में भी उल्लास और आशा का परिचायक है। वसन्त ऋतु केवल मौसम नहीं, बल्कि संस्कृत काव्य में ''शृंगार-प्रधान'' भावों की ऋतु मानी जाती है। इस प्रकार यह श्लोक बालरामायण को केवल युद्ध-प्रधान महाकाव्य न बना कर, उसे रसपूर्ण और सौन्दर्यमूलक रूप भी प्रदान करता है। भूगोल-मीमांसा में यह दर्शाता है कि कवि राजशेखर के लिए भूगोल केवल स्थूल स्थान नहीं, बल्कि एक रस-युक्त, संवेदनशील और सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्व है। इस श्लोक में ऋतु का, दृश्य सौन्दर्य का, और उसके मानसिक-सामाजिक प्रभाव का जो समन्वित चित्रण हुआ है, वह न केवल भूगोल की, बल्कि काल, प्रकृति और जीवन की मीमांसा है।

राजशेखर का यह काव्य तत्कालीन राजकीय, सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना का भी संकेत देता है। नगरों की सीमा, राजप्रासादों की स्थिति, धर्मस्थान, आम जनजीवन, वाणिज्यिक गतिविधियाँ आदि का भी वर्णन स्थल विशेष के अनुसार किया गया है। अयोध्या का भव्य वर्णन तत्कालीन राजधानी की एक आदर्श छवि प्रस्तुत करता है, जिसमें समाज के विविध वर्गों का रहन-सहन, शिल्प, स्थापत्य, व्यापार और संस्कृति समाहित है।

सौओण्ड्श्चण्डासिरश्मिर्मगधविभुरसावेष काम्बोजराजः सौराष्ट्रोऽयं नरेन्द्रः शकनृपतिरितोऽप्यत्र नेपालपालः।
अन्ध्राणामीश्वरोऽये सदसि समुदिताक्ष्माभृतः सर्व एते सीतायामिन्दुमौलेर्धनुषि च सरसाः प्रेमकौतूहलाभ्याम्।।[12]

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि राजा जनक द्वारा आयोजित सीता-स्वयंवर सभा में देश-देशान्तरों के नरेन्द्र उपस्थित थे। ये नरेन्द्र केवल मिथिला या अयोध्या के समीपवर्ती राज्य नहीं, अपितु ''सौराष्ट्र'' (गुजरात क्षेत्र), ''काम्बोज'' (कश्मीर या अफगान क्षेत्र), ''शक'' (उत्तर-पश्चिमी भारत/मध्य एशिया), ''नेपाल'' (हिमालय क्षेत्र), ''आन्ध्र'' (दक्षिण भारत) आदि के राजा एवं सामंत सभा में आमंत्रित थे। वे राम के पराक्रम और सीता के सौन्दर्य के प्रति मोहग्रस्त होकर वहाँ एकत्र हुए हैं।

राजशेखर इस श्लोक में जो भौगोलिक स्थान प्रस्तुत कर रहे हैं, वे सम्पूर्ण भारतवर्ष के विस्तार को दर्शाते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रामकथा और सीता-स्वयंवर केवल मिथिला के स्थानीय प्रसंग नहीं थे, बल्कि वे भारतीय भूगोल के सर्वदेशीय आदर्शों से सम्बद्ध महान् प्रसंग थे। यह दर्शाता है कि रामकथा सम्पूर्ण भारतीय भूगोल को जोड़ने वाला एक सांस्कृतिक सेतु रही है। राजशेखर द्वारा उल्लिखित राज्य तत्कालीन भारत के विविध दिशाओं के राजनीतिक केंद्र थे, जिनकी उपस्थिति यह संकेत देती है कि रामकथा सर्वभारतीय राजनीतिक चेतना का केन्द्रबिंदु बन चुकी थी। साथ ही, इस प्रसंग के माध्यम से यह भी स्पष्ट होता है कि बालरामायण केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि राजनीति, भूगोल, संस्कृति और काव्य की त्रिवेणी है।

व्योमोत्सङ्गविभूषणस्य सवितुर्द्यावापृथिव्योः समं ध्वान्त ध्वस्तिरुदङमुखैश्च किरणैः प्रारम्भि चावाङ्मखैः।
प्रत्यासन्नविरोधितस्य गगने मन्दाकिनीसङ्जमनां पद्मानां प्रकरः प्रगेऽपि विकसत्यावृत्तकीर्णच्छदः।।[13]

इस श्लोक में प्रातःकालीन समय का मनोहारी चित्रण किया गया है। भाव यह है कि जैसे ही सविता (सूर्यदेव) आकाश में प्रकट होते हैं, वैसे ही वे मानो आकाश की गोद (व्योमोत्सङ्ग) में आभूषण की भाँति शोभा पाते हैं। उनकी किरणें अंधकार का विनाश करने वाली हैं और वे अब धीरे-धीरे नीचे की ओर पृथ्वी की ओर उतर रही हैं। यह सूर्य का गति और तेज, मन्दाकिनी (गंगा) की जलधारा के समान प्रतीत होता है—शान्त, गतिशील और दिव्य। इस मंदाकिनी रूपी आकाशगंगा की पृष्ठभूमि में पद्म (कमल) के पुष्पों के समूह प्रातःकाल में भी खिल रहे हैं, जिनके पत्ते उलटकर बिखर रहे हैं, मानो सूर्य के स्पर्श से उनमें भी ऊर्जा प्रवाहित हो रही हो। (मन्दाकिनीसङ्घनां) यहाँ स्पष्टतः गंगातट या हिमालय की दिव्य नदियाँ भी लक्षित होती हैं, जो राजशेखर की भौगोलिक जानकारी और सांस्कृतिक सन्निवेश को दर्शाती हैं। (पद्मानां प्रकरः) भारतीय तालाबो, सरोवरों तथा पुष्करिणियों की समृद्ध छवि इससे प्रकट होती है।

राजशेखर न केवल कवि हैं, अपितु द्रष्टा हैं—जो सूर्य के उदय में भी ब्रह्मज्ञान के आलोक को देख सकते हैं। यह श्लोक बालरामायण के भव्य सौन्दर्य और गूढ़ अर्थ की श्रेष्ठतम बानगी है।

नगरपरिघदीर्घा बाहुदण्डा ममैते, विजितकलभक्रम्भा सा च तस्याः कचश्रीः।
तव शिशिरसमीरश्चैष नीहार सारस्त्रयमिति, हि समेतं दुर्लभं रावणेन।।[14]

यह श्लोक रावण के आत्मगौरव, बल, सौंदर्य एवं विजय-प्रदर्शन का एक अनुपम उदाहरण है। इसमें द्वन्द्वात्मक सौंदर्य है, जो भुजाओं की शक्ति, केशों की शोभा और सहायक प्रकृतिप्रदत्त साधनों — शिशिर समीर और नीहार (कोहरे) के साथ, एक अद्वितीय सम्मिलन का वर्णन करता है।

अर्थात् मेरी भुजाएँ नगर की परिधि जितनी लम्बी और शक्तिशाली हैं, जिन्होंने मदोन्मत्त हाथियों के समूह को भी पराजित किया है। मेरी प्रेयसी की जटाएँ (केशों की शोभा) अनुपम हैं। और अब तू (प्रकृति का कोई तत्त्व — सम्भवतः कोई सेवक, कोई सम्बोध्य पात्र या स्वयं चित्त) तथा यह शीतल वायु और कोहरे का मंद समीर — यह सब मिलकर एक अद्वितीय समागम है, जिसे पाना किसी के लिए कठिन है; किन्तु रावण ने इसे पा लिया है। यह संकेत करता है कि उस समय नगरों की परिधि कितनी लंबी होती थी, तथा राजा या योद्धा की सामरिक क्षमता को भौगोलिक मापदण्डों से मापा जाता था। रावण की भुजाएँ नगरों की परिधि जितनी लम्बी मानी गई हैं, जिससे उस समय के नगरों की संरचना, उनकी परिधि तथा नगर-दुर्ग-व्यवस्था की रूपरेखा का आभास होता है।

इसी प्रकार 'शिशिरसमीर' तथा 'नीहारमारुत' जैसे वर्णनों में जलवायु, ऋतु, वायुमण्डल, वाष्प, तथा उच्चतम शीत प्रदेशों के अस्तित्व की ओर संकेत मिलता है, जो तत्कालीन भारतवर्ष के ऋतुचक्र तथा उत्तरांचल भूभाग की प्रतीकात्मक व्याख्या मानी जा सकती है। यह सब इस बात का प्रमाण हैं कि बालरामायण में प्रयुक्त काव्यगुणों के साथ-साथ भौगोलिक तथ्यता का भी अंश विद्यमान है। यथा –

अयं तोयावतौ बत न वितलं नागवसते-रयं वीचीच्छेदो न खलु फणिनामेष निवहः।
इयं भृङ्गश्रेणी न पुनरलकानां त्रिरचना, इदं हेमाम्भोजं विकसति न सीतामुख्वमिदम्।।[15]

राजशेखरकृत बालरामायणम् से लिया गया एक अत्यन्त सूक्ष्म और गूढ़ उपमा-श्लोक है, जो भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं अलंकारिक दृष्टियों से बहुस्तरीय व्याख्या को आमंत्रित करता है।

''तोयावती'' जैसे शब्द से यह अनुमान होता है कि वर्णन किया गया दृश्य किसी नदी या जलप्रवाह का हो सकता है, जिसकी गहराई, गति एवं ध्वनि उसे रहस्यमयी बनाती है। ''वितलम्'' के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि उक्त क्षेत्र को इतने गम्भीर जल-क्षेत्र या भूमिगत रहस्य-युक्त स्थल के रूप में देखा गया है कि वह पाताल के समान प्रतीत हो। ''वीचि-च्छेदः और फणिनां निवहः'' जल की सतह पर लहरों की रेखाएँ ऐसे प्रतीत होती हैं जैसे अनेक सर्प एक साथ रेंग रहे हों – यह नदी या सरोवर के ऊपर उठती रेखाओं की अलंकारपूर्ण तुलना है। यह बिम्ब केवल सौंदर्य का नहीं, अपितु जल का जीवंत, गतिशील एवं चेतन स्वरूप भी उद्घाटित करता है। ''भृङ्गश्रेणी और अलकात्रिरचना'' भौंरों की पंक्तियों से उपमा, अथवा अलकाओं की त्रिरचना – इन बिम्बों से यह पता चलता है कि यह दृश्य केवल जल-विज्ञान नहीं, अपितु सौंदर्यशास्त्र से भी परिपूरित है। ये बिम्ब हमें प्राचीन भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भौगोलिक रूप में अन्विति को उजागर करते हैं। ''हेमाम्भोमानं'' यह शब्द केवल सौंदर्यवाचक नहीं, अपितु भूगर्भीय दृष्टि से यह स्वर्ण से परिपूर्ण जलस्रोत की ओर संकेत करता है। क्या यह संकेत किसी ऐसे झील या सरोवर की ओर है जिसकी पृष्ठभूमि में खनिज संपदा रही हो? संभव है कि कवि ऐसे स्थान का चित्रण कर रहा हो जो स्वर्ण-मृत्तिका से युक्त रहा हो (जैसे – मानसरोवर, या अन्य हिमालयवर्ती झीलें)।

राजशेखर द्वारा निर्मित पौराणिक भूगोल और प्रकृतिसौंदर्य का तात्त्विक संगम है। इसकी व्याख्या करते हुए हमें यह समझना होता है कि कवि के लिए भूगोल केवल भूमि का आकार नहीं, अपितु जीवंत, चेतन, सौंदर्यपूर्ण अनुभव है। बालरामायण में दिशा, नक्षत्र, ग्रह आदि का भी प्रसंगवश विवेचन प्राप्त होता है। यथा -

पूर्वदिशा का महत्त्व – **''पौरस्त्यं च पुराणशीधुमधुरच्छायं''**[16] भारतीय दर्शन में पूर्व दिशा सदा ज्ञान, प्रकाश एवं शुभारम्भ का प्रतीक रही है। यहाँ पूर्व दिशा को सौम्य चन्द्रकान्ति से आच्छादित बताया गया है।

नक्षत्रों का श्वेतवर्णीय वर्णन – **''तगरत्विषां ताराणां''**[17] भारतीय खगोलशास्त्र (ज्योतिष) में तारे 'नक्षत्र' कहलाते हैं। उनकी आभा को 'तगर' नामक श्वेत पुष्प से तुलना कर उनके उज्ज्वल स्वभाव का उल्लेख किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि लेखक ने आकाशीय सौंदर्य का अवलोकन प्रत्यक्ष किया था।

सूर्यास्त की आभा – **''प्रदीपकशिखाः सार्धं हरिद्राङ्कैरैः''**[18] यह दृश्य उन स्थानों में दिखता है जहाँ क्षितिज स्पष्ट हो, जैसे किसी मैदान या जलतट पर। 'हरिद्रा' अर्थात हल्दी की भाँति पीतवर्णी किरणें प्रदीपशिखा समान दिख रही हैं – यह उषा व संध्या काल के भारतीय आकाश का यथार्थ चित्रण है।

चन्द्रमा का स्थैर्य – **''मन्त्रस्तम्भित पारदद्रवजडो चन्द्रमाः''**[19] चन्द्र को पारे के समान ठोस एवं शीतल मानना, वैदिक चिन्तन में उपस्थित है। चन्द्रमा की चंचलता को यहाँ मन्त्रबल से स्थिर किया गया बताया गया है — यह केवल अलंकार नहीं, बल्कि यह भी संकेत देता है कि रात्रि की शीतलता का शुभारम्भ हो चुका है, जो ग्रामीण परिवेश में अत्यंत स्पष्ट अनुभव होता है।

काल व स्थल का संकेत – यह चित्रण सामान्यतः किसी प्राकृतिक स्थल पर (वन, नदी तट, गिरिपृष्ठ) उपस्थित प्रातःकालीन अथवा संध्या-पूर्व का है। ऐसी आभा पश्चिम भारत, विशेषतः सौराष्ट्र, मालवा, कच्छ, गंगा-तट, विंध्याचल आदि भूभागों में स्पष्ट देखी जाती है, जहाँ गगन विशाल, धुंधरहित, तारक-पूरित रहता है।

जलवायु और ऋतु – मंद चन्द्रप्रभा, हल्दीवर्ण सूर्यकिरणें, दीपकशिखा सदृश अस्त होता सूर्य — यह समस्त लक्षण 'शिशिर' या 'हेमन्त' ऋतु के सूचक हैं। इस ऋतु में रात्रि लम्बी होती है और आकाश ज्योतियों से भरा रहता है।

यह श्लोक केवल प्रकृति का अलंकारिक चित्रण नहीं है, बल्कि एक भूगोल-सम्बद्ध सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है, जिसमें नक्षत्र, दिशा, ऋतु, काल, जलवायु, एवं ज्योति का सम्मिलन है। बालरामायण जैसे नाट्यकाव्य की भौगोलिक मीमांसा में इस श्लोक का स्थान एक स्वर्णशृंखला के रत्न के सदृश है, जो तत्कालीन भारत के दृश्य भूगोल को काव्यरूप में प्रस्तुत करता है।

लङ्का दुर्ग जलधिपरिखादुर्गमं राक्षसेन्द्र-स्तस्याः स्वामी सुरजनवधूचामरैर्वोज्यमानः।
रामः शाखामृगपरिगतो मानुषस्तद्विपत्त-स्तत्रैतस्मिन् जयविधिरिति व्रीडया नः कलङ्कः।।[20]

यहाँ **''जलधि-परिखा-दुर्गमं''** कहकर स्पष्ट किया गया है कि लंका एक प्राकृत दुर्ग है, जिसकी परिखा समुद्र स्वयं है। यह वर्णन दक्षिण भारत और श्रीलंका के मध्य समुद्र में स्थित रावण की राजधानी को लक्षित करता है, जिसे 'त्रिकूट पर्वत' पर स्थित कहा गया है और जो चारों ओर से जलराशि से घिरा था। **''शाखामृगपरिगतः''** श्रीराम के साथ रहने वाले 'वानर' केवल पौराणिक जीव नहीं थे, अपितु वे वनवासी, गुफावासी, शाखा-चरण में निपुण समाज के प्रतीक हैं। यह दक्कन, विंध्य, किष्किन्धा क्षेत्र के भूभागों की ओर संकेत करता है, जहाँ श्रीराम का वनवास हुआ और हनुमान आदि वानर मिलते हैं। **''सुरजनवधूचामरैः वोज्यमानः''** यह रावण की राजसभा और लंका की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को प्रकट करता है, जहाँ देवता भी परास्त हो चुके थे। यह शक्ति-संरचना तत्कालीन दक्षिण-भारतीय राजसत्ता के रूप में भी देखी जा सकती है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि 'बालरामायण' में प्रयुक्त स्थलों की स्थिति, दिशा, दूरी आदि का जो संकेत मिलता है, वह प्राचीन भारत के भूगोल को पुनः स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करता है। यदि इन स्थलों

का तुलनात्मक अध्ययन अन्य रामायणों, जैसे वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, कम्ब रामायण या तुलसीकृत रामचरितमानस के साथ किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि राजशेखर ने किसी एक परम्परा पर आधारित होकर नहीं लिखा, अपितु उन्होंने विभिन्न परम्पराओं का समन्वय करते हुए एक भौगोलिक दृष्टिकोण को विकसित किया। यही कारण है कि बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा केवल एक साहित्यिक विषय न रहकर, ऐतिहासिक-भौगोलिक अध्ययन का मूल स्रोत बन जाती है।

बालरामायण में वर्णित भौगोलिक मीमांसा का आधार वाल्मीकि रामायण है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित स्थानों, नदियों, पर्वतों और जनपदों के आधार पर तत्कालीन भारत की भौगोलिक सीमाओं का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। ग्रन्थ में लगभग पचास नदियों, चालीस पर्वतों तथा अनेक नगरों का उल्लेख किया गया है, जिनसे उस समय के भारत की सीमाओं की जानकारी मिलती है। उत्तर-पश्चिम भारत के प्रसंग में पुष्पकलावती (आधुनिक पेशावर), तक्षशिला (आधुनिक पाकिस्तान), गिरिव्रत (पंजाब क्षेत्र) जैसे नगरों तथा सिंधु, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, शतद्रु, सरस्वती और दृशद्वती जैसी प्रमुख नदियों का वर्णन मिलता है। गन्धार, केकय, मद्र, वाल्मीक, सौवीर और मरु प्रदेश जैसे जनपदों के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि तत्कालीन भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा में आज का पाकिस्तान और अफगानिस्तान क्षेत्र सम्मिलित था।

भारत के पूर्वी भाग में कामरूप, प्राग्ज्योतिष, किरात, बंग और मगध जैसे जनपदों का तथा लोहित नदी (आधुनिक ब्रह्मपुत्र) का उल्लेख मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में भारत की पूर्वी सीमा असम, नागालैण्ड और बर्मा तक विस्तृत थी।[21]

दक्षिण भारत की सीमा उस युग में भी वर्तमान भारत के समान ही थी, किन्तु एक विशेष तथ्य यह था कि लंका भी भारत के अन्तर्गत माना जाता था। यदि उत्तर वैदिक काल में आर्य लोग केवल गोदावरी नदी तक ही पहुँचे थे, तो वाल्मीकि रामायण के काल में कृष्णा, तुंगभद्रा, अर्धगंगा, ताम्रपर्णी आदि नदियों का वर्णन यह स्पष्ट करता है कि आर्यगण दक्षिण के सुदूर प्रदेशों तक पहुँच चुके थे। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि रामायण काल तक सम्पूर्ण भारतवर्ष आर्य संस्कृति से ओतप्रोत हो चुका था।

निष्कर्ष -

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'बालरामायण' केवल एक साहित्यिक ग्रन्थ नहीं, अपितु वह भौगोलिक चेतना का ग्रन्थ है। यह चेतना केवल शब्दों में नहीं, अपितु समस्त कथावस्तु में प्रवाहित है। इस चेतना का विवेचन और मूल्यांकन आज के सन्दर्भ में विशेष महत्त्व रखता है, जब साहित्य और भूगोल के समन्वित अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। 'बालरामायण की भौगोलिक मीमांसा' के माध्यम से यह प्रयास किया गया है कि उस काव्य में अन्तर्निहित भौगोलिक संकेतों, स्थलों की विशिष्टताओं, राजमार्गों की जानकारी, तीर्थपरम्परा की निरन्तरता, तथा जनपदीय व्यवस्था की पुनर्रचना की जा सके। राजशेखर जैसे कवि की दृष्टि न केवल काव्य-रचना में दक्ष थी, अपितु वे तत्कालीन समाज के सूक्ष्म पर्यवेक्षक भी थे। यही कारण है कि उनके काव्य में प्रयुक्त स्थल, नदी, पर्वत या नगर केवल स्थान नहीं हैं, अपितु जीवंत पात्र के समान प्रतीत होते हैं, जिनके माध्यम से तत्कालीन भारत का भौगोलिक स्वरूप पुनः चित्रित किया जा सकता है।

अतः यह भूमिका इस शोध की आधारभूमि है, जो यह स्पष्ट करती है कि 'बालरामायण' केवल काव्य नहीं, अपितु भूतकालीन भारत की भूगोल चेतना का साक्ष्य है। इस चेतना का पुनः अध्ययन और विश्लेषण समकालीन साहित्येतिहास, भूगोल अध्ययन और सांस्कृतिक विमर्शों को नई दिशा देने में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ -

1. *बालरामायण 1.5 निर्भयराजस्य महेन्द्रपालस्य गुरुरुपाध्यायो राजशेखरैः।*
   तथाच कर्पूरमञ्जर्याम् -
   बालकई कहराश्यो भ्भिग्ररागग्रस्त तह उवच्झायो । दूय जस्स परम्पराए अप्पा माहप्पमारूढ़ो।। अस्यार्थः -
   बालकविः कबिराजो निर्भयराजस्य तथा उपाध्यायः । दूति यस्य परस्परया श्रात्मा माहात्म्यमारूढः।।
2. *बालरामायण 1.2*
3. *बालरामायण 1.41*
4. *बालरामायण 6.71*
5. *बालरामायण 1.8*
6. *बालरामायण 1.31*
7. *बालरामायण 2.56*
8. *बालरामायण 7.18*
9. *बालरामायण 3.41*
10. *बालरामायण 3.42*
11. *बालरामायण 3.45*
12. *बालरामायण 3.63*
13. *बालरामायण 4.9*
14. *बालरामायण 5.37*
15. *बालरामायण 5.64*
16. *बालरामायण 7.1*
17. *बालरामायण 7.1*
18. *बालरामायण 7.1*
19. *बालरामायण 7.1*
20 *बालरामायण 8.5*
21. *उदयगिरिवनालीबालमन्दार पुष्पम्।। उद्भट सं.हि. कोष, वा. शि. आप्टे।*
22. *लाः माउ. ऑफ इण्डिया, पृ. 17-19 तक*

18

'बालरामायणम्' में सामाजिक चेतना

सुमन रानी *

महाकवि राजशेखर का संस्कृत साहित्य जगत् में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें सदैव शिरोमणि के रूप में अलंकृत किया जाएगा। यायावरवंशीय कविराज राजशेखर 9वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रसिद्ध कवि, रूपककार और काव्यशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। राजशेखर जी न केवल संस्कृत बल्कि प्राकृत भाषा के भी महान् विद्वान् थे। उनकी कृति काव्य मीमांसा काव्यशास्त्र पर एक ग्रंथ है, बालरामायण एक नाटक के रूप में प्रसिद्ध है और दूसरा अधूरा नाटक बाल भारत है। प्राकृत भाषा में लिखे गए उनके कर्पूरमञ्जरी सट्टक और विद्धशालभजिका संस्कृत नाटक हैं।

इन उपलब्ध ग्रंथों के अतिरिक्त, राजशेखर द्वारा रचित अन्य ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में राजशेखर ने 'षट् प्रबन्धान्' का उल्लेख किया है।

ब्रूते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्बालरामायणेऽस्मिन्।
प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितिगुणो विद्यते वा न वेति।।
यद्यस्ति स्वस्ति तुभ्यं भव पठनरुचिविद्धि नः षट् प्रबन्धान्।
नैवं चेद्दीर्घमास्तां नटवद्ववदने जर्जराकाव्यकन्था।।[1]

इन छः प्रबन्धों में उन्होंने छः भाषाओं का प्रयोग किया है दैवी वाणी (संस्कृत), तीनों प्राकृत (महाराष्ट्री, सौरसेनी, मागधी), अपभ्रंश और और पैशाची-

महानाटक बाल रामायण 10 अंकों में विभक्त है। इसमें राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन प्राप्त होता है। कविराज राजशेखर के ग्रंथो के अवलोकन मात्र से ही पता चलता है कि राजशेखर जी एक उच्च कोटि के विद्वान् थे उनका शास्त्र ज्ञान और सामाजिक ज्ञान के प्रति अत्यधिक आग्रह था। यह विषय बहुत विस्तृत एवं सारगर्भित है। इस विषय पर एक शोध प्रबन्ध लिखा जा सकता है लेकिन मेरा उद्देश्य शोध -पत्र लिखने का है इसलिए सामान्यतः मुख्य मुख्य बिन्दुओं पर ही लिखने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में बालरामायण में सामाजिक चेतना को प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया गया है।

आदर्श राजा व पारिवारिक सम्बन्ध

बालरामायण में दशरथ के चरित्र को एक आदर्श पिता व श्रेष्ठ राजा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में युगों से चले आ रहे दशरथ पर राम वनवास के लाञ्छन को नाटककार ने हटा दिया है क्योंकि यहां

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
* *सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़*

पर नाटककार ने बताया है कि राजा दशरथ और कैकेयी तो जब राम को 14 वर्ष का वनवास दिया गया उस समय स्वर्गलोक पुरंदर सभा में गए हुए थे। राक्षसों ने दशरथ और कैकेयी का छद्म रूप धारण किया और कैकेयी ने राम के वनवास की याचना की और राम उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर लक्ष्मण और जानकी के साथ वन चले गए। लेकिन जब दशरथ और कैकेयी पुरंदर सभा से वापिस लौटते है तो उनको राम के वनवास के बारे में पता चलता है तो वे बहुत दुःखी होते है और राजा दशरथ तो राम (पुत्र) मोह में मुर्छित हो गए थे तथा सीताहरण के बारे में जब उन्होंने सुना तो उन्होंने अपने प्राण ही त्याग दिए थे। स्वर्गलोक में जाकर भी दशरथ राम व रावण के युद्ध को इन्द्र के साथ देखते है और जब भी राम पर कोई विपत्ति आती है तो स्वयं युद्ध करने पर उद्धत हो जाते है। यही हमारी वैदिक संस्कृति में सामाजिक चेतना रही है कि पिता हमेशा अपनी सन्तान की रक्षा, उन्नति व खुशी के लिए तत्पर रहता है। हमारे बड़े बुर्जग हमें कहते भी है कि मृत्यु के बाद भी माता-पिता स्वर्ग से भी अपनी सन्तान के मंगल की कामना ही करते है। इस बात की पुष्टि नाटककार ने हमें बालरामयण में पात्र राजा दशरथ के माध्यम से करवाई है।

माता-पिता अपनी सन्तान या अपने परिवार के दर्शन मात्र से सन्तुष्ट हो जाते है। जब कैकेयी और दशरथ पुरन्दर लोक में गए हुए होते हैं तो उनको परिवार के बेटे और बहुओं की याद सताती और वे व्याकुल हो जाते हैं और तब कैकेयी वामदेव से कहती है कि उनकी ये व्याकुलता अपने चारों पुत्रों व पुत्रवधुओं के दर्शन से ही दूर होगी। ऐसी पारिवारिक चेतना जो प्रत्येक समाज में होती है और होनी चाहिए भी। इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए नाटककार लिखते है कि- **प्रणमामि भवतीं सरयूं या पूर्व दृश्यमाना नयनपीयूषगण्डूषकवलं कुर्वन्ती आसीत् सा साम्प्रतं हालाहलकवलप्रतिरूपा प्रतिभाति। किं पुनर्मेऽयोध्यादर्शनेऽप्यकारणपर्याकुलं हृदयं तद् यदि वत्सानो रामभद्र भरतलक्ष्मणशत्रुध्नां वधूनां च सीतामाण्डव्यूर्मिला-श्रुतकीर्तीनां दर्शनेन निर्वासयिष्यति।**[2]

लेकिन तब तक छद्म वेशधारी राक्षसों ने कैकेयी व दशरथ का रूप धरकर राम को 14 वर्ष का वनवास और भरत का राज्याभिषेक मांग लिया था। लेकिन पुरन्दर लोक से वापसी के समय कैकेयी व दशरथ व्याकुल होते है और कैकेयी की व्याकुलता देखते हुए दशरथ भी बहुत चिंतित हो जाते है और अपनी भी व्याकुलता के बारे में बताते है तथा कहते हैं कि अयोध्या पहले वाली अयोध्या प्रतीत नही हो रही है। यहां चौराहे विचित्र रूप से थके हुए लग रहे है, वैतालिकों के प्रशंसा स्वर सुनाई नहीं दे रहे है अर्थात् बन्द हैं। मुरज बाजा भी नहीं बजते सुनाई पड़ रहे हैं। गीत ध्वनि समाप्त है, अध्ययन भी बन्द सुकवियों की समस्या पूर्तियां बन्द दिखाई पड़ रही है। विद्वानों का वाद-विवाद बन्दप्राय है तथा यह मौनता क्यों है?

एतछ्रान्तविचित्रचत्वरपथं विश्रान्तवैतालिकदृश्लाघाश्लोकमगुञ्जिमञ्जुमुरजं विध्वस्तगीतध्वनि। व्यावृत्ताध्ययनं निवृत्तसुकविक्रीडासमस्यं नमद्-विद्वद्वादकथं कथं पुनरिदं मौनव्रते वत्तते।।[3]

जब राम वनवास के लिए जाते है तो परिवारजन व अयोध्यावासी बहुत ज्यादा रौदन करते है। वामदेव द्वारा उनके विलाप के बारे में दशरथ को बताया जाता है –

गाढोरः स्थलताडनत्रुटिधृतैर्हारावलीमौक्तिकैः संदिग्धीकृतबाष्पबिन्दु रुदितं पौराङ्गनाभिस्तथा। आमूलश्लथपक्षतिस्थितिनतग्रीवाग्रतुण्डं यथा वीथीपञ्जरवर्तिभिः शुककुलैरप्युत्कमुत्कूजितम्।।[4]

वामदेव से राम के वनवास के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के बाद राजा दशरथ के आँखों से अश्रुधारा बन्द नही हो रही थी तथा संताप में विलाप करते हुए राम वियोग में दशरथ कहते है कि –

हे प्राणाः स गतो रामस्तदनु व्रजत द्रुतम्। जरसा जर्जरैरङ्गैः शक्तिर्दशरथस्य का।।[5]

अर्थात्, हे प्राण! वह राम तो चला गया उसके पीछे तुम भी शीघ्र जाओ। वृद्धावस्था से जीर्ण अङ्गों से दशरथ की शक्ति ही क्या है ? पुत्र वियोग में दशरथ में अब जीवन जीने की कोई इच्छा शेष नही रही है।

वर्तमान समय में भी हम देखते हैं कि कई बार अपनी संतान के वियोग के कारण माता-पिता अपने प्राण त्यागने को आतुर हो जाते हैं या डिप्रेशन जैसी घातक बीमारी का शिकार हो जाते हैं। हमें ऐसा बिल्कुल नहीं करना चाहिए क्योंकि राग द्वेष लोभ मोह काम क्रोध इत्यादि दुर्गुणों से हमे बचना चाहिए तथा ईश्वर की नियति को स्वीकार करते हुए अपने कर्त्तव्य पथ पर आगे बढ़ना चाहिए।

त्याग की भावना, नैतिकमूल्य व कर्त्तव्यनिष्ठता

श्री राम वाल्मीकि रामायण तथा इससे उत्तरवर्ति अन्य सभी रचनाओं में संस्कृति के आदर्श पुरुषोत्तम श्री राम के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इस नाटक के नायक श्री राम में भी सभी आदर्श व श्रेष्ठ गुणों का समन्वय देखने को मिलता है।

वे अत्यन्त विनम्र, क्षमाशील, परदुःखकातर, दुष्ट-दमनकर्ता तथा सच्चा-रित्र्य के पालक और रक्षक है। राम विष्णु के अवतार या विष्णु हैं और उनका चरित्र धीरोदात्त है, जिसकी स्पष्टोक्ति नाटककार ने पहले ही कर दी है : **धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नश्च विष्णोः।**[6]

सद्विज्ञानं कुलतिलकता याति दारैरुदारैः फुल्ला कीर्त्तिर्भ्रमति सुक वेर्दिक्षु यायावरस्य।
धीरोदात्तं जयति चरितं रामनाम्नश्च विष्णोः काव्यव्याजात् तदियमपरा काप्यहो कामधेनुः।।[7]

श्री राम बड़े पराक्रमी हैं जिनके बारे में प्रथमाङ्क में ही शुनःशेप कहते है कि श्री राम राक्षसों से रक्षा की औषध हैं- राक्षसरक्षौषधं रामभद्रमानेतुं (बा. रा. 1.22,23, पृ. 23)

राम में विनम्रता भी उच्च कोटि की है जब परशुराम उन पर अत्यंत क्रुद्ध हो आक्षेप करते हैं तब श्री राम अत्यंत विनम्रता और शिष्टता से उनका आदर सत्कार करते हैं ।

राम-कुठार आपके अधीन है और राम का शिर भी आपके अधीन है अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा व्यवहार करिये। आपकी आज्ञा का निषेध कौन करता है?

स्वायत्तेन कुठारेण स्वाधीने राममूर्द्धनि। यथेष्टं चेष्टतामार्यस्त्वदाज्ञां को निषेधति।।[8]

इतनी क्षमा याचना करने के उपरान्त भी जब परशुराम युद्ध की हठ करते हैं तब श्री राम जी भी युद्ध को स्वीकार करते हुए प्रस्तुत हो जाते है और इस युद्ध में राम विजयी रहते हैं। इससे श्री राम के चरित्र में विनम्रता के साथ-साथ दृढ़ता भी उच्च कोटि की है इसका प्रमाण प्राप्त होता है। इसी तरह की विनम्रता सप्ताङ्क में जब श्री राम लंका में रावण के प्रति युद्ध के लिए जाते हैं तब रास्ते में समुद्र से भी प्रथमतः प्रार्थना का भाव और विनम्रता का भाव प्रस्तुत करते हैं लेकिन जब समुद्र द्वारा प्रथमतः उपेक्षा की जाती है तथा पुनः राम द्वारा अग्नि बाण से प्रहार करने पर प्रकट होने का भी वर्णन प्राप्त होता है।

राम पिता की आज्ञा को शिरोधार्य मानते हैं। शास्त्रसम्मत आचरणशील हैं। वैदिक संस्कृति के सम्वाहक हैं। जब वामदेव द्वारा उनको बताया समझाया गया कि ये रानी कैकेयी व राजा दशरथ के रूप में छद्म वेशधारी राक्षसी व राक्षस थे अतः आपको उनकी आज्ञा का पालन करने की आवश्यकता नही है तब भी श्री राम जी अपने निश्चय में अडिग रहे और कहा कि–**मया मूध्नि प्रत्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः। निवर्तिष्ये सोऽहं भरत कृतरक्षां निजपुरीं समाः सम्यङ्नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च**[9]

बाल रामायण के सप्तांक के प्रारम्भ में राम के सम्मान में वैतालिकों के लिए यशोगान किया जा रहा है तभी वहां पर राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार राम को प्राप्त होता है। राम इस समाचार को सुनते ही शोक

सन्तप्त हो जाते है और राम ने उनको अपनी विरुदावली (लोकगीत) तब तक न गाने को कहा जब तक वो रावण का वध न कर ले। इससे यह ज्ञात होता है कि परिस्थिति वश राम भी सामान्य व्यक्ति की तरह क्रोध भी करते थे और शोक में उन्हें भी गान-नृत्य इत्यादि अच्छे नही लगते थे। तथा वो भी प्रतिशोध की अग्नि में जलते हुए प्रतीत होते है जिसके कारण ऐसी प्रतिज्ञा करते है। जब रावण सीता का सिर काटकर फेंकता है जिसे देखकर राम शोक-संतप्त हो जाते हैं पर यह यंत्र जानकी का शिर रहता है जिसके कंठ में बैठी सारिका राम को बताती है कि यह वास्तविक जानकी का शिर नहीं है। पिता के आज्ञाकारी पुत्र तो श्री राम जी है ही उन्होंने 14 वर्ष का वनवास भी उनकी आज्ञानुसार सहर्ष स्वीकार किया। जब वामदेव द्वारा उनको वनवास जाने से मना किया गया तब श्री राम जी कहते है कि-

तातादेशात् कियदिदमहो यद्वनान्ते निवासो यस्मिन् सेव्याः प्रशमनिधयो धाम निःश्रेयसानाम्।
अप्येकाकी किमु पितृगिरा गाढगुढाचलेन्द्रै- र्बद्ध्वा सेतुं लवणजलधौ हेलया संचरामि।।[10]

जब राम वन में जा रहे थे तब कौशल्या और सुमित्रा इत्यादि सभी परिवार जन व प्रज्ञा विलाप कर रही थी, अश्रुधारा रुकने का नाम तक नही ले रही थी लेकिन सभी को रोते विलखते छोड़ कर श्री राम पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वन में गए।

रामे वनाय चलिते पितृशासनेन तं लक्ष्मणेऽनुगते सह जानक्या।
आनन्दबाष्पसमये विधुराश्रुपूर मुज्झद्भ्यां नयनाभ्यां विडम्बितास्मि।।[11]

बालरामायण के षष्ठाङ्क में राम को अत्यन्त भावुक होते हुए भी नाटककार के द्वारा दर्शाया गया है-

सद्यःपुरोपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी गत्त्वा जवाचिरचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमुस्ति कियदित्यसकृदब्रूवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।।[12]

राम सीता से अगाध प्रेम करते थे जब सीता राम के साथ वन में जाती है तो नगरी से थोड़ी दूर जाने पर सीता ने तुरन्त कई बार 'कितनी दूर जाना है' यह पूछा तो पहली बार राम को आँसू आ गए।

राम वनवास के दिनों में बहुत ही कठिन, परिश्रमी व सामान्य जीवन यापन करते है। राम लक्ष्मण व सीता को मार्ग प्रशस्त करते हुए आगे आगे चलते है तथा स्वयं वन में भोजन की व्यवस्था करते है और खुंखार जानवरों से सीता व लक्ष्मण की रक्षा भी करते हैं। इस प्रकार से वो अपने पति धर्म व भ्रातृ धर्म का पालन करते हैं। **मूञ्चत्यग्रे किसलयचयं लक्ष्मणो याति सीतां पादाम्भोजे विसृजदसृजो तत्र संचारयन्ती। रामो मार्गं दिशति च ततस्तेऽखिलेनाऽपि चाह्ना शैलोत्सङ्गप्रणयिनि पथि क्रोशमेकं वहन्ति।।**[13]

''बाल रामायण में सामाजिक चेतना'' का अर्थ है कि बाल रामायण (रामायण का बच्चों के लिए अनुकूलित संस्करण) में सामाजिक मूल्यों, आदर्शों और समाज के प्रति जागरूकता को दर्शाया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह गया है कि कैसे यह ग्रन्थ न्याय, धर्म, परिवारिक संबंध, त्याग और सामाजिक समरसता जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों से समाज को अवगत करते हुए उसको प्रेरित करता है।

नैतिकता व विनम्रता

महाकवि राजशेखर के नाटक बालरामायण में राम सीता लक्ष्मण भरत इत्यादि के चरित्र में नैतिकता व विनम्रता स्पष्ट दिखाई देती है। जब समुद्र से रास्ता मांगा तब समुद्र गंगा यमुना के साथ है राम के पास बड़े ही आदर भाव से उपस्थित होते हैं तब श्री राम उनको प्रणाम कर विनम्रता से आदेश देने को कहते हैं

भगवन् रत्नाकर नमस्ते। नन्वहं प्रशास्यो भगवतः।[14]

इसी प्रकार की विनम्रता और नीति श्री राम ने अपने शत्रु रावण के प्रति भी अपनायी। जब राम रावण

के बीच द्वैरथ युद्ध आरंभ होने से पूर्व भी राम ने रावण से एक बार फिर सीता को उन्हें लौटाने के लिए कहा कि–**भो लङ्केश्वर दीयतां जनकजा रामः स्वयं याचते कोऽयं। तेमतिविभ्रमः स्मर नयं नाद्यापि किञ्चिद् गतम्।।**[15]

पारिवारिक संबंध व नैतिक मूल्य

बाल रामायण में नाटककार ने पारिवारिक संबंधों व नैतिक मूल्यों के बहुत ही उत्कृष्ट दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं। राम व दशरथ का पितृप्रेम, कौशल्या का मातृप्रेम, राम-सीता का पति पत्नि सम्बन्ध, राम लक्ष्मण व भरत का भ्रातृप्रेम। इस सब को पढ़ने के बाद उस समय के सामाजिक संबंधों का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही साथ वर्तमान समाज को प्रेरित भी करती है कि कैसे अद्भूत त्याग, समर्पण व नैतिक मूल्य परिवार की नींव होते हैं। राम को ही 14 वर्ष का वनवास प्राप्त होता है लेकिन भ्रातृप्रेम में लक्ष्मण व पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए सीता भी उनके साथ वन को चली जाती है। भरत भी राज सिंहासन को भ्रातृप्रेम में स्वीकार नहीं करते है तथा राम की पादुकाओं से ही शासन करने की बात कहते है।

स्त्री का सम्मान व सतीत्व

बालरामयण में नाटककार ने सीता चरित्र में सहनशीलता, त्याग, आचरणशील व सतीत्व का आदर्श स्त्री का रूप प्रस्तुत किया है। वनवास में सीता राम की सेवा करते हुए उनकी अनुगामी रहती है –

धरणितलनिषण्णं वत्सविश्रान्तिहेतो र्व्यजति जनकपुत्रीः वाससः पल्लवेन।
अगणितनिजखेदः पादसंवाहनाभिः परिचरति च हृष्यं लक्ष्मणो रामभद्रम्।।[16]

राम के वन में शिकार से लौटने पर सीता द्वारा उनके आंखों से धूल को पोंछती थी।

उत्थाय संभ्रमवशस्खलितोत्तरीया कृत्वा धनुर्निचुलुके मृगयानिवृत्तौ सीताञ्चलेन तरलेन समुल्लसन्ती रामाननान्नमितपक्ष्मरजः प्रमार्ष्टि।।[17]

वन में जब सीता भोजन पकाती थी तो जो स्वादिष्ट व अच्छा भोजन होता था उसे पहले श्री राम को व उसके बाद लक्ष्मण को तथा अन्त में रस रहित जो फल वा मूल बचता है उसे स्वयं ग्रहण करती थी –

यदास्वाद्यं सीता वितरति तदग्रे स्वगृहिणे सुमित्रापुत्राय प्रणिहितमशेषं च तदनु।
यदामं वा नामं यदनतिरसं यच्च विरसं फलं वा मूलं वा रचयति तु तेन स्वमशनम्।।[18]

भरत द्वारा राम की पादुकाओं की आराधना का वर्णन बालरामायण में प्राप्त होता है –

ततश्चकृतानुगमनाग्रहग्रन्थिमपि भरतं निजपादुकाराधनाय नन्दि-ग्रामे निवेश्य पितृरहित्राज्यरक्षणक्षणे शत्रुघ्नं स्वशपथैः संस्थाप्य मां च तच्चिन्तने नियुज्य सुमन्त्रमात्रपरिकरः प्रस्थितस्ते पुत्रः।[19]

पिता पुत्री के वात्सल्य को जनक व सीता के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने बहुत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जनक को सीता अतिप्रिय है। जनक सीता के बालों की चोटी (वेणी) बनाते थे।

याः स्नेहाज्जनकेन वेणिरचनां नीताः स्वयं विभ्रमान्-मैत्रेय्या परिचुम्बिताः प्रणमने या याज्ञवल्क्येन च।[20]

नाटककार ने उस समय के उन्नत समाज का उदाहरण सीता स्वयंवर के रूप में प्रस्तुत किया है। वैदिक संस्कृति कितनी महान् संस्कृति थी। उस समय उच्च कुल की स्त्रियों को स्वयंवर चुनने की प्रथा भी थी। कोई शर्त रखी जाती थी जो भी उस शर्त को पूर्ण कर पाता था राजकुमारी का विवाह उसी से किया जाता था। सीता के स्वयंवर में शिव धनुष को तोड़ने की शर्त रखी गयी थी। ऐसा करके परिवार वाले एक योग्य व श्रेष्ठ वर का चयन कर पाते थे।

सीतास्वयंवर विधौ धनुरीश्वरस्य चक्रीकृतं भुजबलेन बभञ्ज रामः। श्रुत्वा च तन्मुनिवृषा वृषकेतुशिष्यो रोषाज्ज्वलन्निव पुरीं मिथिलामवाप ।।[21]

उस समय की महिलाएं स्वयं भी शिक्षित, सदाचारी, व सशक्त होती थी। पाकशाला से पाठशाला व युद्धकला में भी निपुण थी। कैकेयी युद्ध में राजा दशरथ के साथ जाती थी और उन्होंने अपनी वीरता व युद्धकला की निपुणता का परिचय राजा दशरथ की जान बचाकर दिया था। अतः महिलाएं भी पुरुषों के समान प्रत्येक क्षेत्र में बढचढ़कर भाग लेती थी और उनको भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। समाज के प्रत्येक वर्ग की स्त्री का सम्मान किया जाता था चाहे वो उच्च कुल की हो या निम्न कुल की। इसके अतिरिक्त मनुष्य कुल के सम्मान की बात तो छोड़े नाटककार ने तो ताड़का राक्षसी के स्त्री होने पर उसका वध स्वयं राम करते हुए संकोच कर रहे है। क्योंकि वह राक्षसी तो है परन्तु एक स्त्री भी है- **स्त्रोराक्षसो कथमिवात्र पतन्तु बाणाः प्रेष्यस्य ते कुशिकनन्दन तत्प्रसीद। आदिश्यतामिह हि कोऽपि तपस्वितन्त्रे मन्त्राक्षरैः कतिपयैर्य इमामपास्येत्।।**[22]

मातृ-प्रेम-

जब राम वनवास में जाने के लिए तैयार होते है तो सभी आभूषण व बहुमूल्य वस्त्र इत्यादि को उतारकर वल्कल वस्त्र धारण करते है तब कौशल्या पुत्रप्रेम के वशीभूत होकर उनके पैरों पर अपना शिर रखकर शपथ देकर उनको रोकना चाहती है।

सीताप्युपाहिततरुत्वचि रामभद्रे वल्कांशुकं हृदयसोम्नि समर्पयन्ती।
कौशल्यया चरणयोः प्रणिपत्य शीघ्रमाघ्राय मूर्ध्नि विवृता शपथैश्च तैस्तैः।।[23]

जब सीता को वृद्धा स्त्रियों ने कहा कि आप राम के साथ वनवास में मत जाओ। तुम तो यही अयोध्या में पिता व श्वसुर के द्वारा स्थापित परम्परा में रहो और रामभद्र के आगमन की प्रतीक्षा करो। तब सीता ने अपने आचरण, सम्मान व सतीत्व का परिचय देते हुए कहा कि वे ही पर्वत मेरे देश है और वही वनभूमि मेरी प्रिय है जहां मेरे प्रिय कौशल्या के पुत्र राम जी है। अर्थात् वन में इनके साथ रहकर ही इनकी सेवा मेरा कर्तव्य है। **उद्देशा गिरयश्च ते वनमही सा चौव मे वल्लभा कौशल्यातनयस्य यन्त्र चरणौ वन्दे च नन्दामि च।**[24]

सामाजिक समरसता

बाल रामायण में नाटककार ने राम के चरित्र में एक आदर्श राजा, न्याय प्रिय शासक को प्रस्तुत किया है। राम राज्य को सामाजिक न्याय और समानता का प्रतीक माना गया है। निषादराज गुह से राम की मित्रता, वानर सेना से युद्ध लड़ना, शबरी के झूठे बेर खाना व पक्षीराज जटायु ने अपने प्राण त्यागते समय राम के लिए सन्देश प्रेषित किया था कि मेरे से माता सीता की रक्षा में जो बन पड़ा वो मैंने आपकी मैत्री का ध्यान करते हुए किया। इन सभी उद्धरणों से सामाजिक समरसता का सन्देश समाज में पहुँचता है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों से राम का सम्बन्ध रहा है। वनवास के द्वारा वो सभी वर्गों के लोगों से मिलकर रहे है और पशु पक्षियों से भी उनका व सीता का बड़ा मधुर सम्बन्ध रहा है।

राम के साथ समुद्र में सेतु निर्माण के लिए वानरों, वन के अन्य जानवरों के साथ-साथ समुद्र के विभिन्न जीवों जैसे मछली, मगरमच्छ इत्यादि ने भी सहयोग किया था। **यद्ग्रावाणः प्लवन्ते यदपि च जलधिर्बध्यते लोष्ठलीलां बिभ्राणा यत्कपीन्द्रैः करतलतुलनादाह्रियन्ते महीन्द्राः। यन्नष्टं दिव्ययोः द्राक्क मठशकुलयोः पुत्रपौत्रप्रपौत्रै र्मार्गात्तद्देव सिन्धौ रजनिचरपतेर्नाशहेतुः स सेतुः।।**[25]

और्वः शिखी वसति यत्र हरिश्च यत्र यत्रासुराः शिखरिणश्च पतत्ररभाजः। आमूलतोऽम्बुधिरयं प्रकटीकरोति तत्तन्महाकपिविमुक्तमहोध्रकर्णः।।[26]

अधर्म पर धर्म की जय का सन्देश

नाटककार ने अपने 10 अङ्क के नाटक में बहुत ही सुन्दर तरीके से बुराई पर अच्छाई की विजय को

दर्शाया है। रावण ने जो अधर्म किया था, उसकी सजा देने के लिए श्री राम को युद्ध तो करना पड़ा परन्तु यह युद्ध अधर्म पर धर्म की जीत का प्रतीक है। इससे समाज में यह सन्देश जाता है कि अच्छाई व सच्चाई के रास्ते में चाहे बाधाएं आए परन्तु चलना हमेशा धर्म के रास्ते पर ही है। उपनिषदों में कहा भी गया है कि **'सत्यमेव जयते'**। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है - **धर्मो रक्षति रक्षतः धर्मः।**

वीरता व शिष्टाचार का सन्देश

यहां पर राम के चरित्र में वीरता व शिष्टाचार का अद्भूत सामञ्जस्य दिखाया गया है। जब परशुराम उन पर कुद्ध होते है तो राम उनसे क्षमा याचना करते है तथा बड़े ही आदर व शिष्टाचार पूर्वक व्यवहार भी करते है। **सर्वत्यागी परिणतवयाः सप्तमः पद्मयोनेः शिष्यः शम्भोरिति च यदि वः प्रश्रयी रामभद्रः। तत् किं भीमा भ्रूकुटिघटना तामिमां नास्मि सोढा वोढा वोरव्रतविधिमयं यद्गुरुर्वीडमेति।।**[27]

सीता स्वयंवर के समय राम व लक्ष्मण के पराक्रम का वर्णन करते हुए नाटककार लिखते है कि किस प्रकार राम ने शिव धनुष को और लक्ष्मण ने वैष्णव धनुष को तोड़ कर अपनी वीरता का परिचय दिया है। ये सब जानकी की सखी हेम प्रभा द्वारा बताया जाता है कि –**तत् सुभणितमार्येण निर्वलितशङ्करशरासने ज्येष्ठे कनिष्ठभ्रातुः समुचितमेव बैकुण्ठबाणा-सनविनाशनम्। अन्यत् कथयामि ।**[28] अङ्क4, पृ.135

धनुविभ्रमो मध्यनिविष्टमुष्ठिनिबन्धरणन्निजदण्डम्। चलति जेप्यनिपतच्चटुलगुणघर्घरोच्छोषम्।।[29]

अहंकार व पापाचरण

महाकवि राजशेखर के नाटक बालरामायण में रावण के चरित्र के माध्यम से समाज को स्पष्ट सन्देश प्राप्त होता है कि जो भी व्यक्ति पापाचरण करेगा, अंहकारी होगा उसका काल स्वयं ही विनाश कर देगा। रावण को यहां काम के वशीभूत दिखाया गया है तथा जब सीता का विवाह उनके साथ नही होता है तो वे बड़े दुःखी व क्रोधित होते है। कामी भी ठीक से समझ नही पाता है, जैसे कि यन्त्र की जानकी को भी नही समझ पाए। क्रोध व काम के वशीभूत रावण सीता का हरण करता है और पापाचारण करता हैं।

रावण महान् प्रतापी व पराक्रमी होते हुए भी पापाचारी था। इसी पापाचरण व अहंकार के कारण इतना बड़ा योद्धा होते हुए भी समाज में उसकी निन्दा होती है।

वामानि पश्यत समेत्य मुखानि पञ्च रामं सहास्सदनुजेन रणे चरन्तम्।
रामानुजं च सह शक्रजिता हसन्ति हे दक्षिणानि दशकण्ठनियोग एषः।।[30]

दोर्दण्डोदञ्च्यमानाचलचलितभवस्तम्भनारम्भमज्ज--बुध्नप्राग्भारभारान्निजभुजविपिनं कुर्वतो न्यञ्चदुच्चौः।
लङ्कानाथस्य नन्दिप्रभृतिषु दलयत्स्वङ्गमङ्गः महास्त्रै-रेकं वेगादनेकेष्वपि रचितरणं सिंहनादं स्मरामि।। [31]

किञ्चिन्मृगाधिपमुखाय करीन्द्रवक्त्रं कुप्यल्लुलायवदनाय च वाजितुण्डम्।
आसेधयन् सपदि रात्रिचराननेन पर्येत्ययं दशभुजो ननु सिंहनादः।।[32]

गुरु आज्ञा का सम्मान

जैसा कि वैदिक संस्कृति में गुरु को पर ब्रह्म कहा गया है तथा गुरु की आज्ञा सर्वदा ही शिरोधार्य रही है। उसका उदाहरण यहां राम के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए नाटककार बताते है कि राम ताड़का वध नहीं करना चाहते थे क्योंकि वो एक स्त्री थी लेकिन गुरु की आज्ञा है तो उसका वध उनको करना पड़ा।

स्त्री ताटकास्तु तद्घाते गुर्वाज्ञा गुरुकारणम्। मारीचोऽप्यस्तु स मृगः क्षात्रं हि मृगयारसम्।।[33]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र ''बाल रामायण में सामाजिक चेतना'' के गहन विश्लेषण के बाद, यह निष्कर्ष निकलता है कि बाल रामायण केवल एक पौराणिक कथा या नैतिक शिक्षा का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि यह गहन सामाजिक चेतना का एक सशक्त स्रोत है जो विभिन्न कालों और समाजों में प्रासंगिक बना हुआ है। यह ग्रन्थ अपनी सरल और सहज भाषा के माध्यम से बच्चों के मन में उन मूलभूत सामाजिक मूल्यों और सिद्धांतों को स्थापित करता है जो एक स्वस्थ, सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील समाज के निर्माण के लिए अपरिहार्य हैं। शोध में पाया गया कि बाल रामायण निम्नलिखित प्रमुख तरीकों से सामाजिक चेतना को बढ़ावा देती है :

समानता और समावेशिता की स्थापना - यह शोध स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि बाल रामायण जाति, वर्ग, लिंग या सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार करती है। राम का शबरी के प्रति सम्मान, निषादराज से मित्रता और वानर सेना को साथ लेकर चलना यह संदेश देता है कि सभी मनुष्य समान हैं और सभी का योगदान महत्त्वपूर्ण है। यह बच्चों को भेदभाव रहित सोच विकसित करने के लिए प्रेरित करता है।

पारिवारिक और सामाजिक संबंधों का आदर्श - बाल रामायण परिवार और समाज के संबंधों में मर्यादा, प्रेम, त्याग और कर्तव्यनिष्ठा का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करती है। भाई-भाई का प्रेम (राम-भरत, राम-लक्ष्मण), पति-पत्नी का अटूट संबंध (राम-सीता), और माता-पिता के प्रति संतान का आदर (राम का वनगमन) जैसी घटनाएँ बच्चों को संयुक्त परिवार प्रणाली के मूल्यों का ज्ञान प्रदान करती हैं।

बालरामायण सामाजिक जागरूकता, सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक रिश्तों और नैतिक शिक्षाओं पर जोर देती है। यह नाटक बच्चों को राम के जीवन के माध्यम से अच्छे और बुरे में अंतर करना, सत्य और न्याय का पालन करना और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझना सिखाती है। बाल रामायण एक सशक्त कहानी है जो न केवल बच्चों का मनोरंजन करती है बल्कि उन्हें सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को समझने और आत्मसात करने में भी मदद करती है।

संदर्भ -

1. *बालरामायणम्, महाकवि राजशेखर विरिचित, संपादक एवं व्याख्याकार डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी,1.12*

2. *वहीं, षष्ठोङ्कः पृ. 180*	3. *वहीं, 6.12*	4. *वहीं, 6.31*	5. *वहीं, 6.32*
6. *वहीं, 1.6*	7. *वहीं, 1.6*	8. *वहीं, 4.62*	9. *वहीं, 6.16*
10. *वहीं, 6.18*	11. *वहीं, 6.20*	12. *वहीं, 6.34*	13. *वहीं, 6 .47*
14. *वहीं, 7.36, 37*	15. *वहीं, 9.19*	16. *वहीं, 6.43*	17. *वहीं, 6.42*
18. *वहीं, 6.41*	19. *वहीं, षष्ठोङ्क पृ. 192*		20. *वहीं, षष्ठोङ्कः, पृ. 188*
21. *वहीं, 5.3*	22. *वहीं, 3.4*	23. *वहीं, 6.24*	24. *वहीं, 6.19 पृ. 186*
25. *वहीं, 7.55*	26. *वहीं, 7.58*	27. *वहीं, 4.71*	28. *वहीं, चतुर्थोङ्क, पृ. 135*
29. *वहीं, 4.75*	30. *वहीं, 8.20*	31. *वहीं, 7.81*	32. *वहीं, 7.80*
33. *वहीं, 7.89*			

19

'बालरामायणम्' की अभिनव कल्पना

एम. किशन *

रामो विग्रहवान् धर्मः अर्थात् राम धर्म के साकार स्वरूप हैं अथवा वे धर्म के अवतार हैं इस परिप्रेक्ष्य में यदि धर्म को देखा जाए तो धर्म बहुत व्यापक शब्द है, लेकिन सामान्य रूप से धर्म धारण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जिसका श्रेष्ठ आचरण, मूल्य, व्यवहार एवं यम-नियम के रूप में अर्थ ग्रहण किया जाता है। राम धर्म के साकार स्वरूप हैं , उनका जीवन श्रेष्ठ आचरण और मूल्यों से युक्त है। लोक कल्याण के निमित्त सर्वस्व त्याग की भावना में राम अन्यतम है। इसी महत् भाव से प्रभावित होकर विभिन्न कवियों ने अपने समय और रुचि, मति एवं भक्ति के अनुसार राम जीवन गाथा को मंडित करने का प्रयास किया है। यदि संस्कृत भाषा में राम कथा पर विचार किया जाए तो सर्वप्रथम महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण में इस कथा का सूत्रपात किया है। तत्पश्चात् भास का प्रतिमानाटक और अभिषेकनाटक है, कालिदास का रघुवंश, भवभूति का महावीरचरित और उत्तररामचरित, जयदेव का प्रसन्नराघव, मुरारी का अनर्घराघव तथा राजशेखर का बालरामायण मुख्य रूप से हमारे समक्ष कथा के रूप में उपस्थित होता है। जिसके विषय में मुरारी कवि गर्व पूर्वक कहते हैं –

यावत्क्षणं न पूर्वैरपि जह्हुर्रामस्य चरितंगुणैरेवाभ्यस्यं जगति पुनरन्यो जयति कः।
स्वमात्मानं यस्तद्गुणगणगरिमगम्भीरमधुरंस्फुटद्वाग्ब्रह्माणं कथमुपकुरुयुः कवयः।।[1]

कहने का तात्पर्य है कि राम के समान गुण वाला नायक कोई नहीं है, इसलिए कविगण राम कथा को बार-बार अपनाते हैं। इसी रूप में हम यही मानते हैं कि महाकवि राजशेखर ने भी राम के गुण, आदर्श और नायकत्व से प्रभावित होकर बालरामायण की रचना की है। जिसमें भवभूति की तरह अनेक काल्पनिक और सहृदय को प्रभावित करने वाले विषयों को उन्होंने उपस्थित किया गया है। यदि हम राजशेखर के परिचय के संबंध में बात करें तो ज्ञात होता है कि राजशेखर महाराष्ट्र देश के 'यायावर' वंश के ब्राह्मण थे। वे महेश्वर के भक्तों में अग्रणी माने जाते हैं। उनके पिता का नाम 'अकालजलद' था। उन्होंने महेन्द्रपाल नामक राजा के दरबार में आश्रय प्राप्त किया एवं उनके गुरु रहे। यह बात बालरामायण की प्रस्तावना से ज्ञात होती है-

स मूर्तो यत्रासीत् गुणगण इवाकालजलदः सुरानन्दः स एव श्रवणपुटपेयेने वचसा।
न चान्ये नै गण्यन्ते नरल कविराज प्रभृतयोमहाभागस्तदीयं यमजव यायावरकुलें।।

अर्थात् यह महाभाग उस प्रसिद्ध यायावर कुल में उत्पन्न हुए जिसमें अकालजलद नामक व्यक्ति गुण

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
* *सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007*

समूहों के साक्षात् मूर्ति थे जिसमें सुरानंद नाम के व्यक्ति हुए जिनकी वाणी श्रवण पुटों के द्वारा पी जाती है तथा जिस वंश में तरल कविराज आदि अनेक प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती है। इसी रूप में विद्वान् लोग राजशेखर को वाल्मीकि का ही अंश मानते थे और इसकी पुष्टि हेतु वे यह श्लोक प्रस्तुत करते हैं-

बभूव वाल्मीकिभुवः कविः पुरा सः प्रपेदे भुवि भूतिमन्तम्। सः पुनरेवं भवभूतिरेखया स राजशेखरः[3]।।

अर्थात् स्वयं को भवभूति का ही अवतार मानते हुए रामकथा के नए रूपांतरण में उन्होंने भवभूति के मार्ग का ही अनुसरण किया। राजशेखर ने महाराष्ट्र की क्षत्रियकन्या 'अवन्तिसुन्दरी' से विवाह किया। इसका उल्लेख उन्होंने काव्यमीमांसा में भी प्रमाण रूप में किया है। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने साहित्य को शास्त्र रूप में स्थापित किया और इसकी गहन व्याख्या की। उनकी एक प्रमुख पंक्ति है-

विद्यां शास्त्ररूपेण विद्यायाः परिग्रहणवान्। पञ्चमी साहित्ये विद्यावान् यायावरीयः[4]।।

महाकवि राजशेखर द्वारा जिन शास्त्रीय एवं नाट्य कृतियों का प्रणयन किया गया है वे अधोलिखित हैं -1. काव्यमीमांसा- काव्यशास्त्रीय, 2. विद्धशालभंजिका – एक प्राकृतभाषीय रूपक, 3. कर्पूरमंजरी –प्राकृत भाषा में रूपक, 4. बालरामायण – 10 अंकों का संस्कृत नाटक, 5. बालभारतम् – 20 सर्गों का महाकाव्य, 6. बालभारतम् – नाट्य, 7. हरविलास – एक काव्य। इन छः काव्य रचनाओं में से बालरामायण नाटक उनकी अंतिम और सबसे परिपक्व रचना मानी जाती है। यह बात बालरामायणम् के (1/12) श्लोक में उन्होंने स्वयं कही है। राजशेखर ने कई देशों की यात्रा की। वहाँ की संस्कृतियों, भाषाओं और आचारों का ज्ञान प्राप्त किया और जीवन के सभी भोगों का अनुभव करने के पश्चात् अंततः वाराणसी में निवास करने लगे। यह बात क्षेमेन्द्र द्वारा कही गई है :

कणामटी दशनाङ्कितः स सुमहाराष्ट्रीकटाक्षाहतः। प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणवयनीभूभङ्गवित्रासितः।।
लाटीबाहुविवेष्टितो मलयस्त्रीचिनमनीचिन्तितः। सोऽयं सम्प्रति राजशेखर कविवाराण्यां वाञ्छति[5]।।

राजशेखर के वंश का नाम 'यायावर' था। स्वयं राजशेखर ने 'यायावर' नामक किसी चारण (चरित्र गायक) को भी अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है। कवि आम तौर पर धन की इच्छा से राजाओं से आश्रय पाते हैं परन्तु राजशेखर धन की इच्छा से नहीं, साहित्य के प्रति प्रेमवश ही साहित्य की साधना करते थे। यह उनके ''यायावर'' कहलाने का संकेत करता है। ''या–प्रापणे'' (धातु) से यङ् प्रत्यय लगने पर फिर यश्चयङः (3-2-176) सूत्र से वरच् प्रत्यय होकर फिर द्वित्व होकर शब्द बनता है - यायावर। यायावर शब्द की निष्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन सिद्धांत कौमुदी में प्रदर्शित है– स्वतिर्यङन्ताद्वरच स्यात्। अतो लोपः 2308। 6.4.48। तस्य अचः परस्मिन् 1.1.57 इति स्थानिवद्भावे प्राप्ते पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्तव्ये यलोप प्रति परनिमित्तोऽजादेशो न स्थानिवत तस्य यलो स्थानिवद्भावनिषेधात लोपो व्यो) इति यलोपः। अल्लोपस्थ स्थानिवत्त्व माश्रित्य आतो लोपे प्राप्ते वरे लुप्तं न स्थानिवत्। यायावरः इस प्रकार यायावर शब्द से यह अर्थ निकलता है कि राजशेखर एक घुमंतू परंतु विद्या-संलग्न, निष्काम और साहित्यसेवी विद्वान् थे जिन्होंने काव्य और शास्त्र को ही अपना जीवन-लक्ष्य बनाया। इनके बालरामायण नाटक में दस अंक (दशाङ्क) हैं। इस नाटक में रामायण कथा से किञ्चित् परिवर्तित और नवोन्मेषपूर्ण प्रस्तुति की गई है। इसमें भवभूति के महावीरचरित के प्रभाव और उसकी परंपरा का पालन दिखाई देता है। उदाहरण स्वरूप, महावीरचरित में रावण सीता की प्राप्ति हेतु जनक के पास सन्देश भेजता है। राजा जनक अनिच्छा दिखलाते हुए उसका निराकरण कर देते हैं। इसी बीच माल्यवान् नामक रावण का मंत्री, परशुराम को उकसाकर शिवधनुष को तोड़ने के कारण राम के प्रति क्रोधित कर देता है। परंतु राम द्वारा पराजित होने पर परशुराम भी राजकीय कार्यों को त्याग कर तपस्या के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। रावण आदि से संबंधित जो कथाएँ हैं उनमें जो परिवर्तन महावीरचरित में किए गए थे उन्हीं प्रकार की किंचित् भिन्न रूप में परिवृत्तियाँ बालरामायण नाटक में भी की गई हैं।

प्रथमांक :

शुनःशेप नामक विश्वामित्र के शिष्य को विश्वामित्र आज्ञा देते हैं कि वह राजा जनक से मिलने जाए। रावण के मंत्री माल्यवान् को यह आशंका होती है कि इन दोनों के मेल से उसके लिए भविष्य में संकट खड़ा हो सकता है, इसलिए वह शुनःशेप को रास्ते में रोक देता है। इस बीच रावण जनक के स्वयंवर में शिव धनुष को उठाने के लिए आता है। जनक रावण का यह साहस पसंद नहीं करता है; यह शुनःशेप और राक्षस के संवाद में स्पष्ट होता है। ''शतानंद जनक को बतलाते हैं कि रावण अनेक दुर्गुणों से युक्त है, इसलिए उसे अस्वीकार करना ही उचित है। अंत में महेश्वर (शिव) रावण के प्रयास को निष्फल करते हैं। रावण के धनुष उठाने का प्रयास विफल हो जाता है और जनक, राम को बुलाकर शिवधनुष तोड़ने की प्रार्थना करते हैं। कैलास पर्वत पर भृङ्गिरिट और नारद के बीच वार्तालाप होता है जिससे ज्ञात होता है कि रावण धनुर्यज्ञ में पराजित हुआ। शिवधनुष को तोड़ने के प्रयास में असफल रावण क्रोध में भरकर राजा जनक को मारने के लिए उद्यत होता है। जनक भी धनुष धारण करके रावण को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। किन्तु उस समय बाण प्रयोग और शाप देने से रोकने के लिए याज्ञवल्क्य आदि ऋषि उन्हें रोकते हैं। रावण, जनक और उनके सहयोगियों को पराजित करने के उद्देश्य से करते हैं।

द्वितीयांक-

जब अपने चन्द्रहास नामक दिव्य खड्ग का भी प्रयोग करने में असफल रहता है, तब वह 'मायामय' नामक एक राक्षस को भेजकर परशुराम को परशु-अस्त्र देने का अनुरोध करता है। मायामय यह संदेश लेकर परशुराम के पास जाता है। परशुराम रावण की शिवभक्ति देखकर, यद्यपि अपने परशु (परशुराम का दिव्य शस्त्र) को उसे देना चाहते हैं, फिर भी यह सोचकर कि यह दुर्जन (रावण) इस शस्त्र का प्रयोग किसी अनुचित कार्य में करेगा वे उसे परशु देना नहीं चाहते। और जब उन्हें ज्ञात होता है कि रावण पुनः शिवधनुष को तोड़ने का प्रयास करेगा, तब वे पूरी तरह से परशु दान से विमुख हो जाते हैं।

तृतीयांक

शिवधनुष को तोड़ने में विफल रावण, सीता के विरह में अत्यंत पीड़ित हो गया। सीता के स्वयंवर में काश्मीर, सिंहल (श्रीलंका) आदि देशों के राजा भी धनुष तोड़ने का प्रयास करते हैं, परंतु सभी पराजित होते हैं - यह प्रसंग मिथिलानगर में एक प्रदर्शित दृश्य के रूप में दिखाया गया है। इसी समय विश्वामित्र द्वारा लाए गए राम और लक्ष्मण मिथिला में प्रवेश करते हैं।

उद्यान में विहार करती सीता, राम को देखती है और उन्हें निहारने लगती है। रावण भी सजी सीता पर आकर्षित होकर विभिन्न प्रकार की दुःखद चेष्टाएँ करता है - वह अत्यंत व्याकुल है। इसी बीच राम द्वारा शिव धनुष को तोड़ दिया जाता है और जनक द्वारा सीता को राम को सौंपे जाते देखकर रावण क्रोधित हो उठता है। रावण का मंत्री प्रहस्त भी इस दृश्य को देखकर रावण को शांत करने का प्रयास करता है।

चतुर्थांक

यज्ञ की रक्षा हेतु राम को वन भेजा गया था। अब दशरथ राम को लाने हेतु इन्द्रलोक जाते हैं। इसी बीच, उन्हें ज्ञात होता है कि राम ने परशुराम को पराजित किया है। जनक के निमंत्रण पर दशरथ मिथिला आते हैं। इस अंक में जामदग्न्य (परशुराम) के गर्व का भंग भी दिखाया गया है। जामदग्न्य राम के द्वारा शिव धनुष के टूटने से क्रोधित होकर मिथिला पहुँचते हैं, परंतु अंततः उनकी अहंता का विनाश होता है।

पञ्चमांक

इस अंक में रावण का काम से उन्मत्त (मदनोन्माद) होना वर्णित है। इसी प्रसंग में कामदेव (मन्मथ) आदि की निंदा की गई है साथ ही हेमंत आदि ऋतुओं का सुंदर वर्णन भी किया गया है।

षष्ठांक

इस अंक में 'मायामय' नामक राक्षस का प्रवेश होता है। जब दशरथ देवताओं की सहायता के लिए देवलोक गए थे तब उन्होंने कैकेयी को दो वरदान दिए थे। मायामय को यह वरदान-सम्बंधी वृत्तांत ज्ञात हो गया अतः वह दशरथ का रूप धारण कर मिथिला पहुँचता है और राम को वन भेजने की योजना बनाता है। शूर्पणखा, कैकेयी का रूप धारण कर वहाँ उपस्थित होती है और एक अन्य राक्षस वामदेव का रूप लेकर दशरथ को कैकेयी का संदेश सुनाता है। इस प्रकार वास्तविक दशरथ और कैकेयी को बिना जानकारी के ही राम को वनवास देने की आज्ञा दी गई थी। मायामय का संवाद :-

ततश्च यावत् मायाकैकेयी शूर्पणखा मायादशरथोमायामयश्च यथास्थानमुपविष्टौ तावत्कैकेय्याः।
प्रियसखी मन्थरा नाम तद्रूपधारिणीशूर्पणखापरिचारिकेव तदो मामुपेत्योक्तवती।[6]

एतदनुसार मायामय (राक्षस), शूर्पणखा और मंथरा - तीनों ही रूप बदलकर कैकेयी, मंथरा और दशरथ के रूप में षड्यंत्र रचते हैं।

माल्यवान् पूछता है : ''मायामय, यह सब क्यों?'' मायामय उत्तर देता है :

''यत्त्वयास्या महाराज प्रतिपन्नं वरद्वयम्। व्योमयात्रा सहचरी कैकेयी याचतेद्य तत्।[7]

अर्थात् – ''हे राजन्! आपने कैकेयी को जो दो वरदान दिए थे,वही अब वह मांग रही है।'' मन्थरा का कथन :-

''वरेणैकेन लभतां रघुराज्यं सुतो मम। चतुर्दशसमा रामो सबसे वने वन्येन तिष्ठतु[8]**।।''**

पहले वर से मेरा पुत्र भरत राज्य प्राप्त करे, और दूसरे वर से राम चौदह वर्षों तक वन में निवास करें। यह संपूर्ण घटना भवभूति के महावीरचरित का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है, जहाँ शूर्पणखा, कैकेयी की जीभ (जिह्वा) में प्रवेश कर उस पर प्रभाव डालती है। राम की जन्मकुंडली में लिखा होता है कि वह केवल 14 दिनों तक ही वनवास करेंगे, किन्तु शूर्पणखा जिह्वा में परिवर्तन करके उसे चौदह वर्षों में बदल देती है।

मायामय, राजा की आज्ञा से यह कार्य करने के बाद भी पश्चात्ताप करता है। ऋषियों के वचनों के अनुसार राम का वनवास एक दिव्य उद्देश्य से है - यह जानकर दशरथ का दुःख भी शांत हो जाता है। दशवें अंक तक, युद्ध एवं अन्य प्रसंगों में भी विभिन्न स्थानों पर अनोखे परिवर्तन (परिवृत्तियाँ) देखने को मिलते हैं। इस प्रकार, कथा में हुए परिवर्तनों और रामायण के मूल क्रम का अनुसरण करते हुए, बालरामायण में रूपक-परंपरा से थोड़ा भिन्न होकर प्रत्येक अंक को स्वतंत्र रूप से नाम व प्रयोजन के साथ निर्दिष्ट किया गया है। यथा–

प्रथमाङ्कः – प्रतिज्ञापौलस्त्यः, द्वितीयाङ्कः – रामरावणीयः तृतीयाङ्कः – विलक्षलंकेश्वरः, चतुर्थाङ्कः – भार्गवभङ्गः पञ्चमाङ्कः – उन्मत्तदशाननः, षष्ठाङ्कः – निर्दोषदशरथः सप्तमाङ्कः – परमसमरापक्रमः, अष्टमाङ्कः – वीरविलासः . नवमाङ्कः – रावणवधः, दशमाङ्कः – राघवानन्दः

जिस प्रकार भास ने 'अभिषेकनाटकम्' आदि में कथा की योजना प्रारंभ की थी उसी प्रकार भवभूति ने रामायण कथा के काव्यात्मक परिवर्तन को विस्तार दिया और राजशेखर ने इस परंपरा को पूर्ण परिपक्वता तक पहुँचाया। जो जिज्ञासु विद्वान् हैं वे पूरे नाटक का अध्ययन करके उसका सारतत्त्व (तत्त्वार्थ) स्वयं अनुभव करें यही समस्त कथन का आशय (सार) है।

सप्तमांक

इस अंक में वैतालिकों द्वारा राम का यशोगान होता है पता चलता है कि दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने अपनी विरुदावली तब तक न गाने का निर्देश दिया है जब तक रावण का वध न कर लें।

अष्टमांक

इस अंक में दुर्मुख और सुमुख नामक राक्षस के संवाद से ज्ञात होता है कि युद्ध में रावण पुत्र सिंहनाद मारा गया है। तदनांन्तर ज्ञात होता है कि रावण ने तुला द्यूत युद्ध का प्रस्ताव सुख और सारण के द्वारा राम के पास भेजा है। इस युद्ध में राम का एक प्रतिनिधि रावण के एक प्रतिनिधि से युद्ध करेगा। जिसे राम स्वीकार कर लेते हैं, राम के प्रतिनिधि के रूप में अंगद तथा रावण के प्रतिनिधि के रूप में नरान्तक युद्ध करता है।

नवमांक

नाटककार के द्वारा राम और रावण का अप्रतिम बल पराक्रम और कौशल इस अंक में प्रदर्शित किया जाता है। जिसमें अंततः रावण का वध राम के हाथों होता है। अंक के आरंभ में यम नामक एक पुरुष दिखाई पड़ता है, उसके कथन से पता चलता है कि यमराज ने लंका का लेखपत्र मांगा है, वे यह जानना चाहते हैं कि किस लंका निवासी का किसके द्वारा कब वध होगा।

दशमांक

सामान्य रूप से इस अंक में प्रसिध्द विषयों की ही चर्चा की गयी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि राजशेखर ने बालरामायण में अनेक अभिनव कल्पनाओं के द्वारा इस नाटक को केवल रोचक ही नहीं बनाया है बल्कि नवीन कल्पनाओं से विषय वस्तु की स्थापना के द्वारा हृदय को रंजीत करने का भी प्रयास किया है। कवि ने जिस व्यावहारिक धरातल पर उतरकर नाटक की रचना की है वह अति महत्वपूर्ण है। राजशेखर के सभी पात्र जीवन जगत् के सचेत प्राणी के रूप में अपनी सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं और एक शाश्वत संदेश भी देते हैं।

सन्दर्भ –

1. *अनर्घराघव, 1/9*
2. *बालरामायण,1/13*
3. *वही, 1/16*
4. *History Of Sanskrit Poetics Pandurang Vaman Kane .p.g.no.212*
5. *औचित्यविचारचर्चा -च.ह.दव.153*
6. *सिद्धान्तकौमुदी- यश्चयङ (3-2-176) सूत्रवृत्तिः च.ह.दव-514*
7. *बालरामायणम्, षष्ठाङ्क*
8. *बालरामायणम्, षष्ठाङ्कः- 6,7 श्लोकः मायामय माल्यवान वचनानि च.ह.दव.148*

20

'बालरामायणम्' में कलातत्त्व एवं सौन्दर्याभिव्यक्ति : आधुनिक चिंतन

दयाशंकर तिवारी *

संस्कृत साहित्य में नाट्यकाव्य परम्परा में महाकवि राजशेखर का विशिष्ट स्थान है। वे केवल कवि ही नहीं अपितु एक काव्यशास्त्री, नाटककार, सांस्कृतिक आलोचक और कलाविद भी थे। उनकी कृति बालरामायण एक काव्यहै जिसमे रामकथा का सार कलात्मक, सौन्दर्यपरक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है यह ग्रन्थ दर्शाता है की किस प्रकार राजशेखर ने प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्पराओं का अनुसरण करते हुए नूतन प्रयोग भी किये गए हैं राजशेखर का काल लगभग नौवीं-दसवीं शती का माना गया है। उनकी अनेक रचनाएँ हैं जैसे काव्यमीमांसा, बालरामायण, कर्पूरमंजरी (प्राकृत नाटक) आदि। उनकी भाषा सरल, भावप्रवण और कल्पनाशील है। वे शास्त्रीयता के साथ-साथ नवीनता के पक्षधर भी थे। उनकी 'काव्यमीमांसा' साहित्यालोचना का प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने काव्य, रससिद्धांत और नाट्य की विधाओं का विवेचन किया है। 'बालरामायण' एक लघु काव्य है जिसमें उन्होंने शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए मौलिक प्रयोग भी किया है जिससे वे परम्परागत आधुनिकता (Tradition-Infused Modernism) के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं।

बालरामायण में कला तत्त्व

बालरामायण में शंकर का दिगम्बर रूप, सीता की चंचल दृष्टि, राम की करुणा और सूर्य की त्रिलोकी आभा सभी सांस्कृतिक प्रतीकों के रूप में उपस्थित हैं। ये प्रतीक केवल दृश्य बिंब नहीं अपितु गूढ़ सांस्कृतिक धारणाओं का संवाहन करते हैं। यह बिंबात्मकता सूसन सानटाग के "Against Interpretation" की भांति प्रतीकों के भीतर के अर्थ की परतें खोलती है। निम्नलिखित पद्य में लेखक ने भगवान शंकर के साकार स्वरूप को शब्दों के माध्यम से अत्यंत सुन्दर चित्रित किया है- **दिगम्बरो वहति भुजङ्गभूषणं कपालवान् वहति दामकौणपम। वृषप्रियो रचयति भस्मगुण्ठना-मुमापतेश्चरितमचिन्त्यकारणम्।।**[1]

प्रकृति के सौन्दर्य को चित्रित करने में तो राजशेखर की का प्रातिभज्ञान श्लाघनीय है –यथा-

''उषः प्रवालद्रुमबालपल्लवास्त्रिलोकहर्याङ्गणहस्तदीपिकाः
दिनद्विपेन्द्रारुणकर्णचामरा मरीचयोऽकंस्य लुठन्ति कोमलाः।।''[2]

यहां प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, संवेदनात्मक सहभागी है। वसंत का उल्लास, पुष्पों की गंध, कोयल

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

की कूक सब पाठक को इंद्रिय बोध में जोड़ते हैं। यह पक्ष Visual Aesthetics और Environmental Aesthetics मे भी जुड़ता है।

राम के वन गमन का वर्णन है। जब शिरीष पुष्प सदृश को मलांगी वनगमन के समय सीता राम से पूछती हैं कि अभी कितना दूर चलना है, इस पर भगवन राम कहते हैं-

सद्यः पुरो परिसरेऽपि शिरीषमृद्वी गत्वा जवात्त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसक्नुद्ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्।।[3]

कला की अभिव्यक्ति ही तो सौंदर्याभिवयक्ति है, इस प्रकार हम देखते है कि जॉन कीट्स की निम्नलिखित पंक्तियाँ राजशेखर की कृति में जीवन्त प्रतीत होती हैं- A thing of beauty is a joy forever. It's loveliness increases, it will never pass into nothingness.[4]

राजशेखर की रचना में निम्नलिखित कला-तत्त्व प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

वर्णन-कला

राजशेखर ने प्रकृति, नगर, नारी-सौंदर्य, युद्ध और शौर्य के अत्यंत सूक्ष्म और सौंदर्यपरक वर्णन किए हैं। राजशेखर की काव्य-शैली श्रव्य सौंदर्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है, एक प्रकार का संगीतात्मक चित्रण, जो पाठक को लयात्मकता के माध्यम से भावलोक में ले जाता है।

वाग्वैदर्शी मधुरिमगुणं, स्यन्दते श्रोतलेह्य, वस्तुन्यासो हरति हृदयं सूक्ति मुद्रानिवेद्यः।
सद्यः सूते रसमनुपमप्रौढीजन्मा प्रसादः, सन्दर्भ श्रीरिति कृतधियां धाम गीर्देवतायाः।।[5]

हे लङ्केश्वर के सभासदो। भगवान् द्रौहिणि भरत ने कहा है - वैदर्भी वाक् है जिससे बोत्रपेय माधुर्य गुण बरस रहा है, सूक्तिमुद्रा से सूचित होने वाला वस्तु-विन्यास हृदय का हरण कर रहा है, अनुपम प्रौढ़ि से प्रेद्भूत प्रसाद सद्यः रस की सर्जना करता है, सज्जनों के सन्दर्भ की शोभा ही सरस्वती का निवास है।

नाट्य-कला का समावेश

यद्यपि बालरामायण काव्य रूप में है, फिर भी उसमें नाटकीयता, संवादों की जीवंतता, पात्रों की मनोदशा आदि तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। उदाहरणतः सीता-स्वयंवर, राम-वनगमन या रावण-सीता संवाद में नाटकीयता और अभिनय की संभावनाएँ भरपूर हैं।

संगीत एवं लय

श्लोकों की रचना में छंदबद्धता, यमक, अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग दर्शाता है कि कवि को संगीत और लय का गहन ज्ञान था। ये गुण पाठक/श्रोता को एक सौंदर्यपरक अनुभव कराते हैं।

सौन्दर्याभिव्यक्ति के रूप

नारी सौंदर्य - राजशेखर ने नारी सौंदर्य को केवल शारीरिक सीमाओं में नहीं बाँधा अपितु उसमें भाव, लज्जा, कोमलता, प्रेम और शक्ति जैसे गुणों का समावेश किया। राजशेखर स्त्री को केवल सौंदर्य की मूर्ति नहीं, बल्कि धैर्य, त्याग और चेतना की प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं। सीता का करुण वनगमन या मंथरा की युक्तियुक्त भूमिका- यह सब उन्हें आधुनिक नारीवादी सौंदर्यशास्त्र के आलोक में प्रासंगिक बनाता है।

प्रकृति-सौंदर्य - प्रकृति के विभिन्न रूपों – ऋतुएँ, पुष्प, वन, नदियाँ, आकाश – का उपयोग सौंदर्य-विस्तार के लिए किया गया है। उदाहरण के रूप में वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए कवि फूलों की गंध, कोयल की कूक और बहारों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली रूप में करते हैं।

वीर सौंदर्य - राम का शौर्य, लक्ष्मण की गति, हनुमान का बल और रावण की गरिमा का चित्रण सौंदर्य की वीररस प्रधान अभिव्यक्ति है। यह कला और भाव का संगम है।

आधुनिक चिंतन के आलोक में विवेचन

समकालीन सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र में सौंदर्य को एक मात्र बाह्य अनुभव न मानकर भीतर से उत्पन्न अनुभूति माना गया है। राजशेखर की सौंदर्य-दृष्टि भी इसी मान्यता के निकट दिखाई देती है जहाँ सौंदर्य केवल नयनाभिराम नहीं अपितु भावाभिव्यक्ति और सांस्कृतिक चेतना का साधन है। राजशेखर का सौंदर्यबोध आज के Post-Structuralistऔर Avant-Garde सौंदर्य बिमर्शों के निकट है और रोलां वार्थ के writerly text की तरह, बालरामायण बहुस्तरीय अर्थ देती है। एलन केपरो की interdisciplinary aesthetics की 'भांति, यह काव्य दृश्य, श्रव्य, अभिनय और विंव का समेकन है। भारतीय उत्तर-आधुनिक विमर्श में यह कृति संस्कृति और कल्पना का जीवंत रूप बनती है।

कला की लोकतांत्रिकता

आधुनिक कला चिंतन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अनुभूति को प्राथमिकता दी जाती है। बालरामायण में राजशेखर ने पारंपरिक कथानक को अपनी शैली में नया रंग दिया है यह नवाचार आधुनिक सौंदर्यशास्त्र के अनुरूप है। यह कला की लोकतांत्रिकता की ओर संकेत करता है जहाँ शास्त्र भी भाव में ढलकर जनसामान्य से संवाद करता है।

निष्कर्ष - राजशेखरकृत बालरामायण केवल एक पौराणिक कथा का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण नहीं है साथ ही इसमें सौंदर्य की अनेक परतें हैं जैसे – शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक। आधुनिक सौंदर्यचिंतन में बालरामायण कोई सामान्य रामकथा नहीं अपितु भारतीय कलासंवेदना का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें वर्णन, अभिनय, छंद, प्रतीक, भाव, और संस्कृति का अद्वितीय समन्वय है। यह काव्य पारंपरिक होते हुए भी समकालीन सौंदर्यशास्त्र के प्रश्नों से साक्षात्कार करता है और यही इसे कालातीत कला रचना बनता है। राजशेखर की यह रचना सिद्ध करती है कि सच्चा कलातत्त्व शाश्वत होता है, वह न समय से बंधता है, न शैली से, वह अनुभूति में जीवित रहता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. *सानटाग, सूसन, Against Interpretation, Farrar, Straus & Giroux, New York, 1966.*
2. *कुमारस्वामी , आनंद, The Dance of Shiva, देव पब्लिशर्स और डिस्ट्रीब्यूटर, भारत, 1918.*
3. *केपरो, एलन, Essays on the Blurring of Art and Life, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्केल्ली, 1933.*
4. *बार्थ, रोलां, The Death of the Author, ऐस्पनमैगजीन, न्यूयॉर्क, 1967.*
5. *दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1956.*
6. *पोलॉक, शेल्डन, The language of Gods in the world of men, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्केल्ली, 2006.*

संदर्भ -

1. *बालरामायण 2/3*
2. *बालरामायण 1/2*
3. *बालरामायण 6/34*
4. *A thing of beauty is a joy forever (John Keats)*
5. *बालरामायण 3/14*

21

आचार्य कुन्तक द्वारा उद्धृत 'बालरामायणम्' के प्रसङ्गों की समालोचना

वेदप्रकाश डिंडोरिया *

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रतिपादक अपने एकमात्र ग्रन्थ वक्रोक्ति जीवित में चालीस से अधिक काव्यों को उद्धृत किया है, जिनमें बालरामायण अत्यन्त उल्लेखनीय है। आचार्य कुन्तक ने सम्पूर्ण वक्रोक्ति जीवित में दस बार बालरामायण का उल्लेख किया है।

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति जीवित के चार उन्मेषों में काव्य प्रयोजन, काव्य-लक्षण, वक्रोक्ति का स्वरूप, वक्रोक्ति के छह प्रभेद तथा काव्य-मार्गों का उल्लेख किया गया है। इन सबके प्रतिपादन में आचार्य कुन्तक ने अपने प्रतिपाद्य को पुष्ट करने के लिए बालरामायण के जितने भी पद्य उद्धृत किए है, उन सबकी प्रस्तुत शोध पत्र में समीक्षा की जायेगी।

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।[1]

अर्थात् काव्यतत्त्व को जानने वाले सहृदयों को आह्लादित कर देने वाले वक्र कवि व्यापार से सुन्दर रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होते हैं। शब्द और अर्थ दोनों का सम्मिलित रूप ही काव्य होता है, यह स्थापित हो जाने पर अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों में काव्यत्व सिद्ध हो जाने पर इनमें से किसी एक में किञ्चित् न्यूनता हो जाने पर भी काव्य-व्यवहार प्रवर्तित होने लगेगा, इसके निवारण के लिए 'सहितौ' पद का प्रयोग किया गया है। 'सहितौ' अर्थात् सहभाव से, साहित्य में अवस्थित शब्द और अर्थ दोनों मिलकर ही काव्य कहलाते हैं।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि वाच्य तथा वाचक का सम्बन्ध तो सदा विद्यमान होता ही है, ऐसे में इनमें कभी भी साहित्य (सहभाव) का अभाव होता ही नहीं, फिर 'सहितौ' कहने का क्या प्रयोजन है? इसके समाधान में कुन्तक कहते हैं कि यहाँ 'साहित्य' से विशिष्ट प्रकार का साहित्य ही अभिप्रेत है। विशिष्ट प्रकार का साहित्य कैसा होता है? आचार्य कहते हैं कि वक्रता से विचित्र गुणों एवं अलङ्कारों की सम्पदा का परस्पर स्पर्धा में आ जाना ही 'साहित्य' पद का अभिप्राय है।[2] अर्थात् जहाँ साहित्य होता है, वहाँ समस्त प्रकार की वक्रताएँ विद्यमान होती हैं, जिसके कारण वैचित्र्य युक्त होकर गुणों एवं अलङ्कारों में परस्पर एक दूसरे को परास्त करने की प्रतिस्पर्धा हो जाती है। अर्थात् वे एक दूसरे को सौन्दर्य की दृष्टि से परास्त करना चाहते हैं।

कारिका में 'शब्दार्थौ' पद में प्रयुक्त द्विवचन द्वारा वाच्य और वाचक की जाति के द्वित्व का अभिधान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि काव्य में वाक्य के समस्त शब्दों और अर्थों का साहित्य होना चाहिए।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

यहाँ द्विवचन का अभिप्रेतार्थ व्यक्ति द्वित्व से नहीं लिया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने पर एक शब्द और एक अर्थ का ही साहित्य लिया जायेगा, जिसके कारण एक पद में स्थित शब्द तथा अर्थ के साहित्य का भी काव्यत्व कहलाने लगेगा। इसलिए कारिका में 'बन्धेव्यव स्थितौ' अर्थात् 'वाक्य रचना' में व्यवस्थित कहा गया है। 'सहितौ' पद का भी अभिप्रेतार्थ यहाँ व्यक्तिगत साहित्य न होकर जातिगत साहित्य से है। भाव यह है कि शब्द का स्वजातीय शब्द की अपेक्षा शब्दान्तर के साथ तथा अर्थ का भी सजातीय अर्थ की अपेक्षा अर्थान्तर के साथ परस्पर स्पर्धित्व रूपसाहित्य अपेक्षित है। तदनुसार वाक्य का प्रत्येक शब्द और प्रत्येक अर्थ सौन्दर्य की दृष्टि से दूसरे शब्द और अर्थ को परास्त करने की भावना से मानो प्रतिस्पर्धा कर रहा हो। इसके उदाहरण में कुन्तक बालरामायण से निम्नलिखित पद्य उद्धृत करते हैं –

रुद्राद्रेस्तुलनं स्वकण्ठविपिनोच्छेदो हरेर्वासनं। कारावेश्मनि पुष्पकापहरणम् यस्ये–दृशाः केलयः।।[3]

इसके प्रथम तीन चरणों में रावण के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है। कवि को अन्तिम चरण के लिए पूर्व में उपनिबद्ध पदार्थों के अनुरूप पदार्थ न मिलने पर 'यस्ये–शाःकेलयः' यह वाक्यखण्ड रख दिया है, जिससे न केवल यह वाक्य अन्य वाक्यों की प्रतिस्पर्धा में आ गया है, अपितु अन्य वाक्य भी इस वाक्य की उपस्थिति के कारण किसी अपूर्व शोभा को प्राप्त हो गये हैं।

काव्यलक्षण में 'शब्दार्थौ' पद का स्वरूप

आचार्य कुन्तक ने काव्यलक्षण में स्थित 'शब्दार्थौ' को स्पष्ट करते हुए कहा है -

शब्दोविवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषुसत्स्वपि। अर्थः सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दरः।।[4]

अर्थात् अनेक पर्याय वाचक शब्दों के रहते हुए भी उन सबकी अपेक्षा विलक्षण रूप से जो विवक्षित अर्थ को प्रकाशित कर सके, केवल वही शब्द काव्यमार्ग में 'शब्द' कहलाता है। इसी प्रकार जो पदार्थ सहृदयों के हृदयों को आनन्द से भर देने वाला और अपने स्पन्द अर्थात् स्वभाव से ही सुन्दर होता है, काव्यमार्ग में वही वास्तव में 'अर्थ' कहलाता है। परन्तु बालरामायण के प्रस्तुत पद्य में राजशेखर ने उचित शब्द का प्रयोग नहीं किया है, जैसे - **सद्यः पुरीपरिसरेऽपिशिरीषमृद्वी, सीताजवात्तिचतुराणिपदानिगत्वा। गन्तव्यमद्यकियदित्यसकृद्ब्रुवाणा, रामाश्रुणः कृतवतीप्रथमावतारम्।।**[5]

इस पद्य में बार-बार 'आज कितना और चलना है?' यह कथन रूप व्यापार, स्वभाव की महत्ता को प्रकट नहीं करता है। न ही कथन रस के परिपोष में सहायक होता है। क्योंकि इस प्रकार के स्वाभाविक औचित्य अर्थात् पत्नी होने के कारण राम के साथ वन में जाने को उद्यत हुई सीता का सुकुमारतावश यह भाव हृदय में परिस्फुरित होता हुआ भी वाणी द्वारा अभिव्यक्त हो जायेगा, इसकी कल्पना सहृदय नहीं कर सकते हैं। न ही यहाँ बार-बार कहे जाने से राम के अश्रुओं के प्रथम बार अवतरित होने से कोई सङ्गति है, क्योंकि एक बार सुनने पर ही उसकी उपपत्ति हो जाती है। इसलिए यह पद्य अत्यन्त रमणीय होने पर भी किञ्चित् मात्र चलने की असावधानी से कवि को निन्दा का पात्र बना देता है। वस्तुतः यहाँ 'असकृत्' के स्थान पर 'अवशम्' पाठ अधिक उपयुक्त होता।

वैचित्र्य -

वक्रोक्ति जीवित में तीन मार्गों का प्रतिपादन किया गया है - सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम। विचित्र मार्ग के उपसंहार में आचार्य कुन्तक का मत है कि विचित्र मार्ग में वक्रोक्ति वैचित्र्य अर्थात् अलङ्कार का विचित्र भाव सजीव सा प्रतीत होता है। वह वैचित्र्य ही उस विचित्र मार्ग का प्राण है। जिसके अन्दर कोई अपूर्व अभिधा

परिस्फुरित होती है, वह वैचित्र्य है।[6] भाव यह है कि जिसके अन्तःस्वरूप में प्रविष्ट होने के कारण कोई अलौकिक अतिशयोक्ति परिस्फुरित होते हुए सुशोभित होती है, उसको विचित्र मार्ग जानना चाहिए। जैसे -

यत्सेनारजसामुदञ्चतिचयेद्वाभ्यांदवीयोऽन्तरान्, पाणिभ्यांयुगपद्विलोचनपुटानष्टाक्षमोरक्षितुम् ।
एकैकंदलमुन्नमय्यगमयन्वासाम्बुजंकोशतां, धातासंवरणाकुलश्चिरमभूत्स्वाध्यायबद्धाननः ।।[7]

इस प्रकार से सम्भावना के अनुमान से प्रवृत्त उत्प्रेक्षा की प्रतीय मानता ही 'वैचित्र्य' है और वह चरम सीमा को प्राप्त हुयी रमणीयता से अतिशयोक्ति के प्रवाह से अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है।

वर्णविन्यासवक्रता

आचार्य कुन्तक ने वर्णविन्यास वक्रता को तीन प्रकार से परिभाषित किया है। जब एक, दो तथा अनेक वर्ण थोड़े-थोड़े अन्तर से पुनःपुनः उसी रूप में गुम्फित होते हैं, तब 'वर्णविन्यास वक्रता' होती है। स्पर्श वर्ण अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से संयुक्त होने पर, तकार, लकार तथा नकार द्वित्व किये हुए रूप में प्रयुक्त होने पर, प्रस्तुत रसादि के औचित्य से युक्त रकारादि से संयुक्त शेष वर्ण वर्णविन्यास वक्रता के सूचक होते हैं। कहीं-कहीं व्यवधान के न होने पर भी स्वरों के भेद के कारण वह मनोहारी रचना अतिशायी वक्रता को पुष्ट करती है। आचार्य कुन्तक के शब्दो में –

एकोद्वौबहवोवर्णाबध्यमानाः पुनः पुनः । स्वल्पान्तरास्त्रिधासोक्तावर्णविन्यासवक्रता
वर्गान्तयोगिनः स्पर्शाद्विरुक्तास्तलनादयः । शिष्टाश्चरादिसंयुक्ताः प्रस्तुतौचित्यशोभिनः॥
क्वचिदव्यवधानेऽपिमनोहारिनिबन्धना । सास्वराणामसारूप्यात्परांपुष्णातिवक्रताम् ।।[8]

आचार्य कुन्तक ने तृतीय प्रकार के अन्तर्गत दो वर्णों के अव्यवधान से प्रयोग के दो उदाहरण बालरामायण से दिए हैं -

ताम्बूलीनद्धमुग्धक्रमुकतरुतलस्रस्तरेसानुगाभिः, पायंपायंकलाचीकृतकदलदलंनारिकेलीफलाम्भः ।
सेव्यन्तांव्योमयात्रश्रमजलजयिनःसैन्यसीमन्तिनीभि-र्दात्यूहव्यूहकेलीकलितकुहकुहारावक्रान्तावनान्ताः ।।[9]

इस पद्य में पायं पायं, कदलदलं, दात्यूहव्यूह, केलीकलित, कुहकुहा, क्रान्तावनान्ताः आदि शब्दों में दो-दो वर्णों का व्यवधान रहित प्रयोग हुआ है, जिसके कारण यहाँ वर्णविन्यास वक्रता घटित हो गई है।
और जैसे -

अयिपिबतचकोराःकृत्स्नमुन्नाम्यकण्ठान्, क्रमुकबलनचञ्चञ्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भः ।
विरहविधुरितानांजीवितत्राणहेतो-र्भवतिहरिणलक्ष्मायेनतेजोदरिद्रः ।।[10]

इस पद्य में 'कृत्स्नं', 'उन्नाम्य', 'कण्ठान्', 'चञ्चञ्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भः', 'त्राणहेतोः' आदि पदों में दो-दो वर्णों का व्यवधान रहित प्रयोग होने से यहाँ प्रस्तुत वर्ण विन्यास वक्रता है।

कारक वैचित्र्य विहित प्रत्यय वक्रता

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति के छह प्रभेद किए हैं, जिनमें से एक पद परार्द्ध वक्रता है, जिसको प्रत्ययाश्रय वक्रता भी कहते हैं। सुप्अथवातिङ् प्रत्यय जिसका आश्रय अथवा स्थान है वह, 'प्रत्ययाश्रय' कहलाता है। इस प्रत्ययाश्रय-वक्रता के भी अनेक भेद हो सकते हैं, यथा - संख्या वैचित्र्य विहित, कारक वैचित्र्य विहित, पुरुष वैचित्र्य विहित आदि।[11] जहाँ रसादि के परिपोषण के लिए अचेतन पदार्थ में भी चेतनत्व का अध्यारोप कर उसमें चेतन की ही क्रिया का समावेश रूप कर्तृत्व आदि कारक का निबन्धन किया जाता है, वह 'कारक वैचित्र्य विहित प्रत्यय वक्रता' कहलाता है।[12] इसके उदाहरण में आचार्य कुन्तक ने बालरामायण से परशुराम के प्रति रावण की उक्ति को प्रस्तुत किया है, जैसे -

चापाचार्यस्त्रिपुरविजयीकार्तिकेयोविजेयः, शस्त्रव्यस्तःसदनमुदधिर्भूरियंहन्तकारः।
अस्त्येवैतत्किमुकृतवतारेणुकाकण्ठबाधां, बद्धस्पर्धस्तवपरशुनालज्जतेचन्द्रहासः।।[13]

यहाँ 'लज्जतेचन्द्रहासः' इस कथन में अचेतन चन्द्रहास में चेतन के समान कर्तृत्व के आधान से कारक के वैचित्र्य की प्रतीति होती है।

रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता

जब कवि के मन में वाच्यार्थ के लोकोत्तर तिरस्कार करने का भाव हो अथवा वह वाच्यार्थ की प्रशंसा का कथन करना चाह रहा हो, तो वह दो कार्य करता है। यदि वह वाच्यार्थ का लोकोत्तर तिरस्कार करना चाह रहा है तो वह रूढ़ि के द्वारा असम्भव अर्थ का अध्यारोप करेगा और यदि वह प्रशंसा का कथन करना चाह रहा है तो वह किसी विद्यमान धर्म के अतिशय का आरोप करेगा। अतः इन दोनों रूपों में जो प्रतीति होती है, वह ही कोई अपूर्व सौन्दर्य का आधान करने वाली रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता कही जाती है।[14] आनन्दवर्धन ने ध्वनि के जो अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य तथा अर्थान्त रसं क्रमित वाच्य नामक दो भेद किये हैं, वही कुन्तक के यहाँ रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता के असम्भाव्य धर्माध्यारोप गर्भता तथा सद्धर्मातिशयारोप गर्भता नामक उक्त दो भेद होते हैं।

वह रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है - एक जहाँ कवि रूढ़ि (शब्द) से वाच्यार्थ (रामादिवक्ता) को स्वयं ही अपने में उत्कर्ष अथवा अपकर्ष का समारोप करते हुए वर्णन करता है अथवा उक्त उत्कर्षया अपकर्ष को कोई और वक्ता वर्णन करता है।[15] जहाँ पर कोई अन्य वक्ता धर्म का अध्यारोप करने वाला होता है, उसका उदाहरण आचार्य कुन्तक ने बालरामायण से दिया है –

आज्ञाशक्रशिखामणिप्रणयिनीशास्त्राणिचक्षुर्नवं, भक्तिर्भूतपतौपिनाकिनिपदंलङ्केतिदिव्यापुरी।
सम्भूतिर्दूरुहिणान्वये च तदहोने–ग्वरोलभ्यते, स्याच्चेदेष न रावणः क्वनुपुनः सर्वत्र सर्वेगुणाः।।[16]

यहाँ पर 'रावण' शब्द के द्वारा समस्त लोक में प्रसिद्ध दशानन रावण के दुर्विलास के अतिरिक्त कुल, विवेक, सदाचार, प्रभाव, सम्भोग सुख, समृद्धि रूप समस्त वरोचित गुण-सामग्री रूपी सम्पदा के तिरस्कार के कारणभूत अनुपादेयता के निमित्त भूत किसी अपूर्व त्रुटि की प्रतीति होती है। इस उदाहरण में 'रावण' (दूसरों को रुलाने वाला) पद से लोकोत्तर अपकर्षका अतिशयवर्णित हो रहा है और यह वर्णन किसी अन्य वक्ता अर्थात् शतानन्द ने किया है। अतः यह रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता के भेद सद्धर्मातिशयारोप गर्भता का उदाहरण है।

कारक वक्रता

जहाँ पर अप्रधान कारक को मुख्यत्व का अध्यारोप करके प्रधानरूप से अथवा मुख्य कारक में गौणत्व का अध्यारोप करके गौण रूप से कथन किया जाता है, वह कारक वक्रता कही जाती है। इसके अतिरिक्त जहाँ किसी कथन की शैली की रमणीयता के परिपोष करने के लिए कारकों का विपर्यास अर्थात् कर्ता कारक को कर्म या करण कारक बना देना या फिर कर्म या करण कारक को कर्ता कारक बनाकर प्रयोग किया जाता है, वह भी कारक वक्रता कही जाती है।[17] जैसे बालरामायण के इस पद्य में –

निष्पर्याय निवेश पेशलर सैरन्योन्यनि र्भर्त्सिसभि-र्हस्ताग्रैर्युगपन्निपत्यदशभिर्वामैधृतंकार्मुकम्।
सव्यानांपुनरप्रथीयसिविधावस्मिन्गुणारोपणे, मत्सेवाविदुषामहम्प्रथमिकाकाप्यम्बरेवर्तते।।[18]

यहाँ पर करण रूप हाथों में कर्तत्व का आरोप किया गया है।

नटों के द्वारा स्वयं सामाजिक बनकर दूसरे नटों का निर्माण कर प्रकरण के अन्दर उपस्थित अन्य प्रकरण रूप वक्रता कहीं किसी प्रकरण के अन्दर उपस्थित अन्य प्रकरण सम्पूर्ण प्रबन्ध की प्राण रूप वक्रता को

पुष्ट करता है। ऐसा कवि कौशल के उन्मेष से सुशोभित किसी विशेष नाटक में ही हो सकता है, सर्वत्र नहीं। एक नाटक के एक अङ्क के अन्तर्गत सामाजिकों को आह्लाद प्रदान करने में निपुण नटों के द्वारा स्वयं सामाजिक बनकर दूसरे नटों का निर्माण कर अन्य अङ्क को दिखाया जाना, जिसे गर्भाङ्क भी कहा जाता है। यह अन्य अङ्क अर्थात् गर्भाङ्क सम्पूर्ण प्रबन्ध की सर्वस्व भूत वक्रता को पुष्ट करता है।[19]

आचार्य कुन्तक के शब्दों में - **'यथा बालरामायणे चतुर्थेऽङ्के लङ्केश्वरानुकारी नटः प्रहस्तानुकारिणानटेनानुवर्त्यमानः।'**[20] अर्थात् जैसे बालरामायण के चतुर्थ अङ्क में लङ्केश्वर का अनुकरण करने वाला नट प्रहस्तका अनुकरण करने वाले नट का अनुवर्तन करते हुए।

समानकथावक्रता

एक ही कथावस्तु को आधार बनाकर जब श्रेष्ठ महाकवियों के द्वारा रूपक महाकाव्य आदि की रचना की जातीहै, तो वे कभी तो मूलरूप से विस्तृत कथा वस्तु को संक्षिप्त कर देते हैं और कहीं पर मूलरूप से संक्षिप्त कथा वस्तु का विस्तार कर देते हैं। ये महाकवि विचित्र शब्द, अर्थ तथा अलङ्कार से नवीनता का आधा न कर एक दूसरे से परस्पर विलक्षणता के आधार पर काव्य में अमूल्य वक्रता को पुष्ट करते हैं।

आचार्य कुन्तक ने यहाँ वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर लिखे गए कुछ काव्यों को उदाहरण के रूप में उदधृत किया है। यथा - रामाभ्युदय, उदात्तराघव, महावीरचरित, बालरामायण, कृत्यारावण, माया पुष्पक आदि। इन समस्त काव्यों की उपजीव्य एक ही कथा है। सभी काव्य भिन्न-भिन्न महाकवियों के द्वारा लिखे गए हैं। इन सभी काव्यों में किसी भी प्रकार का सादृश्य नहीं है। तथापि ये सब श्रेष्ठ काव्य हैं। निरन्तर रस के प्रवाह की सामर्थ्य से युक्त हैं। एक ही कथा मार्ग का अवलम्बन कर रहे हैं। इन सभी काव्यों के प्रत्येक पद, प्रत्येक वाक्य तथा प्रत्येक प्रकरण में अभिनव सौन्दर्य प्रकाशमान हो रहा है, जो रमणीयता को धारण करने वाले नवनवोन्मीलित नायक श्रीराम के गुणों के उत्कर्ष करने वाला है। ये सभी काव्य अपने-अपने रचनाकाल से अद्यावधि सहृदयों के द्वारा अनेक बाद आस्वाद्यमान होते रहे हैं तथा उनके हर्षातिरेक को भी अनेक बार उत्पन्न करते रहे हैं। अतः ये सभी काव्य समान कथा वक्रता रूप प्रबन्ध वक्रता के उदाहरण हैं।

निष्कर्ष –

आचार्य कुन्तक की यह सुदृढ़ मान्यता है कि वक्रता का अभाव तो सामान्य कवियों के काव्यों में भी नहीं होता है, तो फिर श्रेष्ठ कवियों के काव्यों की तो बात ही क्या है? इसका तात्पर्य है कि कुन्तक की दृष्टि में राजशेखर श्रेष्ठ कवि हैं तथा बालरामायण उनकी श्रेष्ठ रचना है। उपलब्ध वक्रोक्ति जीवित में बालरामायण का दस बार उल्लेख इस काव्य के महत्त्व को रेखाङ्कित करता है। काव्य लक्षण में महत्त्वपूर्ण पद 'सहितौ' के औचित्य तथा वैचित्र्य के प्रतिपादन में आचार्य ने बालरामायण के पद्य को उद्धृत किया है, जो इसकी महत्ता का परिचायक है। वर्णविन्यास वक्रता तथा प्रकरण वक्रता के उदाहरण में बालरामायण के दो पद्य और कारक वैचित्र्य विहित प्रत्ययवक्रता, रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता, कारक वक्रता के उदाहरण में एक पद्य इस काव्य को विशिष्ट बनाते हैं।

तथापि काव्य लक्षण में 'शब्दार्थौ' पद का स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्तक ने बालरामायण के एक पद्य में 'असकृत्' पद के प्रयोग को उचित नहीं माना है। इसका कारण कुन्तक – स्वभाव की महत्ता को प्रकट न होना, रस के परिपोष में सहायक न होना तथा सीता हृदय का भाववाणी द्वारा अभिव्यक्त हो जाना मानते हैं। साथ ही राम के अश्रुओं का प्रथम बार अवतरण की भी इससे कोई सङ्गति नहीं है।

परन्तु जिसके पति को चौदह वर्ष का वनवास मिला हो और वह पति के साथ दस कदम चलने के बाद ही पति से पूछे कि अब कितना और चलना है? उस अवस्था में पत्नी का यह कथन निश्चित रूप से सीता की अतिशय सुकुमारता, बाल सुलभभोलापन, वन प्रवास में होने वाले सम्भावित समस्त कष्टों की कल्पना से भी अनभिज्ञता आदि की अभिव्यञ्जना कराता है और उस समय कौन पति ऐसा होगा, जिसकी आँखों में अश्रु नहीं आ जायेंगे।

अतः वक्रोक्ति की दृष्टि से बालरामायण नाटक उत्कृष्ट रचना है।

सन्दर्भ-

1. *वक्रोक्तिजीवित 1.7*
2. *विशिष्टमेवेहसाहित्यमभिप्रेतम्। की–शम्, वक्रता विचित्र गुणालङ्कार सम्पदां परस्पर स्पर्धाधिरोहः। वही वृत्तिभाग*
3. *बालरामायण 1-51*
4. *वक्रोक्तिजीवित 1.9*
5. *बालरामायण 4-34*
6. *एवं विधोविचित्रोमार्गोयत्रयस्मिन् 'वक्रोक्तिवैचित्र्यम् अलङ्कारविचित्रभावो 'जीवितायते' जीवितवदाचरति। वैचित्र्यादेवविचित्रे 'विचित्र' शब्दः प्रवर्तते। तस्मात्तदेवतस्यजीवितम्। किंतद्वैचित्र्यं नामेत्याह-'परिस्फुरति यस्यान्तः साकाप्यतिशयाभिधा।' यस्यान्तः स्वरूपानु प्रवेशेनसाकाप्य लौकिकातिशयोक्तिः परिस्फुरति भ्राजते। वक्रोक्तिजीवित 1.43 वृत्तिभाग*
7. *बालरामायण 7-66*
8. *वक्रोक्तिजीवित 2.1–3*
9. *बालरामायण 1-63*
10. *बालरामायण 5–73*
11. *कीदृशःप्रत्ययाश्रयः? प्रत्ययः सुप्तिङ् च यस्याश्रयः स्थानं स तथोक्तः। तस्यापिबहवः प्रकाराः सम्भवन्ति, संख्यावैचित्र्यविहितः, कारक वैचित्र्य विहितः, कारक वैचित्र्य विहितश्च। वक्रोक्ति जीवित 1.19 वृत्तिभाग 12. कारक वैचित्र्यविहितः - यत्र चेतनस्यापि पदार्थस्य चेतनत्वाध्यारोपेण चेतनस्यैव क्रिया समावेश लक्षणं रसादि परिपोषणार्थं कर्तृत्वादि कारकं निबध्यते। वही*
13. *बालरामायण 2-37*
14. *यत्ररूढेरसम्भाव्यधर्माध्यारोपगर्भता।*
    सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वंवाप्रतीयते।।
    लोकोत्तरतिरस्कारश्लाघ्योत्कर्षाभिधित्सया।
    वाच्यस्यसोच्यतेकापिरूढिवैचित्र्यवक्रता।। वक्रोक्तिजीवित 2.8–9
15. *सा च रूढिवैचित्र्यवक्रतामुख्यतयाद्विप्रकारासम्भवति। यत्र रूढ़िवाच्योऽर्थः स्वयमेव आत्मन्युत्कर्षं निकर्षंवा समारोपयितु कामः कविनोप निबध्यते, तस्यान्योवाकश्चिद्वक्तेति। वही*
16. *बालरामायण 5-36*

17. यत्र कारक सामान्यं प्राधान्येन निबध्यते । तत्त्वाध्यारोपणान्मुख्यगुणभावाभिधानतः ।।
परिपोषयितुंकाञ्चिद्भङ्गीभणितिरम्यताम् । कारकाणांविपर्यासः सोक्ता कारक वक्रता ।। वक्रोक्तिजीवित 2.27–28
18. बालरामायण 1-50
19. सामाजिकजनाह्लादनिर्माणनिपुणैर्नटैः । तद्भूमिकांसमास्थायनिर्वर्तितनटान्तरम् ।।
क्वचित्प्रकरणस्यान्तः स्मृतंप्रकरणान्तरम् । सर्वप्रबन्ध सर्वस्व कलां पुष्णातिवक्रताम् ।। वक्रोक्तिजीवित 4.12–13
20. वक्रोक्तिजीवित 4.13 वृत्तिभाग
21. अप्येककक्षयाबद्धाःकाव्यबन्धाःकवीश्वरैः । पुष्णन्त्यनर्घामन्योन्यवैलक्षण्येनवक्रताम् ।। वक्रोक्तिजीवित 4.25

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बालरामायण (राजशेखर) व्याख्याकार गोविन्ददेव शास्त्री, मेडीकल हाल प्रेस, बनारद, 1869.
2. बालरामायण (राजशेखर) व्याख्याकार डॉ. गंगासागरराय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1984.
3. बालरामायण (राजशेखर) व्याख्याकार डॉ. भास्कराचार्य त्रिपाठी, नागप्रकाशन, दिल्ली, 1995.
4. वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक) व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयनिदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1995
5. वक्रोक्ति जीवित (कुन्तक) व्याख्याकार राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2016
6. वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक) प्रथम उन्मेष व्याख्याकार डॉ.. वेद प्रकाश डिंडोरिया, सम्पादक –
डॉ. ओमनाथ बिमली, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2016
7. वक्रोक्तिजीवित (कुन्तक) द्वितीयउन्मेष व्याख्याकार डॉ. वेदप्रकाश डिंडोरिया,
सम्पादक - डॉ. ओमनाथ बिमली, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2019
8. Vakroktijīvita – Sushil Kumar De, Firma K.L. Mukhopadhyay, Calcutta, 1928.

22

'बालरामायणम्' में रसभावादि की योजना

*पिंकी कुमारी *, शिवराज सिंह ***

''उपाध्यायो यायावरीयः राजशेखरः'' बालरामायण के इस कथन से यह दृष्ट है कि राजशेखर यायावर वंश के थे। यायावर का अर्थ है, जो निरन्तर चलने वाला हो। ऐसे ही किसी यायावरीय महात्मा के वंश में जन्म लेने के कारण, राजशेखर ने स्वयं को यायावरीय शब्द से अलंकृत किया है। राजशेखर ने अपने कुल की प्रशंसा में बताया है कि अकालजलद, सुरानन्द, तरल, कविराज आदि अनेक कवियों ने इस कुल को अलङ्कृत किया है।[1] बालरामायण में राजशेखर ने स्वयं को महेन्द्रपाल का गुरु बताया है और आचार्य राजशेखर ने बालरामायण में महेन्द्रपाल का एक अन्य नाम निर्भयराज लिखा है।[2]

बालरामायणकार राजशेखर रसवादी आचार्य हैं। इन्होंने अपनी कृति काव्यमींमासा में कहा है, कि रस काव्य की आत्मा है[3] काव्य में रस को प्राणतत्त्व मानने वाले आचार्य की अन्य कृतियाँ रसपरिपाक से कैसे वंचित रह सकती हैं? अतः राजशेखरकृत बालरामायण नाटक भी रस की पराकाष्ठा से परिपूर्ण है। यह दस अंकों का नाटक है, जिसमें सीता स्वयंवर से लेकर अयोध्या वापसी तक की रामकथा का नाटकीय वर्णन प्रस्तुत है। अतः बालरामायण में आस्वादनीय रसों का किञ्चित् विवेचन इस शोधपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

वस्तु, नेता एवं रस, नाट्य के भेदक तत्त्व हैं।[4] यद्यपि नाट्य के ये तीनों भेदक तत्त्व समान हैं। तथापि रूपक का प्राणतत्त्व होने के कारण वस्तु एवं नेता की अपेक्षा रस को प्रधानता प्राप्त है अतः रस नाटक का सार है। रस से ही नाट्य आस्वाद्य एवं हृदयग्राही होता है। रस के अभाव में नाट्य की चारुता केवल कर्णानुरंजक हो सकती है, हृदयावर्जक नहीं। आचार्य भरत से लेकर परवर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। नाट्यशास्त्र प्रणेता आचार्य भरत रस को सर्वोपरि मानते हुए कहते हैं, कि रस के बिना काव्य अथवा नाटक में किसी भी अर्थ का प्रवर्तन संभव नहीं।[5] रस की व्युत्पत्ति प्रस्तुत करते हुए आचार्य भरत कहते हैं, कि जिसका आस्वादन किया जाए वही 'रस' है[6] आस्वादयोग्य होने से रस के साथ-साथ रसाभास, भाव, भावाभास, भाव-संध्यादि का भी ग्रहण किया जाता है।[7] वस्तुतः रसास्वाद से सहृदय को असीम एवं अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। रस उत्पत्ति के विषय में आचार्य भरत कहते हैं कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का जब सहृदयों के हृदय में विद्यामान रत्यादि स्थायी भावों के साथ संयोग होता है तो वह रत्यादि ही रस रूप में आस्वाद्य होता है।[8] रसोत्पादक तत्त्वों में स्थायी भाव ही सबसे महत्त्वपूर्ण है।[9] सम्पूर्ण नाट्य जगत् रसात्मक है।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** अतिथि सहायक आचार्या-संस्कृत विभाग, मिराण्डा हाउस दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007*

*** अतिथि सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,110039*

दशरूपककार धनञ्जय ने रूपकों को दस प्रकार का बताते हुए उनको रसाश्रित माना है।[10] आचार्य भरत ने अभिनयात्मक काव्य में केवल आठ ही रसों को मुख्य माना है।[11]

स्पष्ट है, कि नाटक में रस का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः रसबोध हेतु नाट्य में सभी सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए। काव्य हो या नाटक उसके शरीर निर्माण में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव और स्थायी भाव के औचित्य का सतत ध्यान रखना चाहिए। ध्वनिवादी आचार्यों ने रसभङ्ग का कारण अनौचित्य को ही स्वीकार किया है। आचार्य आनन्दवर्धन अनौचित्य के विषय में कहते हैं कि अनौचित्य के अतिरिक्त रस भङ्ग का अन्य कोई कारण नहीं है। एक श्रेष्ठ औचित्य का योजन ही रस की पराकाष्ठा है।

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्। प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।।[12]

बालरामायण नाटक का अध्ययन करने पर इसमें अनेक प्रकार के रसों और भावों का आस्वादन सहृदय सामाजिकों को होता है जिसके कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं-

वीर रस –

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। किसी भी कार्य को करने में स्थिर उद्योग का नाम 'उत्साह' है।[13] बालरामायण नाटक के तृतीय अंक में जानकी स्वयंवर के समय एक-एक करके सभी राजाओं को धनुष के आरोपण के लिए आहूत करने के पश्चात् जब दशरथ पुत्र को प्रतिहारी निर्दिष्ट करती है और राम, धनुष के आरोपण के लिए उद्यत होते हुए लक्ष्मण से कहते हैं, कि देखो लक्ष्मण, मेरे भुजदण्डों के आक्रमण से यह धनुष नहीं फटेगा या रस्सी नहीं टूटेगी?

मद्दोर्दण्डद्वयाक्रान्त्या वत्स लक्ष्मण लक्षय। स्फुटिष्यति न कोदण्डं त्रुटिष्यति न वा गुणः।।74।।[14]

यहाँ विजेतव्य वस्तु रूप शिव धनुष आलम्बन विभाव है। स्वयंवर में अन्य राजाओं की उपस्थिति और उनकी धनुष आरोपण में असमर्थता उद्दीपन विभाव है। कोलाहल, चक्षुविस्तार अनुभाव है। धैर्य, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं। ये सभी भाव, उत्साह नामक स्थायीभाव से मिलकर सहृदय सामाजिकों में वीर रसानुभूति को पुष्ट कर रहे हैं।

वीर रस का एक अन्य उदाहरण बालरामायण के सप्तमाङ्क में मिलता है जब हनुमान समुद्र लंघन के लिए उद्यत होते हैं।[15]

करुण रस –

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। इष्टनाश और अनिष्ट प्राप्ति से चित्त की जो व्याकुलता होती है वही 'शोक' है।[16] बालरामायण के छठे अंक में राम के वनगमन पर दशरथादि स्वजनों की स्थिति का चित्रण करुण रस से परिपूर्ण है। दशरथ को जब पता चलता है कि राम वन को चले गए तो दशरथ कहते हैं- हा रघुकुल के चन्द्र रामचन्द्र ! दिलीप के कुल में चरित्र का यह वैपरीत्य कैसे हुआ? यह वृद्ध दशरथ गार्हस्थ की उपासना कर रहा है और तू दुधमुहा वनवास का सेवन कर रहा है।

वृद्धो दशरथः सोऽयमुपास्ते गृहमेधिताम्। त्वया तु क्षीरकण्ठेन वनवासो निषेव्यते।।30।।[17]

दशरथ पुत्र राम (वनवासी) यहाँ आलम्बन विभाव है। दुःख में राम की अनेक क्रियाओं का दशरथ के स्मृति पटल पर पुनः-पुनः दीप्त होना, उद्दीपन विभाव है। दैवनिन्दा और क्रन्दन अनुभाव है। मोह और ग्लानि व्यभिचारी भाव है। ये सभी भाव मिलकर शोक नामक स्थायी भाव को पुष्ट कर रहे हैं जिससे सहृदय सामाजिक करुण रस का आस्वादन कर रहा है। षष्ठ अंक के अन्य श्लोकों यथा- 6/15, 6/28, 6/32 में भी करुण रसास्वादन शीघ्रता से होता है।

रौद्र रस –

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। शत्रुओं के विषय में तीव्रता के उद्बोध का नाम 'क्रोध' है।[18] बालरामायण के सप्तम अंक में राम के द्वारा सागर से मार्ग की याचना के उपरान्त भी मार्ग न देने पर राम कहते हैं, कि सगर ने जिसे खोदा था, मन्दाकिनी को मर्त्यभूमि पर लाते हुए भगीरथ ने जिसे भरा था और जो हम लोगों का कीर्तिभूत है आज इसकी प्रतिकूलाचारिता के कारण मैंने सागर में बाणों की पंक्ति बिछा दी है।

यत्खातः सगरेण मर्त्यसरितं मन्दाकिनीं कुर्वता पूर्णो यच्च भगीरथेन तदयं नः कीर्तनं सागरः।
अप्यस्मिन् प्रतिकूलवर्तिनि मया कीर्णाः शरश्रेणयो हे वृद्धाः प्रणतोऽस्मि मुञ्चत रुषं रामस्य कान्या गतिः।।31।।[19]

यहाँ सागर आलम्बन विभाव है। सागर द्वारा मार्ग न देना, उसका प्रतिकूलाचार इत्यादि उद्दीपन विभाव है। राम के द्वारा धनुषारोहण और बाणों की पंक्ति बिछाना अनुभाव है। अमर्ष व्यभिचारी भाव है। अतः ये सभी भाव सामाजिकों में क्रोध नामक स्थायि भाव को पुष्ट करते हुए रौद्र रस का आस्वादन करा रहे है।

बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायी भाव 'जुगुप्सा' है। दोष दर्शनादि के कारण किसी में उत्पन्न घृणा को जुगुप्सा कहते है।[20] बालरामायण के तृतीय अंक में ताड़का राक्षसी के बीभत्स रूप का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि रक्त से व्याप्त मुख वाली, मृग का भारी ग्रास लेने से व्यग्र तालु वाली, फुल्ल गले भारी फेत्कारों से जगत् को कम्पित करती हुई, हाथ में लिए दो शवों को परस्पर पीटती हुई तथा दातों से भयंकर यह ताटका आ रही है।

रक्ताभ्यक्तोरुसृक्का गुरुकवललज्जाङ्गलव्यग्रतालुः फेत्कारैः फुल्लगल्लव्यतिकरगुरुभिः कम्पयन्ती जगन्ति।
अन्योन्येनाग्रपाणिप्रणयिशवयुगं ताटका ताडयन्ती सेयं द्राग्दृष्टदंष्ट्राङ्कुरकषणरणत्कारभीमाऽभ्युपैति।।3।।[21]

यहाँ रक्त से सने मुख वाली ताड़का राक्षसी आलम्बन विभाव है। आस-पास रक्त और शवों को पीटना उद्दीपन विभाव है। कम्पन और नाक सिकौड़ना अनुभाव है। व्याधि इत्यादि व्यभिचारी भाव है। अतः ये सभी भाव मिलकर बीभत्स रस का रसास्वादन करा रहे हैं। तृतीय अंक के श्लोक 6 में भी बीभत्स रस द्रष्टव्य है।

अद्भुत रस-

इसका स्थायी भाव 'विस्मय' है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन, श्रवण आदि से चित्त का जो विकास सा होता है वही विस्मय कहलाता है।[22] बालरामायण के षष्ठ अंक में अद्भुत मृग को देखकर राम, सीता, लक्ष्मण तीनों को ही आश्चर्य होता है। कुतूहल वश लक्ष्मण कहते हंस कि हे आर्ये देखिए यह हरिण पूँछ से लेकर मुख तक मरकत मणि रचित है और निचले भाग में सघन मुक्ताफल के समूहों की कान्ति वाला है। इसके पैर नवीन प्रवाल समूहों से निर्मित और आँखें वैदूर्य मणि से बनी है। दण्डकारण्य की भूमि में यह मृग विस्मयाविष्ट करते हुए आ रहा है।

अपुच्छादाचतुण्डान्मरकतरचितां पृष्ठपीठीं दधानो नीरन्ध्रासक्तमुक्ताफलपटलचयापाण्डुरां क्रोडपालीम्।
पादैर्वालप्रवालच्छदपुटघटितैरच्छवैदूर्यमय्या दृष्ट्याऽयं दण्डकायां भुवि वनहरिणोऽभ्येति विस्मापयन्नः।।61।।[23]

यहाँ विलक्षण मृग आलम्बन विभाव है। लक्ष्मण के द्वारा उक्त वर्णन उद्दीपन विभाव है। रोमाञ्च और नेत्र विस्तार अनुभाव है। वितर्क, हर्ष इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं। ये सभी भाव मिलकर विस्मय नामक स्थायी भाव को पुष्ट कर रहे हैं जिससे अद्भुत रस का आस्वादन हो रहा है।

भाव-

देवादि विषयक रति तथा प्रधानता से व्यञ्जित व्यभिचारी को 'भाव' शब्द से कहा गया है।[24] बालरामायण में अनेक स्थलों पर देवादि रति का आस्वादन होता है। अनेक स्थलों पर व्यभिचारी भाव प्रधान रूप से अभिव्यञ्जित होता है। यत्र-तत्र रसाभास के भी कुछ पद्य लक्षित होते हैं। यथा-

वनगमन के समय लक्ष्मण की मनःस्थिति को बताने के लिए, जब दशरथ ने वामदेव से कहा तो वामदेव ने यथावत् बताया। यहाँ कवि ने लक्ष्मण की मनः स्थिति में पूजनीय स्वजनों के प्रति क्रोध की भावना को प्रकट किया है-

लक्ष्मण कहते हैं कि यदि पिता अनुचित प्रेम कर रहे हैं तो वे पूज्य होकर भी त्याज्य हैं और यदि ऐसा कैकेयी का कुचरित्र है तो वहाँ मेरी गति बन्द है। यदि आर्य भरत सूर्य वंश को कलङ्कित कर रहे हैं तो प्रत्यञ्चा को मुखरित कर रही धनुष मेरे द्वारा उठायी जाएगी।

तातः प्रेम यतः करोत्यनुचितं त्याज्यः स पूज्योऽपि सन् कैकेय्याः कुचरित्रमित्थमथ चेत्तत्राऽस्मि कुण्ठक्रमः।
आर्यश्चेद्भरतो विकर्त्तुनकुले कर्त्तुतुं कलङ्कं स्थितो गुञ्जज्ज्यामुखरं धनुर्ननु मयाप्यद्यैव संभाव्यते।।17।।[25]

उपर्युक्त पद्य में पूजनीय जनों के प्रति लक्ष्मण के मन में क्रोधवश जो अनादर का भाव आया है, उससे रौद्र रस में अनौचित्य की प्रतीति हो रही है। अतः रौद्ररसाभास द्रष्टव्य है।

बालरामायण के सभी अंको का रसात्मक अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कवि ने नाट्य में प्रायः सभी रसों और भावों का कुशल संयोजन किया है। सभी अंको में चाहे वह सीता स्वयंवर हो, चाहे परशुराम वाक् युद्ध, अथवा ताटका का वध हो या राम का वनगमन सभी प्रसंग विभिन्न प्रकार के रसों का आस्वादन करवाते है। नाट्य के अध्ययनानन्तर ही रसास्वादन सहृदय सामाजिकों को आह्लादित कर देता है। मुख्य रूप से नाटक में वीर, अद्भुत, रौद्र, बीभत्स की प्रतीति होती है। रसाभास, भावाभास, गुरुविषयक रतिभाव के उदाहरण भी नाटक में आस्वादनीय हैं।

संदर्भ -

1. *बालरामायण अंक 1/13*
2. *देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः। बालरामायण अंक 1/18*
3. *काव्यमीमांसा, पं. केदारनाथ शर्मा, पृ. 15*
4. *वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः। दशरूपक 1/10*
5. *नहि रसाकृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। ना. शा. पृ. 182*
6. *रस इति कः पदार्थः ? आस्वाद्यत्वात्। ना. शा. 189*
7. *अत्र रसशब्देन रस्यते आस्वाद्यते इति व्युत्पत्त्या भावादिरप्युपसंगृह्यते। का. प्र. बा. बो. पृ. 263*
8. *विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः। ना. शा. पृ. 182*
9. *न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम्। साहित्यदर्पण, शालीग्रामशास्त्री, पृ. 53*
10. *दशधैव रसाश्रयम्। दशरूपक 1.8*
11. *शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः। बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः। नाट्यशास्त्र 6.16*
12. *ध्वन्यालोक, जगन्नाथपाठक, पृ. 362*
13. *कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते । साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.178*
14. *बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 3/74*
15. *बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 7/27*
16. *इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्। साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.177*

17. बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 6/30
18. प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते। साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.177
19. बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 7/31
20. दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा। साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.179
21. बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 3/3
22. विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.179, 180
23. बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 6/61
24. सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः। साहित्यदर्पण, शालिग्राम शास्त्री, 3.260
    उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते।।
25. बालरामायण, गंगासागर राय, चौखाम्बा 6/17

23

'बालरामायणम्' में रसान्विति

तृप्ति दहरी *

आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में रस के स्वरूप का वर्णन किया है। आचार्य भरतमुनि के पश्चात् सभी नाट्यकवियों एवं आचार्यों ने रस को स्वीकार कर अपने ग्रन्थों की रचना की और ग्रन्थ में रस के स्वरूप का अधिकाधिक वर्णन किया है। भास, कालिदास, भवभूति, मुरारि नाट्यकवियों के पश्चात् महाकवि राजशेखर ने भी अपनी नाट्यकृति बालरामायण में रस वर्णन के विषय में पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा का निर्वहन किया। महाकवि राजशेखर का बालरामायण सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है, इसमें 10 अङ्क हैं, जिसमें सीता विवाह से रामराज्याभिषेक तक का वर्णन है। कुछ आचार्यों ने इसे महानाटक भी स्वीकार किया। इस महानाटक बालरामायण की रचना के पश्चात् समकालीन आचार्य शङ्कर वर्मा ने राजशेखर को वाल्मीकि व भवभूति का अवतार कहा। महाकवि राजशेखर ने बालरामायण में रस के माध्यम से श्रोताओं या सहृदय को रसतत्त्व का आनन्द प्राप्त कराते हैं। प्रस्तुत लेख में महाकवि राजशेखरकृत बालरामायण में रसतत्त्व के बारे में विस्तृत चर्चा की गयी है।

स्वादु पाकेऽप्यना स्वाद्यं भोज्यं निर्लवणं यथा। तथैव नीरसं काव्यं स्यान्नो रसिक तुष्टये।। (रसप्रदीप, पृष्ठ-17)

नीरस काव्य उसी भांति रसिकों के लिए तुष्टिप्रद नहीं होता जैसे सुस्वादुपा कभी नमक से रहित भोजन। इसलिए रीति, गुण तथा अलंकार आदि सभी साधन रस के अनुचर बताए गए। रस के विषय में आचार्य भरतमुनि ने कहा है-

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।।

अर्थात् काव्य में प्रयुक्त अथवा नाट्यकाव्य में अभिनय के द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा श्रोताओं अथवा दर्शकों के हृदय में परिवर्तन होकर रति आदि स्थायी भाव आस्वाद्य होता है, तो वही रस कहलाता है।

वस्तु, नेता एवं रस तीनों ही रुपक के भेदक तत्त्व हैं। यद्यपि रुपक में इनका स्थान समान है तथापि रूपक का प्राण तत्त्व होने के कारण वस्तु एवं नेता की अपेक्षा रस का अधिक महत्त्व है। वस्तुतः रसोद्रेक करना ही नाट्य का लक्ष्य है। आचार्य भरतमुनि से लेकर पश्चात्वर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायकाचार्या, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

भरतमुनि के अनुसार - **नहि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते।**

आचार्य क्षेमेन्द्र-रस सिद्धि की स्थिरता को ही काव्य का प्राण तत्त्व बताते हैं।

आचार्य आनन्दवर्धन-रस को ही काव्य में सर्वाधिक प्रामुख्य प्रदान करते हैं-

मुख्याव्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः। तेषां निबन्धने भाव्यस्तैः सदैव प्रमादिभिः।।

मीमांसा-नीरसस्तु प्रबन्धो यः सोऽपशब्दो महान्कवेः। स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षणः।।

राजशेखर ने भी काव्य मीमांसा में रस को काव्य की आत्मा कहा है। अतः स्पष्ट है कि रस का स्थान रुपक में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नाट्य काव्य परम्परा में आचार्य भरतमुनि द्वारा रचित ग्रन्थ नाट्यशास्त्र 36 अध्याय का बृहत्तम ग्रन्थ है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यकाव्य का महत्व बताते हुए कहा है कि विश्व का कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है जो नाट्यकाव्य में समाहित न हो -

न तज्ज्ञानं नतच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला। नासौ योगो न तत्कर्मनाट्येऽस्मिन्यन्नदृश्यते।।[1]

इस महानाटक बालरामायण की रचना के पश्चात् समकालीन आचार्य शङ्कर वर्मा ने राजशेखर को वाल्मीकि व भवभूति का अवतार कहा -

बभूव वाल्मीकभवः कविः पुराततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्। स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेवायासवर्तते संप्रति राजशेखरः।।[2]

बालरामायण में वीर रस को प्रधान रस के रूप में उल्लेख किया गया है। वीर रस दर्शकों एवं श्रोताओं को रसानन्द के रूप में प्राप्त होता है।

आस्कन्धावधिकण्ठकाण्डविपिने द्राक्चन्द्रहासासिना छेत्तुं प्रक्रमिते मयैवटसित्रुत्र्यच्छिराः सन्ततौ।

प्रस्मेरंग लिताश्रुगद्गदपदं भूग्नभुवायद्यभू र्द्वतेष्वेकमपिस्वयंसभगवांस्तन्मे प्रमाणं शिवः।।[3]

लङ्काधिपति रावण अपने चन्द्रहास तलवार की शौर्यता को प्रकट करता है और बताता है कि मेरी चन्द्रहास के सामने भू, भुवः, स्वः तीनों लोक मेरे सामने नतमस्तक हुए हैं, इसके साक्षी भगवान शिव हैं, क्योंकि परोक्ष की वस्तु में वर्तमान प्रत्यय से ही कार्य होते हैं।

बालरामायण के चतुर्थ अंक में भार्गव परशुराम के श्रेष्ठ पराक्रम का परम उत्कर्ष दिखाया गया है। भगवान जामदग्न्य के सामने सभी राजाओं की दशा वर्णन प्राप्त होती है -

याचन्ते गृहिणीमुखेन पतयः स्वप्राणभिक्षामिमे बन्धन्तश्चरणाग्रयोर्निपतिताः कण्ठेकुठारान्परे।

लीलादर्पणपाणयो विरचितस्त्रीवेशमेतेनताः किञ्चान्ये विगलन्ति चीवरभृतोद्वारवेदिकाशायिनः।।[4]

इस श्लोक में भगवान परशुराम की श्रेष्ठ वीरता पराक्रम का ज्ञान प्राप्त होता है, सहृदयी इस पराक्रम की रसानन्दानुभूति करते हैं।

बालरामायण में अद्भुत रस का भी वर्णन प्राप्त होता है। अलौकिक पदार्थों के देखने, सुनने तथा ईप्सित वस्तु के सहसा मिल जाने से अद्भुत रस उत्पन्न होता है-

यावद्वरं नवृणुते किल जामदग्न्यस्तुष्टात्पितुः स्वजननीप्रतिजीविताय।

तावच्छिरः पृथगपिस्थितमस्यमातुर्वेगादुपेत्यविदधात्यकबन्धभावम्।।[5]

इस श्लोक में अद्भुत आनन्द रस की प्राप्ति होती है। मातलि कहता है- आश्चर्य है, आश्चर्य है, आश्चर्य है; जैसे ही भगवान परशुराम वर माँगते हैं वैसे ही उनकी माता का सिर पुनः धड़ (शरीर) से शीघ्र जुड जाता है।

लक्ष्मणः-(आश्चर्य) आर्य! ...

क्षिप्तो गिरिकच्छपपृष्ठपीठात् संघट्टवेगोच्छलितोऽनुपाती
ग्रासीकृतोऽयंतिमिना किमन्यत् स चापि लोलेन तिमिङ्गिलेन।।

राम-वत्सलक्ष्मण!

क्षिप्तोगिरिर्जलधिबन्धविधौनलेन यात्येकतः शकलशावविवर्तनाभिः
अप्यन्यतः कमठडिम्भनि शुम्भनेन सेतुःकथञ्चिदितिसर्पतिमध्यमब्धेः।।[6]

लक्ष्मण (आश्चर्यसे) कहते हैं—आर्य (राम), जलचर पत्थर प्रत्यक्ष हो रहे हैं। उत्तर में भगवान रामचन्द्र कह रहे हैं कि वत्स लक्ष्मण, यह तो अत्यन्त कम है। यहाँ भी अद्भुत रस के रूप में आनन्द रस की प्राप्ति हो रही है।

बालरामायण महानाटक में श्रृङ्गार रस का भी वर्णन हुआ है। अतः सहृदयी को श्रृङ्गार रस के रूप में रसानन्दानुभूति होती है। बालरामायण के प्रथम अंक में रावण ने माता जानकी की सुन्दरता तीन लोक से न्यारी तथा काम की सञ्जीवनी के रूप में बताया है। अतः यहाँ पर माता सीता की सुन्दरता का मार्मिक वर्णन मिलता है-

इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव प्रम्लानारुणिमेवविद्रुमलता श्यामेवहेद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधू कण्ठेष्विव प्रस्तुतं सीतायाः पुरतश्चहन्त शिखिनां बर्हाः सगर्हा इव।।[7]

इस श्लोक में दशानन रावण के मन में आश्चर्य व आनन्द के भाव व्यक्त होते हैं। रावण कहता है कि कामदेव का व्यापार एक ही प्रकार का नहीं है, वह सीता की सुन्दरता का गुणगान करता है।

न्यञ्चत्कुञ्चितमुन्मुखं हसितवत् साकूतमाकेकरं व्यावृत्तप्रसरत्प्रसादिमुकुलं सत् प्रेमकम्पं स्थिरम्।
उद्भूतं भ्रान्तमपाङ्गवृत्तिविकचं मज्जत्तरङ्गाकुलं चक्षुः साधुचवर्ततेरसवशादेकेकमन्यक्रियम।।[8]

बालरामायण नाटक में करुण रस का भी वर्णन मिलता है। आचार्य राजशेखर ने करुण रस के माध्यम से भी रसिकों को रसानन्द की प्राप्ति कराते हैं। बालरामायण के षष्ठ अंक में राम का प्रवास सुनकर दशरथ आदि का दुःख करना भी करुण व्यञ्जक है।

दशरथ-हाहाधिक्कष्टम्।

नरेन्द्रोवृद्धः स्त्रीवश इति मयि न्यस्तमयशो निषण्णादौरात्म्येष्विति मलिनिता केकयसुता।
मतं तस्याप्यस्मिन्निति च भरते लक्ष्म लिखितं वाकोऽस्मिन्रघुकुलकलकेकविरभूत्।।[9]

इस श्लोक में राजा दशरथ स्वयं कैकेयी और कुमार भरत के विषय में कलङ्क का वर्णन करते हैं, मालूम नहीं होता है कि रघुकुल के इस कलङ्क का कर्ता कौन बना।

बालरामायण में भयानक रस का भी उद्धरण मिलता है, जिसमें श्रोतागण भयानक रस के रूप में रसानन्द का रसास्वादन करते हैं। बालरामायण के प्रथम अंक में रावण के मिथिला आने पर सीता के भयभीत होने का वर्णन दृष्टिगत है।

बालरामायण के तृतीय अंक के तीसरे श्लोक में आश्चर्य स्वरूप वाली राक्षसी ताड़का का वर्णन किया गया है-

रक्ताभ्यक्तोरुसृक्कागुरुकवलवलज्जाङ्गलव्यग्रतालुः फेत्कारैः फुल्लगल्लव्यतिकर गुरुभिः कम्पयन्ती जगन्ति।
अन्योन्येनाग्रपाणिप्रणयिशवयुगं ताडका ताड यन्ती सेयं द्राग्दृष्टदंष्ट्रा कुरकषणरणत्कारभीमाभ्युपैति।।[10]

सुवेगा बताती है कि यह दुष्टा ताड़का भीषणों की भी भीषण है, अतः कुशिकनन्दन की आज्ञा से राघव रामचन्द्र इस का संहार करो।

बालरामायण में हास्य रस का अधिकाधिक वर्णन मिलता है। राजशेखर ने हास्य रस के माध्यम से सुधीजनों को रसास्वादन प्राप्त कराते हैं। मिथिलापुरी में क्रोधित जनक को देखकर दशानन रावण हँसता है और परिहास कर दूसरे लोगों को भी हँसाता है-

हस्तालम्बितमक्षसूत्रवलयं कर्णावतंसीकृतं त्रस्तं भूलतयुग मुच्चमय्यरचितं यज्ञोपवीतेन च।
संनद्धा जघने च वल्कल पटीपाणिश्च धत्ते धनुः दृष्टं भोजनकस्य योगिन इदं दान्तं विरक्तं मनः।।[11]

महाकवि राजशेखर ने अपने नाट्यग्रन्थ बालरामायण में रसों का बृहद् वर्णन किया है। उन्होंने वीर रस को प्रधान रस के रूप में उल्लेख किया है, साथ-साथ श्रृङ्गार आदि अन्य रसों का भी सुन्दर मार्मिक वर्णन किया है, जिससे दर्शकों एवं श्रोताओं को रसानन्द की अनुभूति होती है। इस प्रकार राजशेखरकृत बालरामायण में अनेक रूपों में रस तत्त्वों की अनुभूति होती है, जिससे इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की उपयोगिता सिद्ध होती है।

सन्दर्भ -

1. *द्विवेदी, पी. (1995). नाट्यशास्त्र 1/116, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण।*
2. *बालरामायण 1/16, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी – डॉ. गङ्गासागर राय।*
3. *बालरामायण 2/31, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
4. *बालरामायण 4/40, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
5. *बालरामायण 4/32, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
6. *बालरामायण 7/52/54, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
7. *बालरामायण 1/42, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
8. *बालरामायण 2/19, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
9. *बालरामायण 6/15, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
10. *बालरामायण 3/03, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागर राय।*
11. *बालरामायण 1/53, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण-2011 – डॉ. गङ्गासागरराय।*

24

'बालरामायणम्' में अलंकार-वैशिष्ट्य

*आशु कुमार ठाकुर**

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जिसमें मानव जीवन के विविध आयामों का सूक्ष्मतम और सरस चित्रण मिलता है। यह साहित्य न केवल धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, अपितु कला, काव्य, रस, अलंकार और व्याकरण के क्षेत्र में भी अपनी गौरवशाली परंपरा रखता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकारों का विशेष स्थान रहा है। अलंकार न केवल काव्य को सौंदर्य प्रदान करते हैं, अपितु उसमें भावाभिव्यक्ति को भी प्रभावशाली और सजीव बनाते हैं। अलंकारों के माध्यम से कवि अपने भावों, विचारों और कल्पनाओं को चमत्कृत शैली में प्रस्तुत करता है। कवि को काव्य-रचना में केवल शब्दार्थ का प्रयोग अभीष्ट नही है, अपितु वह काव्य में सौन्दर्याधायक की कामना से शब्दार्थ को भी अलङ्कृत करता है।

काव्यालङ्कार सूत्र के रचयिता आचार्य वामन ने अलङ्कार शब्द का सौन्दर्य परक अर्थ प्रतिपादित करते हुए परिभाषा दिया है- **'सौन्दर्यम् अलङ्कारः**[1] ।'

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने काव्य में अलङ्कार के स्वरूप को स्थापित करते हुए कहा है कि बिना किसी विशेष प्रयास के रस से आक्षिप्त अलङ्कार का प्रयोग ही ध्वनि काव्य में मान्य है-

'रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत्। अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः[2]**।।'**

अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति अलम् + कृ + क्तिन् = अलङ्कृति तथा अलम् + कृ घञ् अलङ्कार अर्थात् भूषण या शोभा का भाव, जिससे सुशोभित हुआ जाता है उसे अलङ्कार कहते है।

संस्कृत नाटकों में भास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त जैसे नाट्यकारों ने अपने अद्वितीय लेखन से इस परंपरा को समृद्ध किया। इन रचनाकारों की नाट्यकृतियाँ जहाँ भावपूर्ण कथानकों से परिपूर्ण हैं, वहीं संवेदना, रस, भाव, भाषा और अलंकारके माध्यम से उन्होंने काव्य-तत्त्वों का भी समावेश किया। इसी परंपरा में आचार्य राजशेखर का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य राजशेखर 9वीं-10वीं शताब्दी के मध्य हुए एक महान् संस्कृत कवि, नाटककार एवं काव्यशास्त्रज्ञ थे। आचार्य राजशेखर ने पाँच ग्रन्थों की रचना की है- बालरामायण (नाटक), बालभारत या प्रचण्ड पाण्डव (नाटक), विद्धशालभंजिका (नाटिका), कर्पूरमञ्जरी (सट्टक) एवं काव्यमीमांसा (काव्यशास्त्र)। आचार्य राजशेखर विरचित 'बालरामायण' एक दशांक संस्कृत नाटक है, जिसमें रामकथा को नाटकीय विधान के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि रामायण को उपजीव्य बनाकर

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

शोध छात्र- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आचार्य राजशेखर ने इस नाटक की रचना की है। यद्यपि इस नाटक का आधार ग्रन्थ तो रामायण ही है तथापि आचार्य ने कतिपय मौलिक उद्भावनाओं की भी सृष्टि की है। यह नाटक न केवल कथावस्तु की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि उसकी नाट्य-रचना, संवाद-शैली और अलंकारिकता के लिए भी विशिष्ट माना जाता है। नाटक की प्रभावशीलता, उसमें निहित संवादों, पात्रों, भावों और घटनाओं की सजीव प्रस्तुति पर निर्भर करती है। आचार्य राजशेखर ने इस प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए अलंकारों का अत्यंत सटीक और सर्जनात्मक प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए रूपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा जैसे अर्थालंकार पात्रों की भावना को सजीव करने में सहायता करते हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष जैसे शब्दालंकार संवादों को लयबद्ध, गेय एवं प्रभावशाली बनाते हैं। ये अलंकार नाट्य के संवादों को केवल वार्तालाप के वाक्य नहीं रहने देते, बल्कि उनमें कलात्मकता और सौंदर्य का संचार करते हैं। आचार्य राजशेखर एक संवेदनशील नाट्यकार थे। उन्होंने रामकथा को केवल धार्मिक या पौराणिक कथा के रूप में नहीं, बल्कि मानव-भावनाओं के रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है। करुण, श्रंगार, वीर, शांति आदि रसों की अभिव्यक्ति हेतु उन्होंने उपयुक्त अलंकारों का चयन किया है जैसे कि- सीता-राम का मिलन या वियोग जैसे प्रसंगों में उत्प्रेक्षा, उपमा, अतिशयोक्ति जैसे अलंकार करुण एवं श्रृंगार रस को तीव्र करते हैं। राम-रावण युद्ध के प्रसंगों में रूपक, दृष्टान्त, विरोधाभास आदि वीर रस की शोभाको बढ़ाते हैं। राम का वनगमन या लक्ष्मण का क्रोध आदि में भी भाव के अनुरूप अलंकारों का उचित प्रयोग प्राप्त होता है। इस प्रकार, आचार्य राजशेखर ने अलंकार केवल अलंकरण के लिए नहीं, बल्कि भावों की सघनता और संप्रेषण की तीव्रता के लिए प्रयुक्त किये हैं।

आचार्य राजशेखर ने अपने पात्रों की भाषा-शैली को उनके चरित्र के अनुकूल अलंकारों से अलंकृत किया है जैसे- राम के संवाद संयमित, मधुर और अर्थ गंभीर होते हैं, जिनमें उपमा, रूपक और अनुप्रास की गरिमा होती है। लक्ष्मण के संवादों में अतिशयोक्ति, विरोधाभास और उत्प्रेक्षा जैसे तीव्र प्रभाव वाले अलंकार मिलते हैं, जो उनके उग्र स्वभाव को दर्शाते हैं। रावण के संवादों में श्लेष और यमक जैसे चतुरतापूर्ण और वाक्पटुता दर्शाने वाले अलंकारों का प्रयोग है।

इस प्रकार, अलंकार पात्रों की वाणी के माध्यम से उनके मनोभावों, स्वभाव और वैचारिक स्तर को स्पष्ट करते हैं इस तथ्य को आचार्य ने अत्यंत सहज रूप से चित्रित किया है। 'बालरामायण' में अलंकारों की भूमिका बहुआयामी है। वे केवल शब्दों की सजावट नहीं, बल्कि भावनाओं के संवाहक, पात्रों के प्रवक्ता और दृश्य प्रभाव के निर्माता हैं। आचार्य राजशेखर ने अलंकारों के माध्यम से अपने इस नाटक को एक शास्त्रीय एवं मंचीय उत्कृष्टता प्रदान की है।

बालरामायणम् में अलंकारों का अनुप्रयोग-

आचार्य राजशेखर संस्कृत साहित्य के उन महत्त्वपूर्ण आचार्यों में अग्रगण्य माने जाते हैं जिन्होंने न केवल काव्य के सैद्धांतिक पक्ष को समृद्ध किया, बल्कि उसके प्रयोगात्मक रूप को भी उत्कृष्टता तक पहुँचाया है। उनका नाटक 'बालरामायण' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। यद्यपि यह कृति नाटक के रूप में लिखी गई है, फिर भी इसमें काव्यात्मक सौंदर्य की कोई कमी नहीं है, और इसका एक प्रमुख कारण है, इसमें प्रयुक्त अलंकारों का प्रभावशाली एवं लक्षित अनुप्रयोग। 'बालरामायण' में अलंकारों का प्रयोग केवल शोभावर्धन के लिए नहीं किया गया है, बल्कि उनका प्रयोग नाटक की भावाभिव्यक्ति, पात्र-निर्माण, रस-निर्माण और नाटकीय प्रभाव को सशक्त करने के उद्देश्य से हुआ है। आचार्य राजशेखर ने नाटक की प्रकृति के अनुसार अलंकारों का चयन किया

है। अलंकारों का यह उचित चयन न केवल उनके काव्यबोध को दर्शाता है, बल्कि उनकी रचनात्मक दृष्टि और नाट्य- चेतना को भी प्रकट करता है। बालरामायण में प्रयुक्त अलंकारों का विवरण इस प्रकार है-

शब्दालंकार- आचार्य राजशेखर ने सम्पूर्ण रूपक में अनुप्रास, यमक तथा श्लेष का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

- **अनुप्रास -** बालरामायण में अनुप्रास की छटा सर्वाधिक है। इस अलंकार के बिना कोई काव्य कठिनता से प्राप्य है। अनुप्रास के भी कई भेदों में वृत्यानुप्रास का प्रमुख स्थान है। रसानुकूलता इस अलंकार की विशेषता है। ध्वनिवादी आचार्यों की भाँति राजशेखर ने भी वैदर्भी[3], गौडी[4] तथा पाञ्चाली[5] तीन वृत्तियाँ स्वीकृत की है। ग्रंथ में यह दर्शनीय है।

- **यमक अलंकार -** बालरामायण में यमक का सरल प्रयोग हुआ है। द्रव्यों या पुरुषों के नामोल्लेख प्रसंग में यमक अलंकार अधिक मिलता है।[6] 'लङ्कालेख्यक' के कतिपय श्लोकों में परम्परागत क्लिष्ट यमक भी दर्शनीय हैं [7]। यमक के इन उद्धरणों को 'आद्यन्तक यमक' माना जाता है जो कि आचार्य रूद्रट का अलंकार भेद है।

- **श्लेष अलंकार -** राजशेखर के इस ग्रन्थ में श्लेष के माध्यम से कहीं उपमा ध्वनि तथा कहीं श्लेषोत्थ उपमा आदि के निदर्शन मिलते हैं। यथा-गर्भाक की प्रस्तावना में ही सूत्रधार का कथन है-

'हे विद्वज्जनों। स्वस्थ्य होकर (या निर्दोष) सुन्दर बर्षों के विन्यास से स्पष्ट, प्राकृत संस्कृत की छाया से युक्त एवं विचित्र छन्दों वाला काव्य सुनें[8]।'

इस अर्थ की प्रतीति का अनुगमन करता हुआ एक अप्राकरणिक अर्थ भी उद्भूत होता है ''हे विद्वज्जनो। स्वर्ण सूत्रों से भास्वर, कान्तिमय और शोभायुक्त वर्तुल मोती के आभूषण कर्ण में धारण करें।'' श्लोक के इस वाक्य में अनर्गल अर्थ के अभिधान का दोष न लगे इसलिए प्राकरणिक एवं अप्राकरणिक अर्थों के मध्य उपमालंकार व्यंग्य रूप में होगा। इसीलिए इसे शब्द शक्ति मूलालंकार ध्वनि कहा गया है।

एक और उद्धरण श्लोक में शब्द शक्ति मूलालंकार ध्वनि है। यहाँ नेपथ्य से गाई जाने वाली इस ध्रुवा में 'रामादि' का अर्थ प्राकरणिक है[9]। कतिपय अप्पयदीक्षित आदि अलंकारिकों ने ऐसे स्थलों को -गूढ़ श्लेष' के नाम से पुकारा है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त भी इस नाटक में शब्द श्लेष तथा अर्थ श्लेष का बहुधा प्रयोग किया गया है, जिससे इस ग्रन्थ में चमत्कृत सौन्दर्य प्रकट हुआ है ।

अर्थालंकार- जो अलंकार शब्द परिवृत्तिसह होते हैं वे अर्थालंकारों की कोटि में आते हैं। ये रस निर्भरता में शब्दालंकारों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। बालरामायण में अर्थालंकारों का उत्कृष्ट सन्निवेश दृटिगोचर होता है । कुछ स्थल दर्शनीय है-

उपमालंकार - उपमान तथा उपमेय विविध होने पर भी जहाँउनकेसाधारण धर्म समान होते हैं वहाँ यह अलंकार होता है। बालारामायण में इस अलंकार की योजना अत्यन्त हृदयाह्लादक है। इस अलंकार के विभिन्न भेदों यथा पूर्णोपमा[10], लुप्तोपमा[11], त्रिलुप्तोपमा[12] तथा समासगा उपमा आदि का निरूपण प्राप्त होता है। इन उदाहरणों के माध्यम से आचार्य ने नायिका का वर्णन, प्रभातकाल का मनोहारी चित्रण तथा अन्य विषयों को बहुत ही रोचकपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है जिसके माध्यम से यह नाटक दर्शकों के लिये अनुपम रसानुभूति का कारण बनता है। ग्रन्थ के कई स्थलों पर नायिकाओं के अंगों को उपमान मानकर उपमायें प्रस्तुत की गई हैं जैसे कि- 'अशोक के वृक्ष वाहूलीक देश की नारियों के दशनक्षत के द्वारा उत्पन्न अरूणिमा के तुल्य लाल दलों वाले पत्रों से अर्चित है[13]। इसी प्रकार उपमा के एक और उद्धरणमें चन्द्रमा के विषय में कहा गया है कि 'तत्काल मार्जित दक्षिणात्य युवती के दन्ततुल्य धवल कान्ति वाला[14]

उत्प्रेक्षालंकार - उपमेय की उपमान के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा कहलाती है अथवा प्रकृत की सम के साथ सम्भावना उत्प्रेक्षा है। मन्ये, इव तथा शङ्के प्रभृति वाचक शब्द होते हैं। कविगणों को यह सर्वाधिक प्रिय अलंकार है। बालरामायण में इसके कतिपय प्रयोग द्रष्टव्य हैं। जैसे-सीता के प्रति रावण की यह उक्ति कि-'इस विशालाक्षी सीता को संसार के सार पदार्थों से बनाकर ब्रह्मा ने हृदय में रहने वाले कामदेव को इसका रक्षक बना दिया जिससे वह मुझपर तीव्र बाणों से चारों ओर प्रहार कर रहा है[15]।' साहित्य दर्पणकार के अनुसार इस स्थल पर द्रव्योत्प्रेक्षा एवं हेतूत्प्रेक्षा दोनों ही हो सकती है।

द्रव्योत्प्रेक्षा के उदाहरण में आचार्य राजशेखर ने सीता के रूप सौन्दर्य को लक्ष्य कर उत्प्रेक्षा की है कि-'उस मृगनयनी की विशाल आँखे बिना जल के उत्पन्न कमल हैं, मुख का मित्र चन्द्रमा हैं, भूलेखा कामदेव का तोरण है, मुस्कुराहट लीला लता का पल्लव है, कोकिला की वाणी वागियों का जूठन है-अहा ! ब्रह्मा का विज्ञानमय यह चित्र बहुत काल के पश्चात् परिणत हुआ है[16]।'

रूपकालंकार- उपमान तथा उपमेय का अभेद रूपक है। आचार्य राजशेखर ने इस अलंकार का रमणीय प्रयोग किया है। ग्रन्थारम्भ की प्रस्तावना में ही रूपक का प्रयोग हुआ है-'बाहुरूपी खम्भे में लक्ष्मीरूपी हस्ती को बाँधने वाले[17]' इस छोटे पद में रूपक का अनुपम प्रयोग दर्शनीय है।

रूपक के उदाहरणों में 'निरङ्गमाला रूपक' का स्थल द्रष्टव्य है जहाँ नारद मुनि राम और रावण के युद्ध के विषय में कहते हैं- 'यह विचित्र नेत्र रसायन है। देवत्व सिद्धि का महामंगल है। खुला हुआ मोक्ष द्वार है तथा मेरे मन की प्रसन्नता का औषध है। नवीन पतियों की प्राप्ति की उत्सुकता वाली स्वर्ग रमणियों के साथ सभी देवगण राम रावण युद्ध का अवलोकन करें [18]।'

इसी प्रकार एक स्थल पर प्रातःकाल की शोभा के विषय में 'अश्लिष्ट शब्द निबन्धन माला परम्परित रूपक[19]' वर्णित किया गया है। तृतीय अंक में भी है। विश्वामित्र द्वारा राम का वर्णन किये जाने में भी अश्लिष्ट शब्द निबन्धनमाला परम्परित रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।

निदर्शनालंकार - जिस स्थल पर वस्तु का असम्भव या अनुप पद्यमान सम्बन्ध उपमा का परिकल्पक होता है वह निदर्शना नामक अलंकार कहलाता है। बालरामायण के तृतीय अंक में 'माला निदर्शना' को व्यक्त करने वाला श्लोक प्राप्त होता है जिसका भाव यह है कि-'जो हाथ फैलाकर पुष्प के सौरभ को माप सके, दम्पतियों के सुरत सुख की गणना कर सके, चन्द्र की ज्योत्सना को चुल्लू से पान कर सके वही इसकी अद्भु त कीर्तियों को गिन सकता है [20]।'

तृतीय अंक में ही लाटदेशी वेश्याओं के नेत्रों को भृङ्गों द्वारा अग्रभाग में पकड़कर खींचे हुए केवड़े के दल से स्पर्धा करने वाली कहा गया है। इस स्थल पर नेत्रों का केवड़े के पत्र से स्पर्धा करने के असम्बद्ध अर्थ में स–शत्व का सम्बन्ध उपमा का परिकल्पक है।

- **अप्रस्तुतप्रशंसालंकार -** प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने वाली जो अप्रस्तुत की प्रशंसा का वर्णन है वह अप्रस्तुत प्रशंसालंकार है। बालरामायण के प्रथम अंक में सीता को देखकर रावण कहता है-'सीता के (मुख) के समक्ष चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो अञ्जन से लिप्त हैं, मृगियों की दृष्टि (नेत्रों के आगे) जैसे जड़ हो गयी हो। विद्रुम (मूंगे) की रक्तिमा (अधरों की लालिमा के आगे) मानो मुरझा गई हो, स्वर्ण की द्युति (अंग शोभा के समक्ष) मानो काली हो गई हो, कोकिल के कण्ठ की मधुरता (मीठी बोली के समक्ष) ने मानो कर्कशता का रूप ले लिया है और हाय। मयूरों के पंख (केशपाश के समक्ष) मानो कुत्सित से हो गये हैं [21]।'

इस स्थल पर चन्द्रमा आदि में कालिख की पुताई आदि (अप्रस्तुत रूप) कार्यों की जो सम्भावना की गई है उसके द्वारा उनके कारणभूत सीता के मुखादि के सौन्दर्य विशेष जो कि प्रस्तुत हैं, स्पष्टतया प्रतीत हो रहे हैं। मम्मट में जिन पाँच अप्रस्तुत प्रशंसा के भेदों का वर्णन किया है उनमें यह 'कारण' रूप दूसरे भेद का उदाहरण है।

ससन्देह अलंकार - उपमेय मे उपमान से संशय, सन्देह नामक अलंकार होता है। भेदोक्ति तथा भेदानुक्ति से दो प्रकार होता है। बालरामायण के सप्तम अंक में जब समुद्र पर राम ने अग्निबाण फेंके तब प्रतीहार कहता है- 'क्या त्रिनयन महादेव के नेत्र से यह तीव्र लपटोंवाला प्रलयकालीन पावक प्रज्ज्वलित हो उठा है अथवा समुद्र का जल फोड़कर बड़वानल चातुर्दिक ऊपर प्रस्तारित हो गया है अथवा कालाग्नि रूद्र पाताल के तल से लेकर सम्पूर्ण वसुन्धरा को नष्ट किये दे रहा है? हाँ समझ लिया समुद्र में राम के जलते हुए बाण गिर रहे हैं [22]।'

इस स्थल पर निश्चयान्त ससन्देहऽलंकार है।

इसी प्रकार षष्ठ अंक में दूर से आते हुए मायामृग मारीच को देखकर तपस्वियों में कोलाहल उठा कि- 'कोई प्राणी ऐसा आ गया है जिसके सम्बन्ध में तपस्वियों की स्त्रियों में यह बात चलती है कि क्या यह सम्पूर्ण रूप में केलि के निमित्त घूमने वाला रत्नगिरि है अथवा इन्द्रधनुष ही शरीर धारण कर चल रहा है या भूतधात्री पृथिवी का विचित्र प्रवृत्तबल है [23]।'

प्रस्तुत स्थल पर उपमेय तथा उपमान में वैधर्म्य न कहे जाने से भेदानुक्ति ससन्देहालंकार है। आरम्भ, मध्य एवं अन्त में भी वाक्य के संशय में ही समाप्ति के कारण इसे शुद्ध ससन्देहालंकार भी कहा जायेगा।

व्यतिरेक अलंकार - उपमान से अन्य अर्थात् उपमेय का जो आधिक्य का वर्णन है वह ही व्यतिरेक अलंकार है। बालरामायण के पञ्चम अंक में उन्मत्त रावण जानकी के सौन्दर्य वर्णन के विषय में - 'सारंग को दृष्टि में, कोकिल को मधुर भाषण में, प्रफुल्ल कमल को सुगन्ध में तथा ऐरावत को विभ्रमपूर्वक गमन में सीता का स्थायी शिष्य कहता है [24]।'

इस स्थल पर विविध उपमानों की अपकृष्टता वर्णित होने से 'अनुक्तहेतुक व्यतिरेक' प्रतीत होता है। इसी प्रकार व्यतिरेक अलंकार के अन्य उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

अर्थान्तरन्यास अलंकार - सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा जो समर्थन किया जाता है वह अर्थान्तरन्यास अलंकार साधर्म्य तथा वैधर्म्य भेद से दो प्रकार का होता है। बालरामायण में इस अलंकार के सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन रूप का उदाहरण में मातलि का कथन है कि - 'शंकर सम्पूर्ण कर्म का समान रूपेण उपदेश देते हैं और ये भी समान रूप से अभ्यास करते हैं। फिर भी ये परशुराम अच्छी प्रकार उत्कृष्ट हो रहे हैं- द्रव्य ही क्रियाओं से अलंकृत होता है [25]।'

इस स्थल पर साधर्म्य की दृष्टि से सामान्य का विशेष के द्वारा समर्थन किया गया है।

इसी प्रकार विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन में यह उदाहरण द्रष्टव्य है - 'लोकोत्तर चरित ही प्रतिष्ठा देता है। पुरूषों का कुल उन्नति कानिमित्त नहीं। वातापि को तपाने वाले अगत्स्य मुनि का जन्म कलश से हुआ है किन्तु उनकी लीला है अगाध समुद्र को पी जाना [26]।'

इन अलंकारों के अतिरिक्त बालरामायण में विविध अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है जैसे- अतिशयोक्ति अलंकार, तुल्ययोगिता अलंकार, सहोक्ति अलंकार, स्वाभावोक्ति अलंकार, विनोक्ति अलंकार,

काव्यलिङ्ग अलंकार, उदात्त अलंकार, समुच्चय अलंकार, परिकर अलंकार, व्याजोक्ति अलंकार, सम तथा विषम अलंकार आदि। इन अलंकारों के समुचित प्रयोग के माध्यम से आचार्य राजशेखर ने 'बालरामायण' को एक उत्कृष्ट नाटक के रूप में संस्कृत नाट्य जगत्में प्रतिष्ठित किया है।

निष्कर्ष - उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि संस्कृत नाट्य साहित्य में आचार्य राजशेखर की कृति 'बालरामायण' एक अद्वितीय स्थान रखती है। यह दशांक नाटक न केवल रामकथा का नाट्य रूप प्रस्तुत करता है, बल्किभाषा, शैली, भाव और अलंकारिक सौंदर्य के स्तर पर भी अत्यंत समृद्ध एवं परिपक्व कृति है। इस शोध-पत्र के द्वारा यह ज्ञान होता है कि 'बालरामायण' प्रयुक्त अलंकार वैचित्र्य के माध्यम से आचार्य राजशेखर ने अपनी नाट्यकला को काव्य-संवेदना के साथ जोड़ा है। आचार्य राजशेखर ने बालरामायण में अलंकारों का प्रयोग केवल भाषिक सौंदर्य बढ़ाने के लिए नहीं किया, बल्कि उनके माध्यम से उन्होंने नाटक की नाटकीयता, भाव-संप्रेषण, पात्र-निर्माण और दृश्यात्मक प्रभाव को भी गहराई प्रदान की है। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों का संतुलित एवं कलात्मक प्रयोग इस कृति की विशेषता है।

नाटक के विभिन्न अंकों का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट होता है कि- रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा जैसे अर्थालंकार न केवल सौंदर्य वृद्धि करते हैं, बल्कि पात्रों की मनःस्थिति को भी अभिव्यक्त करते हैं। वहीं दूसरी ओर अनुप्रास, यमक, श्लेष जैसे शब्दालंकार संवादों में लयात्मकता, वक्रता और वाक्पटुता को उत्पन्न करते हुये दर्शकों पर अनुपम प्रभाव डालते हैं। श्लेष अलंकार का प्रयोग विशेषतः रावण जैसे पात्रों की वाक्पटुता और द्रव्यर्थता को व्यक्त करने में किया गया है। राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान, रावण जैसे प्रमुख पात्रों की भाषा शैली में प्रयुक्त अलंकार उनके चरित्र, मनोभाव और वैचारिक स्तर को उभारने में सक्षम हैं। इस नाटक के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य राजशेखर ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यमीमांसा में जिन अलंकारों को काव्य के लिये आवश्यक तत्त्व बताया है, उन्हें बालरामायण में व्यवहारिक रूप में प्रयुक्त करके दिखाया है। इस प्रकार, वे केवल एक सैद्धांतिक काव्यशास्त्रज्ञ नहीं, बल्कि प्रयोगशील नाटककार भी थे। नाट्यशास्त्र के अनुरूप, उन्होंने रस, भाव और अभिनय योग्यता के अनुसार अलंकारों का चयन किया है। कहीं भी अलंकारों का अतिरेक या कृत्रिमता नहीं मिलती, जिससे उनकी कलात्मक संवेदना और संतुलित दृष्टि का परिचय मिलता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि 'बालरामायण' में प्रयुक्त अलंकार न केवल काव्य सौंदर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, बल्कि वे इस नाटक को एक समग्र नाट्य-काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। आचार्य राजशेखर की यह कृतिनाट्य एवं काव्यशास्त्र की समन्वित परंपरा का उत्कृष्ट उदाहरण है, और अलंकारों की दृष्टि से इसका अध्ययन संस्कृत नाट्य साहित्य के सौंदर्यबोध को और भी गहराई से समझने में सहायक सिद्ध होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

काणे, डॉ.पी. वी. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास. दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1666.

गैरोला, श्री वाचस्पति. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास. 1667.

द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास. इलाहाबादः राम-नारायण लाल विजय कुमार, कटरा, 1667; पुनः प्रकाशनः 2004.

भामह. काव्यालंकार. पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1662.

मम्मट. काव्यप्रकाश. सं. डॉ. सत्यव्रत सिंह. सारबोधिनी टीकाः वत्सलञ्छन भट्टाचार्य, भूमिकाः आचार्य विश्वेश्वर. वाराणसीः ज्ञान मण्डल लिमिटेड, संवत् 2042 वि.

राजशेखर. काव्यमीमांसा. सं. सी. डी. दयाल. बड़ौदाः 1624; पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1654.

राजशेखर. बालरामायण. अनुवादः डॉ. गंगा सागर राय. वाराणसीः चौखम्बा प्रकाशन, 1884.

राजशेखर. बालरामायण. व्याख्याकारः एन.वी. लक्ष्मणशास्त्री. मत्तंजानगरः 1866.

राजशेखर. बालरामायण. व्याख्याकारः जीवानन्द विद्यासागर. कलकत्ताः भट्टाचार्य प्रकाशन, 1884.

रुद्रट. काव्यालंकार. बम्बईः निर्णय सागर प्रेस, 1628.

वामन. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति.सं. आत्माराम. देहलीः 1654.

विश्वनाथ. साहित्य दर्पण. व्याख्याकारः डॉ. सत्यव्रत सिंह. वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन, 1657.

संदर्भ -

1. काव्यालंकारसूत्र, 1/1/2
2. ध्वन्यालोक, 2/6
3. कुन्तेन कुन्तनखरः प्रहतः शकुन्तः -बालरामायण, 6.71 तरङ्गयः दृशोऽङ्गने पततु चित्रमिन्दीवरं, उदञ्चय मनाङ्मुखं भवतु च द्विचन्द्रं नभः।। -बालरामायण, 1.25 वैदर्भीवृत्यनुप्रास
4. त्रुट्यद्दार्देण्डखण्डोड्डमरमुरूपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्टं, स्फारस्फिक्पृष्ठपीठं हठदलतशिराकवन्धराकाण्डखण्डम्। सस्तम्भं क्षत्राडिम्भं चटदिति विचटन्मुण्डपिण्डं प्रचण्डरचण्ड, श्चण्डी शोच्चण्डदंष्ट्राक्रकच इव दृढ़ चन्द्रहासस्तृणेढु। -बालरामायण, 5.77 गौडीयावृत्ति अनुप्रास
5. कालरात्रिकरालेयं स्त्रीति किं विचिकित्ससे, तज्जगत्त्रितयं त्रतुं तात ताडय ताडकाम् ।। -बालरामायण, 3.5 पाञ्चाली वृत्ति अनुप्रास
6. गुरुअणदंसिअविणअणम्मदे णम्मदेक्कालङ्करण। -बा. रा., पृ. 79
   -अमन्दमअणम अदाणपअडहाले डहालेसरो । -बा. रा., पृ. 80
   -णिसग्गसव्वङ्ग महुरे महुरेक्कालंकरणं। -बा. रा., पृ. 83
   -कुवलयदलाभिरामं रामम्। -बालरामायण, पृष्ठ 176
   -मिथिलेश्वर किमिति संरभसे, ननु रभसनिर्जितैरावणो रावणः खल्वहम् ।- बालरामायण, पृष्ठ 30
   -तथा तथा हरिहरिभिः स्थितं मुदा। -बालरामायण, 8.8
7. महोदरो विरूपाक्षो विरूपाक्षो महोदरः।
   तथा-संग्रामे वीरसंग्रामेराजितः समराजितः, चक्रे रणमहाचक्रेमार्गणैर्मर्ममार्गणैः। - बालरामायण, 9.95-96
8. सुवर्णबन्धाविद्योति कुरूत श्रवणाश्रयम्, सच्छायमुल्लसद्धतं काव्यं मुक्तामयं बुधाः।। -बालरामायण, 3.15
9. प्रकटितरामाम्भोजः कौशिकवान् सपदिलक्ष्मणानन्दी। सुरचापदमनहेतोरयमवतीर्णः शरत्समयः।। -बालरामायण, 3.16
10. कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने-जने। नमः श्रृङ्गारबीजाय तस्मै कुसुमधन्वने ।। -बा. रा. -3.11
11. लूत्वा बिसलतालावं कण्ठं ते रेणुकारिपोः। -बालरामायण, 2.52
12. ताराणां तगरत्विषां पंरिकरः संख्ययशेषः स्थितः । -बालरामायण, 7.1

13. वाल्मीकीदशनव्रणारूणदलैः पत्त्रैरशोकोऽर्चितः। -बालरामायण रा. 5.38
14. सद्यो मार्जितदाक्षिणात्यतरूणीदन्तापदातद्युतिः। -बा.रा. 10.41
15. एतां यथा हृदयवर्ततिमायताक्षीं, संसारसारनिचयेन विधाय वेधाः।
शङ्के दिदेश मदनं परिरक्षितार, मारात स मां किरति येन शरैः शिताग्रैः ।।-बालरामायण 1.43
16. चक्षुः स्मेरमवारिजं कुवलयं वक्त्रस्य मित्रं विधुः, भूलेखा स्मरतोरणं स्मितलवो लीलालता पल्लवः ।
उच्छिष्टं कलकण्ठवाक् च वचसां शङ्के तदेणी–शः, सर्वाङ्गीणमहो विधेः परिणतं विज्ञानचित्रं चिरात् ।।
- बालरामायण, 5.10
17. भुजस्तम्भालानितलक्ष्मीकरेणुना। -बालरामायण, पृष्ठ 33
18. चित्रं नेत्ररसायनं त्रिदशतासिद्धेर्महामङ्गलं, मोक्षद्वारमपावृतं मम मनः प्रह्लादनाभेषजम्।
साकं नाकपुरन्ध्रिभिर्नवपतिप्राप्त्युत्सुकाभिः सुराः, सर्वे पश्यत् रामरावणरणं वक्तयेष वो नारदः ।।-बा. रा.-2.16
19. उषः प्रवालद्रुमबालपल्लवास्त्रिलोकहर्म्याङ्गणहस्तदीपिकाः।
दिनद्विपेन्द्रारूणकर्णचामरा मरीचयोऽर्कस्य लुठन्ति कोमलाः।। - बालरामायण, 1.21
20. पाणिप्रथेर्वकुलसुमनः सौरभं यो मिमीते, दम्पत्योर्यः सुरत्नचरिते सौरव्यसंख्या करोति।
यश्च ज्योत्सना चुतुकपुटकैः काममायामतीन्दोः, शक्तः स्तोतु स श्वलु निखिलान्यस्य कीर्त्यद्भूतानि।।-
बालरामायण, 3.29
21. इन्दुर्लिप्त इवाञ्जनेन जडिता दृष्टिर्मृगीणामिव, प्रम्लानारूणिमेव विद्रुमलता श्यामेव हेमद्युतिः।
पारुष्यं कलया च कोकिलवधूकण्ठेष्विव प्रस्तुतं, सीतायाः पुरतश्च हन्त शिखि नां बर्हाः सगर्हा इव ।।
- बालरामायण, 1.42
22. त्रेयक्षात्किंस्विदक्ष्णः क्षयसमयशिखि निर्गतश्चञ्चदर्चिः, किंस्विद्विभत्त्चार्ण- वाणस्युपरि परिणतः सर्वतोऽप्यौर्ववह्नि।
किंस्वित्का लाग्निरुद्रः स्थगयति जगतीमेष पातालमूला, दां ज्ञातं धाम्नि वारां रघुपतिविशिखा प्रज्वलन्तः पतन्तिं।
-बालरामायण, 7.15
23. सञ्चारी रोहणाद्रिः किमयमविकलः केलिसम्प्राप्तमूर्तिः, कोदण्डः पिण्डिताङ्गः किमपु सुखतेर्जङ्गमत्वं गतोऽसौ।
चित्रं पा भूतधात्र्याः प्रकृतिबलमिदं कल्पयद् वाग्वितर्का,-नित्यं वैखानसीनां तिलकितभुवनं भूतमम्येति किञ्चित्
-बालरामायण, 6.59
24. सारंग दृष्टिलसिते कल भाषिते च, पुंस्कोकिल स्मितसरोरूह सौरभे च,
दिव्येभ विभ्रमगती च सदैव यस्याः शिष्याः स्थतां कथचतस्वगुरुं प्रियां मे। -बालरामायण, 5.65
25. उपदिशति समानं कर्म—त्स्नं पिनाकी, सममपि च यतन्ते कर्तुमभ्यासमेते।
तदपि भृगुकुलेन्दुःकाममुत्कृष्यतेऽसौ, ननु भवति निवीतं द्रव्यमेव क्रियाभिः।। -बालरामायण, 4.15
26. लोकोत्तरं चरितमर्पयति प्रतिष्ठां पुंसां कुलं न हि निमित्तमुदात्ततायाः।
वातापितापनमुनेः कलशात् प्रसूतिर्लीलायितं पुनरमुद्र समुन्द्रपानम् ।। -बालरामायण, 2.51

25

'बालरामायणम्' की कथावस्तु में किए गए परिवर्तनों का औचित्य

वैष्णवी *

बालरामायण संस्कृत के प्रतिष्ठित नाटककार महाकवि राजशेखर द्वारा रचित एक महत्त्वपूर्ण नाट्य काव्य है, जो रामकथा को नवीन दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है। यद्यपि इसकी मूल प्रेरणा वाल्मीकि रामायण से प्राप्त हुई है, तथापि यह कृति केवल अनुगामी नहीं, बल्कि स्पष्ट रूप से मौलिक एवं नवोन्मेष परक है।

राजशेखर ने बालरामायण को दश अंकों में विभाजित कर एक पूर्ण नाटक रूप में रचना की है, जिसमें उन्होंने रामकथा के पारंपरिक स्वरूप को सजीव नाटकीयता, भावप्रधान संवादों एवं नवीन कल्पनाओं से समृद्ध किया है। यह कृति अपने संरचना-कौशल, काव्यात्मक गरिमा, नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण तथा संवेदनशील पात्र-चित्रण के लिए विशिष्ट स्थान रखती है। इस नाटक की मौलिकता अनेक बिंदुओं पर स्पष्ट होती है, जैसे– रावण की सीता-स्वयंवर में उपस्थिति, परशुराम-रावणसंवाद, यन्त्र-जानकी की अवधारणा, मायावी दशरथ-कैकेयी द्वारा राम का वनगमन, पाँच दिवसों में संपन्न लंकायुद्ध आदि। राजशेखर की यह रचना केवल धार्मिक या पौराणिक आख्यान न होकर एक साहित्यिक, नाटकीय एवं सांस्कृतिक प्रस्थान-बिंदु है, जहाँ उन्होंने शास्त्रीय मर्यादा के भीतर रहते हुए रचनात्मक स्वतंत्रता का प्रयोग किया है।

वाल्मीकि रामायण से बालरामायण में भिन्नता तथा उनका औचित्य

भारतीय साहित्य में रामकथा एक सर्वाधिक व्यापक एवं बहुआयामी परम्परा है, जिसे विभिन्न कालों, कवियों तथा शैलियों में निरन्तर पुनः रचना का विषय बनाया गया है। वाल्मीकि रामायण इस परम्परा की मूलधारा है, जो न केवल प्राचीनतम है अपितु एक सांस्कृतिक आदर्श का भी स्थापन करती है। वाल्मीकि ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम, नरोत्तम एवं दैवीगुणों से युक्त महामानव के रूप में चित्रित किया है। यह महाकाव्य राम के चरित्र को बहुआयामी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, जिसमें उनकी वीरता, करुणा, नीति, त्याग, भ्रातृप्रेम, एवं राष्ट्र धर्म का अत्यन्त विस्तार से वर्णन मिलता है। कथा की यह विशालता ही वाल्मीकि रामायण को महाकाव्यत्व प्रदान करती है। वहीं बालरामायण नाट्यरचना है, जिसकी संरचना महाकवि राजशेखर द्वारा की गई है। यह नाटक दस अंकों में निबद्ध है, और यद्यपि इसका मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण ही है, तथापि राजशेखर ने नाटकीय दृष्टिकोण से अनेक नवीन कल्पनाएँ एवं परिवर्तन किए हैं। ये परिवर्तन केवल शैली-परिवर्तन नहीं, अपितु दृष्टिकोण तथा उद्देश्य की भिन्नता के सूचक हैं। वाल्मीकि रामायण जहाँ राम के

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *शोध-छात्रा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

चरित्र को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करता है, वहीं बालरामायण की कथा-संरचना सीमित है और नाटकीय अनिवार्यताओं के अनुरूप संचालित होती है।

राजशेखर ने राम की जीवन-कथा के सम्पूर्ण आयाम को न दिखाते हुए विशेष प्रसंगों को ही चयनित किया है। उदाहरणस्वरूप, नाटक का आरम्भ 'प्रतिज्ञा-पौलस्त्य' अङ्क से होता है, जो सीता-स्वयंवर के पूर्व रावण की प्रतिज्ञा से जुड़ा है— यह आरम्भ ही दर्शाता है कि लेखक की दृष्टि किस प्रकार यथार्थ से कलानुरूप परिवर्तन की ओर प्रवृत्त है। बालरामायण की संरचना, पात्रों का चयन, संवादों की प्रकृति, एवं घटनाओं की प्रस्तुति नाटकीय चाक्षुषता को ध्यान में रखकर की गई है।

प्रथम अंक में रावण का सीता स्वयंवर में आगमन

बालरामायण के प्रथमाङ्क में रावण का सीता-स्वयंवर में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होना तथा शिव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने का प्रयास एक ऐसा परिवर्तन है जो पारम्परिक वाल्मीकि रामायण अथवा रामचरित मानस में नहीं मिलता। यह परिवर्तन केवल कथावस्तु में नवीनता के लिए नहीं, बल्कि विशिष्ट नाटकीय आवश्यकता की पूर्ति हेतु किया गया है। इस प्रसंग का औचित्य अनेक स्तरों पर प्रतिपादित किया जा सकता है।

प्रथम दृष्टि में, यह दृश्य नाटक की प्रकृति के अनुकूल है। नाटक में तात्कालिक नाटकीयता, द्वन्द्व और रसोत्पत्ति की विशेष भूमिका होती है। रावण जैसे बलशाली, विद्वान्, अहंकारी पात्र का सीता-स्वयंवर में प्रवेश कर शिवधनुष को उठाने का प्रयत्न करना दर्शकों के भीतर आश्चर्य, भय और कौतूहल उत्पन्न करता है। **''नाट्यंभिन्नरुचेरजनस्यबहुधाप्येकंसमाराधनम्''**[1] - नाट्यशास्त्र का यह सूत्र स्पष्ट करता है कि नाटक में विविध रसों का संयोग होना चाहिए जिससे विभिन्न प्रकृति के दर्शकों का रंजन हो सके। यह प्रसंग रौद्र, वीर तथा शृंगार रसों की सम्मिलित अभिव्यक्ति बन जाता है।

द्वितीयतः, यह परिवर्तन रावण के चरित्र को गहराई देने का कार्य करता है। वाल्मीकि रामायण में रावण की वीरता मुख्यतः युद्ध प्रसंगों में ही दिखती है, जबकि बालरामायण में उसे सीता के लिए स्वयं प्रत्यक्ष प्रयास करता हुआ दिखाया गया है। उसके इस प्रयास से उसका अहंकार, साहस, महत्त्वाकांक्षा एवं अंततः पराजय – चारों आयाम उभरते हैं।

तृतीयतः, यह प्रसंग राम की अप्रत्यक्ष महत्ता को स्थापित करता है। जब रावण जैसे त्रैलोक्य विजयी असुर द्वारा भी शिवधनुष का आरोपण सम्भव नहीं होता, तब यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि राम, जिनकी अभी तक मंच पर कोई उपस्थिति नहीं है, वे इस कार्य के लिए नियत एवं सक्षम हैं।

चतुर्थतः, जनक एवं शतानन्द जैसे पात्रों की भूमिका इस प्रसंग से सशक्त बनती है। जनक का धर्म संकट, शतानन्द की विवेचना, एवं सीता की चिंता—ये सब पात्रों को मानवीय बना देते हैं। विशेषतः जब जनक यह कहते हैं—**''अयेतपस्यतामपि न निरत्ययः सुख प्रत्ययः यत्सीतार्थी दशकण्ठोऽपि गृहानुपगच्छति।''**[2]

अर्थात अरे! तपस्या करने वालों के लिए भी सुख में बाधा आ ही जाती है, क्योंकि सीता के लिए रावण घर तक आ पहुँचा है। यह वाक्य जनक की चिंता और सीता के भविष्य के प्रति असुरक्षा-बोध को दर्शाता है। पञ्चमतः, इस प्रसंग में रावण की सीता के प्रति पूर्वगामी आसक्ति का संकेत भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो इस परिवर्तन को और अधिक औचित्यपूर्ण बनाता है। रावण के वचनों में सीता के सौन्दर्य का अत्यन्त सूक्ष्म एवं भावुक वर्णन है :

''निर्माल्यंनयनश्रियः कुवलयं, वक्त्रस्यदासः शशी, कान्तिः प्रावरणंतनोमंधुमुचोयस्याश्चवाचः किलः।
विंशत्यारचिताञ्जलिः करतलैस्त्वांयाचतेरावण-स्तांद्रष्टुं जनकात्मजां हृदय हे नेत्राणि मित्री कुरु।।''[3]

अर्थात् नीलकमल जिसके नेत्रों की शोभा का निर्माल्य है, चन्द्रमा जिसके मुख का दास है एवं उसकी कान्ति जिसके शरीर की आच्छादिका है और जिसकी वाणी मधु की वर्षा करने वाली है, उस जनकात्मजा को देखने के लिए बीसों हथेलियों से हाथ जोड़े रावण तुमसे याचना कर रहा है। हे हृदय! नेत्रों को मित्र बनाओ।

इस प्रकार का विश्लेषण केवल बाह्य रूप से सुंदर स्त्री के लिए नहीं किया जाता, यह उस मानसिक आकर्षण का सूचक है जो रावण के मन में पहले से विद्यमान है। अतः स्वयंवर में उसका आना केवल सामर्थ्य प्रदर्शन नहीं, अपितु सीता को पाने की भीतरी लालसा की पूर्ति का प्रयास भी है। यही आकर्षण आगे चलकर सीताहरण जैसी घटना का कारण बनता है। इस दृष्टि से, राजशेखर ने कथा में जो यह परिवर्तन किया है, वह काव्यात्मक मनोविज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है।

द्वितीय अंक में रावण परशुराम संवाद

बालरामायण के द्वितीयाङ्क में रावण द्वारा भगवान परशुराम से परशु की याचना तथा तत्सम्बन्धी संवाद और युद्ध का वर्णन वाल्मीकीय रामायण अथवा रामचरित मानस में उपलब्ध नहीं होता। यह सम्पूर्ण प्रसंग महाकवि राजशेखर की सृजनात्मक कल्पना का फल है, जो पारम्परिक रामकथा की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ उसे एक नवीन नाटकीय रूप प्रदान करता है। वाल्मीकि रामायण में परशुराम केवल शिवधनुष-भंग से क्रुद्ध होकर राम के समक्ष उपस्थित होते हैं, रावण के साथ किसी प्रकार का उनका संवाद अथवा युद्ध नहीं दर्शित होता। किन्तु बालरामायण में यह कहा गया है - **''शङ्करप्रसादं परशुं स मां याचते रावणः।''**[4]

रावण अपने दूत मायामय को परशुराम के पास भेजता है कि वे शिवप्रदत्त परशु प्रदान करें। परशुराम इस याचना को अस्वीकार करते हुए तीव्र वचनों में प्रतिक्रिया देते हैं और रावण के शिवधनुष को ही न समझने के दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं— **''मम कुठारं न सहते तव भुजतरुशाखाविकम्पम्।''**[5]

रावण के उद्दण्ड व्यवहार और परशुराम के स्वाभाविक क्रोध के कारण दोनों के मध्य भीषण युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। देवर्षि नारद भी इस दृश्य को देखने के लिए उपस्थित होते हैं। अन्ततः शिव के गणों के द्वारा युद्ध को रोककर मैत्री स्थापित की जाती है। यह परिवर्तन केवल कथावस्तु में नवीनता के लिए नहीं, अपितु विशिष्ट नाटकीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी किया गया है, जिसके प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं—

1. नाटकीयता की पूर्ति-नाट्यशास्त्र में कहा गया है-**''वस्तुनि विविधता रसस्यकारणम्।''**[6]

अर्थात् वस्तु की विविधता ही रस की सृष्टि करती है। रावण-परशुराम युद्ध का यह दृश्य नाटक में वीररस, रौद्ररस तथा शान्तरस की संभावनाओं को प्रस्फुटित करता है।

2. चरित्र-चित्रण की गहराई-परशुराम को 'क्षत्रियद्वेषीतपस्वी', और रावण को 'अहंकारी बलाधिपति' के रूप में चित्रित कर महाकवि ने उनके स्वभावगत गुणों को अभिव्यक्त किया है। यह विरोधाभास ही नाट्यवस्तु को जीवंत बनाता है। जैसा कि नाट्यशास्त्र में कहा गया है- **''विरुद्धधर्मयोः संगात्सन्ध्युपायः प्रजायते।''**[7] विरोधी स्वभाव वाले पात्रों के समागम से ही सन्धि (संघर्ष व समाधान) उत्पन्न होता है, जो नाटक की आत्मा है।

3. शिवधनुष की दैवी गरिमा का प्रतिपादन-रावण द्वारा शिवधनुष का तिरस्कार करना और परशुराम का उस पर कुपित होना, शिव के प्रतीक-अस्त्रों की महत्ता को रेखांकित करता है। यह शिव-भक्ति का भी एक

अप्रत्यक्ष रूप है। परशुराम शिव के प्रसादस्वरूप परशु को केवल युद्ध हेतु नहीं, अपितु शिव-भक्ति की मूर्तिमत्ता के रूप में देखते हैं।

4. धर्म और अहंकार की टकराहट-यह प्रसंग केवल युद्ध नहीं, दो वैचारिक धाराओं का टकराव है— परशुराम का ब्रह्म तेज और रावण का क्षात्रबल। इस संघर्ष का समाधान भी शिवगणों द्वारा शान्तिपूर्वक कराया जाना यह दर्शाता है कि अन्ततः धर्म की विजय होती है, न कि अभिमान की। बालरामायण के द्वितीयाङ्क में वर्णित यह प्रसंग एक मौलिक कल्पना है, जो मूल रामकथा से भिन्न होते हुए भी उसमें गम्भीरता, विविधता एवं रसात्मकता का समावेश करता है। यह परिवर्तन न केवल नाटकीय उद्देश्य की पूर्ति करता है, अपितु महाकवि राजशेखर की प्रयोगशीलता, पौराणिक कल्पना शक्ति और धार्मिक- सांस्कृतिक बोध का भी परिचायक है। राजशेखर का यह प्रयोग न केवल यशस्वी है, अपितु नीति पर कविवेक का भी आदर्श रूप है।

यंत्र-जानकी का निर्माण

राजशेखरकृत बालरामायण के पञ्चमाङ्क में यन्त्र जानकी का निर्माण एक ऐसी मौलिक कल्पना है, जो पारम्परिक रामकथा में कहीं प्राप्त नहीं होती। यह परिवर्तन केवल चमत्कार किया कौतुक वृत्तिपरक न होकर गम्भीर नाटकीय और दार्शनिक अर्थवत्ता लिए हुए है। कथा के अनुसार, मन्दोदरी के पिता मायाचार्यमय का शिष्य विशारद लकड़ी से सीता की एक यन्त्र प्रतिकृति तैयार करता है, जो न केवल रूप रूपिणी सीता से समान दिखती है, बल्कि उसके मुख में स्थित एक पक्षी (सारिका) के माध्यम से वाणी भी करती है। यह यन्त्र जानकी रावण के मानसिक भ्रम का मूर्तरूप बन जाती है- वह समझता है कि यह साक्षात् सीता है, और उसी से प्रेम करने लगता है।

यहाँ पर राजशेखर एक गहरी मानसिक और दार्शनिक परत खोलते हैं। रावण, जो काम, क्रोध और अभिमान का प्रतीक है, सीता के रूप को पाकर तो संतुष्ट होता है, परंतु वह यह नहीं जानता कि यह केवल एक मायावी शरीर, एक शरीर की छाया मात्र है- न उसमें आत्मा है, न प्रेम। यह प्रतीकात्मक है- वासना से उपजा प्रेम एक यन्त्रवत् होता है, जिसमें न तो भावना होती है, न समर्पण। इसे उपनिषदों की भाषा में कहें तो- **''अनात्मास्वयम् आत्मवत् आभासते मोहात् ।''**[8] (अर्थात जो आत्मा नहीं है, वह भी मोह के कारण आत्मा के समान प्रतीत होता है।)

दूसरी ओर, यह यन्त्र जानकी केवल रावण के मानसिक भ्रान्ति का प्रतीक नहीं, बल्कि नारी के आत्मस्वरूप की रक्षा का भी संकेत है। जब कथा में सीता के स्थान पर यन्त्र जानकी रावण के सामने लाई जाती है, तो यह मानो एक नैतिक घोषणा है कि स्त्री की अस्मिता पर किसी भी प्रकार का बलात् अधिकार सम्भव नहीं - पुरुष का भुजबल, दर्पयात्रैलोक्य विजय भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता। राजशेखर इस प्रकार नारी के यथार्थ स्वरूप को पुरुष की वासनात्मक दृष्टि से बचाकर उसे उच्च नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। साथ ही यह प्रसंग नाटकीय दृष्टि से भी अत्यन्त उपयुक्त है। रावण की यह भ्रान्ति कि वह जिस सीता को पा चुका है, वह सजीव है - और फिर उसका यह बोध कि वह मात्र यन्त्र है- दर्शकों में विस्मय, विनोद, करुणा, और रौद्र- इन रसों की एक संमिश्र अनुभूति उत्पन्न करता है। यह अनुभूति नाटकीय उत्कर्ष का एक प्रमुख लक्ष्य है, इस दृष्टि से यन्त्र जानकी का निर्माण केवल एक 'कृत्रिम सीता' नहीं, अपितु प्रतीकात्मक सौन्दर्य है- जो रावण के विकृत दृष्टिकोण, स्त्री की गरिमा, प्रेम और वासना के भेद, तथा यथार्थ और भ्रम के अन्तर को उजागर करता है। यह कल्पना राजशेखर की काव्य प्रयोगशीलता, रस-संवेदना और प्रतीकात्मक क्षमता का विलक्षण उदाहरण है।

मायावी दशरथ और कैकेयी द्वारा राम का वनगमन

कथानुसार, वास्तविक दशरथ व कैकेयी इन्द्रलोक में थे, और उनकी अनुपस्थिति में मायामय तथा शूर्पणखा ने उनके रूप धारण कर राम को छलपूर्वक वनवास का आदेश दिलवाया। यह परिवर्तन केवल कथावस्तु की नवीनता हेतु नहीं, अपितु स्पष्ट रूप से दशरथ व कैकेयी की कीर्ति की रक्षा के उद्देश्य से किया गया प्रतीत होता है। राजशेखर सम्भवतः यह नहीं चाहते कि महान् राजा दशरथ और कुलवधू कैकेयी को पाठक अनैतिक या स्वार्थी के रूप में देखें। यही कारण है कि वे राक्षसों को माध्यम बनाकर यह संकेत करते हैं कि - **''धर्मात्मानरो न कुर्यात्पापकर्मस्वबुद्धितः।''**[9] (अर्थात धर्मात्मा पुरुष स्वेच्छा से पाप कर्म नहीं करता।) इस आधार पर, राम को वन भेजने वाला आदेश न धर्मपरायण दशरथ का था, न ही कुलशील कैकेयी का, बल्कि राक्षसी छलकपट का परिणाम था। दूसरा महत्त्वपूर्ण औचित्य यह है कि यह कल्पना नाटक के रहस्य और कौतुक को प्रबल बनाती है। दर्शक चौंकते हैं कि कैसे दशरथ जैसा करुणाशील पिता और कैकेयी जैसी जननी राम जैसे पुत्र को वन भेज सकती हैं- और तभी भेद खुलता है कि यह कार्य मायावी रूपधारियों का था। यह नाटकीय विह्वलता और विस्मय रस की सृष्टि करता है, तीसरे स्तर पर, यह कल्पना राम के आदर्श चरित्र को और भी उज्ज्वल करती है। जब वामदेव लक्ष्मण के आवेग को शांत करते हैं और राम से कहते हैं कि तुम्हें छल से वन भेजा गया है, तब भी राम यह कहकर वन जाते हैं कि —

''मया तु पितुराज्ञाप्रतिग्रहीता सदा समता। यक्षो वा राक्षसो वापि यथोक्तं तत्करोम्यहम्।''[10]

यह कथन राम की मर्यादा पुरुषोत्तमता का चरम रूप है, जहाँ वह केवल आज्ञा के 'आकृति' को नहीं, उसके 'आशय' को भी पूर्णरूप से स्वीकार करते हैं- चाहे वह असली दशरथ हो या मायावी। साथ ही, यह प्रसंग सीता और लक्ष्मण जैसे सहचर पात्रों के चरित्र को भी दृढ़ बनाता है। विशेषतः सीता का यह वाक्य –

''उद्देशागिरयश्च ते वनमही सा चैवमेवल्लभा कौशल्यातनयस्य यत्रचरणीवन्दे च नन्दामि च।''[11]

यह स्पष्ट करता है कि उनके लिए 'राम' ही देश हैं, 'राम' ही पति हैं, और 'राम के चरण' ही सर्वस्व हैं। यह पत्नी का भावनात्मक, सांस्कृतिक और मानसिक समर्पण भारतीय नारी आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि मायावी दशरथ व कैकेयी द्वारा राम के वनगमन की यह कल्पना केवल प्राचीन कथा का विरूपण नहीं, अपितु एक सशक्त काव्य प्रयोग है जो राजशेखर की चरित्र रक्षा, नाटकीय कौशल और धार्मिक-नैतिक संवेदनशीलता का सजीव उदाहरण है।

पाँच दिवसों में सम्पन्न युद्ध

बालरामायण में रावण के साथ राम का युद्ध केवल पाँच दिनों में सम्पन्न होता है, जबकि वाल्मीकि रामायण में यह युद्ध दीर्घकालिक एवं क्रमबद्ध रूप में वर्णित है। यह परिवर्तन केवल कथावस्तु का संक्षेपण नहीं, बल्कि राजशेखर की स्पष्ट नाट्यदृष्टि और रचनात्मक उद्देश्य का परिचायक है।

1. नाट्य कला की दृष्टि से -राजशेखर नाटककार हैं, और नाटक में दीर्घता नहीं, गति अपेक्षित होती है। पाँच दिनों में युद्ध सम्पन्न करवाकर उन्होंने कथा में नाटकीय तनाव बनाए रखा। वाल्मीकि जहाँ घटनाओं का विस्तार करते हैं, वहीं बालरामायण में संक्षिप्त प्रस्तुति मंचीय दृष्टि से उचित है।

2. राम के नायकत्व का सशक्त रूप-वाल्मीकि रामायण में राम धैर्य, नीति और प्रतीक्षा के प्रतीक हैं। राजशेखर के राम निर्णय में तीव्र, युद्ध में पराक्रमी और धर्म के लिए तत्काल कर्मरत नायक हैं। पाँच दिनों में रावणवध, राम के रणनीतिक कौशल को दर्शाता है।

3. धर्म की त्वरित स्थापना-बालरामायण यह संदेश देता है कि जब अधर्म अपनी सीमा पार कर चुका हो, तब धर्म को विलम्ब नहीं करना चाहिए। युद्ध का संक्षिप्त रूप धर्म की निर्णायकता को बल देता है।

4. रसों का संतुलन- दीर्घ युद्ध से वीररस की प्रधानता होती, किंतु बालरामायण में युद्ध शीघ्र समाप्त कर उत्तर अंकों में करुण, शृंगार और शांतिरस को अधिक स्थान दिया गया है- जैसे लक्ष्मण की मूर्च्छा, सीता-राम मिलन आदि। राजशेखर का यह परिवर्तन नाट्य-संरचना, उद्देश्य स्पष्टता और दर्शक-ग्रहण शीलता की दृष्टि से औचित्यपूर्ण है। यह प्रयोग परंपरा से विचलन नहीं, बल्कि सर्जनात्मक अनुकूलन है, जो बालरामायण को स्वतंत्र पहचान देता है।

राजशेखरकृत बालरामायण केवल रामकथा का एक पुनर्पाठ नहीं, अपितु एक नवोन्मेषी सर्जनात्मक यात्रा है, जिसमें नाट्यशास्त्रीय और सांस्कृतिक औचित्य के धरातल परपारंपरिक कथा के पुनराविष्कार का प्रयास किया गया है। वाल्मीकि और तुलसीदास की प्रचलित रामकथाओं से भिन्न, राजशेखर ने जिन प्रसंगों में तार्किक दुर्बलता, नैतिक असंगति या नाटकीय आवश्यकता की कमी अनुभव की, वहाँ उन्होंने नवीन कल्पनाओं द्वारा कथा को समकालीन नाट्यबोध के अनुकूल ढाल दिया।

विशेषतः रावण की सीता के प्रति पूर्वगामी आसक्ति, जानकी-स्वयंवर में उसकी उपस्थिति, परशुराम से परशु के लिए विवाद, मायावी दशरथ-कैकयी द्वारा राम का वन गमन, यन्त्र जानकी की कल्पना, रावण की वियोग व्यथा, एवं पाँच दिन में संपन्न लंकायुद्ध जैसे प्रसंग केवल कथावस्तु में नवीनता के लिए नहीं जोड़े गए हैं; अपितु इन सबके पीछे एक गंभीर साहित्यिक दृष्टिकोण, प्रतीकात्मक गहराई, और मानवीय संवेदना विद्यमान है।

राजशेखर का यह स्पष्ट प्रयास दिखाई देता है कि वे दशरथ और कैकेयी जैसे चरित्रों को अनावश्यक दोषारोपण से मुक्त करना चाहते हैं। उन्होंने निर्दोष दशरथ अङ्क द्वारा यह प्रतिपादित किया कि धमार्थ पुरुष किसी छल का भागी नहीं हो सकता- और यही दृष्टिकोण उन्हें राम के आदर्श को भी अभ्युदय दिशा में ले जाता है। राम का वनगमन तब भी जब वे जानते हैं कि यह निर्णय मायावी रूपों द्वारा लिया गया है- नायकत्व और धर्मबुद्धि का चरम है। नाट्यदृष्टि से देखें तो बालरामायण संक्षिप्त, भावप्रधान और मंचोपयोगी संरचना का अनुपम उदाहरण है। रसों का संतुलन, संवादों की तीव्रता, और चरित्रों की आन्तरिक मनोवृत्तियाँ इसे केवल एक धार्मिक आख्यान न बनाकर एक सशक्त काव्यात्मक नाट्य-कृति का रूप देती हैं। बालरामायण, परंपरा का सम्मान करते हुए नवाचार की सर्जना करता है। राजशेखर द्वारा किए गए परिवर्तन केवल नवीनता नहीं, अपितु नाटकीय और सांस्कृतिक औचित्य से परिपूर्ण हैं- यही इसकी रचनात्मक सार्थकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वाल्मीकिरामायण। गीताप्रेस, गोरखपुर, 2019।*
2. *रामचरितमानस। गीताप्रेस, गोरखपुर, 2021।*
3. *बालरामायण। डिजिटल संस्करण। archive.org, 2015A https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015-408195A*
4. *नाट्यशास्त्रस। सं. डॉ. मनोहरलाल। चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,2006।*
5. *बृहदारण्य कोपनिषद्। अनुवाद – स्वामी माधवानन्द। मायावती : अद्वैत आश्रम,1950।*

6. अभिनवभारती (नाट्यशास्त्रपरभाष्य)। सं. के. पी. तिवारी। ईस्टर्नबुक लिंकर्स, दिल्ली,1992।

7. रामायण की परम्परा में महाकवि राजशेखर प्रणीत बालरामायण। संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1981।

संदर्भ -

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र ,अ.1

2. बालरामायण 1/35

3. वही 1/40

4. वही अंक, 2

5. वही अंक, 2

6. नाट्यशास्त्र अ. 6

7. वही अ. 6

8. बृहदारण्य कोपनिषद 2.4.12

9. बालरामायण अंक, 6

10. वही अंक, 6

11. वही अंक, 6

26

'बालभारतम्' का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

*मोनिका कुंवर राठौड़ *, श्रुति राय ***

महाकवि राजशेखर 9वीं-10वीं शताब्दी के संस्कृत साहित्यकार हैं। राजशेखर ने कुल कितने ग्रन्थों की रचना की, यह प्रश्न विवादित है। स्वयं राजशेखर ने अपनी कृति 'बालरामायण' में अपने द्वारा रचित 6 कृतियों की सूचना दी है[2] परन्तु सम्प्रति उपलब्ध ग्रन्थ 5 ही हैं – 1. बालरामायण 2. बालभारत 3. विद्धशालभञ्जिका 4. कर्पूरमञ्जरी 5. काव्यमीमांसा। इन रचनाओं में से काव्य-मीमांसा और बालभारत अपूर्णरूप में ही प्राप्त होते हैं। भाषा, काव्य-रचना, शब्द-सौष्ठव इत्यादि के अतिरिक्त राजशेखर की कृतियों में मनोरञ्जन, लोकोक्तियाँ, दार्शनिक तत्त्व, सामाजिक-जीवन इत्यादि का भी चित्रण मिलता है ।

'बालभारतम्' उनका एक लघु-नाटक है, जिसमें महाभारत की घटनाओं को संक्षिप्त एवं शिक्षाप्रद रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके मात्र दो अङ्क ही सम्प्रति उपलब्ध हैं। इस नाटक की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह केवल काव्यात्मक एवं रंगमंचीय नहीं, बल्कि दार्शनिक बौद्धिकता से युक्त है। राजशेखर की यह रचना बच्चों एवं नववयस्कों को धर्म, नीति और आदर्शों के प्रति सजग बनाने हेतु लिखी गई प्रतीत होती है। इस पत्र में यह विश्लेषण किया जायेगा कि कैसे यह लघुनाट्य भारतीय दर्शन की मुख्य धाराओं जैसे जगत्, जीव, मोक्ष, ईश्वर, ज्ञान, प्रमाण, धर्म, कर्म, न्याय, नारी गरिमा, भक्ति और आध्यात्मिकता को अपने संवादों और घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इस नाटक का दूसरा नाम 'प्रचण्डपाण्डवम्' भी है –

इदं तद्बालभारतं 'प्रचण्डपाण्डवमिति' यस्य सञ्ज्ञान्तरम्।[3]

कथावस्तु

'बालभारतम्' नाटक महाभारत के उस अत्यंत संवेदनशील प्रसंग पर आधारित है जिसमें पाण्डव द्यूतक्रीड़ा में पराजित होकर अपने राज्य, संपत्ति, और अंततः द्रौपदी को भी दांव पर लगा देते हैं। यह घटना कौरवों की सत्ता लालसा, पांडवों की नैतिक दुविधा और द्रौपदी के आत्मसम्मान का संघर्ष प्रदर्शित करती है। नाटक की संरचना दो प्रमुख अङ्कों में की गई है :

- प्रथम अङ्क में द्रौपदी के स्वयंवर की घटना है। इसमें स्वयंवर समारोह के अलावा पाँचों पाण्डव, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कर्ण, दुर्योधन, दुःशासन, जयद्रथ, शकुनि, बलराम, कृष्ण, सात्यकि, शिशुपाल इत्यादि का वर्णन है।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

** सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

- द्वितीय अङ्क में युधिष्ठिर की जुए में पराजय, भीष्म और द्रोण की निष्क्रियता, तथा द्रौपदी को दांव पर लगाने, सभा में द्रौपदी का अपमान, उसकी आक्रोशपूर्ण वाणी, और श्रीकृष्ण द्वारा चीरवृद्धि और रक्षा की लीला वर्णित है।

बालभारतम् का दार्शनिक विश्लेषण

किसी भी ग्रन्थ का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य (Philosophical Perspective) का आशय उस ग्रन्थ में निहित जीवन, जगत्, आत्मा, ईश्वर, धर्म, मूल्य, अस्तित्व, ज्ञान और चेतना आदि से सम्बंधित विचारों की विवेचना से है। यह दृष्टिकोण ग्रन्थ के भीतर व्यक्त जीवन-दृष्टि, तत्त्व-चिंतन, नीतिशास्त्र, तात्त्विक आधार और आत्मबोध को उद्घाटित करता है। जब हम किसी ग्रन्थ को दार्शनिक दृष्टि से देखते हैं, तो उसका केवल कथा-संरचना, पात्रों का विकास या काव्य-सौंदर्य नहीं, अपितु उसमें अंतर्निहित तात्त्विक दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करते हैं। किसी भी ग्रन्थ का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य उसकी आत्मिक गहराई को उद्घाटित करता है। यह दृष्टिकोण यह बताता है कि वह ग्रन्थ केवल साहित्यिक नहीं, अपितु चिंतनशील, तात्त्विक, और जीवन-दृष्टिपरक भी है।

किसी ग्रन्थ के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य को विश्लेषित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाता है :

1. **तत्त्वमीमांसा (Metaphysics)**

- जीव, जगत्, ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, मोक्ष या परम लक्ष्य आदि के स्वरूप पर विचार।

2. **ज्ञानमीमांसा (Epistemology)**

- ज्ञान की प्राप्ति के साधन/प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान आदि)।
- क्या ग्रन्थ में किसी विशिष्ट ज्ञान प्रणाली की चर्चा है ? इत्यादि ।

3. **आचारमीमांसा नैतिक मूल्य एवं धर्म (Ethics)**

भारतीय दर्शन में सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र एक दूसरे के पूरक हैं। अन्यथा इनका तात्त्विक स्वरूप अपनी आभा खो देती है । भारतीय दर्शन में आचारमूलक विचार ही मान्य है । यह एक कर्मसाक्ष्य चिन्तन है । विचार और कर्म की एकरूपता ही दर्शन का आधार है।[4] आचारमीमांसा में निम्न बातें ध्यातव्य हैं -

- नैतिक आचरण, कर्तव्य, धर्म, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय आदि की दृष्टि।
- सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, त्याग, तपस्या, विवेक आदि मूल्यों का प्रतिपादन।
- ग्रन्थ के चरित्रों में व्यक्त जीवन-मूल्य।
- क्या ग्रन्थ जीवन के लिए किसी विशेष आचार-संहिता का प्रतिपादन करता है?

4. **जीवन-दृष्टि और मानव धर्म**

- ग्रन्थ किस प्रकार की जीवन-दृष्टि को प्रस्तुत करता है? (आशावादी, निराशावादी, आध्यात्मिक, भौतिकवादी आदि)
- मानव के लक्ष्य, कर्तव्य और भूमिका की चर्चा

5. **दार्शनिक सम्प्रदाय का प्रभाव**

- ग्रन्थ पर किन दार्शनिक सम्प्रदायों (जैसे वेदान्त, सांख्य, बौद्ध, जैन, योग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक आदि) का प्रभाव है?

महाकवि राजशेखर के ''बालभारतम'' का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण करते समय इसमें निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देंगे :

तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से विश्लेषण करना होगा कि क्या नाटक का कोई पात्र ईश्वर को या किसी परम सत्ता को मानता हैं? क्या आत्मा-शरीर का भेद बताया गया है? इत्यादि। इसी प्रकार आचारमीमांसीय दृष्टि से देखना चाहिए कि क्या किसी पात्र ने धर्म-संकट झेला? क्या कोई सत्य के लिए बलिदान देता है? किन मूल्यों की स्थापना की गई है – जैसे वीरता, त्याग, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा आदि। क्या ग्रन्थ में किसी प्रमाण विशेष की कोई बात की गयी है? क्या ग्रन्थ में किसी दर्शन विशेष के प्रभाव का कोई संकेत हैं? इन बिन्दुओं के आधार पर 'बालभारतम्' नाटक का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य :-

तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से विवेचन

- **ईश्वर तत्त्व**

जब चीरहरण के समय द्रौपदी को सहायता के सभी दरवाजे बंद दिखाई देते हैं, तब द्रौपदी श्रीकृष्ण की शरण लेती हैं। उनकी भक्ति, भावुकता और शरणागति भारतीय भक्ति दर्शन का सजीव उदाहरण है। राजशेखर यहाँ स्पष्ट करते हैं कि भक्ति केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि आत्मसमर्पण का दर्शन है। कृष्ण का चीरवृद्धि करना इस भक्ति की पुष्टि है कि ईश्वर सच्चे भक्त की रक्षा अवश्य करता है। साथ ही उन्होंने पाण्डवों का मूल (आश्रय) भगवान् श्रीकृष्ण को ही बतलाया है।[5] अतः ईश्वर को यहाँ स्वीकार किया गया है जो कि दर्शन में तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

- **पुरुषार्थ-चतुष्टय**

न्याय मञ्जरीकार जयन्त भट्ट कहते हैं – **'सर्वो हि शास्त्रार्थः पुरुषार्थ पर्यवसायी।'** अर्थात् भारतीय ज्ञान परम्परा के सभी शास्त्रों का अवसान धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों में ही होता है अर्थात् प्रयोजन ये चार पुरुषार्थ ही हैं। और इसीलिये 'बालभारतम्' में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को स्वीकार करते हुए महाकवि राजशेखर कहते हैं कि पुरुषार्थ के विषय में जो यहाँ कहा गया है या बतलाया गया है वह अन्यत्र भी है अर्थात् भारतीय ज्ञान परम्परा में सर्वत्र स्वीकार्य है। जो यहाँ नहीं बतलाया गया है वह कहीं भी नहीं है अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय के विषय में समान मत पाये जाते हैं।[6]

दर्शन का अर्थ है अवलोकन (समीक्षा इत्यादि) की क्रिया और क्रिया तो कभी बिना उद्देश्य के नहीं हो सकती। अतः दर्शन हमारे जीवन का साध्य है। मनुष्य इस जगत् के तत्त्वों का दर्शन करते हुए उसी के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक को जीवन का साध्य बनाता है और इस साध्य को पूर्ण करते हैं शास्त्र। अतः शास्त्र साधन हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के लगभग प्रत्येक शास्त्र के द्वारा पुरुषार्थ-चतुष्टय की चर्चा की ही गयी है और बालभारतम् भी उनमें से एक है। उद्योतकार न्यायवार्तिक में कहते भी हैं –

तत् शास्त्रं पुरुषश्रेयोऽभिधत्ते।[7]

- **आत्मतत्त्व**

आत्मतत्त्व तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। 'बालभारतम्' में आत्मतत्त्व की प्रत्यक्षतः तो कहीं चर्चा नहीं हुई है क्योंकि यह रङ्गमञ्च की दृष्टि से लिखा गया नाटक है। किन्तु जब शुद्ध ज्ञान की चर्चा राजशेखर करते हैं तब आत्मा का प्रसङ्ग आता है। राजशेखर बतलाते हैं कि शुद्ध बुद्धि आत्मा को भी पवित्र कर देती है।[8] मूलस्वरूप तो इस आत्म तत्त्व का ज्ञान ही है और साधन शुद्ध ज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान ही है और यही बात यहाँ बतलायी गयी है।

- **जीव के दुःख का कारण**

सामान्यतः तो कहीं ग्रन्थ में जीव के दुःखों के कारण का वर्णन हमें नहीं मिलता है किन्तु एक प्रसङ्ग आता है जब ब्राह्मणवेशधारी अर्जुन लक्ष्य को वेध लेता है तो सब को आश्चर्य होता है और दुःख भी होता है कि अज्ञात कुल वाला कोई धनुर्धर द्रौपदी का स्वामी बनना चाहता है। यहाँ एक पिता भी विवश है क्योंकि उसके दुःखों का एक प्रधान कारण कन्या (पुत्री) होती है तो भले ही कुल अज्ञात हो परन्तु शर्त पूरी करने के कारण वह कन्या का स्वामी होगा ही।

यहाँ कन्या नहीं वरन् उससे जो मोह (राग) है, वह मुख्यतः दुःख का कारण है। दुःख को न्यायसूत्र में 12 प्रमेयों में से एक माना गया है और इसलिये उसके कारण बतलाते हुए गौतम कहते हैं –

दुःख-जन्म-प्रवृत्ति-दोष-मिथ्याज्ञानानां उत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायात् अपवर्गः।[9]

मुख्य कारण तो मिथ्या ज्ञान है जिसके कारण ही राग-द्वेष इत्यादि दोष उत्पन्न होते हैं तदन्तर हमारा व्यवहार (प्रवृत्ति) निर्धारित होता है। उसके आधार पर संस्कार (पाप और पुण्य) बनते हैं जो कि मनुष्य का जन्म निर्धारित करते हैं। जब मनुष्य का जन्म होता है तो शरीरधारण के साथ ही दुःख प्रारम्भ हो जाते हैं।

प्रमाणमीमांसीय दृष्टि से विवेचन-

- **वेदों की एवं शब्दप्रमाण की स्वीकार्यता**

आस्तिक दर्शन का आधार वेद ही हैं। शब्द प्रमाण में वेदों को तथा वेदज्ञ को आप्त होने के कारण सर्वोपरि माना गया है। आप्तवाक्य ही शब्दप्रमाण माने जाते हैं। बालभारतम् में भी वेदों को और वेदज्ञों को आप्त बतलाते हुए कहा है कि वेदज्ञ जो वाक्य बोलता है वह साक्षात् सरस्वती है, वे वाक्य ही आर्ष हैं क्योंकि वे असत्य नहीं हो सकते और यही विद्वानों की सुदृढ़ दृष्टि है अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि की द्योतक है –

''अनूचानो हि यद् ब्रूते सा स्वयम्भूः सरस्वती, तदार्ष न मृषार्थ स्यात् सा दृष्टिर्विदुषां दृढ़ा।''[10]

वेदज्ञ, वेदों का ज्ञान (साक्षात्कार) प्राप्त करने के पश्चात् ही ज्ञान का सम्प्रेषण करते हैं। तभी उनके वाक्य आर्ष हैं, आप्त हैं और तभी वे आप्त-वाक्य शब्दप्रमाण बनते हैं। आप्त शब्द का अर्थ ही है –

''साक्षात्करणम् व्याप्तिः तया प्रवर्तते इति आप्तः।''

वेदों को तो शब्द-प्रमाण माना ही गया है किन्तु जो आप्त-पुरुषों के वाक्य या ग्रन्थों को भी आगम की श्रेणी में रखते हुए शब्द-प्रमाण मानते हैं उनके लिये न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्ट ने एक मापदण्ड अपने एक नाटक 'आगमाडम्बर' और 'न्यायमञ्जरी' में दिया है। यथा - वह ग्रन्थ या वाक्य किसी लोभ से ग्रसित न हो, लोगों में किसी प्रकार का क्षोभ या क्रोध उत्पन्न न करे, किसी की भावना को ठेस न पहुँचे या समाज में अव्यवस्था न फैलाये। जैसे दामोदर-गुप्त का लिखा हुआ नाटक 'कुट्टनीमतम्' जिसमें दामोदर कहते हैं कि जिन युवतियों को वेश्यावृत्ति में जाना है उनको वृद्ध स्त्रियों के द्वारा सिखाया जाना चाहिये। जयन्त इसको आगम-प्रमाण नहीं मानते – **''यत् किञ्चित् प्रमाणं कुट्टनीमतम्?''**[11]

- **प्रत्यक्ष प्रमाण**

नाटक बालभारतम् का दार्शनिक विवेचन करते हुए हमें प्रत्यक्ष प्रमाण की स्वीकार्यता भी प्राप्त होती है। प्रत्यक्षतः तो कहीं प्रमाणादि की चर्चा नहीं हुई है किन्तु संवादों में इनका पुट प्राप्त हो ही जाता है। जब कर्ण भार्गव धनुष को उठाकर लक्ष्य वेधने के बारे में सोच रहे होते हैं तो वे कहते हैं कि यह धनुष निश्चित ही प्रभावशाली है क्योंकि इसके द्वारा मेरे नेत्र और ज्ञान दोनों ही खुल गये हैं। इस धनुष के प्रभाव से राजाओं का प्रभाव तो प्रत्यक्ष दिख ही रहा है साथ ही उनके भाव भी प्रत्यक्ष की तरह जान रहा हूँ।[12]

चूंकि भाव मनुष्य के आन्तरिक जगत् से सम्बन्ध रखते हैं अतः बाह्य इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय तो नहीं है । किन्तु फिर भी यहाँ कर्ण उनको प्रत्यक्ष की तरह जान रहे हैं, इसका तात्पर्य है कि मानस प्रत्यक्ष हो रहा है। चक्षु से घट का तो संयोग सन्निकर्ष से ज्ञान हो ही जाता है किन्तु आन्तरिक जगत् के भावों का प्रत्यक्ष संयुक्त समवाय सन्निकर्ष से होता है। प्रत्यक्ष तीन प्रकार का होता है –सामान्य प्रत्यक्ष (बाह्य इन्द्रिय जन्य और आन्तरिक इन्द्रिय मनसजन्य), ज्ञान प्रत्यक्ष और योगज प्रत्यक्ष।[13]

- **शुद्ध ज्ञान 'प्रमा' का माहात्म्य –**

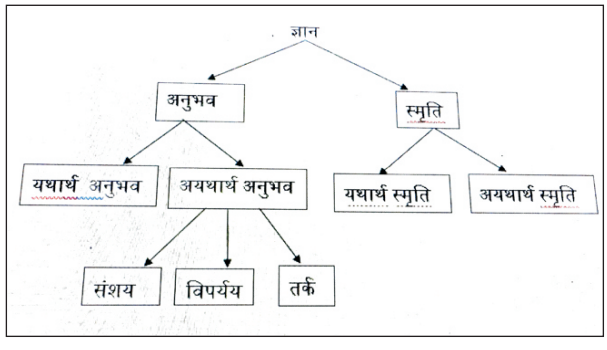
ज्ञानमीमांसा का आधार है यथार्थ ज्ञान अर्थात् शुद्ध ज्ञान जिसे प्रमा भी कहा जाता है और सरल भाषा में कहा जाये तो प्रमा तक पहुंचने का साधन ही प्रमाण है – **'प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम्'**। इसी शुद्ध ज्ञान का माहात्म्य बतलाते हुए महाकवि राजशेखर कहते हैं, ''शुद्ध ज्ञान, अज्ञान एवं मिथ्या ज्ञान का नाश करके हर विपत्ति का नाश करता है। यथार्थ ज्ञान यशवर्द्धन करता है, किसी भी प्रकार का यदि अपयश है तो उसे भी दूर करके संस्कारों को और आत्मा तक को पवित्र कर देता है।''[14]

मूलतः दर्शन में भी प्रमा का कार्य यही बताया गया है – यथार्थ का ज्ञान करवाना। जब यथार्थ तथ्य ज्ञात हो जाता है तो प्रत्येक प्रकार के संशय का निवारण भी हो जाता है और उस संशय के कारण यदि कोई नकारात्मक या विपरीत व्यवहार[15] भी है तो वह भी समाप्त हो जाता है। यही नकारात्मक और विपरीत व्यवहार अपयश का भी भागी बनाता है और फलतः विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

- **आत्मज्ञान**

महाकवि राजशेखर आत्मा की भी बात करते हैं जो कि सभी दर्शन में वाद[16] का मुख्य बिन्दु है। शुद्ध ज्ञान होने का एक परिणाम महाकवि आत्मा की पवित्रता भी बतलाते हैं[17] अर्थात् तत्त्व-ज्ञान होना जिसका उत्तरोत्तर परिणाम है - स्वरूप-अवस्थान।[18] जब उस परम तत्त्व का शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब द्रष्टा अपने स्वरूप का भी ज्ञान प्राप्त करता है। यह भी ज्ञान हो जाता है कि यह भौतिक शरीर जीव का मूल स्वरूप नहीं है। जीव और ब्रह्म अथवा परम् सत्ता में तत्त्वतः कोई भेद नहीं रह जाता है।

न्याय दर्शन में ज्ञान को आत्मा का गुण बतलाया गया है। ज्ञान दो प्रकार का होता है – स्मृति एवं अनुभव। संस्कार मात्र से जन्यज्ञान स्मृति कहलाता है और उससे भिन्न ज्ञान अनुभव कहलाता है। अनुभव दो प्रकार का है - यथार्थ और अयथार्थ। यथार्थ ज्ञान को ही प्रमा कहा जाता है और संशय, विपर्यय और तर्क अयथार्थ अनुभव हैं ।



नियमतः गुण (ज्ञान) का प्रभाव गुणी (आत्मा) पर तो होता ही है। ध्यातव्य है कि यथार्थ अनुभव (प्रमा) और अयथार्थ अनुभव (अप्रमा) दोनों ही ज्ञान कहलाते हैं। अब यदि अयथार्थ ज्ञान आत्मा में होगा तो

तय है आत्मा पवित्र स्वरूप में तो नहीं होगी और तभी जीव अनित्य शरीर को नित्य, अज्ञान को ज्ञान, मिथ्या को सत्य ऐसा समझने लगता है। शुद्ध ज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान होने पर आत्मा भी शुद्ध हो जाती है अर्थात् आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेती है।

- **अयथार्थ ज्ञान 'संशय' का प्रभाव–**

जब कर्ण स्वयंवर में धनुष चढ़ाकर लक्ष्य वेधने का विचार कर रहा होता है तब उसके मन में विचार आता है कि भार्गव धनुष को चढ़ाना कठिन कार्य तो नहीं है किन्तु उनके मन में संशय यह भी है कि शायद यह मुश्किल ही नहीं असम्भव ही हो। संशय अयथार्थ ज्ञान का ही एक प्रकार है जैसा कि ऊपर प्रदर्शित भी किया गया है। संशय का लक्षण है – **एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्ध-नानाधर्मावगाहि ज्ञानं संशयः।**[19] यहाँ धर्मिन् है – धनुष और इसी में विरुद्ध और नाना धर्म हैं – 1. प्रत्यञ्चा चढ़ाना कठिन कार्य नहीं है और 2. इसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव कार्य है। ये दोनों धर्म परस्पर विरोधी हैं और इसलिए संशय में अनिश्चितता होती है और विवेकशील व्यक्ति तो उस कार्य में प्रवृत्त हो ही नहीं पाता है। इस संशय के कारण ही कर्ण धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाने के लिये उद्धत नहीं होता है क्योंकि वह स्वयं ही मन ही मन में कहता है –

संशये न च सतां प्रवृत्तयः..।[20]

आचार मीमांसीय दृष्टि से विवेचन

- **सन्मार्ग का पालन –**

आचार मीमांसा में नैतिक मूल्यों इत्यादि का विवेचन किया जाता है और वह बालभारतम् में अनेकों बार देखने को मिलता है। जैसे कि एक प्रसङ्ग आता है जब दुर्योधन का भाई विकर्ण द्रौपदी के चीर हरण के समय दुःशासन और दुर्योधन को समझाता है कि यह अधिकार तुमको किसने दिया और ऐसा करते हुए क्या आप सन्मार्ग का त्याग नहीं कर रहे हैं और मैं स्वयं इस अन्याय को सहन नहीं कर सकता।[21] यहाँ तक कि नैतिकता के पालन के लिये वो अपनी गदा से उन अधर्मियों का वध करने को भी उद्यत हो जाता है ।[22]

- **नारी गरिमा और सामाजिक न्याय**

बालभारतम् में नारी गरिमा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण है। द्रौपदी एक अबला नहीं, बल्कि बुद्धिमती और साहसी प्रश्नकर्ता के रूप में प्रस्तुत होती हैं। वह सभा में प्रश्न करती हैं कि मौन रहकर सभा करना जब सम्भव नहीं है तो मेरे चीरहरण के विषय में सब कुछ देखकर भी मौन क्यों हैं? अपने विषय में निर्णय करने के लिये सभी सभासदों को आग्रह करती हैं।[23]

यह न केवल सभा के स्तब्ध लोगों पर एक प्रश्न है, बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर भी। द्रौपदी की वाणी न्याय और नैतिकता की मूकता के विरुद्ध विद्रोह है। साथ ही उस परिस्थिति में विकर्ण, कौरव होते हुए भी इस अन्याय का पुरजोर विरोध करता है। यह दृश्य आज के संदर्भ में नैतिकता, स्त्री अधिकारों और न्याय की अवधारणा के लिए प्रेरणादायक है।

- **कर्म सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास**

महाकवि राजशेखर के इस नाटक बालभारतम् में दर्शन के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'पुनर्जन्म' की झलक भी मिल ही जाती है जब कवि स्वयं बतलाते हुए कह रहे हैं कि वे प्राचीन काल में वाल्मीकि थे और पुनः भर्तृमेण्ठ बने और तदनन्तर भवभूति हुए। वे ही इस समय राजशेखर के रूप में स्थित हैं।[24] दर्शन में पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्मसिद्धान्त से सम्बन्धित है। कर्मों के अनुसार संस्कार बनते हैं और उनके आधार पर कर्म फलों के रूप में जाति, आयु, भोग का निर्धारण होता है।[25] और यह क्रम मोक्ष हो जाने तक चलता है। सम्भव है कि ज्ञान

जिज्ञासु के रूप में राजशेखर की जिज्ञासा शान्त न होने के कारण उनका ज्ञान जिज्ञासु के रूप में पुनर्जन्म होता रहा।

नाटक में भाग्यवाद और कर्मवाद का द्वंद्व बार-बार उभरता है। युधिष्ठिर भाग्य को दोष देते हैं, भीम कर्म की शक्ति पर बल देते हैं और इसीलिये भीम भाग्य पर कुछ न छोड़ते हुए दृढ़ प्रतिज्ञा करता है कि जब तक दुःशासन का वध करके उसके वक्षस्थल के रुधिर से द्रौपदी के केशों को धोकर नहीं बांधेगा, तब तक उसके केश खुले ही रहेगें। राजशेखर के पात्र स्पष्ट करते हैं कि केवल भाग्य या दैव पर निर्भर होना मानव की दुर्बलता है। यह हमें गीता के सिद्धांत 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' की याद दिलाता है। इस प्रकार नाटक मानव की आत्म निर्भरता को ही प्रधान मानता है।

- **चरित्रों द्वारा प्रस्तुत जीवन मूल्य –**

बिना आचार के विचार को भारतीय दर्शन में व्यर्थ और भार माना गया है – ज्ञानं क्रियां विना भारः। ज्ञान (सिद्धान्त) और क्रिया (व्यवहार/आचार) में भेद स्वीकार नहीं किया गया है। इसीलिये आचार मीमांसा में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेचन किया जाता है और आधार ऐसे सम्यक् चरित्र ही होते हैं जो कर्त्तव्य का पालन करते हैं।

बालभारतम् में पाण्डवों में धर्मराज युधिष्ठिर, कौरवों में विकर्ण इत्यादि पात्रों के चरित्र जीवन-मूल्यों को प्रस्तुत करते हैं। महाकवि राजशेखर युधिष्ठिर के उन्नत चरित्र और कर्मों के कारण उनको 'धर्ममय महाद्रुम' बोलते हैं – 'युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः...'[26] युधिष्ठिर अपने वचनों का पालन भी सदैव करते थे और इसीलिये धृतराष्ट्र के द्वारा द्यूत में सम्मिलित होने के आग्रह को भी उन्होनें नहीं टाला क्योंकि –

राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः। आहूतो न निवर्तेत द्युतादपि रणादपि।।[27]

और जब वे द्यूत बीच में छोड़ना चाहते थे तब भी शकुनि ने यही बात कहकर उनको आगे खेलने पर मजबूर कर दिया।[28] इसी प्रकार विकर्ण का चरित्र भी सन्मार्ग का पालन करते हुए दिखाई पड़ता है। नारी का सम्मान करना, अपराध को सहन न करना, धर्म का पालन करना, कर्त्तव्य पथ पर चलना इत्यादि नैतिक मूल्यों की शिक्षा विकर्ण के चरित्र के माध्यम से दी गई है।[29]

बालभारतम् में दार्शनिक सम्प्रदाय का प्रभाव

यहाँ इस नाटक में स्पष्ट रूप से तो किसी दार्शनिक सम्प्रदाय विशेष का प्रभाव न तो बतलाया गया है और न ही स्वतः दिखाई ही पड़ता है परन्तु दार्शनिक विवेचन के इन उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि यह वस्तुवादी दार्शनिक सम्प्रदाय न्याय-वैशेषिक के समीप है।

4. निष्कर्ष

राजशेखर स्वयं एक उच्च कोटि के विद्वान् थे, यह उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के अवलोकन से पता चलता है। भले ही बालभारतम् अपूर्ण रूप में प्राप्त होता है किन्तु राजशेखर का ज्ञान, वैदग्ध्य पदे-पदे परिलक्षित होता है। वैसे तो बालभारतम् उनके इतिहास-पुराण के ज्ञान का निदर्शक है किन्तु एक लघु नाटक होते हुए भी भारतीय दर्शन, जीवन-दर्शन, नारी सम्मान, कर्म की सत्ता, ईश्वर भक्ति और नैतिक प्रश्नों का उत्कृष्ट संयोजन प्रस्तुत करता है। इस नाटक के माध्यम से लेखक ने समाज, नीति और धर्म पर भी गंभीर प्रश्न उठाए हैं। यह रचना न केवल साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान् है, बल्कि दार्शनिक विमर्श की दृष्टि से भी प्रेरणादायक है। यह आज के संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी अपने समय में थी। और इसी से स्पष्ट होता है कि राजशेखर के ज्ञान का ऐसा व्यापक स्तर था कि उन्होनें कविराज पद प्राप्त किया।

संदर्भ

1. भारतीय दर्शन– डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र, पृ. 9-11
2. विद्धि नःषट् प्रबन्धान् बालरामायण 1/12
3. बालभारतम्– प्रथम अङ्क
4. भारतीय दर्शन डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र, पृ. 11
5. बालभारतम्, 2/5
6. धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्- वही 1/18 पृ. 13
7. न्यायवार्त्तिक 1.1.1
8. परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः - बालभारतम्, 1/9 - पृ. 7
9. न्यायसूत्र - 1/1/12
10. बालभारतम् 1/10, पृ. 8
11. न्यायमञ्जरी, 4/5/111
12. महाप्रभाव भार्गवं धनुर्यदमुना मम चक्षुर्जन्मनुन्मीलितं येनात्र प्रभावं भावं च भूपतीनां प्रत्यक्षमिव पश्यामि। - बालभारतम् द्वितीय अङ्क पृ. 31
13. तर्कसङ्ग्रहः गुण प्रकरण
14. श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि यशांसि दुग्धे मलिनं प्रमार्ष्टि। संस्कारशौचेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः- बालभारतम्, 1/9 - पृ. 7
15. दर्शन में व्यवहार तीन प्रकार का बतलाया गया है, प्रवृत्ति, निवृत्ति और औदासीन्य।
16. तत्त्वबुभुत्सोः कथा वादः। - तर्कभाषा
17. बालभारतम्, 1/9
18. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्- योगसूत्र 1/3
19. तर्कसङ्ग्रहः- गुण प्रकरण
20. बालभारतम् ,1/39
21. ....एव भवता सद्वर्त्म यत्त्ज्यते ।....दुर्वृत्तिं क्षमते न कस्यचिदयं भ्राता विकर्णस्तव - वही 2/43
22. वही - 2/45
23. हंहो सभामध्यस्थिता गुरवो नरेन्द्राश्च। द्रौपदी निर्णयं पश्यति । - वही– द्वितीय अङ्क - पृ. 39
24. बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्। ततः स्थितो यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः - बालभारतम्, 1/12
25. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः- योगसूत्र 2/13
26. (अ) बालभारतम् - 2/4-5
    (ब) युधिष्ठिरः धर्मः पुण्यं तन्मयः तत्स्वरूपं, महान् अननुभेद्यः द्रुमः वृक्षः गङ्गा टीका - बालभारतम् 2/5
27. बालभारतम् 2/7, 13
28. दुर्योधने क्रीडति कथं धर्मात्मजो विरमति। नन्वधुनैव प्रतिज्ञातम्। आहूतो न निवर्तेयं द्यूतादपि रणादपीति। -बालभारतम्– द्वितीय अङ्क - पृ.81
29. बालभारतम्,2/43-49

27

'बालभारतम्' में अभिव्यक्त महाभारत का नाटकीय स्वरूप

शिल्पा सिंह *

महाभारताश्रित संस्कृत-साहित्य में नाट्य रचना करने वाले प्रभा-भास्कर प्रोज्ज्वल नक्षत्र रूप यायावर वंशीय महाकवि राजशेखर का नाम दृष्टिगत होता है। जिनके अद्भुत वैदुष्य एवं पाण्डित्य को देखकर उनके समकालीन शंकर वर्मा ने उन्हें वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार कहा था। जिसे स्वयं राजशेखर ने बालरामायण में उद्धृत किया है -

बभूववल्मीकभवः पुराकविस्ततः प्रपेदेभुविभर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्योभवभूतिरेखया स वर्ततेसम्प्रतिराजशेखरः।।[1]

महाकवि राजशेखर द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या सम्प्रति पांच दृष्टिगत होती है - कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, बालभारत तथा काव्यमीमांसा।

बालभारत को 'प्रचण्डपाण्डव' के नाम से भी जाना जाता है। इसका वर्णन बालभारत नाटक के प्रथम अंक में भी उद्धृत है। नाटक में सूत्रधार सूचित करता है कि -

विदितमेतत्तुभवतांयदुतनाट्याचार्येणरङ्ग विद्याधरेण प्रतिज्ञातम्-
राजशेखरकवेर्महात्मनो बालभारतमिदंहिनाटकम्। योऽभिनेष्यतिरसैर्निरन्तरंमत्सुतांसे परिणेष्यतिक्षितौ।।
(आकाशे) तत्रभवन्तः किंब्रूथः। इदंतद्बालभारतं ''प्रचण्डपाण्डवमिति'' यस्यसञ्ज्ञान्तरम्।[2]

अर्थात् यह तो आप लोगों को विदित ही है कि नाट्याचार्य रंगविद्याधर ने यह प्रतिज्ञा की है कि- 'महात्मा राजशेखर कवि के रस से सर्वथापूर्ण इस बालभारत नाटक का जो पृथ्वी पर अभिनय करेगा वह मेरी कन्या से विवाह करेगा'।

(आकाशवाणी होती है) श्रीमान् लोग! क्या कह रहे हैं कि यह बालभारत है? इसका प्रचण्डपाण्डव भी नाम है। सम्प्रति बालभारत दो अंकों में उपलब्ध है। कथावस्तु महाभारत से गृहीत है। द्रौपदी स्वयंवर, कपटद्यूत से राज्य हरना, द्रौपदी का सभा में अपमान तथा पाण्डवों का वन गमन कथा को महाकवि ने अंकित किया है। बालभारत के प्रथम अंक में ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन लक्ष्य वेधकर स्वयंवर से द्रौपदी से विवाह कर ले जाते हैं। नाटक के प्रारम्भ में वाल्मीकि और व्यास का संवाद होता है। दोनों मुनियों के इतिहास ग्रन्थ रामायण और महाभारत का महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है। महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास महाकवि वाल्मीकि की रामायण की प्रशंसा के साथ वाल्मीकि में श्रद्धा व्यक्त करते हैं। इस विषय में यह प्रसंग उद्धृत है -

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
असिस्टेंट प्रोफेसर- संस्कृत विभाग, कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वाल्मीकिः - अष्टादशपुराणसङ्ग्रहकारिन्! महान्वर्तते तवेतिहासो भारतम्।

व्यासः - (सलज्जम्) पुनः पुनरविनयोद्घाटनेन लज्जयति मामुपाध्यायः। किं वयं रामायणकवेः पुरतः।

ये विद्यापरमेश्वराः स्तुतधियो ये ब्रह्मपारायणे। येषां वेदवदावृतास्मृतिमयी वाग्लोकयात्रविधौ।
स्नाताः स्वर्गतरङ्गिणीमपि सदा पूतांपुनन्त्यत्रता व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदो रामायणस्यास्यते।।
किञ्च, भगवन्प्रथमकवे! यदुक्तिमुद्रासुहृदर्थवीथी कथारसोयश्चुलुकैश्चुलुक्यः।
कर्णामृतस्यन्दि च यद्वचांसि रामायणंतत्कवितृन्पुनाति।।

वाल्मीकिः - वत्स कृष्णद्वैपायन! कस्य पुनः कवेर्वचोभारतस्य षोडशीमपि कलां कलयति।[3] यतः -

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।[4]

इन संस्कृत उद्धरणों का तात्पर्य है कि महाकवि वाल्मीकि व्यास को उनकी रचना महाभारत को महान रचना कहते हैं और वहीं व्यास जी आदि कवि वाल्मीकि को कहते हैं कि आपकी रचना रामायण तो कवियों को पवित्र करती है। इस पर वाल्मीकि कहते हैं कि वत्स कृष्ण द्वैपायन! किस कवि की वाणी महाभारत की सोलहवीं कला की तुलना कर सकती है, अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो यहाँ है वह अन्यत्र भी है पर जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि महाभारत पर रामायण का प्रभाव है। महाभारत के वन पर्व में युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिये वाल्मीकि रामायण की पूरी कथा रामोपाख्यान (वनपर्व 292-99) के रूप में मार्कण्डेय मुनि द्वारा सुनायी गयी है। बालभारत के कथानक में महाकवि राजशेखर का नानाशास्त्रों में अपूर्वपाण्डित्य, देशकाल का ज्ञान और वर्णन-चातुर्य इस रूपक में पदे-पदे परिलक्षित होता है। महाकवि राजशेखर ने मार्कण्डेय मुनि का अनुसरण करते हुये अपनी नाट्य रचना में रामायण के प्रणेता वाल्मीकि तथा महाभारत के प्रणेता व्यास का उल्लेख किया है। बालभारत के द्वितीय अंक के दो श्लोक अक्षरशः महाभारत में उपलब्ध होते हैं-

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।।
दुर्योधनो मन्युमनो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रो मनीषी।।[5]

यहाँ यह परिलक्षित होता है कि महाकवि राजशेखर को महाभारत का इतना अधिक अभ्यास था कि जब वह महाभारत आधारित नाटक बालभारत की रचना करने लगे तो मध्य में अनायास ही महाभारत के अनेक श्लोक संगृहित होते चले गये हैं। यहाँ इन दोनों श्लोक का तात्पर्य है कि- युधिष्ठिर धर्ममय महान् वृक्ष हैं, जिसके स्कन्ध अर्जुन तथा शाखा भीमसेन हैं। नकुल एवं सहदेव उसके समृद्ध पुष्प फल हैं तथा उस धर्ममय वृक्ष के मूल श्रीकृष्ण ब्रह्म तथा ब्राह्मण हैं। इसके विपरीत दुर्योधन मन्युमय (क्रोधयुक्त) वृक्ष है और उसका स्कन्ध कर्ण तथा शाखायें शकुनि है, दुःशासन उस वृक्ष का समृद्ध पुष्प- फल है तथा अविवेकी धृतराष्ट्र उसके मूल हैं। वाल्मीकि-व्यास-संवाद के पश्चात् द्रौपदी स्वयं वर का प्रसंग आता है। द्रौपदी स्वयं वर सभा में प्रवेश करती है और बन्दी उच्च स्वर में उद्घोषणा करता है- **सकलभुवनरक्षाः स्रस्ततन्द्रा नरेन्द्राः श्रृणुत गिरमुदारामादराच्छ्रावयामि। इह हि सदसि राधां यः शरव्यां करोति स्मरविजयपताका द्रौपदी तत्कलत्रम्।।[6]**

अर्थात् हे समस्त लोकों की रक्षा करने वाले राजाओं! प्रमादरहित होकर सुनो। इस उदारवाणी को आदरपूर्वक सुना रहा हूँ। इस सभा में जो राधा को बाण का लक्ष्य बनायेगा, कामदेव की विजयपताका स्वरूप द्रौपदी उसकी स्त्री होगी।

यहाँ बन्दी द्रुपद राज्यसभा का सेवक है जिस 'राधा' का लक्ष्य बनाया जाना है उस 'राधा' का तात्पर्य टीका में- 'मत्स्यलक्ष्यमित्यर्थः' अर्थात्मत्स्य (मछली) किया गया है।

कथानक में अर्जुन एक बार में लक्ष्य भेदकर देते हैं। यद्यपि उस समय अर्जुन क्षत्रिय वेशधारी न होकर ब्राह्मण वेश में लक्ष्य का भेदन करते हैं जिससे राज्यसभा में कोलाहल होने लगता है कि-

रे रे ब्राह्मण! मुञ्च विप्लवमिमं श्रुत्यर्थवीथीं स्मर, क्षत्रस्याथ ननु स्वयंवरविधावेकाधिकारः स्थितः।
तच्चेन्नाद्रियसे स्मरार्द्रहृदयो दण्ड्यस्त्वमुर्वीभुजां, तत्सङ्कर्षणकार्मुकं समुदितानैतेक्षमन्ते नृपाः।।[7]

अर्जुन पर आक्षेप करते हुये राजसभा के राजागण कहते हैं- हे हे ब्राह्मण! धर्म का अतिक्रमण छोड़ दो, वेदोक्त मार्ग का स्मरण करो, स्वयंवर में केवल एक क्षत्रिय मात्र के अधिकार की विधि है, यदि काम के वशीभूत होकर तुम इसका अनादर करोगे तो अवश्य ही इस राज्यसभा में दंडनीय होंगे, यहाँ एकत्रित राजा लोग तुम्हारे द्वारा चढ़ाये गये धनुष के अपराध को क्षमा नहीं करेंगे अर्जुन के इस कौशल को देखकर बन्दी आश्चर्यचकित होता है- **वीर्यं वचसि विप्राणां क्षत्रियाणां भुजद्वये। इदमत्यन्तमाश्चर्यं भुजवीर्याहि यद् द्विजाः।।**[8]

अर्थात् ब्राह्मणों के वचन में वीर्य होताहै, क्षत्रियों के दोनों भुजाओं में वीर्य होता है। किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य है कि यह ब्राह्मण अपनी भुजाओं में वीर्यधारण करता है। इस प्रकार बालभारत के प्रथम अंक के स्वयंवर की कथा पूर्ण होती है। बालभारत के उपलब्ध द्वितीय अंक में धृतराष्ट्र की सभा में कौरवों-पाण्डवों के मध्य द्यूतक्रीडा का वर्णन है। प्रारम्भ में ही विदुर द्यूतक्रीडा की निन्दा करते हैं और बताते हैं कि यह सभी विपत्तियों का मूल है-

श्रीनिर्वासनडिण्डिमः क्वणरवः सद्मस्थिरंछद्मनां, सत्योत्सारणघोषणा तत इतो लज्जानिवापाञ्जलिः।
द्वारं ह्यार्ययशः पराभवपदं गोष्ठीगरिष्ठापदां, द्यूतं दुर्नयवारिधिर्निपततां कस्तत्र हस्तग्रहः।।[9]

तात्पर्य यह है कि यह द्यूत ऊँचे शब्दों से महालक्ष्मी के निकालने की भेरी है एवं कपट का निश्चित घर है, उधर सत्य को दूर करने की घोषणा है तो इधर लज्जा के लिये पिण्ड एवं जल का तर्पण है, द्यूत श्रेष्ठ यश को पराभूत करने का द्वार है और भारी विपत्ति का सभास्थल है, अधिक क्या कहें गिरने वालों के लिये तो यह दुर्नीति का समुद्र है जहाँ कोई अवलम्ब नहीं। विदुर के बारम्बार मना करने पर भी सभा में द्यूतक्रीडा का आयोजन होता है। युधिष्ठिर को द्यूत खेलने का निमन्त्रण भेजा जाता है। जिसे युधिष्ठिर स्वीकार करते हैं। दुर्योधन और युधिष्ठिर की यह द्वैत द्यूतक्रीडा होती है। दुर्योधन की ओर से उसका मामा गांधार नरेश शकुनि द्यूत का संचालन करता है। कपट संचालन से युधिष्ठिर सभी दावों को हारते जाते हैं। दासी, दास, धन, राज्य फिर भाइयों और स्वयं को तथा अन्त में द्रौपदी को भी हार जाते हैं। रजस्वला द्रौपदी को अपमानित करने के लिये दुःशासन सभा में उसको विवस्त्र करने का असफल प्रयास करता है। भगवत्कृपा से द्रौपदी की लज्जा बच जाती है। द्रौपदी सभा में प्रश्न उपस्थित करती है-[10]

सभामध्यस्थिता गुरवो नरेन्द्राश्च! द्रौपदी निर्णयं पश्यति।
यद्यहं हारिता पूर्वं भवामि द्यूत किङ्करी। आत्मा वा हारिताः पूर्वं तदहं नास्मि हारिता।।[11]

दुर्योधन का अनुज विकर्ण द्रौपदी के प्रश्न का समर्थन करता है। विकर्ण धर्मप्रिय है, सन्मार्गगामी है। अन्ततः सर्वथा पराजित पाण्डव द्वादश वर्ष के अरण्यवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के लिये प्रयाण करते हैं। इस प्रकार बालभारत इन दो अंकों में समाप्त होता है। द्रौपदी के स्वयंवर से प्रारम्भ होकर द्यूतक्रीडा और पाण्डवों का द्यूत में हारने, अरण्य एवं अज्ञातवास पर्यन्त उपलब्ध अंश संस्कृत-साहित्य का महनीय नाट्य रत्न है। साथ ही महाकवि राजशेखर के पाण्डित्य एवं काव्यकौशल का सफल दिग्दर्शन है। संस्कृत-साहित्य में

नाटक के दो नाम 'बालभारत' और 'प्रचण्डपाण्डव' प्राप्त होते हैं। प्रचलित नाम 'बालभारत' है, क्योंकि महाकवि राजशेखर के बालरामायण के समान बालभारत की कथा भी दृष्टिगोचर होती है। प्रचण्ड पाण्डव नाम इस रूप में परिलक्षित होता है कि छलयुक्त द्यूतक्रीडा में पाण्डवों के हारने और द्रौपदी का सभा में अपमान होने के पश्चात् पाण्डव क्रमशः कौरवों के समूलनाश की अलग-अलग प्रतिज्ञा लेते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस नाटक का यह दूसरा नाम 'प्रचण्डपाण्डव' पड़ा होगा। बालभारत नाटक पर दृश्य नाटक के रूप में दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि नाटक में मुख्य रूप से पांच दृश्य प्राप्त होते हैं। प्रथम- नाट्याचार्य रंग विद्याधर ने प्रतिज्ञा की कि महाकवि राजशेखर की नाट्यकृति बालभारत नाटक का पृथ्वी पर जो अभिनय करेगा उससे मैं अपनी कन्या का विवाह करूंगा। द्वितीय- महाकवि वाल्मीकि और महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास का परस्पर संवाद। तृतीय- द्रौपदी का स्वयंवर। चतुर्थ- द्यूत सभा का आयोजन। पञ्चम- द्यूत में युधिष्ठिर द्वारा सबकुछ हार जाने तथा द्रौपदी का भरी सभा में अपमान होने पर पाण्डवों द्वारा कौरवों के समूल नाश की कठिन प्रतिज्ञा। इन दृश्यों के कारण पूर्णरूप से न प्राप्त होने पर भी बालभारत की महनीयता, नाट्य की रोचकता अत्यधिक वृद्धि को प्राप्त होती है।

सन्दर्भ -

1. *बालरामायण 1/16, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
2. *बालभारत 1/8, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
3. *बालभारत 1/16,17, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
4. *महाभारत 1/62/53, अनुवादक- पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर।*
5. *बालभारत 1/18, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
6. *महाभारत 1/1/110,111, अनुवादक- पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री, गीता प्रेस गोरखपुर।*
7. *बालभारत 2/5,6, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
8. *बालभारत 1/32, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
9. *बालभारत 1/82, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
10. *बालभारत 1/88, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*
11. *बालभारत 2/4, व्याख्याकार- डॉ. गंगासागर राय, प्रकाशक- चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1989.*

28

'बालभारतम्' में महाभारतीय कथा का प्रभाव

वर्षा खण्डेलवाल *

संस्कृत साहित्य परिदृश्य में काव्यशास्त्रियों और नाटककारों में आचार्य राजशेखर का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार आचार्य राजशेखर का काल 885 ई. से 975 ई. के लगभग ही स्थिर करते हैं। कवि राजशेखर यायावर वंश में उत्पन्न हुए थे। यह यायावर वंश ब्राह्मणों का होने के कारण राजशेखर ब्राह्मण जाति से थे। प्राचीनकाल में धर्म शास्त्रकारों ने यायावर श्रेणी गृहस्थों की बतलाई है। बोधायन[1] ने यायावर के विषय में कहा है कि यायावर गृहस्थ अत्युत्तम जीविका चलाने वाले होते हैं। यायावर वंश अपनी धार्मिकता, नैष्ठिकता तथा सदाचार के लिये सदा से प्रसिद्ध है। राजशेखर ने स्वयं को बारम्बार यायावरीय कहा है। उनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी चौहान वंशीया क्षत्रिया थी। अवन्तिसुन्दरी का कुल अन्य चौहानों में मूर्धन्य माना जाता था-

चाहुमाणकुलमोलिमालिआराउमेहरकइंदगेहिणी। भत्तुणोकिइमवतिसुन्दरीसापउजइउमेअमिच्छइ।।[2]

अवन्तिसुन्दरी विदुषी महिला थी। काव्यमीमांसा ग्रन्थ में अवन्तिसुन्दरी के मतों का उल्लेख मिलता है। राजशेखर ने 'कर्पूरमंजरी' की रचना अवन्तिसुन्दरी के लिये की थी। उनकी साहित्यिक प्रतिष्ठा को बनाये रखने में इनकी धर्मपत्नी का बहुत बड़ा योगदान प्रतीत होता है।

वर्तमान में आचार्य राजशेखर द्वारा प्रणीत पाँच रचनायें उपलब्ध होती हैं- 'बालरामायण', 'बालभारत', 'कर्पूरमंजरी', 'विद्धशालभंजिका' और 'काव्यमीमांसा'। इनमें 'बालरामायण' और 'बालभारत' नाटक हैं, 'कर्पूरमंजरी' सट्टक है, 'विद्धशालभंजिका' नाटिका है तथा 'काव्यमीमांसा' काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। इन ग्रन्थों के आधार पर कह सकते हैं कि राजशेखर के अध्ययन की परिधि में सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय आ जाता है। वे साहित्य-नायक थे। उन्हें नवम शताब्दी के साहित्यकारों की कोटि में अग्रणी माना जा सकता है। नाटककार राजशेखर के पूर्व में विद्यमान नाट्य परम्परा का प्रभाव उनकी नाट्य कृतियों में स्पष्ट झलकता है।

राजशेखर के दो नाटक 'बालरामायण' और 'बालभारत' के मूल स्त्रोत क्रमशः रामायण और महाभारत हैं। राजशेखर के पूर्व भी इन दोनों काव्यकथाओं के आधार पर निर्मित काव्यों और नाटकों की बहुलता थी।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक आचार्य- संस्कृत, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय (अलवर) राज.*

'बालभारत' नाटक का स्वतंत्र संस्करण उपलब्ध नहीं है। 'काव्यमाला सीरीज नं. 4' के अन्तर्गत वासुदेव व्याख्या समेत श्री दुर्गाप्रसाद तथा श्री पाण्डुरंग परब द्वारा सन् 1887 में बम्बई से प्रकाशित 'कर्पूरमंजरी' के संस्करण से संलग्न इस ग्रन्थ का एकमेव संस्करण उपलब्ध है। 'बालभारत' नाटक में दो अंक प्राप्त होते हैं। इस नाटक को अपूर्ण माना गया है। राजशेखर के समय में एक विशेष राजनीतिक सक्रान्ति का आविर्भाव हुआ था। इसकी प्रतिच्छाया 'बालभारत' द्वियङ्कीय नाटक में दृष्टिगत होती है। इस नाटक का कथानक 'कौरव और पाण्डवों'-दो राज परिवारों के राज्यारोहण के कलह को लेकर चलता है। यह कथानक महाभारत पर आधारित है, फिर भी नाटककार राजशेखर के समसामयिक युग की समस्या से भी सम्बन्धित है। तात्पर्य यह है कि राजशेखर के समसामयिक राजा महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों-महीपाल और भोज द्वितीय में राज्यारोहण के लिये संघर्ष छिड़ गया था। वस्तुतः कौरव और पाण्डवों के युद्ध-कलह के ब्याज से महेन्द्रपाल के दोनों पुत्रों के बीच उत्पन्न संघर्ष का भी बालभारत में स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। बालभारत की प्रस्तावना में इस कलह का अप्रत्यक्ष संकेत मिलता है- **''भवदनुचरा पंचभ्रातरोवयम् पंचभिर्नामसमर्थास्तदभिनये। किपुनरस्माकपितृव्यपुवा शतसन्तिभरतपुत्रा। ते च तदभिनेतुमिच्छन्तिन चते शक्नुवन्ति। तन्निमित्त च महदस्माभि सह वैरवर्तते।''**[3]

'बालभारत' नाटक दो अंक का अपूर्ण नाटक है। इस नाटक के प्रथम अंक में द्रौपदी स्वयंवर तथा द्वितीय अंक में द्यूतक्रीडा एवं द्रौपदी वस्त्रापहरण की कथा वर्णित है। इस नाटक के राधावेध नामक प्रथम अंक का प्रारम्भ शिव-स्तुति युक्तनान्दी से होता है। सूत्रधार 'बालभारत' अथवा 'प्रचण्ड पाण्डव' के विजय का परिचय देता है। प्रमुख दृश्य में युधिष्ठिर, भीमसेन आदि ब्राह्मण का वेश धारण कर स्वयंवर के मण्डप में उचित स्थान ग्रहण करते हैं। स्वयंवर मण्डप महर्षियों, ब्राह्मणों एवं राजाओं से भरा पड़ा है। द्रौपदी स्वयंवरोचित सज्जा करके सभामण्डप में आती है। पाँचों पाण्डव द्रौपदी के रूप सौन्दर्य से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। सामान्य औपचारिकता के बादबन्दी यह घोषणा करता है कि जो मत्स्यवेध करेगा, द्रौपदी उसी का वरण करेगी। इस क्रम में दुशासन, शकुनि, जयद्रथ, दुर्योधन, बलभद्र, कामपाल, वासुदेव, सात्यकि, शिशुपाल और जरासन्ध प्रयत्न करते हैं, लेकिन मत्स्यवेध में विफल रहते हैं। तब एकाएक भीषण कोलाहल होता है और ब्राह्मणों के बीच में से एक युवक कार्मुक पर नजर गडाये आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। वह गर्व से चारों ओर नजर घुमाता है और एक ही प्रयास में मत्स्यवेध करता है। द्रौपदी अत्यन्त प्रसन्न होती है, लेकिन लक्ष्यवेधी युवक के कुल और शील का ज्ञान न होने के कारण बन्दी चिन्तित हो जाता है। उपस्थित राजागण भी ईर्ष्या के कारण अर्जुन की मत्स्यवेध की सफलता पर शंका व्यक्त करते हैं और स्वयंवर के लिये अपात्र घोषित करते हैं। किन्तु अर्जुन सभी की अवहेलना करते हुये द्रौपदी को लेकर निकल जाते हैं।

'बालभारत' के द्वितीय अंक में द्यूतक्रीड़ा वर्णित है। प्रस्तावना में ज्ञात होता है कि राजसूय यज्ञ में दुर्योधन विशाल सम्पदा को देखकर उस पर लालायित हो गया। द्रौपदी भी उसका उपहास करती है। द्वेष और प्रतिशोध की भावना के कारण उसने द्यूतक्रीडा द्वारा पाण्डवों को पराजित करने का षड्यंत्र रचा। उसने धृतराष्ट्र के माध्यम से युधिष्ठिर को द्यूतक्रीडा हेतु आमन्त्रित किया। युधिष्ठिर ने विनय शीलतावश अनिच्छा से आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। प्रमुख दृश्य में द्यूतक्रीडा का प्रदर्शन है। सर्वप्रथम प्रयास में ही युधिष्ठिर अपना कीमती हार हारने पर क्रीडा से विमुख हो जाते हैं। परन्तु शकुनि उन्हें- ''आहूतो न निवर्तेय द्यूताय च रणाय च''का स्मरण दिलाकर खेलने के लिये विवश कर देते हैं। युधिष्ठिर इस द्यूतक्रीडा में वीरांगना, हाथी, रथ, घोडे और राज्य को दाँव पर लगाकर हार जाते हैं। शकुनि के उकसाने पर अन्त में अपने सहित चारों भाइयों-अर्जुन,

भीम, सहदेव व नकुल तथा द्रौपदी को भी हार जाते हैं। अन्तिम दाँव में वे पूर्ण पराजित होकर अरण्यवास स्वीकार कर लेते हैं। दुर्योधन के उकसाने पर दुःशासन द्रौपदी को केश घसीटते हुए सभा में लाता है। वह उसे कटुवचनों से अपमानित करता है और उसको निर्वस्त्र करने का प्रयास भी करता है, पर खींचे हुये वस्त्र की जगह से नये वस्त्र का लगातार आविर्भाव होने से वह थक जाता है। द्रौपदी सम्पूर्ण सभा के सामने निर्णय की याचना करती है। उसका कथन है कि जब युधिष्ठिर द्यूतक्रीडा में स्वयं हार गये थे, तो उन्हें उनको दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। सम्पूर्ण सभा निःशब्द रहती है। उसकी याचना विफल हो जाती है। द्रौपदी, दुर्योधन को शाप देती है कि शीघ्र ही भीमसेन इस गर्हणीय कृत्य का प्रतिशोध लेंगे। भीम भी उत्तेजनापूर्ण शब्दों में कहते हैं कि सौ कौरवों को मारकर दुर्योधन के रूधिर से लिप्त हाथों से द्रौपदी की वेणी का संहार करेंगे। शकुनि युधिष्ठिर को वनगमन का आदेश देते हैं। इसी के साथ ही यह अंक समाप्त हो जाता है।

राजशेखर प्रणीत 'बालभारत' की कथावस्तु का आधार 'महाभारत' है। बालभारत के प्रथम अंक में द्रौपदी स्वयंवर की कथावस्तु का आधार महाभारत के आदि पर्व के पाँच अध्याय 176 से 180 हैं। द्वितीय अंक की द्यूतक्रीडा का आधार महाभारत का धूतपर्व है। द्यूतक्रीडा की प्रस्तावना का आधार महाभारत के द्यूतपर्व के अध्याय 43 से 72 में मिल जाता है। द्रौपदी वस्त्रापहरण की कथा महाभारत के सभापर्व पर आधारित है।

राजशेखरकृत 'बालभारत' नाटक पर महाभारत की कथा का प्रभाव परिलक्षित होता है तथा साथ ही राजशेखर की समसामयिक स्थिति का भी पूर्ण प्रभाव हमें दृष्टिगत होता है। यद्यपि नाट्यकथा में सौन्दर्य व भावनात्मक तथ्य लाने हेतु आचार्य राजशेखर ने महाभारतीय कथा में कतिपय परिवर्तन किये हैं। यूं तो कथा महाभारत के तथ्यों व पात्रों पर ही आधारित है, तथापि महाभारत और बालभारत के कथानक में परिवर्तन को निम्न बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

1. महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर के समय सभा में राजपुरोहित निमन्त्रित अतिथियों का सत्कार और उनके गुणों का बखान करता है।[4] जबकि बालभारत नाटक में धृष्टद्युम्न इस कार्य को सम्पन्न करता है।[5]

2. महाकाव्य महाभारत में धृष्टद्युम्न सीमित शब्दावली में अतिथियों के कुल शील का परिचय देता है और वही द्रौपदी स्वयंवर की घोषणा करता है।[6] बालभारत में बन्दी यह कार्य विस्तारपूर्वक करता है।[7]

3. महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर के प्रसंग में जब अर्जुन लक्ष्यवेध के लिये उठकर जाने लगते हैं, तो कुछ राजागण इसका विरोध करते हैं, कुछ राजागण उसे धनुर्विद्या में अज्ञ समझते हैं, किन्तु अर्जुन नम्रतापूर्वक बाण ग्रहण करके क्षण भर में लक्ष्य वेध कर देता है। देवतागण प्रसन्नतावश पुष्प वृष्टि करते हैं।[8] जबकि बालभारत में ओजायमान रूप में यह घटना परिलक्षित होती है। अर्जुन गर्व से चारों दिशाओं में देखता हुआ लक्ष्य वेध हेतु आगे बढ़ता है। वह एक सामर्थ्यवशाली धनुर्विद्या से पूर्ण पुरूष की भाँति प्रतीत होता है। अर्जुन जैसे ही लक्ष्य वेध हेतु धनुष उठाता है तो भीम धरा के विदीर्ण होने के भय से सम्हालते हैं। अर्जुन यशस्वी रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।[9]

4. महाभारत महाकाव्य में जब द्रौपदी स्वयंवर हेतु सभा में आती है, तब सभी पाण्डवों के काम ग्रस्त होने का विवेचन है।[10] बालभारत नाटक में पाण्डव केवल काम भावना का अनुभव नहीं करते, अपितु वे उसके रूप-सौन्दर्य का भी बखान करते हैं।[11]

5. महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर के पण को 'मत्स्यवेध' [12] नाम दिया गया है। बालभारत में उक्त पणको 'राधावेध' [13] नाम दिया गया है।

6. महाभारत में प्रत्येक राजा लक्ष्यवेध में विफल हो जाने पर असहाय होकर भूमि पर गिर पडता है। बालभारत नाटक में दुःशासन लक्ष्यवेध की तरफ तीन-चार कदम चलकर लज्जित होकर लौट आता है। इसमें कतिपय राजागण लक्ष्य वेध को स्पर्श करने से भी कतराते हैं और कतिपय प्रयत्न तो करते हैं, किन्तु असफल होकर लौट आते हैं।

7. महाभारत में जब कर्ण द्रौपदी स्वयंवर के चाप को ग्रहण करते हैं, तो द्रौपदी कहती है कि वह सूत से विवाह नहीं करेगी।[14] राजशेखर ने बालभारत में इस घटना का उल्लेख नहीं किया है। इसमें बन्दी ही कर्ण की सफलता पर सन्देह व्यक्त कर द्रौपदी को आगे बढ़ने के लिये कहता है।[15]

8. महाभारत में द्यूतक्रीडा के समय युधिष्ठिर जब अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति हार जाता है, तब वह क्रमशः नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम और स्वयं को दाँव पर लगाते हैं। क्रमशः सभी दाँव हारने पर युधिष्ठिर अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं। बालभारत नाटक में युधिष्ठिर सर्वप्रथम स्वयं को और क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और अन्त में द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं। महाभारत में द्रौपदी के वस्त्रापहरण के समय श्रीकृष्ण उसकी सहायता करते हैं।[16] जबकि नाटक में त्रिभुवन मोहिनी विद्या द्वारा नवीन वस्त्र वृद्धि की उद्‌भावना की गई है।

महाभारत और बालभारत में कथानक में कुछ परिवर्तन होने के साथ ही कुछ उक्तियों में अत्यधिक समानता दृष्टिगत होती है। तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से कतिपय समानताओं का विवरण उक्तियों के माध्यम से किया जा सकता है।

जब द्यूतक्रीडा में युधिष्ठिर सर्वप्रथम अपना कीमती हार हारते हैं, तो क्रीडा के प्रति अनिच्छा व्यक्त करते हैं तब बालभारत में उनकी उक्ति है कि बुलाये जाने पर आये हुये आपको द्यूतक्रीडा या रण से विमुख नहीं होना चाहिए - **''आहुतो न निवर्तेय कदाचित्।''** [17] वहींमहाभारतमेंभीसमानहीउक्तिवर्णितहै- **''आहुतो न निवर्तेय''** [18]

अर्जुन के द्वारा विप्रवेश में लक्ष्यवेध किये जाने पर अन्य क्षत्रिय राजागण उसका विरोध करते हैं कि स्वयंवर तो क्षत्रियों के अधिकार में प्रतिष्ठित है। इस तथ्य को बालभारत में इस प्रकार कहा गया है- **''रेरे। ब्राह्मणमुंचविप्लवमुश्रुत् यर्थवीथीस्मर। क्षत्रस्याधननुस्वयंवरविधावेकाधिकारस्थित।''**[19] यह कथन महाभारत में इस प्रकार वर्णित है-

''न चवि प्रेष्वाधिकारो विद्यतेकरणं प्रति। स्वयंवर क्षत्रियाणामितीय प्रार्थना श्रुति।।'' [20]

द्रौपदी के चीरहरण के समय जब अपर वस्त्र की प्रादुर्भावना होती है, तो दुःशासन अत्यधिक थक जाता है, उसका महाभारत में इस प्रकार वर्णन है-

''आकृष्यमाणेवसनेद्रौपद्यास्तुविशाम्पते। तद्रूपमपरवस्त्रा प्रादुरासीदनेकश।।[21]

यदातुवाससाराशिसभामध्येसमाचीत। ततोदुशासनश्रान्तोव्रीडितसमुपाविशत्।।[22]

बालभारत में उक्त दृश्य कतिपय समान शब्दावली के साथ इस प्रकार विवेचित है-

''यावडेकद्रुपददुहितु कृष्यतेवस्त्रमस्यास्तत्स्थाने·न्यद्‌भवति पिदधत्तावदङ्‌ग ततश्च।''

खिन्नचतैन्ममकरतलवाससाचैषराशिस्तन्मन्ये·सौ त्रिभुवनमनोमोहिनीवेत्तिविद्याम्।[23]

महाभारतमें दुःशासन जब द्रौपदी के चीरहरण हेतु उठकर आता है तो वह द्रौपदी से 'याज्ञसेनि' के नाम से सम्बोधन कर एकाम्बरा याविवस्त्र होने का कथन कहता है-

''भव याज्ञसेनि एकाम्बरावाप्यथवाविवस्त्रा।''[24]

इसी कथन को बालभारत में कुछ साम्यता के साथ नाटकीय रूप में इस प्रकार उकेरा है-

''नन्वपनयाम्येकवस्त्रताकोटवीकरणेन। कथमेकवस्त्रा भूत्वागुरूनरेन्द्रपुरतसंचरिष्ये।''[25]

द्रौपदी वस्त्रापहरण के समय जब कौरवगण द्रौपदी को अपमानित करते हैं तो बालभारत में महाभारत के साम्य वाले कतिपय शब्दों को प्रयोग कर वर्णन किया गया है-

''पंचाना याकलत्रम्'' हे द्रौपदी, त्वमसि कात्र पतिव्रतानाकि दुष्ट पंचपुरूषा वनिताकलत्रम्।''[26]

महाभारत में मूल रूप में यह उक्ति वर्णित है-

''एकोभर्तास्त्रियोदेवैर्विहितकुरूनन्दन। ह्यय, अनेकवशत्रा बन्धकीर्तिविनिश्चता।''[27]

इस प्रकार बालभारत नाटक में महाभारत की कथा का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। महाभारत के ही कथानक को आधार बनाकर राजशेखर ने समसामयिक स्थिति पर भी साम्य रखने वाले नाटक 'बालभारत' प्रणयन किया। उन्होनें वीर और अद्‌भुत रस को नाटक में प्रधानता दी है। प्रकृति वर्णन को उन्होंने उन्मुक्त रखा है अर्थात् आवश्यकतानुसार ही प्रसंगवश प्रकृति के मानवीकरण को स्थान दिया है, अनावश्यक विस्तार में नहीं।

द्रौपदी स्वयंवर के समय जब द्रौपदी का पदर्पण होता है, तो वह नायिका के यौवनावस्था में पदार्पण को पर्यायालंकार के माध्यम से व्यक्त किया गया है -

श्रोणीबन्धस्त्यजतितनुतासेव्यते मध्यभाग पद्‌भ्यामुक्तास्तरलगतय सश्रितालोचनाभ्याम्।
धत्तेवक्ष कुचसचिवतामद्वितीय तुवक्त्रम् तद् गात्रणागुणविनिमय कल्पितो यौवनेन।।[28]

अर्थात् शैशवावस्था में इसका जघन स्थल अत्यधिक क्षीण था। अब इसकी क्षीणता मध्य भाग ने ग्रहण कर ली। शैशवावस्था की चंचल गति नयनों में आ गई है। पहले जो वक्ष स्थल था, उसकी अद्वितीयता मुख ने ग्रहण करली है।

सामान्यतः महाभारत के द्रौपदी स्वयंवर के प्रकरण में द्रौपदी के रूप सौन्दर्य के वर्णन का प्रभाव यहाँ परिलक्षित होता है।

कवि राजराजशेखर के नाटक 'बालभारत' दो अंकों का होने के बाद भी अपूर्ण है। यह नाटक अगर पूर्ण होता तो नवीन उद्‌भावनाएँ भी बनती। नाट्यकला की दृष्टि से 'बालभारत' नाटक का समीक्षण करने पर राजशेखर कुशल नाटककार सिद्ध होते हैं। राजशेखर के नाटक में संवादों का भी विशेष महत्व है। चाहे सामान्य वार्तालाप हो या कोई दृश्य वर्णन, वह बहुत सुन्दर रूप में व्यक्त है। बालभारत, महाभारत के प्रसिद्ध आख्यान पर आधारित है। राजशेखर ने छोटे कथानक को सरसता व प्रवाहपूर्ण तरीके से उकेरा है।

संदर्भ -

1. *बौधायन धर्मसूत्र, 3.1.1*
2. *कर्पूरमंजरी, 1.11*
3. *बालभारत, 1-8/9*
4. *महाभारत, आदिपर्व 176*
5. *बालभारत, 1/25-26*
6. *महाभारत, आदिपर्व 176-177*

7. बालभारत, 1/32-34
8. महाभारत, आदिपर्व 178
9. बालभारत, 1/75-78
10. महाभारत, आदिपर्व 178
11. बालभारत, 1/27-31
12. महाभारत, आदिपर्व 176
13. बालभारत ,1/22-23/32/37
14. महाभारत, आदिपर्व 179
15. बालभारत, 1/39
16. महाभारत, सभापर्व, 61-80
17. बालभारत, 11/52/16
18. महाभारत, 2/7/13
19. बालभारत, 1/82
20. महाभारत, 1/180
21. महाभारत, 2/69/41
22. महाभारत, 2/69/48
23. बालभारत, 2/40
24. महाभारत, 2/60/27
25. बालभारत, 2/39-40
26. बालभारत, 2/37
27. बालभारत, 2/61/35
28. बालभारत, 1/28

29

बालभारत-भारती

किरण आर्या *

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती। भगवान्! भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।
राजशेखरभारती है भद्रभावोत्भाविनी। जो स्तुत्य है कविवृन्द से, बालभारत-भारती

'बालभारत-भारती' इस पद के दो अर्थ सम्भव हैं - आचार्यराजशेखरकृत-बालभारतस्य भारती, बालभारते वा भारती अर्थात् बालभारत की भारती और बालभारत में भारती। भारती शब्द पर विचार किया जाये तो अमरकोशकार ने वाणी शब्द के पर्यायवाची पदों का परिगणन करते हुये भारती को वाणी का पर्यायवाची लिखा है -

ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती। व्याहारउक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः।।[1]

अर्थात् वाणी को ब्राह्मी, भारती, गीः, वाग्, वाणी, सरस्वती, व्याहार, उक्ति, लपित, भाषित, वचन, वचः आदि सभी शब्द वाणी अर्थ में प्रयोग किये जा सकते हैं। इस वचन से ब्राह्मी, वाणी, भारती, सरस्वती आदि ये एकार्थक पद हैं। समानार्थक होते हुये भी ये पद अपना-अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। इसीलिये वाणी की महिमा अपरम्पार है। बिना वाणी, सरस्वती का अस्तित्व सम्भव नहीं। अतः अमरकोशकार वाणी को ही सरस्वती कहते हैं। यह वाणी ब्राह्मी है- साक्षात् ब्रह्मणः इयम् (पुत्री) ब्रह्म की पुत्री है, अतः वही सरस्वती है। कोशकार द्वारा वाणी के पर्यायवाचियों में सर्वप्रथम वाणी के लिये ब्राह्मी का प्रयोग इस तात्पर्यार्थ का द्योतक है कि ब्रह्म के समान ही यह वाणी अनादिनिधन है, जैसा कि आचार्य भर्तृहरि अपने वाक्यपदीयम् ग्रन्थ में लिखते हैं -

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।[2]

अर्थात् यह शब्दरूपी ब्रह्म अनादिनिधन है - जिसका न कोई आदि है और न ही अन्त है। और शब्दब्रह्म अर्थ के रूप में परिणाम को प्राप्त होता है जिससे संसार की प्रक्रिया चल पाती है। क्योंकि शब्द ही है जो कभी कविता बनकर मन को छू जाते हैं कभी कहानी बनकर दिल में घर कर जाते हैं कभी भागवत आदि के रूप में हमारे कर्णास्वादन के भागी बनते हैं, कभी लोरी बनकर परम सुखशान्ति शय्या देते हैं, कभी गजल बनकर अनुपम स्नेह की धारा में स्नान कराते हैं, कभी वैदिक ऋचाओं से सजकर हमारे पथप्रदर्शक बनते हैं। इन्हीं शब्दों से जुड़ते हैं विचार संवाद और संवेग, प्रेरणा। यही तो आत्मा है विश्वरंग की, जहां शब्दों में बसती है संवेदना और संवेदना से जन्मती है प्रेरणा। वेद, वेदना, संवेदना इनको जन्म देते हैं शब्द। इस प्रकार शब्द विचार

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
* *सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003*

प्रेरणा यह त्रितयी संगम हमें भवसागर में गोते लगाने का, भरपूर सुख व आनन्द से आप्लावित होने का, सामर्थ्य प्रदान करता है।

परबह्म द्वारा उत्पादित सृष्टि में आने के पश्चात् हमें इस शब्दसृष्टि की परम आवश्यकता है। इस शब्दसृष्टि का अभाव जीवन के वैयर्थ्यता का आभास कराता है। जिस प्रकार जगद्ब्रह्म के अभाव में इस संसार की गति, मति असम्भव है उसी प्रकार शब्दब्रह्म के विना भी यह संसार अन्धकारमय है, इसका यथावत् संसरित होना असम्भव है। जैसा कि आचार्य दण्डी काव्यादर्श में लिखते हैं -

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्। यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।'[3]

अर्थात् यदि शब्द रूपी ज्योति इस संसार को दीप्त, प्रदीप्त न करे तो यह सकल संसार, तीनों लोक गहन अन्धकारमय हो जायेंगे। अत एव भर्तृहरि ने तथा अन्य सभी वाग्विशेष आचार्यों ने शब्द को अर्थात् वाग् को, भारती को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना की है। न केवल मनीषियों द्वारा यह भारती उपास्य है अपितु स्वयं वेद द्वारा भी यह वाग्भारती संस्तुत है - वेद कहता है -

सुदेवो असि वरुण! यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्य सुषिरामिव।।'[4]

अर्थात् यह शब्दरूप भारती, सुदेव है, वरुण है, जिसकी सात नदियां ' यह महान् देव है, वृषभ है - वृषभो रोरवीति-शब्दं करोति हैं। **'महो देवो मर्त्या आविवेश''**[5] यह महान् वृषभ, जो शब्द करता है वह हमारे अन्दर प्रवेश करे अर्थात् हमारे अन्दर सदा विद्यमान रहे, **'महता देवेन नः साम्यं स्यात्'** इस महान् देव शब्द के साथ हमारी समता बनी रहे, ऐसी प्रार्थना वेद में की गई है। शब्दभारती के बिना मनुष्य की वही स्थिति है जैसे कि बिना आनन के धड़ की। शब्दभारती के बिना यह मूक संसार नीरस है। सारा ज्ञान इसी शब्दभारती में समाया है अत एव यह सरस्वती के नाम से विश्रुत है - सरः ज्ञानं विद्यते यस्यां सा सरस्वती - जिसमें सारा ज्ञान समाहित है वह सरस्वती है। शब्द भारती ही समस्त ज्ञान का मुखर प्रमाण है। मौन सरस्वती कहां प्रतिष्ठित होती है? अत यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सरस्वती, भारती निष्ठ होती है। अथवा भारती, सरस्वती निष्ठ होती है। भारती है तो उसमें सरस्वती है और सरस्वती है तो वह निश्चित भारतीनिष्ठ है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। अत एव अमरकोशकार इनको पर्यायवाची के रूप में अभिहित करते हैं। इसीलिये कविवर भारती की प्रशंसा करते नहीं थकते क्योंकि उन कवियों को अमरयश दिलाने वाली, भुवनत्रय में सम्प्रतिष्ठित करने वाली, वाग्विशेष से विभूषित करने वाली, सारस्वतज्ञान से आप्लावित करने वाली यह भरती ही तो है। आचार्यमम्मट अपने काव्यप्रकाश के मंगलाचरण में नवरसों से सम्पुष्ट कवि के भारती की विजय लिखते हैं -

नवरसरुचिरां निमिर्तिमादधती भारती कवेर्जयति ।।'[6]

आर्यासप्तशती में गोवर्धनाचार्य लिखते हैं -

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे। भूषणतयैव संज्ञां यदंकितां भारतीं वहति।।'[7]

अर्थात् व्यास की वाणी (महाभारत) जिसमें विश्व का साररूप भारत वर्णित है उसे मैं प्रणाम करता हूं जो व्यास की भारती का निदर्शन कर रही है।

इस प्रकार भारती के बिना किसी की वागारती नहीं हो सकती। अतः राजशेखर इस भारती सरस्वती की प्रशंसा करने से कहां चूकने वाले थे वे काव्यमीमांसा सरस्वती की संस्तुति में कहते हैं -

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम्। हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती।।'[8]

यहां राजशेखर कहना चाहते हैं कि सरस्वती की महिमा अपरम्पार है। वह ऐसी गौसदृशा है जो रात

दिन दुहे जाने पर भी जिसका दुग्ध समाप्त नहीं होता अपितु - 'व्यये कृते वर्धत एव नित्यम्' जितना व्यय करो विद्या उतनी ही बढ़ती ही जाती है अपि च -

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति! व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्।।'[9]

भारती का कोश अपूर्व है, अभूतपूर्व है, अद्भुत है। उसका खजाना जितना वितरण कर खाली करो उतना ही जादू की तरह बढ़ता जाता है और केवल संचय करके सुरक्षित रखने का प्रयास करो तो वह नष्ट होने लगता है, वैसे ही सरस्वती गौ को जितना कवि गण दुहते जाते हैं वह उतनी ही दुग्धसम्पन्न दिखाई देती है - **पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।'**[10] वह सर्वदा पूर्ण ही दृष्टिगोचर होती है। पूर्ण दूहने पर भी पूर्ण ही रहती है, विना दुही सा प्रतीत होती है। ऐसी वह कामधेनू सरस्वती मेरे हृदय में निवास करे। यह अद्भुत वैचित्र्य है कि यदि उस कामधेनू को दुहा न जाये तो वह क्षयत्व को प्राप्त करती है। उसे दुहना ही उसे समृद्ध करना है। महर्षि पतंजलि इसीलिये विद्याप्राप्ति के चार उपायों में (आगमकाल, स्वाध्यायकाल, प्रवचनकाल, व्यवहारकाल) प्रवचनकाल को भी एक उपाय माना है कि विद्या तभी प्रतिष्ठित होती है, तभी सुयश दिलाती है, तभी वृद्धि को प्राप्त होती है जब वह प्रवचन, अध्यापन, उपदेशन आदि द्वारा वितानता को प्राप्त होती है। यह वितानता ही सरस्वती को, भारती को दुहना है। किन्तु उसे दुहना कैसे है? यह तो केवल और केवल कविवर ही जानते हैं। राजशेखर काव्यमीमांसा में यह भाव प्रकट करते हैं कि - छन्दोबद्ध शब्दमय काव्य को तो ब्रह्मा ने अपनी सरस्वती द्वारा अनादिकाल से उत्पन्न कर दिया था किन्तु उसे सरस और आकर्षक बनाने की सामग्री नहीं थी इस कारण उसमें रुक्षता प्रतीत हो रही थी । रुक्ष पुरुष को सरस बनाने के लिये जिस प्रकार एक रमणी की आवश्यकता होती है उसीप्रकार शब्दमय काव्य को सरस बनाने के लिये साहित्यवधू की आवश्यकता थी अतः कवि ने साहित्य को वधू का रूप देकर उसके द्वारा काव्य को सरस बनाने की कल्पना की। अत एव कविवर उस शब्दमयी साहित्यवधू को स्त्रीवाचक शब्द से सम्बोधित करते हैं और वह शब्दमयी स्त्री ब्राह्मी के रूप में, भारती के रूप में, वाणी के रूप में, गीः के रूप में, भारती के रूप में और साक्षात् सरस्वती के रूप में जिस सौदर्य को लिये हमारे समक्ष उपस्थित होती है वह सौन्दर्य पुंल्लिंगवाचक शब्द में प्रकट नहीं होता। अत एव कविवृन्द प्रायः इस शब्द को सरस्वती अथवा भारती इस स्त्रीवाचक सम्बोधन से ही अभिव्यक्त करते हैं। आचार्य मम्मट इसीलिये अपने काव्यप्रकाश के काव्यप्रयोजन में 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे' की बात करते हैं कि कान्ता के समान उपदेश देने वाली भारती, सरस्वती ही अध्येता के प्रयोजन को सिद्ध करती है। यहां वे कान्ता इस स्त्रीवाचक शब्दप्रयोग द्वारा 'भारती कवेर्जयति' इस मंगलाचरणप्रयुक्त भारती के विजयत्व की गाथा लिख रहे हैं। कविगण न केवल वाग्वैभव को स्त्रीवाचक भारती शब्द से सम्बोधित करते हैं अपितु कवियों की भाषा इसीलिये इतनी नवरससम्वलिता सरसा, सहजा, हृदयावर्जिका होती है क्योंकि वह स्त्रीसदृशगुणविभूषिता है। यही कारण है कि कवि ने लिखा-

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात् पशुःपुच्छविषाणहीनः'[11] अर्थात् यदि व्यक्ति साहित्य और संगीत कला से सर्वथा विहीन है तो बिना सींग और पूंछ के साक्षात् पशु ही है। क्योंकि साहित्य अध्येता केवल नीरस शब्दाध्येता, शब्दज्ञाता नहीं होता अपितु वह कवियों की भारती से परिचित होता है, उस भारती से संवलित होता है। उस भारती से सुपरिचित होने के लिये आचार्य राजशेखर बालभारत में भारती, सरस्वती की भरपूर स्तुति करते हैं। वे स्वयं लिखते हैं -

आद्यः कन्दो वेदविद्यालतानां जैह्वं चक्षुनिर्निमेषं कवीनाम्।
यो येनार्थी तस्य तत् प्रक्षरन्ती वाङ्मूर्तिमे देवता सन्निधत्ताम्।।'[12]

जो वेदविद्या लताओं के आद्य कन्द है- सृष्टि के आदि में वेदविद्या के रूप में प्रभूत सरस्वती भारती, सभी विद्याओं की मूलभूत है। कवियों की निर्निमेष जिह्वारूपी चक्षु है- कवियों की निरन्तर दृष्टि ने जिस सरस्वती भारती का दर्शन किया है और जिह्वा से जिसका आस्वादन किया है तथा कराया है। जो जिस विषय का अर्थी है, जिस विषय को अपनी जिह्वा का विषय बनाना चाहता है उसे वैसा ही सारस्वत ज्ञानवरदान देने वाली है। स्थूलरूप में वाणी ही जिनकी मूर्ति है, आकार है, वह देवता सरस्वती मेरे पास रहे। आगे कवि राजशेखर कहते हैं कि -

व्यासो वैखानसवृषा सत्यः सत्यवतीसुतः। भारतीं भारतकविर्देयाद् द्वैपायनो मम।।'[13]

अर्थात् वानप्रस्थाश्रम मुनियों में श्रेष्ठ सत्यवादी, सत्यवती के पुत्र भारतकवि, महाभारत के रचयिता द्वैपायन, वेदव्यास भारती वाणी को अर्थात् महाभारतरूपी कथावाणी को मुझे प्रदान करें। कवि यहां महाभारतकथा को भी भारती शब्द से सम्बोधित कर रहे हैं। भरतवंश से सम्बन्धित होने के कारण ही वह महाभारत, भारती नहीं है अपितु वह साक्षात् सरस्वती भारती है, जिसके लिये स्वयं व्यास लिखते हैं, राजशेखर भी बालभारती में उसे उद्धृत करते हैं - **यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।'**[14] अर्थात् कैसा कौन सा ज्ञान होगा जो इस भारती में न समाहित हो! जो इस भारती सरस्वती में नहीं है वह अन्यत्र कहीं प्राप्तव्य भी नहीं है। अत एव यह सरस्वती भारती है। बालभारत में पुनः वे आगे कहते हैं - **अहो! मसृणोद्धता सरस्वती यायावरस्य, यदाह'**[15] - अहा! यायावर कुलोत्पन्न राजशेखर कवि की सरस्वती बड़ी ही उदात्त तथा उद्दात्त है। क्योंकि -

ब्रह्मभ्यः शिवमस्तु वस्तु वितप्तं किंचिद् वयं ब्रूमहे। हे सन्तः! श्रृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवांजलिः।
यद्वा किं न विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतम्, माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्ञा परं दैन्यभूः।।'[16]

यहां कवि कहते हैं कि - ब्राह्मणों का कल्याण हो, ऐसी प्रार्थना करके हम प्रशस्त बात कह रहे हैं यहां हे सज्जनों! यह ध्यातव्य हो कि हम अंजलिबद्ध प्रार्थना कर रहे हैं। अथवा इन विनयोक्तियों से क्या लाभं? यदि मेरी वाणी में सुवचन का अमृत है तो वह स्वयं सज्जनों को तृप्त करेगा। याचना तो अत्यन्त दीनता का स्थान है। यहां कवि का आशय है कि भारती निश्चित सरस्वतीयुक्त होती है अतः मेरी भारती ही सुवचनसंयुक्त अमृतसदृश है तो मैं दीन हीन वचनों द्वारा क्यों किसी के समक्ष पाणिवितान करूं? मेंरी भारती ही मंगलाचरण के लिये पर्याप्त है क्योंकि - **अनूचानो हि यद् ब्रूते सा स्वयम्भूः सरस्वती। तदार्षं न मृषार्थं स्यात् सा दृष्टिर्विदुषां दृढा।।'**[17] वेदाध्यायी जो बोलता है, वह स्वयं प्रादुर्भूत सरस्वती है, वह साक्षात् ऋषि का वचन है वह असत्य नहीं हो सकता, वही विद्वानों की सुदृढ दृष्टि है। अर्थात् वेदाध्यायी की जो भारती है वह सरस्वती ही है। वह ऋषि वचन सदृश है। वह मृषा हो ही नहीं सकता। यहां कवि का तात्पर्यार्थ हम यह ले सकते हैं कि सारा शब्दजगत् भारती है किन्तु वही भारती सरस्वती है जो वेदाध्यायी द्वारा अभिहित है। वेदाध्यायी की भारती ऋषिभारती है अतः वह सरस्वतीनिष्ठ होने से मिथ्यावाहिनी नहीं हो सकती।

बालभारत के आरम्भ में कवि राजशेखर महर्षि वाल्मीकि और महर्षि व्यास का संवाद कराते हैं। दोनों महर्षि परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा करते हुये दिखाई देते हैं। वाल्मीकि - **महान् वर्तते तव इतिहासो भारतम् '**[18]- 'आपका इतिहासग्रन्थ महाभारत महान् है' ऐसा कहकर महर्षि व्यास की प्रशंसा करते हैं और महर्षि व्यास यह कहकर वाल्मीकि की प्रशंसा करते हैं कि -

ये विद्यापरमेश्वराः स्तुतधियो ये ब्रह्मपारायणे, येषां वेदवदादृता स्मृततिमयी वाग् लोकयात्राविधौ।
स्नाताः स्वर्गतरंगिणीमपि सदा पूतां पुनन्त्यत्र ता, व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदो रामायणस्यास्य ते।।'[19]

किंच भगवन् प्रथमकवे!

यदुक्तिमुद्रा सुहृदर्थवीथी कथारसो यश्चुलुकैश्चुलुक्यः।
कर्णामृतस्यन्दि च यद्वचांसि रामायणं तत्कवितून् पुनाति।।'[20]

आप विद्या के परमेश्वर हैं तथा ब्रह्मज्ञान में आपकी बुद्धि की परम प्रशंसा है। संसार के जीवन में आपकी स्मृति तुल्य वाणी (अर्थात् रामायण) वेद के समान आदृत है। आपके इस रामायण की रसपूर्ण वाणियां अवगाहन करने पर पवित्र स्वर्गगंगा को भी सदा पवित्र करती हैं।

और हे आदिकवे! जिस रामायण की उक्तियां हितकारी अर्थों से पूर्ण हैं, जिसका कथा रस चुल्लु से पीने योग्य है तथा जिसके वचन कानों में अमृत टपकाने वाले हैं, वह रामायण कवियों को पवित्र करता है। इन पद्यों के माध्यम से राजशेखर दोनों महर्षियों द्वारा परस्पर भारतीनिष्ठ सरस्वती की ही प्रशंसा करते हुये दिख रहे हैं। इन पद्यों में प्रयुक्त 'वाग्, उक्ति, वचांसि' आदि पद भारती के ही पर्यायवाची हैं।

उपर्युक्त किंचित्प्रास्ताविक द्वारा हमने बालभारती में भारती का दिग्दर्शन किया। यदि बालभारत की भारती की चर्चा की जाये तो यह नितान्त सत्य है कि कोई भी नाटककार कवि, साहित्यज्ञ प्रथमतया वैयाकरण भी होता है। उसने व्याकरण का सम्यक् अध्ययन किया होता है अत एव उनकी भाषा परिमार्जित, सुसंस्कृत तथा वैदुष्यपूर्ण होती है। आचार्य राजशेखर के वैदुष्य का पूर्ण प्रमाण हमें उनके काव्यमीमांसा से ही प्राप्त हो जाता है। काव्यमीमांसा एक विशिष्ट काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है जिसमें वे अपने शास्त्र संग्रह नामक प्रथम अध्याय में लिखते हैं -

इयं सा काव्यमीमांसा मीमांस्यो यत्र वाग्लवः। वाग्लवं न स जानाति न विजानाति यस्त्विमाम्।। '[21]

अर्थात् यह काव्यमीमांसा है। मामांसा उसे कहते हैं जिसके द्वारा वाणी के अंश शब्द और अर्थ का विवेचन किया जाता है। वे उपपत्ति के साथ वाणी के अंशों (शब्द और अर्थों) का विवेचन करना नहीं जान सकते हैं जो काव्य की मीमांसा को भी नहीं जानते। यहां 'वाग्लवः' पद द्वारा आचार्य राजशेखर का संकेत वाग्विद्वान् की ओर है। वाणी का विद्वान् तो एक वैयाकरण ही हो सकता है, वह वाणी के पूर्ण रहस्य को भलीभांति समझता है- प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः। आचार्य राजशेखर काव्यमीमांसा के शास्त्र संग्रह में लिखते हैं -कवयः शास्त्रनिपुणाः भवन्ति। विशेषतः वेदव्याकरणन्यायमीमांसायोगशास्त्रचरकसंहिताविदग्धाः।। कवि केवल नाटक, काव्य आदि मे ही निपुण नहीं होते अपितु वे विभिन्न शास्त्रें- वेद, व्याकरण, न्याय, मीमांसा, योग, आयुर्वेद आदि में भी पारंगत होते हैं। यहां राजशेखर कहना चाहते हैं कि वही वास्तव में एक सफल नाटककार है जो वेद के ज्ञान से, आयुर्वेद के चिकित्सा से, भाषाशास्त्र की गहराई से, योग की एकाग्रता से समृद्ध हो। स्वयं राजशेखर द्वारा प्रयुक्त इन वचनों से यह स्पष्ट है कि आचार्य राजशेखर भाषाभारती में अत्यन्त प्रवीण थे अतः उनकी बालभारत की भारती अत्यन्त सहज सरल बोधगम्य तथा परिष्कृत शास्त्रीयस्वरूप के साथ उपस्थित है।

राजशेखर बहुभाषिता के धनी रहे हैं वे संस्कृत, प्रकृत तथा अपभ्रंश आदि भाषाओं के जानकार हैं वे अपनी रचनाओं में दोनों - संस्कृत और प्राकृत भाषाभारती का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। उनकी भाषाभारती लोकोक्तियों से अलंकृत है जो उनकी सर्जना को सजीवता प्रदान करती है। उनकी भाषाभारती में एक अर्थगाम्भीर्य बोध दिग्दर्शित होता हैं। उनका भाषा वैदग्ध्य और वर्णनचातुर्य पदे पदे परिलक्षित होता है। उनकी भाषाभारती ने कहीं प्रकृति प्रेम का सुन्दर चित्र खींचा है तो कहीं सौन्दर्यवर्णन उनकी भारती का रुचिकर विषय रहा है। उनकी भारती राजाओं के वर्णन के साथ साथ नीतिपरक वचनों को भी यत्र तत्र बिखेरती दिखाई देती है।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आचार्य राजशेखर की बालभारत-भारती सर्वगुणसम्पन्ना है, सरस्वतीनिष्ठ है, साक्षात् ब्राह्मी है जहां ब्रह्मा द्वारा प्रेरित, वाल्मीकि के मुखारविन्द से निःसृत रमणीय रामायण की संस्तुति हो और चतुर्मखी ब्रह्मा से प्रेरित वेदों को चार भागों में विभक्त करने वाले महर्षि व्यास के महाभारत की प्रशंसा हो। ऐसे अपूर्व भारती के समाराधक आचार्य राजशेखर को सादर नमन। सर्वभाषाविचक्षण आचार्य राजशेखर की इन पंक्तियों द्वारा हम उनकी वन्दना करते हैं -

गिरः श्रव्या दिव्या प्रकृतिमधुराः प्राकृतपराः, सुभव्योऽपभ्रंशः सरसवचनं भ्रमतवचनम्।
विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयश्च त इमे, निबद्धा यस्त्वेषां स खलु निखिलेऽस्मिन् कविवृषा।।'[22]

सन्दर्भ -

1. *अमरकोश पृ. 201*
2. *वाक्यपदीयम् 1.1*
3. *काव्यादर्श 1.3*
4. *ऋ. सं. 8.66.12*
5. *ऋ. सं. 4.58.3*
6. *काव्यप्रकाश1'.1*
7. *आर्या. 3.1*
8. *काव्यमीमांसा 3*
9. *सुभाषितरत्नभाण्डागारम् 2.34*
10. *एकादशोपनिषद् 1.1*
11. *नीतिशकम् 69*
12. *बालभारती 1.3*
13. *बालभारती 1.4*
14. *बालभारती 1.18*
15. *बालभारती पृ.3*
16. *बालभारती 1.5*
17. *बालभारती 1.10*
18. *बालभारती पृ.12*
19. *बालभारती 1.16*
20. *बालभारती 1.17*
21. *काव्यमीमांसा, शास्त्रसंग्रह*
22. *बालरामायण 1.10*

30

'बालभारत' में स्त्रीपात्र

साधना मौर्या *

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं, न सा विद्या न सा कला। नासौ योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।[1]

आचार्य भरत मुनि कृत प्रस्तुत कारिकानुसार ऐसा कोई शास्त्र, ऐसी कोई विद्या, ऐसा कोई ज्ञान एवं ऐसी कोई कला नहीं है जो नाट्य का विषय न हो। इसी परम्परा के अनुपालन में प्रवृत्त होने के कारण नवीं शताब्दी के ख्यातिलब्ध, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के विद्वान् कवि राजशेखर द्वारा सृजित ''बालभारत'' नाटक की सहज प्रप्ति होती है।

कविवर राजशेखर प्रणीत बालभारत नाटक दो अङ्कों में निबद्ध महाभारत कथाश्रित अद्वितीय संस्कृत रचना है। इस नाटक के प्रथम अङ्क में द्रौपदी का स्वयंवर वर्णन है जहाँ ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन लक्ष्य वेध कर अपनी विजयस्वरूपा द्रौपदी को प्राप्त करते हैं। वहीं द्वितीय अङ्क में धृतराष्ट्र की सभा में द्यूतक्रीड़ा का वर्णन प्राप्त होता है। इस अङ्क के प्रारम्भ में विदुर द्यूतक्रीड़ा की निन्दा करते हुए यह बताते हैं कि यह द्युतक्रीड़ा सभी विपत्तियों का मूल है। दुर्योधन के निमन्त्रण पर युधिष्ठिर द्युतक्रीड़ा हेतु प्रवृत्त होते हैं। उनका मानना है कि द्युतक्रीड़ा हो या युद्ध का क्षेत्र हो इन दोनों ही स्थानों पर आवाहन किये जाने पर क्षत्रिय को अवश्य ही भाग लेना चाहिए। वे द्युतक्रीड़ा में शामिल होते हैं। दुर्योधन और युधिष्ठिर के मध्य चल रही द्युतक्रीड़ा में मामा शकुनि दुर्योधन की तरफ से द्युत का संचालन करता है। युधिष्ठिर क्रमशः सभी दाँव हारने लगते हैं। अपने धन-वैभव, राज्य, अपने दास-दासियाँ, अपने भाइयों को, स्वयं को, अन्ततोगत्वा अपनी पत्नी द्रौपदी को भी दाँव में हार जाते हैं। दुर्योधन के आदेशानुसार दुःशासन द्रौपदी को अपमान सहित कौरव सभा में लाता है। पुनः दुःशासन द्रौपदी को विवस्त्र करने का प्रयास करता है। द्रौपदी अनेक प्रकार से इस निन्दनीय कृत्य हेतु दुर्योधन, दुःशासन एवं कौरव सभा की भृतसना करती है। साथ ही वह वासुदेव श्रीकृष्णजी का स्मरण करती है। श्रीकृष्ण जी द्वारा द्रौपदी का सहयोग किये जाने के कारण दुःशासन द्रौपदी को विवस्त्र नहीं कर पाता है। यहीं पर पराजित पाण्डवों को बारहवर्ष का अरण्यवास एवं एक वर्ष का अज्ञातवास हो जाता है। इस प्रकार बालभारत नाटक का अन्त होता है।

प्रस्तुत नाटक में कुल तीन स्त्री पात्र हैं – द्रौपदी, सुरेखा एवं सुनन्दा। जहाँ द्रौपदी इस नाटक की मुख्य नायिका है वहीं सुरेखा एवं सुनन्दा दासी पात्र की भूमिका का निर्वहन करती हैं।

कविवर राजशेखर ने अपने इस नाटक में स्त्रीपात्र के सबल पक्ष को रखने का प्रयास ही नहीं किया अपितु वे यहाँ सकारात्मक रूप से सफल भी रहे हैं।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

***अस्सिटेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर गाजीपुर उ.प्र.**

स्त्रीपक्ष का एक सशक्त एवं सबल पक्ष यहाँ सहृदयों को अति सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है। क्योंकि कवि की इस कृति में दासियाँ भी कोई निरीह प्राणी नहीं है। उचित-अनुचित विवेक से परिपूर्ण दासियाँ भी अवसर के अनुसार प्रतिकार करने में पूर्णतः दक्ष हैं। उनके स्वाभिमान में अल्पता का लेशमात्र भी नहीं है। इस तथ्य का स्पष्ट उद्धरण नाटक में उस समय भली-भाँति परिलक्षित होता है जब द्युतक्रीड़ा में युधिष्ठिर अपने गले में सुशोभित हो रही रत्नों की माला हार जाते हैं। उस माला को दुर्योधन अपनी दासी सुरेखा को प्रदान करता है तो युधिष्ठिर की दासी सुनन्दा कहती है- **युधिष्ठिरकण्ठनिवेशी सुशीर्षे प्रत्येषणीयः ते हारः यत्पुनः अस्मा–शजनयोग्यं करोषि तन्न रोहिणीवल्लभ कुलोचितम् अनुतिष्ठसि।**[3]

अर्थात् हे महाराज दुर्योधन! युधिष्ठिर के कण्ठ में सुशोभित इस हार को तुम्हें अपने गले में धारण करना चाहिए था। इसे तुम हम जैसे लोगों के गले में पहना रहे हो। यह चन्द्रवंशीय कुल का उचित व्यवहार नहीं है। न केवल युधिष्ठिर की ही दासी अपितु दुर्योधन की दासी सुरेखा भी प्रतिकार करते हुए कहती है- **अये उड्डामरशीले! द्यूतजितेऽपि अभिजनत्वम्।**[4]

अर्थात् हे डायन! क्या जुए में जीती हुयी वस्तु भी कुलीनता की श्रेणी में आ सकती है। सुरेखा के कथन का स्पष्ट तात्पर्य है कि द्युतक्रीड़ा में विजयोपरान्त प्राप्त हुए आभूषण को दास-दासी भी स्वीकार नहीं करना चाहते फिर आम जनमानस की बात ही क्या? इस प्रकार कवि ने यहाँ दासी पात्र के माध्यम से स्त्री के सुदृढ़ एवं स्वाभिमानी स्वभाव को व्यक्त किया है। जिस प्रकार बालभारत नाटक में दासी के रूप में प्रतिबिम्बित स्त्रीपात्र का सुन्दर समायोजन प्राप्त होता है उसी प्रकार नाटक की नायिका द्रौपदी का सशक्त स्वरूप भी स्त्री चरित की पराकाष्ठा का स्पर्श ही करा रहा है। द्रौपदी मुख्य रूप से नाटक में उभर कर सामने आयी है। स्त्री सुलभ सौन्दर्य रूप भी उसके वैशिष्ट्य वृद्धि में कम योगदान नहीं करता। द्रौपदी के अनुपमेय सौन्दर्य का दर्शन हमें उस समय होता है जब वह स्वयंवर में आती है। उसे देखकर ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर स्वयं कहते हैं - **हंहो लोचन चकोरकौ आतृप्तेरापिबतं द्रोपदीवदनेन्दुचन्द्रिकाम्।**[5] हे लोचनचकोरो! तुम दोनों तृप्ति तक द्रौपदी के मुख चन्द्रिका का पान करो। उसके सौन्दर्य वर्णन में वे कहते हैं -

कण्ठे मौक्तिकदाम गण्डतलयो कार्पूरमच्छं रज, सान्द्र चन्दनमङ्गके विचिकिलस्रक्शेखर मूर्धनि।
तन्वी बाढमिय चकास्ति तरुणी चीनाशुके विभ्रती, शीताशोरधिदेवतेव गलिता व्योम्नि द्रुत गच्छत।।[6]

द्रौपदी के गले में मोतियों की माला है। गालों पर कर्पूर-रज सुशोभित हो रहा है। शरीर पर चन्दन का लेप है। केशों में खिले हुए फूलों की माला दर्शनीय है। रेशम के वस्त्र धारण की हुयी यह तरुणी द्रौपदी चन्द्रालोक की अधिष्ठात्री देवी के समान वैसी ही प्रतीत हो रही है मानों आकाश में जा रहे चन्द्र से च्युत हुयी हो। वह न केवल सुन्दरी ही है अपितु स्त्रीसुलभलज्जाशीलगुण वाली भी है। श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन द्रौपदी के नारीसुलभ गुण लज्जा वर्णन में इस प्रकार करते हैं-

प्रौढ़स्त्रीरचितानुवृत्तिषु रसो बाल्येयऽपि लज्जामनाक्, स्तोकारोहिणि यौवन मृगदृशः कोऽप्येष रम्यः क्रमः।[7]

अर्थात् वह प्रौढ़ स्त्रियों द्वारा की जा रही मनोनुकूल बातों में आनन्दानुभव करती है और बालसुलभ आचरणों में भी कुछ लज्जित हो सामने आ रही है।

इस नाटक में द्रौपदी के शिष्टाचारी स्वभाव का चित्रण बड़ी सहजता के साथ प्राप्त होता है। प्रथम अङ्क में सभी गुरुजनों को नमस्कार करते हुए वह कहती है- **नमो नमो महामुनिभ्यो युष्मभ्यम्।**[8] जन्म से ब्रह्मचारी भीष्म पितामह को प्रणाम करते हुए कहती है- **यः किल कुमारसब्रह्मचारी। नमो नमः कौरवपाण्डवानां पितामहाय।**[9] उपरोक्त उद्धरणों द्वारा द्रौपदी के आचरण में शिष्टाचारी स्वभाव का सुन्दर समावेश प्राप्त होता है।

द्रौपदी गुरूभक्त नायिका भी है। अपने शिष्टाचार अनुपालन में वह द्रोणाचार्य को देखकर कहती है कि कौरव पाण्डवों के धनुर्विद्या के गुरू द्रोणाचार्य को नमस्कार- **नमस्ते द्रोणाय सकल कौरव पाण्डवानां गुरुणामुख्याय।**[10]

पैनी दृष्टि रखने वाली द्रौपदी किसी के स्वभाव को अति सरलतापूर्वक समझ लेती है। जब उसके स्वयंवर में धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने हेतु दुःशासन आगे आता है और असफल भी हो जाता है तभी द्रौपदी उसके हाव-भाव देखकर कहती है- यह अति मतवाला एवं दुष्ट चरित्र वाला है- **अतिमत्त चण्ड चरित्र एषः।**[11] नाटक के द्वितीय अङ्क में दुःशासन के विषय में द्रौपदी द्वारा कहा गया उपरोक्त कथन चरितार्थ भी होते हुए दिख रहा है। द्युतक्रीड़ा में युधिष्ठिर के पराजित हो जाने पर दुर्योधन के आदेशानुसार वह द्रौपदी को अपमान सहित सभा की ओर ले आता है और कहता है ''तुम पाँच पुरुषों की कलत्र हो। पुनः क्यों लज्जा कर रही हो'' **अयिपाञ्चालि! पञ्चानां कलत्रं भूत्वा किमपि व्रीडसे?**[12] न केवल इतना ही; वह अपने बर्बर स्वभाव का परिचय देते हुए निम्न श्लोक का भी प्रयोग करता है-

हे द्रौपदि! त्वमसि कात्र पतिव्रतानां, किं दृष्टपञ्चपुरुषा वनिता कलत्रम्।
दुर्योधनस्य तदिमं भज वाममूः, मास्फलितं मुकुलिताङ्गुलिना करेण।।[13]

जिसका तात्पर्य है कि तुम पतिव्रताओं में किस प्रकार की पतिव्रता हो? क्या जिसके पाँच पति हो वह स्त्री पतिव्रता कहलाएगी? तुम दुर्योधन के द्वारा हाथों की मुँदी हुयी अंगुलियों द्वारा बजाए जाते हुए उसके बाँए जङ्घे पर बैठ जाओ। बालभारत नाटक में वर्णित उपरोक्त दृश्य से दुःशासन के उच्छृङ्खल व्यवहार एवं बर्बर स्वभाव का भान होता है। द्रौपदी दुर्योधन को भी अपने स्वयंवर में ही देखकर समझ चुकी है। वह उसके विषय में कहती है- भले ही यह चन्द्रवंशीय कुलाभरण है लेकिन यह एक छलछद्मी पुरूष है। दुर्योधन भी छल के कारण ही द्युतक्रीड़ा में विजय प्राप्त करता है। वह अपने स्वयंवर सभा में मामा शकुनि के कपटी आचरण के विषय में ऐसा कहती है- **यो द्युतकैतव विचक्षणः श्रूयते।**[14] अर्थात् ये ही वे शकुनि है जो कपट द्युतक्रीड़ा में महाप्रवीण सुने जाते हैं। उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि द्रौपदी में व्यक्ति के स्वभाव को परखने की कला अत्यन्त तीव्र है। नाटक के दुसरे अङ्क में द्रौपदी के स्पष्टवादी स्वभाव का भी परिचय बड़ी सरलतापूर्वक मिलता है। द्युतक्रीड़ा में युधिष्ठिर के सब कुछ हार जाने पर दुःशासन जब उसके केशों को पकड़कर सभा में लाता है तो वह कहती है- **भो! दुःशासन! मम किम् अपराद्धं येन दुर्जनोचितं करोषि।**[15]

अर्थात् हे दुःशासन! मैंने तेरा क्या अपराध किया है जो इस प्रकार की दुष्टता करते हो।

बालभारत नाटक की नायिका द्रौपदी नीतिनिपुण स्त्री है। कविवर ने उसे अवसरानुकूल राजनीतिज्ञ स्त्री के रूप में चित्रित किया है। दुर्योधन और दुःशासन द्वारा अपमानित किये जाने पर वह सभा के सम्मुख अपना यह प्रश्न उपस्थित करती है- **'अहं प्रथमं हारिता द्यूतं आत्मा वा धर्मनन्दनेन।'**[16]

राजनीतिज्ञ निपुणा द्रौपदी यह पूछती है कि क्या धर्मराज युधिष्ठिर पहले मुझे हारे हैं अथवा स्वयं अपने को हारकर तदनन्दतर मुझे हारे हैं। नेपथ्य से भी यह ध्वनि द्रौपदी के पक्ष में आती है-

यद्यहं हारिता पूर्वं भवामि द्यूतकिङ्करी। आत्मा वा हारितः पूर्वं तदहं नास्मि हारिता।।[17]

यदि महाराज युधिष्ठिर पहले मुझे हारे हैं तो मैं द्यूतकिङ्करी हो सकती हूँ। यदि उन्होंने सर्वप्रथम स्वयं को हारकर पुनः मुझे दाँव पर लगाया है तो मैं द्युतदासी नहीं हूँ।

द्रौपदी का उपर्युक्त कथन उसके राजनीतिज्ञ होने का परिचय देता है। वह अपने तर्कों द्वारा यह पूर्णतः स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसे अपमानित किया जाना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है।

अटल स्वाभिमानी द्रौपदी सभा में कौरव पक्ष द्वारा किये गये अपने अपमान को सहन करने हेतु किसी भी तरह तैयार नहीं है। दृढ़ निश्चय होकर वह प्रतीकार करना भी चाहती है। बदले की भावना से भरी हुयी द्रौपदी यह प्रतिज्ञा करती है – रे रे! दुर्योधन!

ऐषोऽसौ करकर्षणापरिभवे आमुक्त बन्ध क्रमः। तत्सत्यं चिरचञ्चरीककषणः केशोच्चेयस्तिष्ठति।।
नखाग्राङ्कुशकोटिपाटित महादुशासनोरः स्थीली। रक्तोरल्लेढिकरेण निश्चयमयन्भीमेन यद् बध्यते।।[18]

रे दुर्योधन! केश खींचने के कारण वेणी बन्धन छूट गया है। मेरे ये अपमानित केश हैं जो भ्रमरवर्ण की कालिमा के कसौटी स्वरूप हैं। ये केश तब तक उसी प्रकार खुले रहेंगे जब तक भीमसेन की भुजाएं दुःशासन के उरूस्थल से निकले हुए रक्त का आस्वादन नहीं करेंगी। द्रौपदी की प्रतिज्ञा से पूर्णतः प्रेरित भीमसेन भी तत्क्षण यह प्रण करते हैं कि दुःशासन के एक अपराध के भागी केवल दुःशासन ही नहीं है अपितु सौ भाईयों के रूप में सभी कौरवों का वे गदायुद्ध में विनाश कर देंगे।

भ्रातृन हनिष्यरति शतं तव भीमसेनः। काले गदा प्रहरणे रजकर्मशौण्डयः।।[19]

इस प्रकार द्रौपदी के ओजस्वी व्यक्तित्व के साथ कविवर का यह नाटक समाप्त होता है। रङ्गमञ्चीय दृष्टि से पूर्णतः सफल बालभारत नाटक में स्त्री चरित्र का जो उद्धरण प्राप्त होता है वह अनुकरणीय है। स्त्री के नारी सुलभ गुणों के साथ-साथ उसके स्वाोभिमानी व्यक्तित्त्व, अटल दृढ़ निश्चय, प्रतिकारी स्वभाव, सदाचारी स्वभाव एवं अभिवादनशीलतापूर्ण आचरण का दर्शन दो अङ्कों में निबद्ध बालभारत नाटक में अति सरलता के साथ प्राप्त हो रहा है। कविवर की प्रस्तुत रचना के अध्यायनोपरान्त यह स्पष्ट होता है कि बालभारत नाटक में चित्रित स्त्री पात्रों की भूमिका वर्तमान एवं भविष्य के लिए प्रेरणाश्रोत है।

सन्दर्भ :

1. *नाट्यशास्त्र, 1/117*
2. *संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक- डॉ. उमाशंकर शर्मा, ऋषि, पृ. 538*
3. *''बालभारतम्'' व्याख्याकार- डॉ. गङ्गासागर राय, प्रकाशन- चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 81 (बालभारत नाटक के सभी उद्धरण इसी पुस्तक से लिये गये हैं।)*
4. *वही, पृ. 81*
5. *बालभारतम्, पृ. 21*
6. *वही, 1/27 श्लोक*
7. *बालभारतम्, 1/19 श्लोक*
8. *बालभारतम्, पृ. 20*
9. *बालभारतम्, पृ. 29*
10. *बालभारतम्, पृ. 30*
11. *बालभारतम्, पृ. 33*
12. *बालभारतम्, पृ. 103*
13. *बालभारतम्, 2/41 श्लोक*
14. *बालभारतम्, पृ. 34*
15. *बालभारतम्, पृ. 103*
16. *बालभारतम्, पृ. 104*
17. *बालभारतम्, 2/42 श्लोक*
18. *बालभारतम्, 2/50 श्लोक*
19. *बालभारतम्, 2/53 श्लोक*

31

'बालभारतम्' में द्यूतक्रीडा

मिन्टु मण्डल *

संस्कृत-साहित्य के इतिहास में यायावर महाकवि राजशेखर ऐसे प्रभाभास्वर प्रज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिनकी यशोविभूति साहित्य के विविध क्षेत्रों को आलोकित करती है।[1] वह 9वीं सदी उत्तरार्ध या दसवीं के मध्य या पूर्वार्ध के समय थे ऐसा विद्वानों का मानना हैं। उनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या कहीं पाँच या छः मानी जाती हैं। उनमें से 'बालभारतम्' एक है, जो कि महाभारत से उपजीव्य है। इसे नाटकीय रूप में लिखा गया है। वर्तमान में दो ही अंक प्राप्त होते हैं। महाभारत के सभापर्व में 'द्यूतक्रीडा' का उल्लेख मिलता है। महाकवि राजशेखर ने भी इस क्रीडा का वर्णन द्वितीय अंक में ही किया है। राजा महाराजाओं के द्वारा उसी प्रकार के अन्य खेल भी खेले जाते थे। उस समय द्यूतक्रीड़ा एक प्रकार से विनोदात्मक माना जाता था। महाभारत में युद्ध का परिणाम यही था। अतः बालभारतम् में द्यूतक्रीडा समाज-रूपक है या समाज को असामाजिक बनाने के लिए; यही आलोचना इस लघु शोधकार्य का विषय है।

द्यूतक्रीडा -

उस समय यह खेल राजा महाराजाओं के मनोविनोद के लिए था। सार्वजनिक समारोहों का आयोजन किया जाता था। जिसमें इस क्रीडा को खेला जाता था । भारतीय संस्कृति में यह आज भी है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 34वें सूक्त में भी इस क्रीडा का व्याख्यान मिलता है। यह सूक्त अक्ष-सूक्त नाम से परिचित है। बालभारतम् के द्वितीय अंक में धृतराष्ट्र की सभा में द्यूत का वर्णन है। अंक के प्रारम्भ में विदुर द्यूत की निंदा करते हैं और बताते हैं कि यह सभी विपत्तियों का मूल है। विदुर पांडवों की प्रशंसा करते हुए कहते है - **''युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनो भीमोसेनोऽस्य शाखा। माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च।।''**[2] अर्थात् युधिष्ठिर धर्ममय महावृक्ष हैं, जिसके अर्जुन तना है, भीमसेन शाखा है, नकुल, सहदेव उत्तम पुष्प एवं फल हैं, परमात्मा श्रीकृष्ण उसके मूल हैं तथा उनका भी मूल वेद हैं और वेद के भी मूल ब्राह्मण हैं। और दुर्योधन ठीक इससे विपरीत है - **''दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा। दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।''**[3] अर्थात् दुर्योधन पाप रूप महावृक्ष है, जिसका तना कर्ण है, शकुनि शाखा है, दुःशासन बड़े-बड़े पुष्प एवं फल हैं एवं अदूरदर्शी धृतराष्ट्र राजा उसके मूल है। पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर को ललकारने पर वह शकुनि को कहते है - हे शकुनि! अक्ष को निकालो और पासा फेंको, क्योंकि धृतराष्ट्र एवं पाण्डु की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।[4]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** शोधार्थी-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003*

शकुनि आर्य युधिष्ठिर को बाजी लगाने के लिए कहते है, वह प्रथम बार केरल देश की स्त्रियों की हँसी के समान, स्वच्छ वर्ण वाले एक तरह के मोतियों के प्रकाश से सम्पूर्ण सभा में चंद्रोदय की शोभा को प्रदान करने वाले हार को जुए में दाँव पर लगा देता है, जो राक्षसराज ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ में दिया था।[5] और दुर्योधन वंश परम्परा से प्राप्त समस्त रत्नों जो शकुन्तला की रक्षा भी करता है, वह इन्हीं रत्नों को दाँव पर लगा देता है। उसके बाद शकुनि कहते है - **''जितं महाराज दुर्योधनेन हंहो युधिष्ठर! हारितो हारः ।''**[6] इसके बाद जब दूसरी बाजी लगाने की बारी आई तो युधिष्ठिर कहते हैं- **सम्पादिता तातधृतराष्ठस्याज्ञा। तदास्ताम्।**[7] अर्थात् धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन कर दिया, बस अब नहीं। परंतु शकुनि हँसकर कहते है - जब दुर्योधन खेलने के लिये तैयार हैं तो युधिष्ठिर जुए से विरत कैसे हो सकते है, क्योंकि उन्होंने अभी-अभी प्रतिज्ञा की है कि ललकारने पर वह जुए से पीछे न हटेगा न युद्ध से पलायन करेगा।[8] अतः दुर्योधन जब तक इस खेल में है तब तक यह खेल खेलना पड़ेगा। इसी तरह यह खेल आगे चलता रहता है। युधिष्ठिर वारांगनाओं को दाँव पर रखते है, फिर भीम दुर्योधन को कहते है - **भवतस्तु कः पणः?**[9] यह सुन कर दुर्योधन कहते है - **ममापि वारनारीणां स्मरस्मेरो गणः पणः।**[10] इसके बाद शकुनि पुनः कहते है, महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये। ऋग्वेद के अक्ष-सूक्त में संपूर्ण रूप से पासा खेल के बारे में कहा गया है, जैसे - **अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः। कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा।।**[11]

अर्थात् कभी कभी वही पासा बेहाथ हो जाता है - अंकुश के समान चुभता है, बाण के सदृश छेदता है, छुरे के समान काटता है, तप्त पदार्थ के समान संताप देता है। जो जुआड़ी विजयी होता है, उसके लिये पासा पुत्र जन्म के समान आनन्द-दायक होता है, मधुरिमा से युक्त होता है और मानो मीठे वचनों से संभाषण करता है; किंतु हारे हुए जुआड़ी को तो प्रायः मार ही डालता है।

धर्मराज युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों ही द्यूत में लिप्त हो जाते है। और युधिष्ठिर अपनी वचन की रक्षा करते हुए शकुनि के जाल में फंसते जा रहे थे। हाथी, घोड़ा, रथ आदि एक एक करके हारते ही जा रहे हैं। प्रत्येक बार दुर्योधन जीत रहा था, क्योंकि खेल के प्रारंभ में शकुनि अपने मन में दाहिना हाथ उठाकर कहते है -

हंहो हस्त कृतास्त्र! दानासलिलप्रक्षालित! स्वति ते, लोकेष्वक्षाविचक्षणश्च शकुनिः स्वाङ्गेऽपि भक्तस्त्वयि।
वीरे माननिधौ पराक्रमधने यद्भागिनेये मम, श्रीः पार्थप्रथमादपास्य भवता कार्या हि दुर्योधने।।[12]

अर्थात् हे दान के जल से प्रक्षालित, हे अस्त्र को धारण करने वाले, हे मेरे हाथ तुम्हारा कल्याण हो। द्यूत-विशारद शकुनि अपना अंग होते हुए भी तुम्हारा सेवक है, अतः तुमसे प्रार्थना है कि तुम युधिष्ठिर से राज्यश्री को हटा कर वीर माननिधि, पराक्रमैकधन, मेरी भगिनी के पुत्र दुर्योधन में स्थापित कर दो।

जिस सिंहासन पर इलापुत्र, उर्वशीपति पुरुरवा, दुष्यंत, शकुंतला पुत्र भरत, श्रेष्ठ महाराज शान्तनु ने शासन किया है, उस सिंहासन को ही दाँव पर लगा देता है। तत्पश्चात् युधिष्ठिर स्वयं को दाँव लगा देता है -

निर्यान्ति यस्य वदनाद् वितथा न वाचो, यो राजसूयविधिनिर्धुत-पाप्मपङ्कः।
सोढा न चानुजमहाविरहस्य योऽस्मि, सोऽयं स्वयं तव पणः प्रथमः पृथाभूः।।[13]

अर्थात् जिस युधिष्ठिर के मुख से असत्य वाणी कभी नहीं निकलती, जिसने राजसूय यज्ञ के अनुष्ठान से समस्त पाप-पंकों को दूर कर दिया है, जिसने अपने छोटे भाईयों का वियोग कभी सहन नहीं किया, वही कुंती के पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ युधिष्ठिर दाँव पर है। प्रतिपक्ष के रूप में दुर्योधन भी अपने आपको दाँव पर रखते है। परंतु जीत उन्हीं की होती है जिसके पक्ष में शकुनि है अर्थात् दुर्योधन की। ऋग्वेद के अक्ष-सूक्त में मंत्र संख्या 9 में कहा गया है -

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्वहन्ति।।[14]

अर्थात् पासे कभी नीचे उतरते हैं और कभी ऊपर उठते हैं। इनके हाथ नहीं है, परंतु जिनके हाथ है, वे इनसे हार जाते हैं। ये श्रीसम्पन्न हैं, जलते हुए अंगारे के समान ये नक्शे के ऊपर बैठें हैं। ये छूने में ठंडे है; किंतु हृदय को जलाते हैं। पर इस खेल में शकुनि का हाथ है, जो उनके पक्ष में होता हैं। जिसमें एक एक करके अपने सभी भाइयों को भी दाँव पर हारते हैं। अब युधिष्ठिर के पास और कुछ नहीं बचा दाँव पर लगाने के लिए। तब दुर्योधन कहते है - **धर्मदारा द्रौपदी!**[15] अर्थात् वह पाण्डव-पत्नी तथा धर्म द्वारा द्रौपदी को भी दाँव पर लगाने के लिए कहते हैं, जो कि अधर्म है। जब युधिष्ठिर के पास कुछ नहीं बचता तब वह उनकी बात को सहमति देते हुए द्रौपदी को भी दाँव पर लगा देते है -

सम्भूता द्रुपदाध्वरे हुतभुजः पाण्डोर्नृपस्य स्नुषा, राधावेधमहापणेन विजिता राज्ञां पुरः पश्यताम्।
भूभृन्मौलिमणीन्दुदीधितिजलैर्या स्नातपादाम्बुजा, सा देवी विनयाभिमानवसतिः कृष्णा वितृष्णा पणः।।[16]

अर्थात् जो महाराज द्रुपद के यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न हुई है, जो पाण्डु की पुत्रवधू है, जो स्वयंवर के लिए आये हुए समस्त राजाओं के देखते-देखते राधावेध के महापण से प्राप्त हुई हैं, जिनके चरणकमल राजसूय महायज्ञ में राजाओं के शिरःस्थित मुकुट के मणिरूपी चंद्र के प्रकाश जल से प्रक्षालित हैं, जो सभी प्रकार की तृष्णा से रहित हैं और विनम्रता एवं स्वाभिमान की विषय-भूमि हैं, वह देवी द्रौपदी दाँव पर है और द्रौपदी के बदले दुर्योधन भानुमती को पण पर रखता है।

ज्येष्ठत्वात् पाण्डुपुत्रस्य धृतराष्ट्रस्य या स्नुषा। सा देवी देवराजार्हा मम भानुमती पणः।।[17]

परंतु युधिष्ठिर ये दाँव भी हार जाते है, तब दुर्योधन दुःशासन को जुए में जीती गई द्रौपदी को दासी बनाकर लाने का आदेश देता है। इसी बीच एक और दाँव खेलते है, जिसमें शर्त था हारने पर 12 वर्षों तक ब्रह्मचर्य के साथ वन में रहना होगा और 1 वर्ष का अज्ञात वास। किंतु इसमें भी जीत दुर्योधन की हुई। जब सुनंदा दुःशासन को द्रौपदी के केश से हाथ हठाने के लिए कहती हैं तो वह हँसते हुए चारों ओर देखते है। इसी बीच भीमसेन की हुंकार से सभा के समस्त आभ्यंतर तथा राजा भी अपनी तलवार ले कर युद्ध के लिए खड़े हो गए। सुनंदा फिर एक बार दुःशासन को हाथ हटाने के लिए कहती हैं। पर वह सुनता नहीं है, फिर द्रौपदी स्वयं कहती है केश से हाथ हठाने के लिए। यह सुनकर वह हँसते हुए कहते है - **नन्वपनयाम्येकवस्त्रताम्।**[18] अर्थात् एक वस्त्रता को दूर करेगा तथा वस्त्रहरण। जैसे-जैसे वस्त्र खींचता जाता है, वैसे-वैसे वस्त्रों का अम्बार लग जाता है और दुःशासन सोचता है कि यह कोई विद्या जानती हैं। द्रौपदी दुःशासन से पूछती है कि -

मम किं अवरद्धं जेण दुज्जणोचिदं करेसि (मया किमपराद्धं येन दुर्जनोचितं करोषि)।[19]

तब दुःशासन जबाब देता हैं - **अयि पञ्चालि! पञ्चानां कलत्रं भूत्वा किमपि व्रीडसे?**[20]

द्रौपदी की पवित्रता को लेकर प्रश्न उठता है और कहते कि दुर्योधन के द्वारा हाथों की मुँदी हुई अंगुलियों द्वारा बजाए जाते हुए उसके बाये जङ्घे पर बैठों। इस बात को ध्यान ना देते हुए द्रौपदी सभा में उपस्थित गुरुजनों और सभी सभासदों से प्रश्न करती हैं - **यद्यहं हारिता पूर्वं भवामि द्यूतकिङ्करी। आत्मा वा हारितः पूर्वं तदहं नास्ति हारिता।।**[21]

विकर्ण आक्षेप करते हुए कहते हैं - ''द्यूत क्षत्रियों का धर्म है यह बात सत्य हैं, किन्तु जो जिसका मालिक नहीं है उसके द्वारा उस वस्तु के लगाये गए दाँव विजेता के नहीं हो सकते। आप बिना अवसर के ही यह अनुचित क्रोध कर रहे हैं। क्या आप सन्मार्ग का त्याग नहीं कर रहे? हे दुःशासन! द्रौपदी का केश एवं वस्त्र

खींचने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं, यह तुम्हारा भाई विकर्ण इस सभा में किसी का अन्याय सहन नहीं कर सकता'' ।[22] दुःशासन यह सुनकर क्रोधित हो जाते है और कहते है कि वह पृथक् है, उनके यहां न रहने से 99 भाई होंगे अथवा विकर्ण अब पांडव पक्ष में चले गए हैं वे पांडव के छठें भाई हो गये। इसी तरह वार्तालाप चलता रहता है। द्रौपदी दुर्योधन से कहती है कि केश के खींचने के कारण अनाकृत होने पर वेणीबंधन छूट गया और यह केश इसी प्रकार रहेगा, जब युद्ध में नखाग्ररूपी अंकुश से दुःशासन के उरःस्थल से निकले हुए रक्त का आस्वादन करने वाली भीमसेन की भुजाएँ स्वयं बाँधेगी और यह सत्य निश्चय है। भीमसेन भी यही प्रतिज्ञा करते है, और यह भी कहते है युद्ध में सभी सौ भाइयों का गदा-युद्ध में वध होगा। अन्ततः शकुनि कहते है जुए में हारे हुए वादे को पूरा करने का समय हो गया, अब वनवास के लिए निकलो।

समाज में दो स्थितियाँ हमेशा रही हैं, प्रथमः शिक्षा (ज्ञान), द्वितीय अशिक्षा (अज्ञान); अज्ञान में विनाश तथा दुःख होता है। शिक्षा (ज्ञान) में समृद्धि तथा सुख होता है। अतः वर्तमान समाज में शिक्षा अति आवश्यक है, क्योंकि समाज शिक्षा से ही आने वाले भविष्य को परिवर्तित कर सकता है। जुए से किसी का भविष्य परिवर्तित नहीं हुआ, जैसे युधिष्ठिर स्वयं अपने भविष्य को नहीं बदल सके, तो साधारण मनुष्य कैसे बदल सकेंगे। इसीलिए आज के समाज में शिक्षा अति आवश्यक है; और नारी शिक्षा भी। जिससे समाज प्रगति की ओर चले। समाज के उद्धारक डॉ. भीमराव अम्बेडकर सबके लिए शिक्षा की बात करते हैं - ''मनुष्य ही महान समाज और महान राष्ट्र को जन्म दे सकता है, यदि उसके पास शिक्षा है।'' द्यूत समाज के लिए एक प्रकार से घातक है, अज्ञानता वश वह द्यूत में लिप्त रहता है। इस लिए हितोपदेश में भी कहा गया है - **''काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।''**[23] अर्थात् काव्यशास्त्र के विनोद से बुद्धिमानों का और द्यूत आदि दुर्व्यसन, नींद अथवा कलह से मूर्खों का समय कटता है।

निष्कर्षः- द्यूतक्रीड़ा वही नाभि-कड़ी है जिससे आगे का संपूर्ण नाट्य—वनवास, अपमान, प्रतिशोध और युद्ध—घूमते है। शकुनि दुर्योधन के उकसाने पर द्यूत का निमंत्रण देते हैं। युधिष्ठिर राजधर्म तथा सामाजिक मर्यादा से बँधे आमंत्रण अस्वीकार नहीं करते, यही उनका धर्मसंकट था। शकुनि पासों को कपट कौशल से अपने पक्ष में मोड़ता है। दाँव बढ़ते जाते हैं, जिसमें धन - राज्य - भ्राता - स्वयं - द्रौपदी सभी को द्यूतक्रीड़ा में हार जाते है। यह अपरिहार्य-पतन का नाटकीय आरोह है - प्रत्येक दाँव अगले दाँव की नैतिक भयावहता की सीढ़ी बनता है। द्रौपदी का प्रश्न -''जिसने स्वयं को ही हार दिया, वह द्रौपदी को किस अधिकार से दाँव पर रखता है?'' - यह प्रश्न सभा को न्याय परीक्षा में डाल देता है। नैतिक विवेक और साहस की वाणी से करुण-वीर रस का संगम होता है। विदुर की चेतावनी, भीष्म की दुविधा, धृतराष्ट्र का अनिर्णय - ये सब सत्ता समाज की निष्प्रभता को उद्घाटित करते है। इस पर कुछ प्रश्न भी सामने आते है, जैसे - 1. धर्म क्या है?, 2. सभाधर्म बनाम न्याय - किसे वरीयता?, 3. राज्य-न्याय में स्त्री-सम्मान का स्थान? आदि। वर्तमान समय में जुए का खेल बड़े बड़े मंच से प्रसारित होते है, जिससे समाज में असमाजिकता चरम सीमा पर है। अब लोग डिजिटल माध्यम की सहायता से इसी भी तरह के खेलों का प्रसार कर रहे हैं। इस पर ध्यान देना चाहिए।

सन्दर्भ -

1. *बालभारतम्-भूमिका, पृ. 1*
2. *बालभारतम्- 2/5*
3. *बालभारतम्- 2/6*

4. बालभारतम्- 2/12, पृ. 77
5. बालभारतम्- पृ. 79
6. बालभारतम्- पृ. 80
7. बालभारतम्- पृ. 81
8. बालभारतम्- पृ.81
9. बालभारतम्- पृ.82
10. वही, पृ.82
11. अक्ष-सूक्त(10.34), मन्त्र- 7
12. बालभारतम्- 2/14, पृ.79
13. बालभारतम्- 2/25, पृ.90
14. अक्ष-सूक्त(10.34), मन्त्र- 9
15. बालभारतम्, पृ.97
16. बालभारतम्- 2/34, पृ.97
17. बालभारतम्- 2/35, पृ.98
18. बालभारतम्, पृ.102
19. बालभारतम्, पृ.103
20. वही, पृ.103
21. बालभारतम्, 2/42, पृ.105
22. बालभारतम्, पृ.105/6
23. हितोपदेश, मित्रोलाभ - 1, पृ. 11

32

दलितप्रलम्बा

रामहेत गौतम *

'दलितप्रलम्बा' वह साधन है जो एक विद्रोही योद्धा के हाथ मेंउस वक्त चमत्कृत हो उठता है जब अपने ही अपनों के विरूद्ध षड़यंत्र रचते हैं। वह उस साहस का प्रतीक बन जाता है, जो प्रकट होता है अन्यायी सत्ताधीशों के विरुद्ध। सत्ताधीश भी कोई और नहीं उसके अपने रक्त संबन्धी हैं, जो एक ही पिता की संतान होते हुए भी भाई-भतीजावाद के मोहपाश में पड़कर अपने ही कुल की एक स्त्री की अश्मिता को सरेआम तार-तार होते हुए देखते रहते हैं। ऐसा लगता है कि भीष्म, द्रोण, कृपाचार आदि लोग जैसे नाममात्र के लिए गूँगे पुलते बनाकर बैठा रखे हों। ऐसा दृश्य कि मानो सत्ता की हनक के आगे उनकी चेतना को साँप सूँघ गया था । साहस के ऐसे अकाल के समय कोई करुण स्वर एक बार फिर फूट पड़ा था। यह स्वर तमसा के किनारे निर्जन वन में नहीं फूटा था इस बार। इस बार तामसी वृत्ति से घिरे लोगों वाले राजदरबार में फूटा था। इस बार निषाद् के स्थान पर बदले की भावना से ग्रसित सत्ताधीशों का पूरा झुण्ड था। सत्ता के साथ सुख भोगने वालों के लिए दलितप्रलम्बधर के मुख से निकले वचन दुराग्रही सत्ताधीशों को झकझोरे न सकें तो राजशेखर कवि की कलम के अग्रभाग पर बैठकर साक्षात् सरस्वती के द्वारा लिखा गया वचन व्यर्थ हो जायेगा। तब तो भारतीय ज्ञान परम्परा कलंकित ही मानी जायेगी।

दलितप्रलम्बधारी का उद्घोष दुराचारियों के कान खड़े कर देने वाला था। स्त्री के अभिमत को जाने बिना उसे दाव पर लगा देने वालों के लिए शर्मिन्दा कर देने वाला था। सत्ता के अहसानों के बोझ के नीचे अपनी आत्मा को कुचल देने वालों के लिए गर्दनों को पापबोध से स्वतः गिरा देने वाला था। हस्तिनापुर के महलों के झरोखों से निकलकर मार्गों पर चलने वालों में सुगबुगाहट पैदा कर देने वाला था। महलों की महिलाओं के अन्तस् में शूरवीरों के भाव की आशा को जिन्दा रखने वाला यही एक मात्र था। सम्मान के आसमान से धराशायी होती द्रोपदी की उम्मीद को हवा में बहते पत्ते से प्राप्त अवलम्ब सा था। क्योंकि जब द्रोपदी हाथ जोड़कर सभासदों के सम्मुख गिड़गिड़ा रही थी कि-**हं हो सभामध्यस्थिता गुरवो नरेन्द्राश्च! द्रोपदी निर्णयं पश्यति।**

उस समय जो साक्षी थे वे मौन थे लग रहा था कि सत्ता के आतंक ने उनको चित्तशून्य कर दिया हो। तभी नेपथ्य से आवाज आती है कि –

द्रोपदि! विकर्णस्त्वामाह, कीदृशो निर्णयः।[1] (अर्थात् देवी द्रोपदी! विकर्ण पूछता है कि किस बात का निर्णय?)

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003*

तब द्रोपदी कहती है कि – यही निर्णय कि महाराज ने स्वयं को पहले हारा है या मुझ द्रोपदी को।
पुनः पर्दे के पीछे से विकर्ण पूछता है तुम्हारा अभिप्राय है कि –

यद्यहं हारिता पूर्वं भवामि द्यूतकिङ्करी। आत्मा वा हारितः पूर्वं तदहं नास्मि हारिता।।[2]

अर्थात् यदि महाराज ने पहले मुझे हारा है तो ही मैं द्यूतकिङ्करी/द्यूतदासी हो सकती हूँ। यदि उन्होंने अपने आप को पहले हारा है तो मैं द्यूतदासी नहीं हो सकती।

यहाँ विकट संकट में घिरी एक स्त्री अपने शील की रक्षा के लिए न्यायिक तर्क का सहारा लेती है। जिसका उत्तर वहाँ उपस्थित किसी पुरुष की सुसुप्त जिह्वा से निकलने से पहले ही विकर्ण को हड़काते हुए दुःशासन कहता है कि अरे रे! अकर्ण विकर्ण! बीच सभा में बैठे भुवनपति आर्य दुर्योधन के होते हुए तुम क्यों रो रहे हो? तभी विकर्ण खुलकर सामने आकर आरोप लगाता है कि –

द्यूतं क्षत्रकुलव्रतं नहि भवेज्जेतुः पणोऽस्वामिनां संरम्भः किमकाण्ड एव भवता सद्वर्त्म यत्तयज्यते।
भो दुःशासन ! कः क्रमो द्रुपदजाकेशाम्बराकर्षणे दुर्वृत्तिं क्षमते न कस्यचिदयं भ्राता विकर्णस्तव।।3

अर्थात् द्यूतक्रीडात क्षत्रियों का धर्म है। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु जिस पर स्वामित्व ही न रहा हो उस वस्तु को दाँव पर लगा देने पर वह वस्तु दाँव विजेता की कैसे हो सकती है? आप तो अकारण ही गुस्सा दिखा रहे हैं। क्या आप सच्चाई से दूर नहीं भाग रहे हैं? हे दुःशासन द्रोपदी के केश व वस्त्र आप कैसे छू सकते हैं? आपको ऐसा कहने का कोई हक नहीं है। यह तुम्हारा भाई विकर्ण इस भरी सभा में किसी प्रकार का अन्याय सहन नहीं कर सकता।

विकर्ण के इस कथन से यह तो स्पष्ट ही है कि सत्ता किसी भी समय की रही हो, किसी भी व्यक्ति की रही हो, किसी भी देश व काल में क्यों न रही हो, गलत को गलत कहने वालों का अभाव कभी भी और कहीं भी नहीं रहा है। आज भी नहीं। ऐसे विकर्णों की समाज को हमेशा आवश्यकता रहेगी। क्योंकि सत्ता की चकाचौंध से अप्रभावी दृष्टि वाले ही सम्यग्दृष्टि होते हैं। शेष तो पर-उपदेशक मात्र ही होते हैं।

ऐसा भी नहीं है कि सत्तापक्ष के द्वारा विकर्ण को चुप कराने की कोशिश न की गई हो। उसे हड़काते हुए दुर्योधन कहता है कि –अरे रे धार्तराष्ट्रबटो! वाचाटोसि तदद्य प्रभृति-

न्यायवादी विकर्णोऽत्र भवद्भ्यो यद्यहं बहिः। तद्यूतं शतमेकोनं षट् च सम्प्रति पाण्टवाः।।[4]

अर्थात् अरे लड़के! बहुत बक-बक कर रहा है। हे कौरव भाईयों, यदि आपको लगता है कि विकर्ण न्याय की बात कर रहा है तो मुझे भूल जाओ, मेरे बिना आप निन्न्यानवे तो एक साथ रहेंगे। अथवा विकर्ण द्वारा पालाध्पक्ष बदल लेने पर पाण्डव भले छह हो जायें पर हम निन्न्यानवे एक साथ रहेंगे।

यहाँ एक तरह से दुर्योधन यह संदेश देना चाहता है कि इस समय मैं राजा हूँ, सत्ता मेरे हाथ में है। विकर्ण का पक्ष लेने पर कौरव सत्ता से बाहर हो सकते हैं। और यदि मेरा साथ देते हैं तो हम बहुसंख्यक तो रहेंगे ही, साथ ही सत्ता का सुख भी भोगेंगे। दुर्योधन उपहास उड़ाते हुए कहता है कि बताओ विकर्ण! हमारा साथ दोगे! इस समय हम बहुसंख्यक तो हैं ही साथ ही सत्ता में भी हैं। विरुद्ध जाओगे या साथ रहना चाहोगे? सोच लो। तब विकर्ण अन्यायी व बहुसंख्यक होने का डर दिखाने वाली सत्ता के आगे नहीं झुकता। बिगाड़ के डर से न्याय की बात करने से नहीं चूकता। अपने गुरु बलराम के द्वारा प्रदत्त गदा को न्याय के लिए उठने वाली गदा बताता हुआ विद्रोही हो जाता है।

यह विद्रोही स्वर यूँ ही अचानक नहीं फूटता। वह देख चुका होता है कि सत्ता के मद में चूर दुर्योधन राष्ट्र को गर्त में धकेलने को आतुर अदूरदर्शी शकुनि के साथ मिलकर अपने ही कुटुम्बीजनों को द्यूत धूर्ततामयी

चाल में फंसाकर सत्ता को अपने कब्जे में रखना चाहता है। उन्हें अपने अतिरिक्त लोगों का प्रतिनिधित्व पसन्द नहीं है।

विकर्ण को पता है कि अर्जुन एक ऐसा योद्धा है जिसके गुरु द्रोण, तथा परमगुरु परशुराम हैं। महाताल के पेड़ों को उखाड़कर गदा की तरह घुमाने वाला, दुर्योधन की टक्कर का बलिष्ठ भीम जैसे वीरों को प्रतिनिधित्व न देने पर राष्ट्र का ही अहित है। विकर्ण महसूस कर रहा है कि दासियों के बीच सुगबुगाहट है कि- **'अहो! महात्मनामपि कैतवानुगृहीता वृत्तयः।'**[5] अर्थात् अहो! बड़े लोगों के चरित्र भी कपट भरे होते हैं।

उसे पता है कि दुर्योधन की छवि आरम्भ से ही अच्छी नहीं है। तभी तो स्वयंवर के समय द्रोपदी ने दुर्योधन को देखते ही कह दिया था कि- **'अतिमत्तचण्डचरित्र एषः।'**[6] अर्थात् यह तो अत्यन्त उच्छृङ्खल व बर्बर है। लाक्षागृह का षड्यन्त्रकारी, भीम को विष देने वाले दुर्योधन की रग-रग से परिचित है विकर्ण। वह जानता है कि दुर्योधन की भेदकारी नीति के कारण ही पाण्डवों को अपने ही देश में अपनी जाति-वर्ण छुपाने पर मजबूर होना पड़ा था। अन्यथा कौन ऐसा व्यक्ति है जो सच को छुपाए। ये अनैतिक लोग ही लोगों को अपने वर्ण-जाति को छुपाने के लिए बाध्य करते हैं। दुष्ट सत्ता के कारण ही द्रोपदी के स्वयंवर के समय आक्षेप सुनना पड़ा था कि-

रे रे ब्राह्मण! मुञ्च विप्लवमिमं श्रुत्यर्थवीथीं स्मर क्षत्रस्याथ ननु स्वयंवरविधावेकाधिकारः स्थितः।
तच्चेन्नाद्रियसे स्मरार्द्रहृदयो दण्डयस्त्वमुर्वीभुजां, तत्सङ्कर्षणकार्मुकं समुदिता नैते क्षमन्ते नृपाः।।[7]

अर्थात् हे हे ब्राह्मण! वर्णधर्म का अतिक्रमण मत करो। तुम तो केवल वेदोक्त मार्ग(वेद पठन-पाठन, यजन-याजन) मात्र का पालन करो। स्वयंवर की विधि तो केवल क्षत्रियों के लिए होती है। यदि काम के वशीभूत होकर विवाह करने मात्र के लिए स्वयंवर में धनुष उठाने का काम करोगे तो पक्का समझो कि क्षत्रियों की इस सभा/समाज में दण्डित किये जाओगे। यहाँ एकत्रित राजा-महाराजा धनुष उठाने के मनोरथ को पास बैठे तुम्हारे अपराध को क्षमा नहीं करेंगे।

योद्धाओं की सभा में एक परमयोद्धा को जिसके कारण खरी-खोटी सुनकर चुप रहना पड़ा हो ऐसा अपराध किसे नहीं कचोटेगा। विकर्ण भी सब देख-समझ रहा होता है। विकर्ण को स्मरण है कि द्यूत की तैयारी के समय हस्तिनापुर के नीतिज्ञ विदुर भी दुःखी मन से कहे थे कि- ब्रह्मा से लेकर विष्वक्सेन पर्यन्त इस महाराज वंश में चन्द्र के अतिरिक्त किसी भी वंशज में कलामात्र भी कलंक नहीं रहा। पर आज इस दुर्योधन के दुश्चरित्र ने इस महाराजवंश को कलंकित कर दिया है।

वाच्यं यत्र दुरुक्तयःकुचरितं नानाविधा वाणिका, लाभः सान्द्रतमो रसः किमपरं भावश्च मोहो महान्।
शैलूषैः कितवैरनेककपटश्रेणीमहानाटकं, द्यूतं यत्किल तत्र कौरवपतिः प्रस्तावनायां स्थितः।।[8]

अर्थात् नटों एवं धूर्तों द्वारा अनेक कपट परम्पराओं से युक्त द्यूत का महानाटक हो रहा है, जिसके सूत्रधार दुर्योधन हैं। जिसमें अश्लील वचन ही संवाद हैं। नाना प्रकार का क्रूराचरण ही जिसकी सजावट व नृत्य हैं। घोर तमोगुण रूप फल ही जिसमें रस है। अधिक क्या कहें? महामोह की उसका भाव है।

जब विदुर के साथ विद्यमान पुरुष कहता है कि द्यूतविशारद पुरुष तो द्यूत को समृद्ध करने वाला बताते हैं। तथा कहा जाता है कि जुआरी अच्छे दिनों के स्वामी होते हैं। वे कहते हैं कि –

रणन्मणिनूपुरा रणरणद्हारच्छटा, क्वणन्मणिकङ्कणा मुखरमेखलामालिका।
भवन्ति भवनाङ्गणे घनघनाकुले ते परं, प्रसन्नदिनस्वामिन इह जयन्ति द्यूतेन ये।।[9]

अर्थात् दूसरों को जुए में जीतने वाले सम्पत्तिशाली सुन्दर भवनों में निवास करते हैं। और उनके घर में मणियों वाले नूपुरों की झंकार होती है। हारों एवं मणियों के कङ्कण भी झंकृत होते हैं। नाना प्रकार की मालाओं से मुखरित घरों में उनके अच्छे दिन व्यतीत होते हैं। तब विदुर कहते हैं कि द्यूत तिमिङ्गलगिल-न्याय से चमकता हुआ फैलता है परन्तु ज्यादा समय नहीं टिकता। इतना ही नहीं विदुर की नजर में दुर्योधन की छवि घमण्डी व बात-बात पर क्रोध करने वाले व्यक्ति की है-

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखा।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रो मनीषी।।[10]

अर्थात् दुर्योधन पापरूप वह महावृक्ष है, जिसका तना कर्ण है, शाखा शकुनी है, दुःशासन आदि बड़े-बड़े फूल-फल हैं। अदूरदर्शी धृतराष्ट्र ही इस पापी महावृक्ष की मूलजड़ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बालभारत के द्वितीय अङ्क के आरम्भ में विदुर और पुरुष के बीच हुई वार्तावली में दुर्योधन के सभी दुर्व्यवहार उद्घाटित हो जाते हैं। विष्कम्भक की समाप्ति पर युधिष्ठिर, भीम, दुर्योधन और शकुनि का प्रवेश होता है। तभी युधिष्ठिर कहता है कि-

विवर्तयाक्षाञ्छकुने! शारक्रीडां प्रवर्तय। धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च ममाज्ञा मौलिमृच्छति।।[11]

अर्थात् हे शकुनि अक्ष निकालिए, और पासा फेंकिए, क्योंकि धृतराष्ट्र एवं पाण्डु की आज्ञा शिरोधार्य होती है। इतना ही नहीं **राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डवोहं युधिष्ठिरः। आहूतो न निवर्तेयं द्यूतादपि रणादपि।।**[12]

अर्थात् राजसूय यज्ञ कराने वाले युधिष्ठिर को कोई एकबार चुनौती दे तो मैं पीछे नहीं उसटता फिर चाहे युद्ध हो या फिर द्यूत। इस प्रकार वचन के पक्के युधिष्ठिर को बातों के दुश्चक्र में फंसाकर अनीतिपूर्ण द्यूत के सहारे युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी को हथिया कर भाईयों के साथ युधिष्ठिर को भी अपने अधीन कर लिए जाने के बाद द्रोपदी को भी द्यूत के दाँव में जीत लिया जाता है। द्रोपदी को उसके पतियों व गुरुजनों के सामने ही अपमानित किया जाने लगता है। दुःशासन के द्वारा केश पकड़कर खींची जाती हुई द्रोपदी को बचाने के लिए सभा में विद्यमान किसी भी वीर पुरुष के हाथ नहीं उठते। सारे सबल निर्बल थे और जो हाथ सबल थे वे रक्षण में नहीं भक्षण में संलग्न थे। ऐसी निर्वीर सभा में दासता का जीवन जीने वाली सुनन्दा का स्त्रीत्व जागता है। एक सेविका भी इस पल भूल जाती है कि वह तो दासी है। राजसत्ता के आगे वह कहीं नहीं लगती। उसके अथवा उसके परिवार के साथ क्या कुछ भयानक घटित नहीं जो सकता। यह सब भूलकर वह एक राजमहल की स्त्री को राजमहल के ही खूनी पंजों से बचाने के लिए जद्दोजहद करती हुई दिखाई देती है। द्रोपदी भी लाज छोड़कर निवेदन करती है कि- **वत्स दुःशासन! मुञ्च मे केशहस्तम्। कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरतः सञ्चरिष्यामि।**[13] द्रोपदी केकरुण निवेदन की अवहेलना करते हुए दुःशासन अहंकार पूर्वक कहता है कि – 'नन्वपनयाम्येक-वस्त्रताम्।' अर्थात् अब तुम्हारी एक-वस्त्रता को भी दूर किये देता हूँ। सत्तापक्ष के ऐसे हिंसक अहंकारी वचनों को सुनकर संवेदनशील व्यक्ति का खून न खोले; यह कैसे हो सकता है? द्रोपदी के बार-बार के आग्रह का उपहास उड़ाते हुए दुःशासन की बड़ती धृष्टता को देखकर विकर्ण का धैर्य टूट जाता है। नेपथ्य से ही विकर्ण ललकारते हुए पूछ ही लेता है कि- **'कीदृशो निर्णयः'**[14]

द्रोपदी, दुःशासन, दुर्योधन आदि के मुखमंडलों को ताकते हुए व उनकी बातों को सुनते हुए विकर्ण का ध्यान पाण्डवों की ओर जाता है। उनकी मजबूरी को देखकर कहता है कि –

अहो! उचितकारिता पाण्डवानाम्। आकर्णय कौरवकुमारबलं प्रचण्ड-मत्युल्लसन्ति गुरुरोषकषायताराः।
–दृग्दृष्टयो नृपतिसंसदि पाण्डवानां-दृष्ट्वा युधिष्ठिरमुखं पुनरानमन्ति।।[15]

अर्थात् अहो पाण्डव भी कितने अच्छे हैं कि- इस राजसभा में कौरवकुमार दुःशासन की ललकार को सुन पाण्डवों की आँखों में खून उतर आता है किन्तु, युधिष्ठिर के मुँह को देखकर विनम्र हो जाते हैं। उधर दुर्योधन का राजसभा में इतना आतंक है कि द्रोपदी के केशकर्षण की घटना से छुब्ध सभासद दुर्योधन के भृकुटि टेड़ी करते ही सभी चित्रलिखित से रह जाते हैं। तभी बार-बार होते पाण्डवों के तिरस्कार से व्यथित होकर विकर्ण युधिष्ठिर के पास जाकर कहता है कि हे आर्य! अब क्या बचा? आवेश आकर उन धूर्तों के वाग्जाल में फंसकर जो वचन दे दिये हो, यहाँ बैठकर और अधिक लज्जित होने से तो अच्छा है कि वनवास के लिए प्रस्थान कीजिए। द्रोपदी भी स्त्री-स्वभाव के अनुसार अपने अपमान से व्यथित होकर जाते-जाते कोसती है कि –

एषोऽसौ करकर्षणापरिभवे आमुक्तबन्धक्रमः तत्सत्यं चिरचञ्चरीककषणः केशोच्चयस्तिष्ठति।
नखाग्राङ्कुशकोटिपाटितमहादुःशासनोरःस्थली- रक्तोल्लेढिकरेण निश्चयमयं भीमेन यद् बध्यते।।[16]

अर्थात् रे रे दुर्योधन! जिस तरह से आज मुझे बाल पकड़कर घसीटा गया कि मेरे बाल खुल गये, अब ये तभी बंधेगे जब भीम स्वयं दुःशासन की छाती चीर कर उसके लहू से सने हुए हाथों से बांधेंगे। अब यही मेरी प्रतिज्ञा है। द्रोपदी के शापित वचनों को सुनकर भीम प्रतिज्ञा करता है कि –

येनेयं याज्ञसेनी नृपसदसि हठात्केशपाशे गृहीता यश्चास्याः कोटवीत्वं बत कलयति भो वाससां राशिकारः।
सोऽहं तेनैव रोषारुणनयनपुटः पाणिनोत्पाटितेन ते हन्ता! हन्त! वक्षस्तटभुवि रटतो दुष्टदुःशासनस्य।।[17]

अर्थात् जिस दुष्ट दुःशासन ने इस भरी सभा में द्रोपदी के बाल खींचे, उसे निर्वस्त्र करने की मंशा से द्रोपदी के कपड़े खींचे, उस दुष्ट की दोनों भुजाएं उखाड़कर उसकी छाती फाड़ के मानेगा यह भीम।

इतना ही नहीं दुःशासन का लहू तो पीयूँगा ही, तुम्हारे सभी सौ भाईयों को न निपटाया तो कहता। सत्ता के मद में चूर दुष्ट दुर्योधन की जांघे भी मेरे गदा प्रहारों से तड़-तड़ायेगीं। तथा दुर्योधन के माथे के मुकुट मणियों को अपने इन्हीं पैरों से ठुकराऊँगा। इस प्रकार भीम के रौद्र प्रलाप और जीत के नशे में इठलाते सत्तापक्ष के दृश्य के साथ बालभारत का द्वितीय अङ्क समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में निबद्ध सम्पूर्ण घटनाक्रम एक ही समझ पैदा करता है कि हस्तिनापुर जैसा विशाल साम्राज्य ना समझी के कारण भीषण युद्ध की चपेट में आकर तहस-नहस हो जाता है। विरासत में मिला साम्राज्य पूर्वजों के द्वारा समझदारी से निर्मित किया गया होता है। सही समय पर सही निर्णयों व नीतियों के द्वारा संरक्षित व संवर्धित किया गया होता है। उसके आगामी संरक्षण व संवर्धन के लिए समझदार शासकों की अपेक्षा होती है। परन्तु जब सत्ता पक्ष स्वार्थी, पक्षपाती होकर सत्ता के मद में चूर होकर लोगों के दाय को भी देने से इंकार करने लगे, राष्ट्र में, सभाओं में स्त्रियों की अस्मिता से खिलवाड़ होने लगे। और ऐसे अवसरों पर वयोवृद्धत्व के साथ-साथ ज्ञानवृद्ध होना स्वीकार कर लिया गया है जिनका उन्हें खुलकर सत्ता को चेताना होता है। अन्यथा बाद में कुछ बचता नहीं है। आने वाली पीढ़ियाँ उस चुप्पी को गलत ठहराती हैं। उनके ज्ञानवृद्धत्व पर प्रश्नचिह्न लगाती हुई देखी जाती हैं। अतः महाकवि राजशेखर महाभारत को बालभारत कहते हैं। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम को एक छोटे से रूपक के दो अंकों में निबद्ध करके समकालीन ज्ञानबालों को सरलता से समझाने का उद्यम करते हैं। इस संपूर्ण रूपक में विकर्ण ही एकमात्र ऐसा पात्र है जो अपने गुरु की शिक्षा व उनके द्वारा प्रदत्त वीरता की निशानी अपनी गदा के महात्म्य को पुर्नस्थापित करने के लिए उद्यत है। वह उस गदा के महत्त्व को रक्षण के कार्य में देखता है। विकर्ण उद्घोष कर देता है-

यां मे बलः सुबलवान् दलितप्रलम्बां, शिष्येषु सत्स्वपि महत्सु गदामदत्त।
सा मे यदादिशति हस्ततलावतीर्णा, दुर्वृत्तदण्डनविधौ मम सोऽत्र पन्थाः।।[18]

अर्थात् सबसे अधिक बलशाली बलभद्र जी ने मेरे जैसे अन्य अनेक धुरन्धर शिष्यों के होते हुए भी जो गदा मुझे प्रदान की यह साधारण गदा नहीं है। यह बलभद्र के द्वारा दुष्ट प्रलम्ब के दलन में प्रयुक्त व परीक्षित हो चुकी है। यह दुष्टों के दलन के लिए ही बनी है ऐसा लगता है मुझे। आज फिर एक बार दुष्टों के दलन का समय आ गया है। दुष्टों को दण्ड देने के क्रम में यह गदा जैसा करायेगी वही मेरे लिए उचित तरीका होगा।

निष्कर्षतः कहा जाए तो हम पाते हैं कि इस रूपक में राजशेखर ने युवा पीढ़ी को यह संदेश दिया है कि वह बहुसंख्यकवाद, अल्पसंख्यकवाद, सत्तापक्ष के फायदे अथवा विपक्ष के अभाव आदि को प्राथमिकता न दे। वह अपना विवेक जागृत करे कि वर्तमान देश-काल-परिस्थिति में जो कुछ भी घटित हो रहा है; उसके दूरगामी परिणाम क्या होने वाले हैं? अन्यथा की स्थिति में महाभारत जैसे गृहयुद्ध में झुलसने के बाद हस्तिनापुर का सत्तासुख विजेताओं को भी विरक्त होने से नहीं रोक सका। हस्तिनापुर के सारे संसाधन आपसी कलह की लपटों में विनष्ट हो गये। स्त्रियों की लुटी लाज विश्वविश्रुत हो गयी।

इस रूपक में धृतराष्ट्र जैसा राजा है जो पक्षपाती है। जिसकी पक्षपाती नीति के कारण ही पूरे कौरव वंश का विनाश हो गया। अतः कौटिल्य लिखते हैं कि 'एते चान्ये बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः। सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः'।। अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, मद और हर्ष से ग्रषित राजा बन्धु-बान्धवों के साथ-साथ राष्ट्र को भी ले डूबे।[19] इस रूपक में उत्तराधिकार का संघर्ष है। अपने आप को युवराज घोषित कर चुका दुर्योधन भी अपने वंशज भाइयों को राज्य का अंश न देने के अन्याय से ही मारा गया। दुर्योधन के द्वारा स्त्री अपमान के लिए अपने भाइयों को उकसाया जाना तथा दुःशासन जैसे दुष्ट प्रवृत्ति युवा के द्वारा बिना विचार के ही मर्यादा की सारी हदें पार करके अपने ही कुल की वधू को निर्वस्त्र करते हुए अट्टहास करना आदि अविवेकिता व सत्तामद के विषय में कहे गये नीतिवाक्य- **'यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय, किमु यत्रचतुष्टयम्**?'[20] को चरितार्थ करता है। जहाँ यह सबकुछ घटित हो रहा है वहाँ कोई नीति का पक्ष नहीं लेता अतः **'न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्**[21]'। दुर्बल का बल राज होता है परन्तु जब राजा ही पक्षपाती व हत्यारा हो चला हो तब द्रोपदी के विषय में 'बालानां रोदनं बलम्' वाली बात ही शेष रह जाती है। सत्तापक्ष की हाँ में हाँ मिलाने वाले तो अनेक थे परन्तु सत्य का पक्ष लेने वाला उस सभा में विकर्ण ही दिखा। अतः सत्य ही कहा गया है कि **'सुलभा पुरुषा लोके सततं प्रियवादिनः। अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः'।।**[22] ऐसे युवा हर काल, देश व समाज में अपेक्षित रहते हैं। कलह पारिवारिक हो या फिर राष्ट्रीय उसकी लपटों में आने वाली पीढियाँ व संसाधन न झुलसे इस बात के प्रति चिन्तनशीलता की अपेक्षा सदा रहती है। अतः कलह पारिवारिक हो या राष्ट्रिय; समझदारों के द्वारा रोकी जानी ही चाहिए। जिस प्रकार विकर्ण अपने हाथ में **'दलितप्रलम्बा**[23]**'** गदा को उठाकर गलत का विरोध करता है उसी प्रकार आज का युवा अपनी लेखनी को उठाकर गलत का विरोध करे। परिवार, समाज, व राष्ट्र समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व के भाव से समन्वित समाज व राष्ट्र की सेवा करे। समाज व राष्ट्र ही एक ऐसा महावृक्ष है जिसमें सभी शरण पाते हैं।

संदर्भ -

1 *बालभारत-2.41 के बाद विकर्ण का कथन*

2 *बालभारत- 2.42*

3 *बालभारत- 2.43*

4 बालभारत-2.44

5 बालभारत- 1.39 से पहले बन्दी का कथन।

6 बालभारत- 1.41 के बाद द्रोपदी का कथन।

7 बालभारत- 1.82

8 बालभारत-2.2

9 बालभारत-2.9

10 बालभारत-2.6

11 बालभारत-2.12

12 बालभारत-2.13

13 बालभारत- 2.39 के बाद द्रो

14 बालभारत- 2.41 के बाद नेपथ्य से विकर्ण का कथन।

15 बालभारत- 2.47

16 बालभारत- 2.50

17 बालभारत-2.51

18 बालभारत- 2.45

19 कौटिलीय अर्थशास्त्र. प्रथमाधिकरण, प्रकरण-3, अध्याय-5, पद्य-1

20 हितोपदेश, प्रस्तावना-11

21 विदुरनीति- 3.58

22 वाल्मीकीय रामायण-3.37.02

23 दलितः प्रलम्बो यया सा तां दलितप्रलम्बां प्रलम्बासुरबधकारिणीम्। बालभारत, डॉ. गंगासागर राय व्याख्याकार, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1989 सं. पृ. 107

33

'कर्पूरमञ्जरी' का नाट्यशास्त्रीय अनुशीलन

रश्मि यादव *

राजशेखर संस्कृत साहित्याकाश में काव्यशास्त्रीय आचार्य एवं नाट्यकार के रूप में विश्रुत हैं। दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महाराष्ट्र के यायावर वंश[1] में प्रादुर्भूत हुए मध्य-देश वासी राजशेखर साहित्य विद्या में पारङ्गत थे। काव्य मीमांसा जैसे साहित्य शास्त्र के प्रणेता राजशेखर बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी और विद्धशालभञ्जिका- इन नाट्यकृतियों की रचना के कारण कविराज की उपाधि से विभूषित हैं। राजशेखर की सर्वप्रसिद्ध नाट्यकृति कर्पूरमञ्जरी को सट्टक के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। भोजराज सट्टक को रूपक के अन्तर्गत जबकि रामचन्द्र-गुणचन्द्र[2] और विश्वनाथ[3] इत्यादि परवर्ती आचार्यों ने सट्टक को उपरूपक के अन्तर्गत माना है। रूपक रसाश्रित और उपरूपक भावाश्रित होते हैं। भावाश्रयता, नृत्य का समायोजन और नाटिकावत् होने के कारण सट्टक को उपरूपक कोटिक विधा स्वीकार किया जाना समीचीन है।

राजशेखर विरचित कर्पूरमञ्जरी संस्कृत नाट्य परम्परा में प्राचीनतम सट्टक है। सर्वप्रथम आचार्य आनन्दवर्धन ने कोहल से सम्बद्धित सट्टक का उल्लेख करते हुए दृष्टान्त के लिए कर्पूरमञ्जरी का उल्लेख किया है।[4] राजशेखर के अनुसार नाटिका का पूर्णतः अनुकरण करने वाला और विष्कम्भक तथा प्रवेशक से रहित प्रबन्ध सट्टक कहा जाता है- **तत् सट्टकमितिभण्यतेदूरंयो नाटिका अनुहरति। कि पुनरत्रप्रवेशकविष्कम्भकौ न केवलंभवतः।।**[5]

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी को प्राकृत भाषा में निबद्ध किया है; क्योंकि उनके अनुसार संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत भाषा में आबद्ध रचनाएं अधिक मधुर और सुकुमार होती हैं- **परुषारू संस्कृतबन्धाः प्राकृतबन्धोऽपिभवति सुकुमारः**।[6] आचार्य अभिनवगुप्त ने राजशेखर के भाषा प्रयोग को प्रमाण मानते हुए सट्टक में केवल प्राकृत भाषा के प्रयोग की अनिवार्यता स्वीकार की है।[7] इसी परम्परा को संवर्धित करते हुए भोजराज और रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने सट्टक को एक भाषी स्वीकार किया है; किन्तु वह भाषा संस्कृत हो, प्राकृत से भिन्न अपभ्रंश हो या प्राकृत हो, यह स्पष्ट नहीं किया है।[8] परवर्ती आचार्य शारदा तनय ने **''प्रकृष्ट प्राकृतमयी सट्टकं नामतो भवेत्''**[9] का निर्देश करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि सट्टक शौरसेनी, प्राच्या और मागधी प्राकृत में निबद्ध हो।

आचार्य सागरनन्दी तथा आचार्य विश्वनाथ ने सट्टक का साङ्गोपाङ्ग स्वरूप निरूपण किया है। सट्टक का इतिवृत्त नाटिकावत् कवि कल्पित और चार जवनिकान्तर में आबद्ध होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति के चारों

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**अस्सिटेंट प्रोफेसर, संस्कृत पॉली प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज*

अङ्ग परिलक्षित होते हैं। अवमर्श सन्धि का अभाव या अत्यल्प प्रयोग होता है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसमें विष्कम्भक तथा प्रवेशक; का अभाव होता है। नायक धीरललित कोटि का प्रख्यात वंश का राजा होता है, जो स्त्री पात्र के समान प्राकृत भाषी होता है। इसमें स्त्री पात्र की बहुलता और प्रायः दो नायिकाएं होती हैं। इसका अङ्गीरस श्रृङ्गार होता है। रौद्र, वीर, भयानक और वीभत्स रस का अभाव होता है जबकि अद्भुत रस अनिवार्यतः होता है। सट्टक की रचना और मञ्चन मुख्यतः जनसामान्य के लिए किया जाता है, उनके रसानुभूति में किसी प्रकार का विघ्न न हो, एतदर्थ सट्टक विष्कम्भक और प्रवेशक से रहित केवल प्राकृत भाषा में आबद्ध किया जाता है। नाट्यसाहित्य में अत्यल्प संख्या में विद्यमान सट्टक विधा को कर्पूरमञ्जरी ने पुनर्जीवन प्रदान किया। कर्पूरमञ्जरी पूर्णतः लोकभाषा प्राकृत में निबद्ध प्रथम मौलिक प्रयोग था, जो लोकजीवन के सन्निकट होने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

वस्तु विवेचनः - वस्तु, नेता और रस वे भेदक तत्त्व हैं जिनके आधार पर रूपक और उपरूपक के भेदों को निर्धारित किया जाता है। प्रथम भेदक तत्त्व वस्तु कथानक, कथावस्तु, कथा और इतिवृत्त इत्यादि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। कर्पूरमञ्जरी का कथानक उत्पाद्य अर्थात् कवि कल्पित है। यद्यपि इसके नायक चन्द्रपाल का नामोल्लेख इतिहास में है और इस कृति में विदर्भ और लाट जैसे कतिपय ऐतिहासिक स्थल वर्णित हैं, तथापि इसकी आधिकारिक कथावस्तु राजा और कर्पूरमञ्जरी का प्रणय सम्बन्धी वृत्तांत पूर्णतः उत्पाद्य है। नायक के मुख्य फल प्राप्ति पर्यन्त अभिव्याप्त कथा आधिकारिक वस्तु कही जाती है।[10] कर्पूरमञ्जरी में राजाचन्द्रपाल और नायिका कर्पूरमञ्जरी के विवाह और चक्रवर्तित्व की प्राप्ति रूपी फल तक का इतिवृत्त आधिकारिक वस्तु है। इस सट्टक में मुख्य कथा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारान्तर वस्तु का अभाव होने से पताका और प्रकरी वृत्त की स्थिति नहीं है। पात्रों के आधार पर कथानक त्रिविध- दिव्य, मर्त्य और दिव्यादिव्य होता है।[11] इस सट्टक के सभी पात्र लौकिक हैं, अतः इसका इतिवृत्त मर्त्य लोकीय इतिवृत्त है। आचार्य धनञ्जय ने वस्तु का फल त्रिवर्ग माना है।[12] कर्पूरमञ्जरी में ज्येष्ठ नायिका राजाके धर्मरूप प्रयोजन चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए राजा का विवाह घनसार मञ्जरी के छद्म रूप में विद्यमान कर्पूरमञ्जरी से करवाती है। इससे सिद्ध है कि 'धर्म से अनुगतकाम' ही इस कथानक का परम प्रयोजन है।

कथावस्तु के प्रयोजन की सिद्धि के लिए जो उपाय किए जाते हैं, उसे नाट्यशास्त्र में अर्थप्रकृति की संज्ञा दी गई है।[13] आचार्य अभिनवगुप्त ने इसका शाब्दिक अर्थ 'फल का हेतु' बताया है - **अर्थः फलंतस्यप्रकृतयः उपायाफलहेतवः इत्यर्थः।**[14] अर्थप्रकृति के पांच भेद होते हैं –बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य। प्रारम्भ में सूक्ष्म रूप में और तदनन्तर अनेक प्रकार से विस्तारित होने वाले कथांश को बीज कहते हैं।[15] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में भैरवानन्द का यह कथन बीज है –

''दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णस्तभ्नामितस्यापि रवेरथं नभोऽध्वनि।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः तन्नास्ति भूमिवलये ममयन्न साध्यम्'' 1.25

यहां भैरवानन्द के द्वारा चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतार सकने सम्बन्धी उक्ति से राजा चन्द्रपाल के भूपति होने एवं सूर्य के रथ को रोक सकने सम्बन्धी उद्धरण से चक्रवर्तित्व पद की प्राप्ति और उत्तरार्द्ध के कथन 'अपूर्व स्त्रीरत्न की प्राप्ति' से कर्पूरमञ्जरी की प्राप्ति अभिव्यञ्जित हुई है। अवान्तर प्रयोजन के कारण विच्छिन्न मुख्य प्रयोजन को पुनः जोड़ने को बिन्दु कहा जाता है।[16] तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक के स्वप्नविषयक प्रसङ्गोपरान्त प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी शास्त्रीय चर्चा रूपी अवान्तर प्रयोजन से कर्पूरमञ्जरी और राजा की प्रणय कथा के विच्छिन्न हो जाने पर कर्पूरमञ्जरी का यह कथन- (नेपथ्ये)

विषमिव बिसकन्दली विषधर इव हारच्छटा वयस्यमिवात्मनः किरतितालवृन्तानिलः।
तथा च करनिर्गतं ज्वलति यन्त्रधाराजलं न चन्दनमहौषधं हरति देहदाहं च मे ३.२०

राजा को कर्पूरमञ्जरी को प्राप्त करने के लिए पुनः उद्धत करके मुख्य प्रयोजन के अविच्छेद्य का कारण होने से बिन्दु है। यह सट्टक पताका और प्रकरी नामक अर्थप्रकृति से रहित है। फल के अधिकारी नायक के व्यापार की पांच अवस्थाओं –आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम[17] को कार्यावस्था कहा जाता है, जो पांचवीं अर्थप्रकृति है। प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र का होना आरम्भ है।[18] कर्पूरमञ्जरी में भैरवानन्द के कथन **''दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णस्तभ्नामितस्यापि रवेरथं नभोऽध्वनि''**[19] से लेकर राजा के कथन- **''यत् मुक्ताश्रवणान्तरेणतरलातीक्ष्णाकटाक्षच्छटा''**[20] (अर्थात् इस नायिका ने जो मुझे तीक्ष्ण कटाक्ष से देखा) तक की कथावस्तु से राजा और कर्पूरमञ्जरी का एक-दूसरे के प्रति उत्सुक होना स्पष्ट है। यहां तक आरम्भ नामक कार्यावस्था है। फल के प्राप्त न होने पर अतिशीघ्रता से उद्यम करना यत्न है।[21] द्वितीय जवनिकान्तर में विचक्षणा के द्वारा राजा के पास नायिका का प्रेमपत्र पहुंचाने से प्रारम्भ करके तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा नायिका का दर्शन एवं प्रेमालाप पर्यन्त यत्न नामक कार्यावस्था है। उपाय और विघ्न दोनों के होने पर जब फल प्राप्ति की सम्भावना मात्र दिखाई दे; तो उसे प्राप्त्याशा कहते हैं।[22] तृतीय जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध में प्रमदोद्यान में राजा और कर्पूरमञ्जरी के मिलन के पश्चात रानी विभ्रमलेखा रूपी विघ्न की आशंका से नायिका कर्पूरमञ्जरी का सुरंग के मार्ग से रक्षागृह में लौट जाना प्राप्त्याशा है। विघ्न की समाप्ति के पश्चात्फल प्राप्ति का नितान्त निश्चय होना नियताप्ति है।[23] चतुर्थ जवनिकान्तर में सारङ्गि का राजा और घनसारमञ्जरी का वेष धारण करने वाली कर्पूरमञ्जरी के विवाह होने की सूचना देती है। तब राजा के प्रति जनान्तिक में कहा गया विदूषक का कथन- **सत्यं कृतं त्वया आभाणकम्।**[24] अर्थात् 'तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया' नियताप्ति है। समग्र रूपेण फल की प्राप्ति फलागम है।[25] चतुर्थ जवनिकान्तर में राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह एवं चक्रवर्तित्वपद की प्राप्ति होना फलागम है।[26]

नाट्य की कथावस्तु का एक प्रयोजन से अन्वित होने पर, किसी अवान्तर प्रयोजन से जुड़ जाना सन्धि है।[27] नाट्यसन्धियां पञ्चधा-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श एवं निर्वहण हैं। नाना प्रकार के प्रयोजन और रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति को मुख सन्धि कहते हैं।[28] कर्पूरमञ्जरी में भैरवानन्द के कथन- ''दर्शयामितमपिशशिनंवसुधावतीर्णंद्र' से लेकर कर्पूरमञ्जरी द्वारा प्रेम पत्र भेजने के कथांश के पूर्व तक मुखसन्धि है। बीज के कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भेद को प्रतिमुख सन्धि कहते हैं। कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में राजा एवं कर्पूरमञ्जरी के मिलन का हेतु जो अनुराग रूपी बीज है, उसका उपक्षेप किया गया है। द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक के कथन –'अयिविचक्षणे ! सर्वंसत्यमिदम् ?'[29] (''अरेविचक्षणे, क्या यह सब सच है?'') द्वारा यह अनुराग कुछ-कुछ अलक्ष्य एवं विचक्षणा के कथन- सर्वेसत्यतरम्।[30] (सब सत्य ही समझो) द्वारा लक्ष्य है। अतः यहाँ प्रतिमुखसन्धि है। जहाँ दिखाई देकर नष्ट हुए बीज का पुनः पुनः अन्वेषण किया जाता है, वह गर्भसन्धि है।[31] कर्पूरमञ्जरी के तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा बताये गये अपने स्वप्न की घटना से कर्पूरमञ्जरी के प्राप्ति की आशा होती है और नींद के भङ्ग होने से स्वप्नगत मिलन बाधित हो जाता है। पुनः कर्पूरमञ्जरी के दर्शन से उसकी प्राप्ति की आशा होती है, किन्तु रानी विभ्रमलेखा के आगमन का समाचार आशा भङ्ग कर देता है। यहाँ दिखायी देकर नष्ट हुए बीज का पुनः पुनः अन्वेषण करने से गर्भसन्धि है। जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा प्रलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विमर्श किया जाता है तथा जिसमें गर्भसन्धि द्वारा निर्भिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया जाता है, वह अवमर्श सन्धि कहलाती है।[32] कर्पूरमञ्जरी में प्रकरी के

अभाव पूर्वक नियताप्ति से युक्त अल्प अवमर्श सन्धि प्राप्त होती है। चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा के द्वारा विदूषक से कर्पूरमञ्जरी के विषय में जिज्ञासा करने पर कर्पूरमञ्जरी को कठोर बन्धन में रखने सम्बन्धी विदूषक के कथन से विघ्न दर्शाया गया है।[33] अन्ततः विघ्न दूर करने के उपाय के रूप में भैरवानन्द के प्रयास से प्राप्त रानी की स्वीकृति से नियताप्ति सुनिश्चित होती है। यहाँ तक विमर्श सन्धि है। जहाँ बीज से युक्त मुखादि सन्धियों में यथोचित रूप में बिखरे हुए प्रयोजनों का एक मुख्य प्रयोजन में समाहार होता है, वहां निर्वहण सन्धि होती है। कर्पूरमञ्जरी के चतुर्थ जवनिकान्तर के अन्त में राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह और चक्रवर्तित्व पद की प्राप्ति होती है। इस प्रसङ्ग में राजा का यह कथन द्रष्टव्य है- योगीश्वर! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है। क्योंकि कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के कर स्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती सम्राट होकर महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ।[34] प्रस्तुत स्थल पर निर्वहण सन्धि है।

कथावस्तु के सूच्यअंश को प्रस्तुत करने वाले विष्कम्भक, प्रवेशक, तूलिका, अङ्कास्य और अङ्कावतार को अर्थोपक्षेपक कहा जाता है।[35] कर्पूरमञ्जरी में चूलिका के अतिरिक्त अन्य चारों अर्थोपक्षेपकों का अभाव है। कर्पूरमञ्जरी का प्रायः सम्पूर्ण इतिवृत्त प्रकाश्य है। मात्र कतिपय अंशों की सूचना चूलिका के द्वारा दी गई है। जवनिका (नेपथ्य) के अन्दर स्थित पात्रों के द्वारा कथांश की दी गई सूचना चूलिका है।[36] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में दो स्थलों पर चूलिका की योजना की गई है। प्रथमतः नेपथ्य में स्थित दो वैतालिकों के द्वारा राजा की प्रशस्ति और वसन्तऋतु के सौन्दर्य की सूचना दी गई है।[37] तत्पश्चात जवनिकान्तर के अन्त में नेपथ्य में स्थित दो वैतालिकों के द्वारा सन्ध्या के आगमन की सूचना दी गई है।[38] इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर में भी वैतालिक के माध्यम से सन्ध्या काल की सूचना दी गई है।[39] तृतीय जवनिकान्तर में नेपथ्य पात्र के द्वारा मञ्चस्थ राजा और विदूषक को नायिका के काम पीड़ा की सूचना[40] और नेपथ्य में उत्पन्न कोलाहल के द्वारा महारानी के आगमन[41] की सूचना दी गई है।

नाटकीय संवाद या कथोपकथन के आधार पर कर्पूरमञ्जरी का कथानक सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य– इन तीनों रूपों में समुपलब्ध है। सभी के सुननेयोग्य नाट्योक्ति को सर्वश्राव्यया प्रकाश कहा जाता है।[42] कतिपय स्थलों के अतिरिक्त कर्पूरमञ्जरी का सम्पूर्ण कथानक सर्वश्राव्य है। स्वगतया आत्मगत संवाद को अश्राव्य कहा जाता है।[43] कर्पूरमञ्जरी में इस प्रकार के अनेक कथन विद्यमान हैं। प्रथम जवनिकान्तर में सूत्रधार;[44] कर्पूरमञ्जरीय[45] देवी,[46] द्वितीय जवनिकान्तर में प्रतिहारी[47], तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक[48] और चतुर्थ जवनिकान्तर में भैरवानन्द[49] एवं देवी[50] की उक्तियां इत्यादि अश्राव्य संवाद के दृष्टान्त हैं। नियत जनों के द्वारा सुनने योग्य कथोपकथन नियतश्राव्य कहे जाते हैं।[51] नियतश्राव्यजनान्तिक एवं अपवारित–इन दो प्रकार के हैं।[52] प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य पर मुग्ध राजा के द्वारा विदूषक से कहा गया कथन अपवारित है।[53] जनान्तिक[54] की योजना चतुर्थ जवनिकान्तर में समुपलब्ध है। राजा और कर्पूरमञ्जरी के विवाह के अवसर पर मात्र राजा के प्रति कहा गया विदूषक का कथन जनान्तिक है।[55]

पात्र विवेचन- दृश्य-काव्य का दूसरा मुख्य तत्त्व नेता अर्थात् अभिनय करने वाले पात्र होते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु का आदान-प्रदान पात्र के माध्यम से होता है; उसी तरह रूपककार पात्रों के अभिनय के माध्यम से ही, कथावस्तु का जीवन्त चित्रण करते हुए तात्कालिक समाज और संस्कृति आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कर्पूरमञ्जरीके प्रमुख पात्रों में राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, कर्पूरमञ्जरी, विदूषक कपिञ्जल, विचक्षणा, भैरवानन्द, कुरङ्गिका एवं सारङ्गिका हैं। गौण पात्रों में सूत्रधार, पारिपार्श्विक, दो वैतालिक-रत्नचण्ड एवं

काञ्चनचण्ड, प्रतिहारी, चर्चरियां आदि हैं। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से राजा चन्द्रपाल चिन्तामुक्त, कलासक्त, सुखी और कोमल प्रकृति का होने के कारण धीरललित नायक है।[56] वह अनेक देशों पर विजय प्राप्त कर अपने राज्यचम्पा के प्रशासन की समुचित व्यवस्था करके चिन्ता मुक्त हो चुका है। अतः वह सम्पूर्ण वृत्तान्त में कर्पूरमञ्जरी के प्रति अनुरक्त दिखाई देता है। नायिका का शब्द चित्र बनाना, चित्रकला में उसकी निपुणता का द्योतक है।[57] वह नृत्यकला में अनुरक्ति के कारण चर्चरियों के नृत्य कौशल से आह्लादित हो जाता है।[58] कुन्तल देश के राजा-वल्लभराज एवं रानी शशिप्रभा की पुत्री कर्पूरमञ्जरीमुग्धा कोटि[59] की नायिका है, जिसे भैरवानन्द अपनी योगशक्तिसे राजा चन्द्रपाल के राजभवन में उपस्थित कर देता है। उसका सौन्दर्य, नवयौवन, बुद्धिमत्ता और शालीनता राजा को बलात् आकृष्ट कर लेती है। राजा चन्द्रपाल की प्रधान महिषी विभ्रम लेखा इस सट्टक की ज्येष्ठा नायिका है। जिसके हृदय में राजा के प्रति अगाध प्रेम और राजा के उत्कर्ष की उत्कट अभिलाषा है। वह कर्पूरमञ्जरी एवं राजा के प्रेम को सहन नहीं कर पाती किन्तु राजा के चक्रवर्ती हो जाने की कामना से, घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने के लिए उद्धत हो जाती है।[60] इसके अतिरिक्त विदूषक, भैरवानन्द और विचक्षणा जैसे पात्र प्रभावशाली भूमिका में हैं।

रस विमर्श - भरतमुनि[61] से लेकर पश्चाद्वर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने रूपक का प्राणतत्त्व होने के कारण रस को नाट्य के भेदक तत्त्व- वस्तु एवं नेता की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। रसानुभूति कराना ही नाट्य का प्रयोजन है।[62] आचार्य आनन्द वर्धन काव्य में रस को ही सर्वाधिक प्रमुख मानते हैं।[63] आचार्य राजशेखर और विश्वनाथ[64] ने भी रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है।[65] नाट्यशास्त्रियों के मत का अनुसरण करते हुए कर्पूरमञ्जरी में सट्टक होने के कारण अङ्गी रस के रूप में शृङ्गार रस की योजना की गई है। यद्यपि अन्य रसों-हास्य और अद्भुत रस की छटा भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है। कर्पूरमञ्जरी में शृङ्गार रस के सम्भोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही भेद मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। प्रेम की मार्मिक व्याख्या करते हुए राजा कहता है –जिस भाव के उत्पन्न होने पर एक दूसरे के चित्त के विचार संशय इत्यादि भावों से रहित हो जाते हैं, जिसमें आनन्द का स्रोत-सा बहता है और शृङ्गार से प्रवृद्ध कामदेव के द्वारा जिसमें उत्कर्ष तथा सरलता आ जाती है वह भावप्रेम कहलाता है -

यस्मिन्चिकल्पघटनादिकलङ्कमुक्तः आत्मनः सरलत्वमेति भावः ।
एकैकस्य प्रसरद्रस प्रवाहः शृङ्गारर्वाद्धतमनोभवदत्तसारः ॥कर्पूरमञ्जरी 3.10

कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य पर आसक्त होकर राजा उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की प्रसंशा करते हुए कहता है-

तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता तथा च स्तनतुङ्गिमा तथा नेतिनाभिंमुखम् ।
तथा नयन बंहिमा यथा न किमपिकर्णोत्पलं तथा च मुखमुज्ज्वलंद्विशशिनी यथा पूर्णिमा कर्पूरमञ्जरी 1.34

यहाँ नायिका के प्रति नायक के प्रेम का प्रकटीकरण किया गया है। नायिका आलम्बन विभाव, नायक आश्रय, नायिका की जंघायें नेत्र एवं मुखकान्ति उद्दीपन विभाव है। स्पृहापूर्वक अवलोकन, दीर्घश्वास, खेद आदि अनुभाव हैं। इन विभावानुभावव्यभिचारियों के संयोग से अभिव्यक्त स्थायीभाव रति की चर्वणाशृङ्गार रस है। नायक और नायिका के विरह-वेदना के वर्णन में विप्रलम्भशृङ्गार का उद्वेक अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है। यथा काम सन्तप्तनायिका विषयक पद्य -**'निःश्वासाहारयष्टिस–शप्रसरणाश्चन्दनः स्फोटकारी चन्द्रादेहस्यदाहः स्मरणस–शीहासशोभामुखेऽपि। अङ्गानां पाण्डुभावो दिवसशशिकलाकोमलः किञ्चतस्या नित्यंबाष्पप्रवाहास्तवसुभग ! कृतेभवन्तिकुल्याभिस्तुल्याः'।। कर्पूरमञ्जरी 2.10**

इस पद्य में नायिका आश्रय, नायक आलम्बन विभाव, गहरी साँसें लेना, शरीर संताप, शरीर का पीत वर्ण, अश्रु प्रवाह आदि अनुभाव और रति स्थायी भाव है जो उद्‌बुद्ध होकर विप्रलम्भ शृङ्गाररस का आस्वादन कराता है। कर्पूरमञ्जरी में शृङ्गार रस के समान ही हास्य रस की विनोदपूर्ण उद्‌भावना हुई है। विदूषक के हाव-भाव, व्यङ्‌ग्यपरक कथन और गर्वोक्तियों से पुष्ट हास्य रस की झलक आद्योपांत दिखाई देती है। प्रथम जवनिकान्तर में चेटी और विचक्षणा से कहा गया विदूषक का यह कथन हास्य रस से आप्लावित है - **भोः युष्माकं सर्वेषां मध्येऽहमेकः कालाक्षरिकः, यस्यमेश्वशुरस्मश्वशुरः पण्डितगृहे पुस्तकानि वहन्नासीत्**![66] (अर्थात् तुम सब में मैं ही एक मूर्ख हूं जिसके ससुर का ससुर भी पण्डितों के गृह में पुस्तकें उठाता रहता था।) अन्यत्र भी विचक्षणा को विषय बनाकर उत्पन्न हास्य द्रष्टव्य है –**'विदूषकः- एषा विचक्षणा महीतलसरस्वती? एतस्या ज्येष्ठभगिनिका त्रिभुवनसरस्वती। तदेताभ्यांसमङ्कतिस्पर्द्धां न करिष्यामि'**।[67] यहां विदूषक आलम्बन विभाव और राजा एवं विचक्षणा आश्रय है। विदूषक का विचक्षणा विषयक कथन उद्दीपन, हंसना अनुभाव और गर्व एवं असूया व्यभिचारी भाव है। इनके संयोग से अभिव्यक्त स्थायी भाव हास हास्य रस की चर्वणा कराता है। इसी प्रकार रानी विभ्रमलेखा को विषय बनाकर कहे गये विदूषक के इस कथन- **'पायिता जीर्णमार्जारिका दुग्धमितितक्रम्'**[68] (अर्थात् वृद्ध बिल्ली को दूध के बहाने से मट्ठा पिला दिया।), से भी हास्य रस का सद्यः आस्वादन हो जाता है। इस सट्टक में विदूषक के स्वप्न इत्यादि अनेकहास्यपरक दृष्टान्तसमुपलब्ध हैं। सट्टक में अद्‌भुत रस की अभिव्यञ्जना अनिवार्य है। राजशेखर इस नाट्यशास्त्रीय मान्यता को पुष्ट करते हुए कर्पूरमञ्जरी में अनेकशः अद्‌भुत रस की योजना की है। भैरवानन्द के द्वारा राजभवन में कर्पूरमञ्जरी को उपस्थित कर देना और अन्तमें घनसार मञ्जरीके वेश में स्थित कर्पूरमञ्जरी से राजा के विवाह कराने के प्रसङ्ग अद्‌भुत रस के समुचित उदाहरण हैं। द्वितीय जवनिकान्तर में दोहद के अवसरपर अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति हुई है। कर्पूरमञ्जरी के प्रगाढ़ आलिंगन से कुरबक, तिलक और अशोक वृक्ष में एकाएक फूल खिल जाते है, जिससे चकित होकर विदूषक दोहद कार्य को महेन्द्रजाल (जादू) की संज्ञा देते हुए कह उठता है-

भोः प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व महेन्द्रजालं येन-बालोऽपिकुरबकतरुस्तरुण्यागाढमुपगूढः।
सहसेतिकुसुमनिकरंमदनशरमिवसमुद्‌गरति।।कर्पूरमञ्जरी 2.45

यहाँ कुरबक वृक्ष आलम्बनविभाव, विदूषक आश्रय, फूलों का खिलना उद्दीपन एवं हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभावादि के संयोग से उद्‌बुद्ध स्थायी भाव विस्मय अद्‌भुत रस का आस्वादन कराता है।

भाषा प्रयोग - आचार्य धनञ्जय के अनुसार अवस्थाओं का अनुकरण ही नाट्य है।[69] इन अवस्थाओं का अनुकरण आङ्‌गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक–इन चार प्रकार के अभिनय के द्वारा किया जाता है। पात्रों का वाग् व्यापार अर्थात् भाषा प्रयोग वाचिक अभिनय के अन्तर्गत आता है। नाट्य में कथानक के यथार्थ एवं स्वाभाविक मञ्चन के लिए संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा के प्रयोग की परम्परा दिखाई देती है। सट्टक मुख्यतः जनसामान्य के मनोरञ्जनार्थ सृजित किए गए हैं। अतः सर्वजनसंवेद्यता को ध्यान में रखते हुए इसमें पात्रों के नाम और अभिनय सङ्‌केत के अतिरिक्त सर्वत्र प्राकृत भाषा का प्रयोग किया जाता है। कर्पूरमञ्जरी सम्पूर्ण सट्टक प्राकृत में है। भरतमुनि से लेकर आचार्य धनञ्जय तक किसी भी आचार्य ने नाट्य को पूर्णतः प्राकृत में लिखने का विधान नहीं किया है, किन्तु राजशेखर को संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत अधिक माधुर्यपूर्ण और लोकजीवन के सन्निकट प्रतीत हुई होगी, अतः आद्योपांत प्राकृत का प्रयोग कविराज राजशेखर की मौलिक

उद्भावना है। सभी भाषाओं परसमान रूप से अधिकार रखने के कारण ही राजशेखर ने स्वयं को **सर्वभाषाचतुर**[70] कहा है। कर्पूरमञ्जरी का गद्य भाग शौरसेनी प्राकृत में और पद्य भाग महाराष्ट्री प्राकृत में आबद्ध है। शौरसेनी प्राकृत मथुरा और मध्य देश के आसपास और महाराष्ट्री प्राकृत महाराष्ट्र के आसपास बोली जाती है। अन्य प्राकृतों की अपेक्षा महाराष्ट्री प्राकृत में अधिक लालित्य एवं माधुर्य है अतः पद्य में लालित्य लाने के लिए महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया गया है। इस सट्टक के मङ्गलाचरण से द्योतित होता है कि इस कृति में वैदर्भी, मागधी और पाञ्चाली इन तीनों रीतियों को समाविष्ट किया गया है। कर्पूरमञ्जरी की प्राकृत में अनेक प्रान्तीय तथा देशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जोकालान्तर में हिन्दी भाषा में भी प्रचलित हो गये। जैसे-अज्जबि- आज भी, उट्ठिन- उठकर कहिं पि-कहीं भी, कोइल- कोयल, खिड़क्किआ- खिड़की, चट्टि-चटाई, चम्म- चाम (चमड़ा), ढिल्ल- ढीला, थण- थन (स्तन) आदि। लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग कर्पूरमञ्जरी की भाषा को रोचक बनाता है। कतिपय लोकोक्तियां दर्शनीय हैं- **'द्राक्षारसो न मधुरीयतिशर्करया'**[71] अर्थात् क्या मिठास के लिए द्राक्षा रस को शक्कर की आवश्यकता होती है?, **'शीर्षे सर्पः, देशान्तरे वैद्यः'**[72] अर्थात् सिर पर सांप और वैद्य दूसरे देश में, 'तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्,[73] अर्थात् किनारे पर पहुंची हुई भी नौका का विश्वास नहीं करना चाहिए,'अथवा हस्तकङ्कणं किं दर्पणेन दृश्यते?'[74] अर्थात् हाथ कङ्गन को आर सी क्या, 'न कस्तूरिका कुग्रामेवने वा विक्रीयते, न सुवर्णेकषपट्टिकांविनाशिलापट्टकेकष्यते'[75] अर्थात् कस्तूरी छोटे गांव और जंगल में नहीं बेचा जाता है और न ही सोना कसौटी के बिना पत्थर पर घिसा जाता है, 'भोकिमेतदकालकूष्माण्डपतनम्'[76] अर्थात् कुसमय में यह कूष्माण्ड कैसे गिर पड़ा? इत्यादि। वस्तुतः कर्पूरमञ्जरी के भाषा एवं शैलीगत वैशिष्ट्य के आधार पर कहा जा सकता है –अहो! कर्पूरमञ्जर्या अभिनवार्थ दर्शनम्, रमणीयः शब्दः, उक्ति विचित्रता, रसनिष्यन्दश्च।[77]

संस्कृत साहित्य के गौरवशाली परम्परा में भास, कालिदास जैसे कवियों से इतरय सट्टक विधा में साहित्य सर्जना राजशेखर का युगान्तकारी कार्य है। उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों के द्वारा उपेक्षित ऐसी विधा को अपनी लेखनी का विषय बनाया, जो लोकभाषा एवं लोक-संस्कृति से सम्बद्ध था। जन-सामान्य का वह वर्ग, जो संस्कृत भाषा के प्रयोग से अनभिज्ञ था। उसके मनोरञ्जन हेतु उसकी भाषा में दृश्यकाव्य की सर्जना करके राजशेखर जन-कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी, लोकप्रिय नाट्य-विधा 'सट्टक' की परम्परा में अग्रणी एवं पथ-प्रदर्शक के समान है जिससे प्रेरित होकर पश्चात्वर्ती सट्टककारों ने अपनी कृतियों का प्रणयन किया है।

सन्दर्भ -

1. *उपाध्यायो यायवरीयः राजशेखरः, बालरामायण*
2. *नाट्यदर्पण, पृष्ठ 190*
3. *साहित्यदर्पण, 6.4-6*
4. *अभिनवभारती, भाग-2, पृष्ठ 581*
5. *कर्पूरमञ्जरी,सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य 1.6*
6. *कर्पूरमञ्जरी,1.8*
7. *तथाहि शृङ्गार रसे सातिशयोपयोगिनि (नी) प्राकृत भाषेति।*
   सट्टककर्पूरमञ्जर्याख्यः राजशेखरेण तन्मात्र एव निबद्धः।।अभिनवभारती, भाग-2 पृष्ठ 536

8. (क) विष्कम्भकप्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषया भवति।
   अप्राकृत (प्राकृतया) संस्कृतया (?) स सट्टको नाटिका प्रतिभः।। शृङ्गारप्रकाश, पृष्ठ 540-541
   (ख) विष्कम्भकप्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषया भवति।
   अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको नाटिका।। - नाट्यदर्पण, भाग-1, चतुर्थ विवेक, पृष्ठ 213
9. भावप्रकाशन,8.158
10. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
    तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।।- दशरूपक-1/12
11. दशरूपक, पृष्ठ 16-17
12. कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानुबन्धि च-दशरूपक 1/16
13. प्रयोजनसिद्धहेतवः अर्थप्रकृतयः। दशरूपक, संपादक श्री निवास शास्त्री, पृष्ठ 20
14. अभिनवभारती-19-20
15. स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। - दशरूपक -1/174
16. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्-दशरूपक-1/17
17. अवस्थाः पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः। आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। - दशरूपक-1/19
18. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। - दशरूपक-1/20
19. कर्पूरमञ्जरी 1.25
20. कर्पूरमञ्जरी 1.29
21. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। - दशरूपक-1/20
22. उपायापायशङ्काभ्याम् प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः। - दशरूपक-1/21
23. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। दशरूपक-1/21
24. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 151
25. दशरूपक 1.22
26. कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः। पालयामि वसुधातलराज्यं चक्रवर्तितपदवीरमणीयम्।।
    कर्पूरमञ्जरी 4.22
27. दशरूपक 1.23
28. दशरूपक 1.24
29. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 51
30. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 51
31. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।– दशरूपक-1/36
32. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्। गर्भेनिभिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।।- दशरूपक-1/43
33. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 134-136
34. कर्पूरमञ्जरी 4.22
35. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्। विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।। - दशरूपक 1/58
36. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।। - दशरूपक-1/61
37. कर्पूरमञ्जरी 1.15-16

38. कर्पूरमञ्जरी 1.35-36
39. कर्पूरमञ्जरी 2.50
40. कर्पूरमञ्जरी 3.20
41. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 124
42. दशरूपक पृष्ठ 82
43. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् । अश्राव्यं स्वगतं मतम्-दशरूपक-1/64
44. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 6
45. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 33-34
46. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 10
47. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 46
48. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 95
49. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 147
50. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 148
51. दशरूपक 1.64
52. दशरूपक 1.66
53. कर्पूरमञ्जरी 1.29
54. दशरूपक 1.65-66
55. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 151
56. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।। दशरूपक 2.3
57. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 31-39
58. कर्पूरमंजरी, पृष्ठ 138-142
59. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि । दशरूपक 2.16
60. कर्पूरमञ्जरी 4, पृष्ठ 144
61. न हि रसा–ते कश्चित् अर्थः प्रवर्तते । नाट्यशास्त्र
62. आनन्दनिस्यन्दिष रूपकेषु, दशरूपक 1.6
63. मुख्या व्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः । तेषां निबन्धने भाव्यं तैः सदैवाप्रमादिभिः ।। ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ 217
64. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्, साहित्य दर्पण 1
65. रस आत्मा..., काव्यमीमांसा, तृतीय अध्याय, (पं. केदारनाथ शर्मा सारस्वत), पृष्ठ 15
66. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 18
67. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 57
68. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 70
69. अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्. दशरूपक 1.7
70. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 7
71. कर्पूरमञ्जरी 2.26
72. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 144
73. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 151
74. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 19
75. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 19
76. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 143
77. कर्पूरमञ्जरी पृष्ठ 122

34

'कर्पूरमञ्जरी' की साहित्यिक समालोचना

राजेश कुमार मिश्र, सुमन नस्कर***

भारतीय नाट्यपरंपरा में संस्कृत नाटकों की विशेष प्रतिष्ठा रही है, तथापि प्राकृत भाषाओं का भी इस परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का सामान्यतः प्रयोग स्त्री पात्रों एवं निम्नवर्णीय पात्रों द्वारा संवाद में सीमित रूप से होता रहा है। परंतु राजशेखर द्वारा रचित कर्पूरमञ्जरी एक ऐसी दुर्लभ नाट्यकृति है, जो सम्पूर्णतया महाराष्ट्रीय प्राकृत में रचित है। यह कृति न केवल भाषागत दृष्टि से विशिष्ट है, अपितु नाट्यकला, सौंदर्यशास्त्र एवं लोकसंस्कृति की अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

राजशेखर, जो नवम-दशम शताब्दी के प्रतिष्ठित कवि, नाटककार एवं काव्यशास्त्रज्ञ थे, ने अपने काव्यमीमांसा ग्रन्थ में काव्यशास्त्र की विशद मीमांसा करते हुए कवि के लिए आवश्यक गुणों का उल्लेख किया है - **''कवीनां कवित्वे विशेषं प्रतिभा कारणं मन्ये।''**[1]

वे काव्य में प्रतिभा को प्रमुख मानते हैं, जो उनके नाटकों में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। कर्पूरमञ्जरी में उनका यह मौलिक दृष्टिकोण भाषायी प्रयोग एवं लोकजीवन की प्रस्तुति में उजागर होता है।

अनेक नाट्यशास्त्रज्ञों के अनुसार प्राकृत का प्रयोग नाट्य में केवल सहायक रूप में होता है। जैसा कि नाट्यशास्त्र में कहा गया है - **''स्त्रीणां च साधारणजनानां च वाक्येषु प्राकृतं भाषितव्यम्।''**[2] परंतु राजशेखर इस परंपरा से भिन्न मार्ग अपनाते हैं। उन्होंने प्राकृत को केवल संवाद की सहायक भाषा न मानकर, उसे मुख्य नाट्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह भाषागत प्रयोग न केवल नाट्यविधा की व्यापकता को दर्शाता है, बल्कि उनकी देशीय चेतना (देशीभावना) को भी प्रतिपादित करता है। राजशेखर ने काव्य में देशी एवं मार्गी परंपराओं के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया है - **''देशीमार्गयोः संयोगः काव्यस्य शोभाकरः।''**[3]

यह समन्वय उनके नाटकों में भी प्रत्यक्ष होता है। कर्पूरमञ्जरी इस समन्वय का सजीव उदाहरण है, जिसमें संस्कृत परंपरा के शास्त्रीय घटक और प्राकृत की सहज अभिव्यक्ति का अनूठा संगम दृष्टिगोचर होता है।

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

**सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, नव नालन्दा महाविहार (मानित विश्वविद्यालय) संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नालन्दा, बिहार*

***शोध छात्र-संस्कृत विभाग, नव नालन्दा महाविहार (मानित विश्वविद्यालय), संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार,नालन्दा, बिहार*

इस शोधपत्र का उद्देश्य कर्पूरमञ्जरी नाट्यकृति के माध्यम से राजशेखर के प्राकृत नाट्यलेखन की विशेषताओं का सम्यक् परीक्षण करना है। यह अध्ययन न केवल भाषावैविध्य की दृष्टि से अपितु उनके सांस्कृतिक, सौंदर्यात्मक, एवं नाट्यकौशल की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगा।

ऐतिहासिक और साहित्यिक संदर्भ

राजशेखर द्वारा रचित कर्पूरमञ्जरी को उसके प्राकृत भाषा प्रयोग, नाट्य-संरचना, एवं लोक सांस्कृतिक तत्त्वों के कारण संस्कृत नाट्यपरंपरा में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह नाटक न केवल भाषाई दृष्टि से अपूर्व है, बल्कि भारतीय साहित्य के इतिहास में एक सांस्कृतिक और काव्यशास्त्रीय संक्रमणकाल का प्रतिनिधित्व करता है। इसे समझने के लिए हमें राजशेखर की सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना होगा।

राजशेखर और उनका युग - राजशेखर का समय लगभग 9वीं-10वीं शताब्दी ईस्वी के मध्य रहा, जब वे गुर्जर-प्रतिहार वंश के राजा महीपाल और महालक्ष्मण के दरबार में राजकवि के रूप में प्रतिष्ठित थे। यह काल भारत में संस्कृत पुनर्जागरण, मंदिर स्थापत्य, और राजाश्रय प्राप्त साहित्यिक गतिविधियों का युग था।

राजशेखर स्वयं को न केवल कवि और नाटककार के रूप में प्रस्तुत करते हैं, बल्कि वे एक सचेत काव्यशास्त्रज्ञ भी थे, जो काव्यमीमांसा नामक कृति में काव्य और साहित्य के सिद्धांतों की गंभीर विवेचना करते हैं।

संस्कृत नाटकों में प्राकृत की परंपरा और नवाचार - भारतीय नाट्य परंपरा में प्राकृत भाषाओं का प्रयोग प्राचीन काल से देखा जाता है, किंतु वह सामान्यतः स्त्री पात्रों या सेवकों तक सीमित रहता था।

संस्कृत का प्रयोग राजा, मंत्री, ब्राह्मण जैसे उच्चवर्गीय पात्र करते थे, जबकि प्राकृत का प्रयोग दासियों, नायिकाओं और सेवकों के संवादों तक सीमित रहता था। इस प्रकार भाषा का प्रयोग समाज की वर्गीय संरचना को भी दर्शाता था। परंतु राजशेखर इस परंपरा को तोड़ते हैं। कर्पूरमञ्जरी में सभी पात्र - चाहे वे उच्च हों या निम्न - महाराष्ट्र प्राकृत में ही संवाद करते हैं। यह प्रयोग केवल भाषाई प्रयोग न होकर एक साहित्यिक घोषणा है।

महाराष्ट्र प्राकृत की काव्यशक्ति - महाराष्ट्र प्राकृत को पहले से ही गाथा-साहित्य (जैसे गाथासप्तशती) में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। कर्पूरमञ्जरी इस भाषा में रचित एकमात्र सम्पूर्ण नाटक है। इस प्रयोग के पीछे एक उद्देश्य यह भी रहा होगा कि यह नाटक उन्होंने अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के मनोरंजन हेतु रचा था। ऐसे में प्रेम, कोमलता, और श्रृंगार की अभिव्यक्ति हेतु महाराष्ट्रीय प्राकृत सर्वोत्तम माध्यम सिद्ध हुई।

परंपरा और प्रभाव - राजशेखर यद्यपि भास, कालिदास और भवभूति जैसे महान नाटककारों से प्रेरित हैं, फिर भी उनके नाटकों में स्पष्ट मौलिकता दृष्टिगोचर होती है। कर्पूरमञ्जरी में उनकी भाषिक स्वतंत्रता, लोकजीवन का चित्रण, एवं नारी-केन्द्रित संवेदनशीलता एक नई दिशा प्रदान करती है। यह कृति आगे चलकर अपभ्रंश काव्य, भक्ति आंदोलन, और प्रादेशिक भाषाओं के विकास में भी प्रेरणास्रोत सिद्ध होती है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी के ऐतिहासिक और साहित्यिक संदर्भ में यह स्पष्ट होता है कि राजशेखर न केवल एक नाटककार थे, बल्कि वे साहित्यिक संक्रमण और भाषाई नवाचार के प्रणेता भी थे।

कर्पूरमञ्जरी की संरचना एवं कथावस्तु

कर्पूरमञ्जरी एक एकांकी प्रेम नाटक है, जिसका मुख्य विषय नायक चन्दनदास और नायिका कर्पूरमञ्जरी के मध्य श्रृंगारिक प्रेम का उद्भव, विघ्न, वियोग और पुनर्मिलन है। नाटक के प्रारम्भ में ही दोनों

पात्र एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, किंतु सामाजिक दबाव, भ्रांति और संवादहीनता के कारण वे बिछड़ जाते हैं। सेविकाओं की सहायता से भ्रांतियाँ दूर होती हैं और पुनर्मिलन होता है।

पात्रों का विश्लेषण -

- चन्दनदास (नायक) : एक कोमल हृदय, प्रेममय युवक। उसका व्यक्तित्व धीर-ललित नायक के रूप में चित्रित है। वह कहता है - **''ण उण मं मुहुणा वि दंसए णिव्वुओसहं बअलं।''**[4] यह कथन नायक के प्रेम में व्यथित अंतर्द्वंद्व को दर्शाता है।
- कर्पूरमञ्जरी (नायिका) : बुद्धिमती, हृदयस्पर्शी, और भावप्रवण पात्र। उसकी वाणी में कोमलता और आग्रह है - **''सणु सणु पअसह पिअ...''**[5] यह संयोग श्रृंगार की भावुकता को सूक्ष्म रूप में प्रकट करता है।
- माकरिका (सेविका) : हास्य एवं व्यंग्य की वाहिका, संवादों की मध्यस्थ। वह नायक से कहती है- **''तुअं वि दारेण पेक्खिस्सस्स...जं मा वि बिंबल्लहं विअसुअं!''**[6] यह सेविका की चतुराई, व्यंग्यात्मक शैली और सौंदर्यप्रशंसा को प्रकट करता है।

प्रेम, समाज और रीति-नीति- यह नाटक विशुद्ध रूप से श्रृंगार रस पर आधारित है - विप्रलंभ (वियोग) तथा संयोग (मिलन) दोनों रूपों में। साथ ही, इसमें उस युग की सामाजिक व्यवस्थाओं की झलक भी मिलती है - जैसे-

- परिवार की सहमति विवाह में आवश्यक होती है।
- स्त्रियों की स्वतंत्र वाणी और भाव-व्यक्तित्व को स्वीकृति दी गई है।
- दासियाँ केवल सेविका नहीं, संवाद की वाहक हैं।

कर्पूरमञ्जरी की भाषा, शैली और रस

राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी अपने समय की नाट्यपरंपरा में भाषिक प्रयोग और शैली की दृष्टि से एक क्रांतिकारी कृति है। इसकी सबसे उल्लेखनीय विशेषता है - इसमें महाराष्ट्र प्राकृत भाषा का पूर्ण रूप से प्रयोग, अर्थात् सभी पात्रों - चाहे वे नायक-नायिका हों, सेविकाएँ हों या दूत - सभी का संवाद एकमात्र प्राकृत में है। यह प्रयोग परंपरा का उल्लंघन नहीं, बल्कि साहित्यिक नवाचार का सशक्त उदाहरण है।

♦ **प्राकृत का प्रधान भाषा के रूप में प्रयोग -** भारतीय नाट्यपरंपरा में सामान्यतः नायक, ब्राह्मण, राजा आदि संस्कृत में संवाद करते हैं, जबकि स्त्रियाँ और सेवक प्राकृत में। परंतु कर्पूरमञ्जरी में राजशेखर ने इस परंपरा को तोड़ा और सभी संवादों को महाराष्ट्र प्राकृत में रचा। इससे वे यह दर्शाते हैं कि प्राकृत भी काव्य के लिए उपयुक्त और समर्थ भाषा है। वे काव्यमीमांसा में स्पष्ट रूप से कहते हैं - **''प्राकृतम् अपि प्रबन्धेषु प्रधानम् भवति।''**[7] इस प्रयोग से नाटक की सहजता, लोकरुचिता और भावनात्मक गहराई और अधिक प्रभावशाली हो जाती है।

♦ **छंद और भाषिक संगीतात्मकता -** राजशेखर ने प्राकृत गाथा छंदों का प्रयोग किया है, जिससे संवाद लयबद्ध और कर्णप्रिय बनते हैं। जैसे-**'' मं प्रियं अमं बं छंते हिअअं विअण्णं करेज्जं।''**[8] अर्थात्, हे प्रिय! तुम्हारे बिना मेरा हृदय निर्जीव हो गया है। इसमें म, ब, ह आदि ध्वनियाँ प्रेम की कोमलता और वेदना को व्यक्त करती हैं। छंदों में अनुप्रास, यमक और स्वाभाविक प्रवाह काव्य को और समृद्ध करते हैं।

♦ **रूपक, उपमा और अलंकारिक भाषा -** राजशेखर कर्पूरमञ्जरी में आलंकारिक भाषा का सुंदर प्रयोग करते हैं - विशेषतः उपमा, रूपक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों के माध्यम से-**''जं मा वि बिंबल्लहं विअसुअं!''**[9] अर्थात्, उसके अधरों के सामने बिंब चंद्रमा भी फीका लगता है। यह रूपक प्रेमिका की शोभा को दर्शाने वाला सुंदर उदाहरण है।

♦ **संवाद की सहजता और नाटकीय जीवंतता -** नाटक के संवाद अत्यंत प्राकृतिक, भावपूर्ण और नाटकीय हैं। सेविका माकरिका और नायिका कर्पूरमञ्जरी के बीच के संवादों में व्यंग्य, चतुरता और हास्य का सुंदर समावेश मिलता है-**''तुअं वि दारेण पेक्खिस्सस्स...!''**[10] ऐसे संवाद लोकभाषा की जीवंतता और स्त्री संवाद-संस्कृति की झलक देते हैं, जो इस नाटक को एक जनजीवन के निकट और लोक-संवेदनशील कृति बनाते हैं।

♦ **शैली की सौंदर्यात्मक संगति -** राजशेखर काव्यमीमांसा में कहते हैं - **''काव्यं यथाभूमि, यथारसं, यथाप्रयोजनं।''**[11] अर्थात्, काव्य उसी भूमि, रस और प्रयोजन के अनुसार होना चाहिए। कर्पूरमञ्जरी में भाषा, कथ्य और भाव - तीनों का समन्वय ऐसा है कि पाठक या श्रोता सहज रूप से नायक-नायिका की अनुभूतियों से जुड़ जाता है। राजशेखर की शैली मृदु, भावमयी, एवं सौंदर्यपरक है, जो नाटक की श्रृंगारिक प्रकृति के अनुरूप है।

♦ **रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया -** नाट्यशास्त्र के अनुसार रस निष्पत्ति के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, और व्यभिचारी भावों का समन्वय आवश्यक है। कर्पूरमञ्जरी में यह समन्वय बेजोड़ ढंग से हुआ है-

- विभावरू प्रिय का सान्निध्य या अभाव।
- अनुभावरू अश्रुपात, व्याकुलता, मुखमुद्रा।
- व्यभिचारी भावः असूया, चिन्ता, आकाङ्क्षा।

राजशेखर की साहित्यिक दृष्टि का व्यावहारिक रूप

राजशेखर केवल एक कवि या नाटककार नहीं, बल्कि एक सिद्धान्तशास्त्री भी हैं। उनकी काव्यमीमांसा काव्यशास्त्र का एक अनुपम ग्रंथ है, जिसमें उन्होंने भाषा, भाव, औचित्य, स्त्री-दृष्टि, और रस-सिद्धांत को लेकर मौलिक विचार रखे हैं। कर्पूरमञ्जरी न केवल एक नाट्यकृति है, बल्कि उनकी काव्य-दृष्टि का मूर्त रूप भी है। इसमें उनके सभी सिद्धांत सजीव रूप में प्रकट होते हैं।

♦ **भाषा का लोकतांत्रिक प्रयोग-** कर्पूरमञ्जरी नाटक में महाराष्ट्र प्राकृत भाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है - चाहे वह नायक हो, नायिका हो या दासी। राजशेखर का मानना है की प्राकृत भी रचना में मुख्य भाषा हो सकती है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी एक भाषिक समता और साहित्यिक लोकतंत्र का उदाहरण बनती है।

♦ **स्त्री भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति -** राजशेखर की साहित्यिक दृष्टि में स्त्री की भूमिका मात्र अलंकारिक नहीं, अपितु सर्जनात्मक है। वे काव्यमीमांसा में अपनी पत्नी अवन्तिसुंदरी को अपनी काव्य-सहचरी मानते हैंः **''मम कवित्वविवेचना अवन्तिसुन्दरीप्रणीतकाव्यशास्त्रनिबन्धात् आविर्भूता।''** यह विचार कर्पूरमञ्जरी में कर्पूरमञ्जरी नामक नायिका के चरित्र में स्पष्ट दिखाई देता है। वह भावनाओं को संकोच के बिना व्यक्त करती है की - सखी! मुझे अपने प्रियतम को देखने दो। यह संवाद एक स्त्री के स्वाभिमान और प्रेम-चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है।

♦ **सिद्धांत और रचना का सामंजस्य -** राजशेखर अन्य आचार्यों (जैसे मम्मट, भट्टनायक) से इस मायने में भिन्न हैं कि उन्होंने जो सिद्धांत काव्यमीमांसा में प्रतिपादित किए, उन्हें कर्पूरमञ्जरी में जैसा कहा, वैसा करके दिखाया।

- भाषा की उपयुक्तता
- स्त्री-दृष्टि का आदर
- रसरूप का उद्भव

- लोकानुभूति का समावेश
- कथ्य-शैली की संगति

इन सबका सुंदर समन्वय कर्पूरमञ्जरी में मिलता है। इसलिए यह कृति नाट्यकाव्य ही नहीं, बल्कि एक जीवित काव्य-दर्शन है।

तुलनात्मक दृष्टिकोण

भारतीय नाट्य परंपरा में कर्पूरमञ्जरी एक अद्वितीय और मौलिक नाट्यकृति है। जहाँ कालिदास, भास, विशाखदत्त आदि नाटककार पारंपरिक नाट्यशास्त्रीय शैलियों का पालन करते हैं, वहीं राजशेखर इन शास्त्रों को न केवल जानते हैं, बल्कि उनकी रचनाओं में मौलिक ढंग से उन्हें व्यावहारिक रूप भी देते हैं। इस खंड में हम चार मुख्य बिंदुओं के आधार पर राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी की तुलना अन्य प्रमुख नाट्यकृतियों से करेंगे।

♦ **प्राकृत का प्रयोग एकमात्र नाट्य भाषा के रूप में -** नाट्यशास्त्र के अनुसार – **''नायकस्य ब्राह्मणस्य च संस्कृतं भाष्यं। स्त्रीणां च साधारणजनानां च प्राकृतं।''**[12] अतः पारंपरिक नाटकों में, जैसे कि कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतलम् या विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में पुरुष पात्र संस्कृत में बोलते हैं और स्त्रियाँ तथा सेविकाएँ प्राकृत या अपभ्रंश में। परंतु राजशेखर इस परंपरा को पूर्णतः उलट देते हैं। कर्पूरमञ्जरी में सभी पात्र महाराष्ट्रीय प्राकृत में संवाद करते हैं - चाहे वे नायक हों, नायिका हों या दासियाँ।

♦ **स्त्री स्वर की स्पष्टता और आत्मबोध -** जहाँ कालिदास की शकुंतला कोमल, लज्जाशील और अन्तर्मुखी हैय वहीं राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी साहसी, स्वतंत्र और भावाभिव्यक्ति में प्रखर है। उदाहरण के लिए: **''स्सुअं! पेक्खंतु में पिअं।''**[13] अर्थात, सखी! मुझे मेरे प्रियतम को देखने दो। इस प्रकार के स्पष्ट और निर्भीक स्त्री संवाद अन्य नाटकों में विरल हैं। राजशेखर की यह स्त्री-दृष्टि उनके काव्यमीमांसा में भी स्पष्ट है, जहाँ वे अपनी पत्नी अवन्तिसुंदरी को अपने काव्यचिंतन की प्रेरणा बताते हैं।

♦ **प्रेम और रस की अभिव्यक्ति में मौलिकता -**

- अभिज्ञानशाकुंतलम् में प्रेम दैवयोग से संचालित होता है।
- मृच्छकटिक में सामाजिक बाधाएँ प्रेम में रुकावट बनती हैं।
- मुद्राराक्षस का विषय प्रेम नहीं, राजनीति है।

परंतु कर्पूरमञ्जरी में प्रेम पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक और आंतरिक है। इसमें कोई राजकीय बाधा, शाप या युद्ध नहीं, केवल मानव भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण है।

♦ **सिद्धांत और रचना का एकत्व -** अन्य महान नाटककार जैसे कि भास, शूद्रक, विशाखदत्त आदि सृजनात्मक प्रतिभा के धनी थे, परंतु उनके पास सैद्धांतिक काव्यग्रंथ नहीं हैं। वहीं राजशेखर, काव्यमीमांसा जैसे ग्रंथ के रचयिता हैं और उनके सिद्धांतों की व्यावहारिक अभिव्यक्ति कर्पूरमञ्जरी में पूर्ण रूप से मिलती है। जैसेः **''रसात्मकं काव्यम् यत्र नाट्यस्य सारं समाहितम्।''**[14] यह सूत्र उनके नाटक पर पूर्णतया लागू होता है। उन्होंने रस, औचित्य, स्त्री स्वर, भाषा, और साधारणीकरण को जिस ढंग से व्यवस्थित किया, वह अन्य नाटककारों में नहीं दिखाई देता।

♦ **सारिणी -** संक्षिप्त तुलनात्मक विश्लेषण -

तत्त्व	**कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर)**	**अन्य नाटक (कालिदास, भास, आदि)**
भाषा प्रयोग	पूर्णतः प्राकृत	पुरुष संस्कृत, स्त्रियाँ प्राकृत

स्त्री की भूमिका	स्वतंत्र, स्पष्ट, मुखर	कोमल, आदर्श, लज्जाशील
प्रेम का प्रकार	मनोवैज्ञानिक, आंतरिक	दैवयोग या सामाजिक बाधाओं से युक्त
सिद्धांत और रचना	सैद्धांतिक अवधारणाओं	रचनाएँ सैद्धांतिक व्याख्या
का संबंध	की नाट्य अभिव्यक्ति	से विहीन

उपसंहार

राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी न केवल एक मौलिक नाट्यकृति है, बल्कि उनकी काव्यदृष्टि और साहित्यिक दर्शन की सजीव प्रस्तुति भी है। इस शोध में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित हुआ कि कर्पूरमञ्जरी को केवल एक प्राकृत नाटक के रूप में देखना उसकी गहराई और महत्व को सीमित करना होगा। यह कृति उस काल की साहित्यिक परंपराओं, सामाजिक दृष्टिकोणों और भाषिक नियमों को चुनौती देती है और अपने आप में एक नया सौंदर्यशास्त्र गढ़ती है।

राजशेखर की काव्यमीमांसा में प्रतिपादित सिद्धांत - जैसे औचित्य, साधारणीकरण, प्रतीभा और स्त्री-दृष्टि - इस नाटक में केवल सूत्र रूप में नहीं, बल्कि जीवंत कलात्मक अनुभव के रूप में घटित होते हैं। उन्होंने जिस भाषिक लोकतंत्र की वकालत की, वह नाटक की रचना-शैली में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। कर्पूरमञ्जरी में पुरुष पात्रें को भी प्राकृत में बोलवाकर उन्होंने शास्त्रीय भाषाई अनुशासनों को तोड़ा और एक समतामूलक नाट्यप्रयोग प्रस्तुत किया।

नायिका कर्पूरमञ्जरी का चरित्र एक ऐसी स्त्री का प्रतिरूप है जो स्वतंत्र रूप से प्रेम का अनुभव, अभिव्यक्ति और स्वीकृति करती है। यह चित्रण उस समय की रूढ़िगत नारी छवि से भिन्न है और राजशेखर की संवेदनशील तथा समानतामूलक साहित्यिक दृष्टि को उजागर करता है। अन्य नाटककारों की रचनाओं की तुलना में कर्पूरमञ्जरी का कथानक अधिक निजी, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक है। इसमें कोई दैवीय चमत्कार नहीं, न ही राजनीतिक षड्यंत्र या वीरगाथा - बल्कि एक आत्मीय प्रेम कथा है, जो सरलता में ही गहनता लिए हुए है।

राजशेखर अपने समकालीनों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उन्होंने न केवल काव्यशास्त्र को परिभाषित किया, बल्कि उसे नाट्य के माध्यम से जीवंत भी किया। इस दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी केवल एक नाटक नहीं, बल्कि एक साहित्यिक प्रयोग है - एक रचनात्मक अनुसंधान, जिसमें सिद्धांत और कला का अद्वितीय संगम है।

इस शोध से यह भी स्पष्ट हुआ कि कर्पूरमञ्जरी का अध्ययन केवल भाषिक या रसात्मक दृष्टिकोण से न होकर सांस्कृतिक, स्त्रीवादी और तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य से किया जाना चाहिए, जिससे इसके गूढ़ आयामों का सम्यक् अनावरण हो सके। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी भारतीय नाट्यपरंपरा में एक मौलिक मील का पत्थर है, जो परंपरा को न केवल विस्तार देती है, बल्कि उसमें नवीन दृष्टियों का समावेश भी करती है।

संदर्भ सूची

- *राजशेखर. कर्पूरमञ्जरी. सं. शिवदत्त और काशीनाथ परब. बॉम्बे संस्कृत सीरीज, 1884.*
- *राजशेखर. काव्यमीमांसा. सं. सी.डी. दलाल, आर. अनंतकृष्ण शास्त्री. ओरिएंटल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा, 1934.*
- *कालिदास. अभिज्ञानशाकुंतलम्. सं. एम.आर. काले. मोतीलाल बनारसीदास, 1969.*

- भास. स्वप्नवासवदत्तम्. सं. ए.एस. पुषलकर. बीओआरआई, पुणे, 1927.
- विशाखदत्त. मुद्राराक्षस. सं. गणपति शास्त्री. त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, 1912.
- राजशेखर. कर्पूरमञ्जरी. सं. शिवदत्त और काशीनाथ पांडुरंग परब. बंबई संस्कृत सीरीज, खंड 32. बंबईः गवर्नमेंट सेंट्रल बुक डिपो, 1884.
- भरत. नाट्यशास्त्र (अभिनवगुप्त की टीका सहित). सं. रामकृष्ण कवी. वाराणसीः चौखम्भा, 1926.
- विन्टर्निट्स, मौरिस. भारतीय साहित्य का इतिहास, खंड 3. दिल्लीः मोटिलाल बनारसीदास, 1996.

वेबलिंक

- https://archive.org/details/karpuramanjari 3 जुलाई 2025 को अभिगमित।
- https://www.dli.gov.in/kavyamimamsa 3 जुलाई 2025 को अभिगमित।
- https://archive.org/details/historyofindianliterature 3 जुलाई 2025 को अभिगमित।
- https://escholarship.org/uc/item/3c79c2ck 3 जुलाई 2025 को अभिगमित।
- https://www.britannica.com/biography/Rajashekhara 3 जुलाई 2025 को अभिगमित।
- https://www.sahapedia.org/rajashekhara&indian &poetics3 जुलाई 2025 को अभिगमित।

संदर्भ -

1. काव्यमीमांसा, अध्याय 1
2. नाट्यशास्त्र, अध्याय 18
3. काव्यमीमांसा, अध्याय 12
4. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 53
5. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 82
6. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 45
7. काव्यमीमांसा, अध्याय 10
8. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 21
9. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 45
10. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 45
11. काव्यमीमांसा, अध्याय 15
12. नाट्यशास्त्र, अध्याय 18
13. कर्पूरमञ्जरी, श्लोक 77
14. काव्यमीमांसा, अध्याय 15

35

'कर्पूरमञ्जरी' का सामाजिक परिदृश्य

कुसुमकला त्रिपाठी *

सट्टक वह जन नाट्य विधा रही है, जो जन सामान्य द्वारा अपनी भाषा में, अपनी मञ्च व्यवस्था एवं साजसज्जा से जहाँ कहीं भी मंचित होकर आनंदित करने वाली थी। ऐसी लोक-नाट्य-विधा को कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रणयन द्वारा अपनाकर राजशेखर ने जन नाट्य को प्रतिष्ठित करने की जो क्रांतिकारी शुरुआत की वह अपने आप में प्रशंसनीय है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक राजशेखर की एक बहुमूल्य रचना है। इस कृति में राजा चन्द्रपाल एवं कुन्तल देश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी की प्रणय कथा वर्णित है। यह कृति सामाजिक जीवन और सांस्कृतिक पहलुओं का एक महत्त्वपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करती है। इसमें तत्कालीन समाज, संस्कृति, महिलाओं की स्थिति, प्रेम-संबंधों और विभिन्न सामाजिक वर्गों जैसे दास, दासियों और राजपरिवार के बीच संबंधों का यथार्थ चित्रण किया गया है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में तत्कालीन समाज का सम्यक् चित्रण दिखलाई पड़ता है। कर्पूरमंजरी में नारियों की स्थिति, धार्मिक स्थिति, वर्णव्यवस्था, मन्त्र-माया- जादूटोना, सामाजिक लोकप्रथाएं, वेशभूषा एवं आभूषण इत्यादि की स्पष्ट झलक मिलती है, जिनका विवेचन इस प्रकार है-

नारियों की स्थिति - राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी सट्टक में सम्माननीय स्थिति लुप्त होती हुई दिखाई देती है। राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्राङ्कन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन में अधिक दिखाई देता है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है। विधिवत परिणीता सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री-रत्न की खोज में लगे रहने की प्रवृति राजाओं में पायी जाती है। कर्पूरमञ्जरी में रानी विभ्रमलेखा जब कर्पूरमञ्जरी को रक्षाभवन से सुरङ्गद्वार पर जाते हुए देखती है तब उस सुरङ्ग के द्वार पर पैदल सिपाहियों, धनुर्धारियों, तथा परिचारिकाओं को सभी दिशाओं में नियुक्त कर उसे कठोर नियंत्रण में रखती है।[1] एक तरह से देखा जाए तो इसमें दोनों ओर से स्त्री के हृदय को चोट पहुँची है। स्त्रियाँ जहाँ कामलोलुप प्रवृत्ति वाले पुरुषों से आतंकित थीं वहीं बाहर से आई दासियों तथा कन्याओं ने भी उनके मर्म को आघात पहुँचाई थी। दासियों का राजाओं से छुपछुपकर मिलना और उनसे प्रेम करना कहीं से भी उचित नहीं था। यदि रानियाँ इस प्रकार का व्यवहार उनकी प्रेमिकाओं के साथ करती थीं तो यह मानवीय दृष्टिकोण से अनुचित नहीं था। यह आक्रोश-प्रकटन एक पीड़ित हृदया नारी का ही हो सकता है। नाटककारों ने पुरुषों के प्रेम की ही विजय दिखाई

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी*

है जिसमें परिणीताओं की विवशता दिखाई पड़ती है। परन्तु संस्कृत कवियों ने अन्ततोगत्वा स्त्रियों के द्वारा स्वीकृति ही चित्रित की है। स्त्रियाँ पतिसुख के कारण अपने भाग्य से समझौता करते हुए दिखाई देती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा चन्द्रपाल नई सुन्दरियों के लिए पारिवारिक मूल्यों के विषय में नहीं सोचते। एक ओर तो पत्नी पति के लिए एकनिष्ठ और समर्पित दिखाई देती है, परन्तु दूसरी ओर पतियों में पत्नियों के प्रति एकनिष्ठा का अभाव दिखाई पड़ता है। राजा चन्द्रपाल कर्पूरमञ्जरी के वियोग में लेशमात्र भी नहीं रह सकता है। सदा उसी के ध्यान में मग्न रहता है। रानी विभ्रमलेखा का चरित्र सराहनीय है। वह ऐन्द्रजालिक भैरवानन्द के कथनानुसार ही अपने पति के चक्रवर्ती राजा बनने की चाह से कर्पूरमञ्जरी का विवाह राजा से कराकर आदर्श पत्नी का परिचय देती है। राजाओं की कामुक वृत्ति के कारण उनकी प्रेमिकाओं को भी कष्ट झेलना पड़ता था। राजाओं का इस प्रकार का व्यवहार स्त्रियों के लिए सहनशक्ति की सीमा के बाहर की बात थी।

धार्मिक दशा- शिव, सरस्वती, कामदेव, गौरी, चमुण्डा आदि देवी-देवताओं का नामोल्लेख उनके प्रति समाज में प्रचलित भक्ति भावना को द्योतित करता है। सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा की मान्यता थी। जनता में धर्म के प्रति विश्वास में ह्रास आना प्रारंभ हो चुका था यही कारण है कि इस सट्टक के भरतवाक्य में जनता का धर्म में दृढ़ विश्वास की कामना की गई है - **लोको लोभपराङ्मुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च।।**[2] इस काल में तन्त्रविद्या चरम पर थी। तन्त्रमत के अनुयायी वैदिक कर्मकाण्डों और परंपराओं को प्रोत्साहन नहीं देते थे तभी तो भैरवानन्द तांत्रिक कहता है –

मुक्तिं भजन्ति हरिब्रह्ममुखादिदेवा, ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभिः।
एकेन केवलमुमादयितेन दृष्टो, मोक्षः समं सुरत केलिसुरारसैः।।[3]

समाज में ऐसे तांत्रिकों की प्रतिष्ठा थी। इनका प्रभाव राजपरिवारों पर अधिक था।

वर्णव्यवस्था- तत्कालीन समाज में जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था थी। ब्राह्मण अपनी सामाजिक श्रेष्ठता के कारण अहंकार में रहते थे,दासियों को अपने से बात करने के योग्य नहीं समझते थे।[4] ब्राह्मणों में दिव्यता पवित्रता नहीं रह गई थी तभी तो इस सट्टक के भरतवाक्य से पता चलता है – **ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा।**[5] इससे निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मणों के आशीर्वाद झूठे भी होते थे।

मन्त्र व माया, जादूटोना-

मंत्र-तंत्र आदि गुह्य विद्याओं से प्राप्त होने वाली अलौकिक सिद्धियों में भारतीयों का प्राचीनकाल से ही विश्वास रहा है। आज 21वीं शताब्दी में भी यह विश्वास निर्मूल नहीं हुआ है। आलोच्य सट्टक में भी प्रायः साधारण जनों में मंत्र-तंत्र, मणि, औषधि आदि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों में गहरी आस्था दिखाई देती है।

राजकुल में ऐसी योगियों को सम्मान प्राप्त है; जो न मन्त्र जानता है न तन्त्र। ज्ञान-ध्यान से भी जिसका कोई नाता नहीं; मद्यपान एवं युवतियों से सहवास ही जिसके मोक्ष का साधन एवं कुलाचार है।[6] जो योगबल से प्रयोजन विशेष हेतु युवती का अपहरण करते हैं।[7] और आश्चर्य है कि ऐसे ही व्यक्ति महारानी के धर्मगुरु भी हैं। राजशेखर के समय में समाज में तांत्रिकों का प्रभाव प्रबल दिखाई पड़ता है। कर्पूरमञ्जरी का भैरवानन्द तांत्रिक तत्कालीन राजाओं तथा सर्वसाधारण के मन में छिपी हुई विलास और शृङ्गार की भावना से अवगत है। इसलिए वह इस भावना को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप प्रदान करता हुआ उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करता है। इस तांत्रिक को अद्भुत सिद्धियाँ प्राप्त हैं। राजा उसे किसी भी प्रकार का कोई आश्चर्य दिखाने के लिए कहता है। अतः वह सगर्व कहता है-

दर्शयामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्ण स्तम्भनामि तस्यापि रखे रथं नमोऽध्वनि।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम्।।[8]

राजा के आग्रह पर वह विदर्भ देश से सद्यःस्नाता कर्पूरमञ्जरी को लाकर सबको आश्चर्यचकित कर देता है।[9] लेकिन उसकी अद्भुत सिद्धि का रहस्य वहाँ खुलता है, जहाँ वह कर्पूरमञ्जरी को चामुण्डा की प्रतिमा की ओट में बने सुरंग मार्ग से आने जाने का संकेत देकर रानी को विस्मित कर देता है।[10] पुनः वह कर्पूरमञ्जरी के प्रति राजा की आसक्ति से परिचित होकर उनकी वासना की पूर्ति के लिए एक धार्मिक कृत्य सम्पादन का स्वांग रचकर महारानी से गुरुदक्षिणा के रूप में राजा के साथ कर्पूरमञ्जरी का विवाह करा देने की अनुमति का निवेदन करता है।[11] इससे यह प्रतीत होता है कि राजशेखर के समय में 'भोग से योग' की बातें बताकर ऐहलौकिक विलास की भावना पर आध्यात्मिकता का पर्दा डालने का प्रयास तांत्रिकों के द्वारा चल रहा था।

सामाजिक लोक प्रथाएँ - प्राचीन भारतीय साहित्य में जिन कतिपय रूढ़ -प्रक्रियाओं को कवि प्रसिद्धि की कोटि में गिनाया गया है, उसमें दोहद क्रिया का प्रमुख स्थान है। किसी गर्भवती द्वारा किसी विशेष वस्तु को पाने की अभिलाषा को 'दोहद' नाम दिया गया है, जैसा कि कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा की स्पृहा विशेष को 'दोहद' कहा है।[12] सुन्दर रमणी के पदाघात से अशोक पुष्पित हो जाता है इस पुरातन मान्यता के अनुसार मालविकाग्निमित्र नाटक में वस्त्राभूषणों से अलंकृत राजमहिषी वामपादाघात[13] से उसे प्रताड़ित करती है। परन्तु रानी के अस्वस्थ होने पर कोई सुन्दरी रानी के नुपुर पहन कर अशोक-दोहद के कार्य को सम्पन्न करती है। भवभूति ने भी गर्भवती सीता की पवित्रसलिला भागीरथी में पुनः अवगाहन करने की इच्छा को 'दोहद' कहा है।[14] आर्यपुत्र! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्न दोहदाया मम विज्ञेयपनीयमस्ति। कली आने के समय पौधों की इच्छा 'दोहद' कहलाती है। सामान्यतः इस 'दोहद' का अर्थ वृक्ष को असमय में पुष्पित कराने से भी लिया जाता है। भारतीय रूपकों में वृक्ष को बलात पुष्पित कराने वाले दोहद को विशेष महत्त्व दिया गया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि-दोहद पूर्ति का कार्य किसी सामान्य युवती से नहीं कराया जाता। कभी-कभी यह कार्य किसी अज्ञातकुल शीलवाली युवती की वंश परीक्षा की दृष्टि से भी कराया जाता है। अर्थात् दोहद उच्चकुल की औरतें ही करती हैं कामिनियों के अलिंगन, दर्शन और पादाघात से वृक्षों में पुष्पोद्गम का वर्णन कर्पूरमञ्जरी में भी हुआ है। इस सट्टक में महारानी कुरबक, तिलक और अशोक के वृक्ष लगाती हैं। ऐसा लोकविश्वास था कि कामिनियों के अलिङ्गन से कुरबक, देखने से तिलक तथा पदाघात से अशोक खिलता है, अतः इनका दोहद कर्पूरमञ्जरी करती है।

वेशभूषा एवं आभूषण - वस्त्रों में स्त्रियाँ अधिकतर सडीआ (साड़ी),[15] कूर्पासक(चोली)[16] पुरुष प्रायः पडिसीसअं[17] (पगड़ी), उत्तरीय आदि धारण करते थें।[18] तांत्रिक प्रायः सोने के चर्मखण्ड को धारण करते थे।[19] घुंघुरू लगा नूपुर, मालती पुष्प की माला, केश में मालती के पुष्पों का गजरा, एक लड़ी की मोती की माला, कर्णोत्पल, सिंधुवार के पुष्पों की माला, आभूषणों में काँच एवं माणिक्य[20] करधनी, कंगन, पाएजेब[21] का वर्णन मिलता है।

मनोरञ्जन- मनोरञ्जन के लिए लोग सायंकाल में जलक्रीडा करते थे, वसन्त ऋतु में लोग झूला झूलते थे। खेलने के लिए बनाई गई वलभियाँ और चित्रशालाएं संध्याकाल में खोली जाती थीं।[22] सायंकाल में इंद्रजाल लोगों के मनोरञ्जन का साधन हुआ करता था। तत्कालीन समय में लोग सङ्गीतप्रिय भी होते थे वेणु, वीणा, करताल, मृदङ्ग, मर्दलवाद्य[23] इनकी लोकप्रियता को दर्शाता है।

निष्कर्षतः कर्पूरमञ्जरी सट्टक में समाज का बहुविध स्वरूप दिखाई पड़ता है। समाज में नारियों की स्थिति अच्छी नहीं थी, राजपरिवारों में बहु-विवाह प्रथा का प्रचलन था। समाज में बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी। समाज में ब्राह्मणों का विशेष सम्मान था। समाज में तांत्रिकों का पूर्णतः प्रभाव दिखाई पड़ता है। लोग गौरव के अनुरूप वस्त्र और आभूषण धारण करते थे।

संदर्भ-

1. *कर्पूरमञ्जरी -4/पृष्ठ 165-167*
2. *कर्पूरमञ्जरी 4/23*
3. *कर्पूरमञ्जरी 1/24*
4. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 23, 26*
5. *कर्पूरमञ्जरी 1/24*
6. *कर्पूरमञ्जरी-1/22*
7. *कर्पूरमञ्जरी-1/पृष्ठ 31*
8. *कर्पूरमञ्जरी 1/25*
9. *कर्पूरमञ्जरी 1/27*
10. *कर्पूरमञ्जरी 3/पृष्ठ 153*
11. *कर्पूरमञ्जरी 4/पृष्ठ 173*
12. *रघुवंश 3/6-7*
13. *मालविकाग्निमित्र 3/पृष्ठ 302*
14. *उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क*
15. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 24*
16. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 11, 22*
17. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 27*
18. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 39*
19. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 29*
20. *कर्पूरमञ्जरी 1/पृष्ठ 24*
21. *कर्पूरमञ्जरी 3/पृष्ठ 130*
22. *कर्पूरमञ्जरी 1/36*
23. *कर्पूरमञ्जरी 4/16*

36

सट्टककाव्य-परम्परा में 'कर्पूरमञ्जरी' का स्थान

संदीप कुमार *

संस्कृत साहित्य रूपी आकाश में राजशेखर देदीप्यमान नक्षत्र के समान है। उनकी कृतियाँ इसकी साक्षी है उनकी काव्य मीमांसा को उनकी बौद्धिक धरोहर कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजशेखर का यह यायावर कुल कवि परंपरा में यशस्वी कवियों से सुशोभित रहा है। महाराष्ट्र-के चूड़ामणि कविवर अकालजलद की चौथी पीढ़ी में राजशेखर का जन्म हुआ पिता दुर्दक और माता का नाम श्रीलवती था, इनकी पत्नी का नाम अवंतिसुंदरी था जो किसी चाहूवाण कुल की राजकन्या थी। राजशेखर प्रतिहारवंशी महेंद्र पाल के राजकवि थे। इस प्रकार कह सकते हैं कि इनके जन्म का समय आठवीं शताब्दी रहा है।

राजशेखर की प्रतिभा नाट्य ग्रंथों के माध्यम से स्वयं अपना परिचय देने का सामर्थ्य रखती है। भाषागत दृष्टिपात से उनका संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं पर एकाधिकार था उनके नाटकों में उक्ति वैचित्र्य और लंबे लंबे छंदों में धाराप्रवाह भाव अभिव्यक्ति को देखकर सहृदय पाठक का मुग्ध हो जाना सहज स्वाभाविक था इसलिए कवि ने स्पष्ट निवेदन किया है कि यदि उनके नाटक में भणितिगुण विद्यमान हैं तो उसे ही प्रेमपूर्वक पढ़ने की आवश्यकता है। शार्दूलविक्रीडित जैसे ही लंबे लंबे चंदों की सरस सुंदर योजना में राजशेखर की सिद्धहस्तता की ख्याति का वर्णन उनके परवर्ती कवि क्षेमेंद्र रचनाओं से प्रमाणित है।

यद्यपि भरत के नाट्यशास्त्र में सट्टक का कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता है। परन्तु भरत के नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनव गुप्त ने अपनी टीका में कोहल आदि द्वारा लक्षिततोटक, सट्टक और रासक की परिभाषित करते हुये सट्टक को नाटिका के जैसा ही एक उपरूपम बताया है। राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषा में रचित कर्पूरमंजरी में सट्टक के विषय बताते है किये नाटिका के अनुकरण पर आधारित है। नाटिका और सट्टक इतना भर भेद है कि नाटिका के समान सट्टक में प्रवेशक और विष्कम्भक का अभाव रहता है। इसके अतिरिक्त सट्टक की रचना का आधार एक ही भाषा होती है। नाटिका के समान संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग एक साथ नहीं होता है।

आचार्य हेमचंद्र ने सट्टक को नाटिका से पृथक् और मुख्य रूपक प्रकारों में गिनाया है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने सट्टक को उपरूपकों की श्रेणी में रखा है। ऐतिहासिक क्रम पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि पूर्व में सट्टक की गणना दृश्य काव्यों में नहीं होती थी। कालान्तर में सट्टक को रूपक

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** सहायक आचार्य, सत्यवती महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

और उपरूपक की श्रेणी में स्थान दिया गया। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि सट्टक का आरंभिक रूप तमाशा था, जिसमें नृत्य आदि का प्रधानता थी। कर्पूरमंजूरी में भी नृत्य का समावेश है। इस प्रकार नृत्य से युक्त नाटकीय प्रदर्शन ही सट्टक का प्रारंभिक रूप रहा होगा, तत्पश्चात् नाटिका से संबंध जोड़ने पर इसका साहित्य महत्त्व बढ़ गया होगा। यदि हम सट्टक को नाटिका का ग्राम्य रूप कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पूर्ण नाट्य विधा न होने से इसमें चरित्र चित्रण का पूर्ण रूप विकास नहीं होता है। इसमें शृंगारिक चेष्टाओं का खुलकर प्रयोग होता है, स्त्रीपात्रों की प्रधानता होती है इसका नामकरण नायिका के नाम पर होता है। अंत में आश्चर्यजनक दृश्यों की योजना भी होती है। इस तरह कुछ अन्य विशेषताएं भी पाई जाती। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसके अभिनय में प्रेरक कोई राजा न होकर स्वयं कवि पत्नी होती है।

कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बाल रामायण, काव्यमीमांसा और बालभारत राजशेखर की प्रमुख कृतियां है।

राजशेखर ने सट्टक को प्राकृत बंद कहा है, साथ ही नृत्य के माध्यम से इसके अभिनय का उल्लेख किया है। इसमें अंक को जवनिकान्तर नाम से अभिहित किया गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार सट्टक का नृत्य प्रधान होना, सम्भवतः सट्टक शब्द का द्राविड़ि भाषा के आट्ट शब्द से बने होने के कारण हो सकता है क्यूँकी आट्ट शब्द का अर्थ नृत्य होता है। भावप्रकाश में शारदातनय ने सट्टक को नृत्य भेदात्मक कहा है।

राजशेखर के द्वारा सट्टक की परिभाषा तथा इसके स्वरूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है इससे यह संकेत मिलता है कि उनके पहले भी कई सट्टक लिखे गए होंगे किन्तु आज वे प्राप्त नहीं हैं अतः हम प्राप्त सट्टकों में राजशेखर की कर्पूरमंजरी सर्वप्रथम रचना है इस ग्रंथ में सट्टक का इतना सुन्दर तथा सुव्यवस्थितरूप प्रस्तुत किया गया है कि उनके पश्चात् लिखे गए सट्टकों की कथावस्तु तथा वर्णन शैली आदि पर इसका प्रभाव सपष्ट दिखलाई पड़ता है कर्पूरमंजरी का अनुसरण कर लिखे गये सट्टकों लिखे गए सट्टकों का संक्षिप्त वर्णन...
'विलासवती'-मार्कण्डेय की—कृति है जो 17 वीं शताब्दी की रचना है। दुर्भाग्यवश ये अप्राप्य हैं।
'चंदलेहा' यह रचना रुद्रदास की है इसका समय सन् 1660 ई. के आसपास का है।

'आनंदसुंदरी' इस के प्रणेता घनश्याम का जन्म 1700 ईस्वी में महाराष्ट्र में हुआ था। ये राजशेखर की ही भाँति विभिन्न भाषाओं में लिखा करते और स्वयं को सरस्वती का अवतार मानते थे। ये तीन सट्टकों के रचयिता हैं- बैकुंठचरित, आनंदसुंदरी तथा एक अन्य इसमें केवल आनंद सुंदरी ही उपलब्ध है। यह पुस्तक डॉ. ए.एन. उपाध्याय द्वारा संपादित और मोतीलाल बनारसीदास द्वारा बनारस सन् 1955 ईस्वी में प्रकाशित हुई।

'श्रृंगार-मंजरी' के रचनाकार संस्कृत आलोचनाशास्त्र के मर्मज्ञ विद्ववान विश्वेश्वर पंडित थे। 18 वीं शताब्दी में इस रचना की। डॉक्टर ए. एन. उपाध्याय को इस सट्टक की हस्तलिखित कृतियाँ प्राप्त हुई जिनके आधार पर उन्होंने अपनी 'चंदलेहा' की विद्वत्तापूर्ण भूमिका में इस ग्रंथ का कथानक प्रस्तुत किया है। राजशेखर की कर्पूरमंजरी और श्रृंगारमंजरी के वर्णनों में बहुत सी समानताएं विद्यमान है दोनों ही ग्रंथकारों ने भास की वासवदत्ता कालिदास की मालविकाग्निमित्र तथा हर्ष की रत्नावली और प्रियदर्शिका का अनुकरण किया है।

'रम्भामंजरी' यह नयचंद द्वारारचित14 वीं शताब्दी की रचना है। इन्होंने यद्यपि अपनी रचना रम्भामंजरी को कर्पूरमंजरी की अपेक्षा श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया है तथापि वसंत आदि के वर्णन जैसे प्रसंगों में राजशेखर रचित कर्पूरमंजरी अनुसरण नयचंद ने किया है। साहित्यिक दृष्टि से यह कर्पूरमंजरी की अपेक्षा निम्न कोटि की रचना है।

नाटक रूपी साहित्य की इस विधा ने भारतीय जनमानस को एक मनोरंजन का साधन प्रदान किया। भास, कालिदास, भवभूति और विशाखदत्त के माध्यम से नाटक की जिस गौरवशाली परंपरा का निर्वहन किया है उसमें विशाखदत्त के पश्चात् ह्रास होने लगा लेकिन राजशेखर ने एक बार पुनः अपनी प्रतिभा के बल पर इस विधा को गति देने का प्रयास किया और कुछ नये प्रयोगों का भी समावेश किया। राजशेखर ने नाटकों में भाषा, भाव, शिल्प शब्द सौंदर्य का चमत्कार अनिर्वचनीय है। समाज के प्रत्येक वर्ग या समस्त जनमानस का काव्य के माध्यम से आनंद के साथ साथ स्वयं के ज्ञान में भी अभिवृद्धि करना ही राजशेखर का अभिष्ट था।

सन्दर्भ -

1. *The Sanskrit Drama page204, A-B- Keith Moti Lal banarasi das*
2. *बालरामायण राजशेखरस. जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता 1848*
3. *नाट्यशास्त्र खण्ड2 गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज 1934*
4. *कर्पूरमंजरी प्रथम अंक कलकत्ता 1848*
5. *प्राकृत साहित्य का इतिहास डॉ. जगदीशचन्द्र जैन वाराणसी 1961*
6. *राजशेखर और उनका युग पेज 66, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना 2000.*
7. *संस्कृत साहित्य का इतिहास उपाध्याय पेज 603*
8. *प्राकृत साहित्य का इतिहास पेज 633 डॉ. जगदीश चन्द्र जैन वाराणसी 1961*
9. *राजशेखर और उनका युग पेज 65, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना 2000.*

37

सट्टककाव्य-परम्परा और राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी'

मुकेश कुमार मिश्र *

आकार अथवा स्वरूप-विधान, भाषा, विषय अथवा वस्तु आदि के आधार पर निरूपित काव्य के विविध वर्गीकरणों में सामान्यतः अर्थ-रमणीयता अथवा व्यञ्जनावृत्ति से लभ्य अर्थ अथवा अर्थाभिव्यक्ति को भेदवृत्ति का आधार बनाकर किया गया विभाजन एवं इन्द्रियग्राह्यता की दृष्टि से वर्गीकृत वर्गीकरण ही काव्याचार्यों और काव्य-अध्येताओं के मत में सर्वग्राह्य, सर्वस्वीकृत तथा लोकप्रचलित रहा है। साथ ही उनकी दृष्टि में काव्य के शेष अन्य वर्गीकरण उक्त दोनों ही वर्गीकरणों के भेदोपभेद अथवा आवयविक संघटना के रूप में इनमें अन्तर्भूत या अन्तर्निहित दिखाई पड़ते हैं। साहित्यशास्त्र के घटकतत्त्वों को समग्र व सम्पूर्णरूप से प्रस्तुत करनेवाला लक्षणग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' के षष्ठ परिच्छेद के आरम्भ में ग्रन्थकार का यह उद्घोष कि ध्वनि और गुणीभूत नामक काव्य के दो भेदों का कथन करके अर्थात् व्यञ्जनावृत्याधारित काव्यभेदों का निरूपण करके अब पुनः दृश्य और श्रव्य नामक दो काव्यभेदों का विवेचन किया जा रहा है[1] - **'एवं ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यत्वेन काव्यस्य भेदद्वयमुक्त्वा पुनर्द्वश्यश्रव्यत्वेन भेदद्वयमाह।'** आचार्य की दृष्टि में सहृदय सामाजिक कवि की सरसकृति का आस्वादन चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय जैसे विशिष्ट ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से करते हैं। इस दृष्टि से इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर काव्य को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है - दृश्य और श्रव्य। उक्त दो काव्यवर्गों में से चक्षुरिन्द्रिय का विषय होने से अर्थात् देखने योग्य या दिखाई देने योग्य होने के कारण काव्य का एक वर्ग दृश्य काव्य कहलाता है। दृश्य काव्य अभिनेय होता है अर्थात् ऐसा काव्य रंगमञ्च पर अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होता है जिसे देखकर सामाजिक रसास्वादन करते हैं। यह दृश्यकाव्य नाट्य, रूप, रूपकादि विविध अभिधानों से अभिहित होता है। यहाँ दृश्यकाव्य का आशय यह कदापि नहीं है कि ऐसा काव्य केवल देखने योग्य होता है। दृश्यकाव्य को भी पढ़ा और सुना जाता है। उसका संवाद अथवा कथोपकथन नामक तत्त्व तो पूर्णतः श्रवणेन्द्रिय का विषय होता है, अतः दृश्यकाव्य में श्रव्यत्व का भी अन्तर्भाव होता है। इसी अभिप्राय से आचार्य भरत ने नाट्य को दृश्य एवं श्रव्य दोनों कहा है तथा अभिनवभारतीकार ने नाट्य में दृश्य एवं श्रव्य दोनों ही विषयों के एक साथ एक ही समय में प्रतीत होने से उसे अलौकिक और विलक्षण माना है। यहाँ सामाजिक एक साथ ही अभिनेताओं की चेष्टाओं को देखता है तथा उनके संवादादि वचनों को सुनता है -**'क्रीडानीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्'**[2]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) कालकाजी*

'चकारेणेदमाह-तादृशा केनचिदुपायेन सम्बन्धस्तत्कुरुते ..... प्रीतिव्युत्पत्तिदमित्यर्थ इति।'[3]

अभिनय के योग्य काव्य दृश्य काव्य कहलाता है[4], उदात्तादि अवस्थाओं का अनुकरण होने से दृश्यकाव्य ही नाट्य कहलाता है[5], दृश्य होने के कारण नाट्य ही रूप कहलाता है[6] तथा नट में रामादि के रूप का आरोप होने से वह नाट्य या रूप ही रूपक कहलाता है।[7] इस प्रकार दृश्य काव्य के लिए प्रयुक्त होने वाले नाट्य, रूप और रूपक तीनों ही शब्द एकार्थ वाचक होते हुए भी प्रवृत्ति के निमित्त से उनमें भेद दिखाई पड़ता है।[8] दृश्य, नाट्य, रूप अथवा रूपक अभिधान से परस्पर पर्याय माने जाने वाले काव्यभेद रसाश्रित होते हैं। आचार्य के मत में रस पर आश्रित होनेवाला तथा वस्तु, नेता और रस के आधार पर एक दूसरे से भिन्न अवस्थावाला यह रूपक या नाट्य दस प्रकार का ही होता है।[9] आचार्य भरत का मत है कि रूपक दश ही हैं। उन्होंने नाटिका नामक एक अन्य भेद की चर्चा करते हुए उसे नाटक और प्रकरण में अन्तर्भावित भाववाला माना है, पृथक् भेद के अन्तर्गत परिगणित नहीं किया है।[10] आचार्य धनञ्जय के कथन और धनिक की व्याख्या से स्पष्ट है कि रूपक प्रथमतः शुद्ध और सङ्कीर्ण दो वर्गों में विभाजित है। शुद्धता की कसौटी रसाश्रितता है तथा सङ्कीर्णता का अभिप्राय रूपकभेदों में से दो या तीन रूपकभेदों के लक्षणों का मिश्रण अथवा सङ्करता है।[11] नाटकादि दस भेद शुद्ध रूपक के भेद हैं जबकि नाटिका, प्रकरणिका आदि संकीर्ण रूपक भेद हैं। अवलोककार का मानना है कि डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक और काव्य - सात नृत्यभेद[12] भाण के समान होते हुए भी रूपक नहीं हैं क्योंकि नृत्य भावाश्रित होता है[13] जबकि नाट्य रसाश्रित होता है।[14] रसाश्रित होने से तथा वाक्यार्थाभिनय रूप होने से नाट्य या रूपक दस ही होते हैं, दश रूपकभेदों में भावाश्रित नृत्यभेद समाहित नहीं हो सकता है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ से पूर्व के नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में उपरूपक नामक पृथक् कोटि का निरूपण प्राप्त नहीं होता है। आचार्य विश्वनाथ प्रथम आचार्य थे जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के 'किन्तु-परन्तु' से निकलकर उपरूपक कोटि के स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करते हुए दृश्य काव्य के अंतर्गत वर्गीकृत रूप में पहली बार उपरूपकभेद को विशिष्टता प्रदान की। साहित्यदर्पणकार से पूर्व नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त कोहल नामक आचार्य को कतिपय उपरूपक भेदों का उल्लेख करने वाला माना है। कोहल ने रागकाव्य के नाम से जिन काव्य-भेदों का उल्लेख किया है अर्थात् डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, षिद्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड़, हल्लीसक और रासक[15] एवं नाटिका, तोटक अर्थात् सट्टकादि भेदों की जो चर्चा की है[16], सम्भवतः यहीं से उपरूपक भेदों का शास्त्रीय निरूपण आरम्भ हो जाता है। आचार्य धनञ्जय के कथन पर धनिक द्वारा संकीर्ण रूपक का उल्लेख, नृत्य के सात भेदों का उल्लेख एवं नाटिका, प्रकरणिका आदि की चर्चा उपरूपक भेदों के क्रमिक विकास को पुष्ट करता है। शृङ्गारप्रकाशकार आचार्य भोज ने 'शृङ्गारप्रकाश' के ग्यारहवें प्रकाश में प्रबन्धकाव्य के प्रेक्ष्य एवं श्रव्य नामक काव्यभेदों का उल्लेख करते हुए अभिनययोग्य प्रेक्ष्य प्रबन्ध के चौबीस प्रकारों की चर्चा की है।[17] पुनः प्रेक्ष्यप्रबन्ध के चौबीस प्रकारों में से नाटक से सट्टक तक बारह भेदों का निरूपण वाक्यार्थाभिनय के अंतर्गत एवं शेष श्रीगदित से नाट्यरासक तक के बारह भेदों का विवेचन वे पदार्थाभिनय के अन्तर्गत करते हैं। शृङ्गारप्रकाशकार के अनुसार प्रेक्ष्यप्रबन्ध के चौबीस भेद हैं - नाटक, प्रकरण, व्यायोग, ईहामृग, समवकार, डिम, उत्सृष्टिकाङ्क, भाण, प्रहसन, वीथी, नाटिका, सट्टक, श्रीगदित, दुर्मिलिका, प्रस्थान, काव्य, भाणक, भाणिका, गोष्ठी, हल्लीसक, नर्तनक, प्रेक्षणक, रासक और नाट्यरासक। शृङ्गारप्रकाशकार ने सभी चौबीस भेदों का स्वरूपतः विवेचन किया है, जो इस बात को रेखांकित करता है कि

उपरूपक कोटि के अन्तर्गत न सही, किन्तु प्रेक्ष्यकाव्य विवेचनक्रम में उपरूपकभेदों का स्वतंत्र विवेचन एवं स्थापन का कार्य आरम्भ हो गया था।

शारदातनयकृत 'भावप्रकाशन' के अष्टम अधिकार के आरम्भ में रसात्मक अथवा रसरूप वाले दश नाटकों का एवं भावात्मक अथवा भावरूपवाले बीस नाटकभेदों अर्थात् तीस नाटकभेदों की चर्चा प्राप्त होती है[18], जो हैं- नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईडामृग, तोटक, नाटिका, गोष्ठी, सल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षक, सट्टक, नाट्यरासक, लासक, उल्लोप्यक, हल्लीसक, दुर्मल्लिका, मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक। रसात्मक दश नाटकभेद वाक्याभिनय द्वारा प्रदर्शित होते हैं। भारतीय परम्परा का निर्वहण करते हुए आचार्य भी संकररूप में या संकीर्ण रूप में नाटिका के लक्षण की भी चर्चा करते हैं। आगे आचार्य कहते हैं कि कुछ विषमताओं के साथ नाटिका सट्टक नाम से भी जानी जाती है।[19] पुनः नवम अधिकार में आचार्य पदार्थाभिनयरूप नृत्य के बीस भेदों का लक्षणसहित विवेचन करते हैं[20], जो हैं - तोटक, नाटिका, गोष्ठी, सल्लाप, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षण, नाट्यरासक, रासक, उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली और पारिजातक। उक्त नृत्यभेद में सट्टक परिगणित नहीं हैं, फिर भी अष्टम अधिकार में नाटकों के तीस भेदों के क्रम विवेचन से स्पष्ट है कि नाटिकारूप होने से सट्टक भी नृत्यभेदों में अन्तर्भावित है। भावप्रधान पदार्थाभिनय पर आश्रित उपर्युक्त नृत्यभेद कालान्तर में प्रतिपादित उपरूपक कोटि के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण करते हैं।

हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रंथ के अष्टम अध्याय में प्रथमतः प्रबन्धात्मक काव्य के दो भेद किये हैं[21]- प्रेक्ष्य और श्रव्य। अभिनययोग्य काव्य प्रेक्ष्य कहलाता है। प्रेक्ष्य काव्य के दो प्रकार होते हैं[22] - पाठ्य और गेय। पाठ्य के नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, उत्सृष्टिकांक, प्रहसन, भाण, वीथी और सट्टकादि भेद होते हैं।[23] आचार्य के अनुसार यहाँ आदि शब्द से कोहलादि लक्षित तोटकादि का ग्रहण होता है। पाठ्य के उपर्युक्त भेद वाक्यार्थाभिनय स्वभाववाले होते हैं। प्रेक्ष्य के गेय-भेद के अन्तर्गत डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, शिङ्गक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीडं, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और रागकाव्यादि का ग्रहण होता है।[24] यहाँ आदि पद से शम्या, छलित, द्विपदी आदि का ग्रहण होता है। आचार्य कहते हैं कि इन भेदों को ब्रह्मभरत, कोहलादि के शास्त्रों से जानना चाहिए। डोम्बिकादि गेयरूपक पदार्थाभिनय स्वभाववाले होते हैं।

नाट्यदर्पणकार आरंभिक मंगलश्लोक में जिन बारह रूपकभेदों की ओर संकेत करते हैं[25], उनके अनुसार वृत्त्याधारित वे बारह भेद हैं[26] - नाटक, प्रकरण, नाटिका, प्रकरणी, व्यायोग, समवकार, भाण, प्रहसन, डिम, उत्सृष्टिकांक, ईहामृग और वीथी। उक्त भेदों में प्रथम चार भेद चारों वृत्तियों से युक्त रहता है, जबकि शेष आठ कैशिकीवृत्ति से रहित होता है। आचार्य का कहना है कि उपर्युक्त बारह प्रकार के रूपकों के अतिरिक्त रूपक के अन्य प्रकार भी प्राप्त होते हैं, वे हैं[27] - सट्टक, श्रीगदित, दुर्मिलिता, प्रस्थान, गोष्ठी, हल्लीसक, शम्या, प्रेक्षणक, रासक, नाट्य-रासक, काव्य, भाण और भाणिका। आचार्य कहते हैं कि आचार्य भरत द्वारा अकथित होने से उक्त तेरह भेदों की चर्चा वृत्तिभाग में की गई है, न कि मूल भाग में। किन्तु उपर्युक्त रूपक भेद विवेचन से यह तो स्पष्ट होता है कि उपरूपक भेद के अन्तर्गत न सही, रूपक के अन्यभेद के रूप में उपरूपक भेद विवेचन भी स्वरूप ग्रहण कर रहा था।

'अग्निपुराण' के 338 वें अध्याय में नाटक-निरूपण के अन्तर्गत सत्ताईस रूपकभेदों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे सत्ताईस भेद हैं[28] - नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, वीथी, अङ्क,

तोटक, नाटिका, सट्टक, शिल्पक, कर्णा, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी, हल्लीसक, काव्य, श्रीगदित, नाट्यरासक, रासक, उल्लाप्य तथा प्रेङ्खण।

इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से कोहल से लेकर अग्निपुराणकार तक निरूपित नाट्यभेदों में उपरूपक कोटि के स्वतंत्र अस्तित्व के सुस्थापन हेतु पर्याप्त सामग्रियाँ विद्यमान थीं। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने अपने समक्ष पूर्वपीठिका के रूप में उपलब्ध इन्हीं सामग्रियों का अध्ययन, पर्यवेक्षण, पर्यालोचन कर उपरूपक नामक नवीन पृथक्कोटि का उपस्थापन किया तथा दृश्यकाल अथवा नाट्यभेदों का निर्धारण रूपक और उपरूपक दो वर्गों में वर्गीकृत कर वाक्याभिनय एवं पदार्थाभिनय, रसाश्रितता एवं भावाश्रितता, शुद्ध और संकीर्ण, नाट्य और नृत्य की दृष्टि से किये जानेवाले रूपकभेदों को स्पष्ट स्वरूप प्रदान करते हुए एक सर्वस्वीकृत समाधान प्रस्तुत कर दिया। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रूपकों की संख्या दश हैं, वे हैं[29] - नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन।

उपरूपकों की संख्या अठारह हैं, वे हैं[30] - नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका।

उपर्युक्त चर्चा-परिचर्चा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सट्टकीय नाट्यपरम्परा का इतिहास कोहल और कोहल से पूर्व ही अस्तित्व में विद्यमान रहा हो। यह भी सर्वविदित है कि लक्ष्यग्रंथ की सर्जना के आलोक में ही लक्षणों का सर्जन होता है। नाट्यशास्त्र में कोहल का उल्लेख[31] होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्यशास्त्र की रचना से पूर्व सट्टककाव्य किसी न किसी रूप में रहे हों, जो सम्प्रति अनुपलब्ध एवं अप्राप्य हैं।

काव्यशास्त्रीय अथवा नाट्यशास्त्रीय आचार्यों ने सट्टकस्वरूप का निरूपण किया है, जिनमें भोज, शारदातनय, रामचन्द्रगुणचन्द्र और विश्वनाथप्रभृति आचार्यों के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। भोज के अनुसार सट्टक प्रकरण से उत्पन्न एवं उत्पाद्य वस्तुवाला होता है। यहाँ नायक राजा होता है, अन्तःपुर से सम्बद्ध संगीत आदि में निपुण कन्या नायिका होती है। यह विष्कम्भक और प्रवेशक से रहित होता है एवं अप्राकृत-संस्कृत (प्राकृत से रहित संस्कृत भाषावाला और संस्कृत से रहित प्राकृत भाषावाला) यानि एक भाषावाला होता है। यहाँ शेष लक्षण नाटिका की तरह होता है।[32] भावप्रकाशनकार कहते हैं कि नाटिका ही सट्टक नाम से जानी जाती है। किन्तु नाटिका की अपेक्षा सट्टक कही जानेवाली नाटिका की कुछ विशिष्टताएँ भी हैं, जैसे यहाँ प्रवेशक एवं विष्कम्भक का प्रयोग नहीं होता है। अंक के स्थान पर चार यवनिका का विधान किया जाता है तथा यहाँ केवल प्राकृतभाषा का ही प्रयोग होता है।[33]

पाठ्य प्रेक्ष्यप्रबन्ध के अन्तर्गत ही हेमचन्द्र ने भोजमत के समान सट्टकस्वरूप का निरूपण किया है, अर्थात् उनकी दृष्टि में विष्कम्भक और प्रवेशक से रहित, प्राकृत में है तो संस्कृत नहीं एवं संस्कृत है तो प्राकृत नहीं, ऐसी एक भाषा से युक्त विषयवस्तुवाला सट्टक होता है।[34] सट्टक के अन्य लक्षण नाटिकासदृश ही होता है। नाट्यदर्पणकार भोज एवं हेमचन्द्र प्रतिपादित सट्टकस्वरूप को ही अपने सट्टकस्वरूप के रूप में विश्लेषण करते हैं अर्थात् विष्कम्भक तथा प्रवेशक से रहित, प्राकृत रहित एक भाषा में अर्थात् संस्कृत भाषावाला प्राकृत से रहित और प्राकृत वाला संस्कृत से रहित नाटिकासदृश रूपक सट्टक कहलाता है।[35] भोज, हेमचन्द्र एवं नाट्य दर्पणकार के अनुसार सट्टक संस्कृत या प्राकृत किसी भी एक भाषा में लिखा जाता है अर्थात् जो सट्टक प्राकृत भाषा में लिखा जाता है, वह संस्कृत भाषा से रहित होता है और जो संस्कृत में निबद्ध होता है, वह प्राकृत भाषा से रहित होता है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने उपरूपकभेद के अन्तर्गत सट्टकस्वरूप का निरूपण किया है।[36] उनके मतानुसार सट्टक में सम्पूर्ण श्लोकादि की रचना प्राकृत में होती है अर्थात् आचार्य की दृष्टि में सट्टक समग्र रूप से प्राकृत में निबद्ध होता है। यह प्रवेशक और विष्कम्भक से रहित होता है। यहाँ अद्भुत रस की प्रचुरता होती है। यहाँ अंक जवनिका नाम से विदित होता है अर्थात् यहाँ अंक के स्थान पर जवनिकान्तर का प्रयोग किया जाता है। सट्टक के अन्य लक्षण नाटिका के समान होते हैं अर्थात् यहाँ भी इतिवृत्त कविकल्पित होता है। नारी बहुल अथवा नटी बहुल यह चार अंकों के स्थान पर चार जवनिकान्तरवाला होता है। लोकप्रसिद्ध धीरललित राजा नायक होता है अन्तःपुर से सम्बन्ध रखनेवाली अथवा संगीतादि में अनुरक्त, नवीन अनुरागवाली राजकुलोत्पन्ना कन्या इस नाटिका की नायिका होती है। नायक देवी या पट्टराज्ञी के भय से सशंकित होकर ही इस नायिका स्वरूप कन्या में प्रवृत्त होता है और वह देवी या पट्टराज्ञी प्रगल्भा, राजकुलोत्पन्ना ज्येष्ठा पद-पद पर मान करनेवाली होती है। यहाँ नायक और नायिका का मिलन उस पट्टराज्ञी के अधीन होता है। कैशिकीवृत्ति और अत्यल्प विमर्श सन्धियुक्त अथवा विमर्श सन्धि शून्य यहाँ मुखादि चार सन्धियाँ होती हैं।[37] साहित्यदर्पणकार के अनुसार नाटिका, सट्टकादि का नाम नायिका के नाम पर रखा जाता है[38] - **नाटिका-सट्टकादीनां नायिकाभिर्विशेषणम्।** कोशग्रंथों में सट्टक शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ इस प्रकार प्राप्त होते हैं-

(अ) चुरादिगणीय ✓सट्टक धातु जिसका अर्थ क्षति पहुँचाना, मार डालना, बलवान् होना, लेना, देना, रहना आदि होता है, उससे 'ण्वुल्' प्रत्यय लगाकर सट्टक शब्द सम्पन्न होता है, जिसका अर्थ है - प्राकृत भाषा का एक रूपक।[39]

(आ) प्राकृत भाषा में रचित रूपक का अभिधान एवं एक छन्द का नाम सट्टक प्राप्त होता है।

(इ) अन्यत्र पुल्लिंग शब्द ✓सट्टक घ्सट्ट् धातु से 'कन्' प्रत्यय लगकर सम्पन्न बताया जाता है, जिसका अर्थ है - अद्भुत रस की प्रधानतावाला रूपकभेद, जो किसी समय केवल प्राकृत में रचे जाते थे।

(ई) एक मत के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि सट्टक शब्द द्राविड़ भाषा का शब्द रहा हो जो 'क' प्रत्यय लगकर सम्पन्न होता है। द्राविड़ भाषा में आट्टम् या 'आट्ट' शब्द का अर्थ नृत्य या हावभावपूर्ण अभिनय होता है। यहाँ 'आट्ट' शब्द मूलधातु 'अड्ड' या 'आड्ड' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है - नाचना या हावभाव प्रदर्शित करना। इस दृष्टि से नृत्य या हावभाव का नाटकीय प्रदर्शन करनेवाला उपरूपकप्रकार 'सट्टक' नाम से जाना जाता है।

(उ) इसी तरह सह बोधक 'स' शब्द ✓अट्ट् धातु से संयोजित होकर 'सट्टकम्' शब्द बनाता है, जिसका आशय है - नृत्यसहित अभिनय, नृत्यसहितं अट्टं नाटकं अभिनयं वेति सट्टकम्। यहाँ 'स' सहित अर्थ ✓अट्ट् धातु से और 'क' प्रत्यय से संयुज्य होकर सट्टक शब्द बनाता है जिसका अर्थ नृत्य या हावभावपूर्ण नाटकीय प्रदर्शन होता है।

(ऊ) एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत की शाटी या शाटिका का अपभ्रंश रूप सट्ट या सट्टक है। लोकविषयक सामग्री के नाटकीय मंचनहेतु विशिष्ट साजसज्जायुक्त प्रेक्षागृह या अन्य सामग्री के अनुपलब्ध होने पर यवनिका या पर्दे के स्थान पर घरेलू साड़ियों का प्रयोग किये जाने एवं उसकी प्रधानता के कारण नाट्यप्रदर्शन सट्ट या साटक या सट्टक के नाम से प्रचलित हुआ होगा।

(क) 'साहित्यदर्पण' के लक्ष्मीटीकाकार के अनुसार सट्टक शब्द का अर्थ है - **सट्टकशब्दश्चात्रार्थे गोमण्डलादिविद्वूढ़िबोध्यः।**[40]

सट्टकसाहित्य की सशक्त परम्परा का सर्वप्रथम उपलब्ध प्रतिनिधि-ग्रंथ राजशेखरविरचित 'कर्पूरमञ्जरी' है। सर्वभाषाचतुर कवीन्द्र राजशेखर ने इस काव्य के आरम्भ में सट्टकस्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है[41] कि सट्टक नामक प्रबन्ध में नाटिकाओं का पूरा-पूरा अनुकरण किया जाता है। यहाँ प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं होता है। महाकवि की यह रचना पूर्णतः प्राकृत भाषा में है। भाषा के विषय में आचार्य ने कहा है[42] कि संस्कृत में बदल जाने पर भी काव्य का अर्थ वही रहता है, प्राकृत में भी वे ही शब्द प्रयुक्त होते हैं। चमत्कारयुक्त वाक्य काव्य कहलाता है, यहाँ भाषा चाहे जो हो, संस्कृत अथवा प्राकृत। आगे आचार्य लिखते हैं कि संस्कृत में की गई रचनाएँ नीरस होती हैं जबकि प्राकृत की रचनाएँ ही मधुर होती हैं। जिस तरह पुरुष कठोर होते हैं, उसी तरह संस्कृत की रचनाएँ कठोर (कर्कश) होती हैं और जिस तरह स्त्रियाँ सुकुमार होती हैं, उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और सुकुमार होती हैं।[43] आचार्य का कहना है कि उन्होंने चौहान कुलोत्पन्न अपनी विदुषी पत्नी अवन्तिसुन्दरी की इच्छा के अनुरूप इस सट्टक का अभिनय कराया था।[44] राजा चन्द्रपाल और कुन्तलाधिपति की कन्या कर्पूरमञ्जरी के विवाह की कथा को इस शृङ्गारप्रधान सट्टक के द्वारा अभिनीत किया गया है। यह सट्टक पूर्ण रूप से सट्टकीय नियम, विधान और मर्यादा के अनुरूप होने से परवर्ती सट्टककाव्यों के लिए आदर्श माना जाता है। परवर्ती सट्टककारों ने राजशेखरकृत उक्त सट्टक का अनुकरण करते हुए अपने सट्टकों का प्रणयन किया है। वस्तु-विधान, वर्णन-प्रकार आदि दृष्टि से परवर्ती रचनाओं पर इसका प्रभाव पूर्णतः परिलक्षित होता है। राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी' के बाद लिखे गये उपलब्ध और अनुपलब्ध सट्टकों की सूची क्रमशः इस प्रकार है -

(क) उपलब्ध सट्टकों की क्रमिक सूची

	सट्टक-अभिधान	**रचनाकार**	**काल**
(अ)		कर्पूरमञ्जरी	राजशेखर 880 ई. से 920 ई. के आसपास (नवमी सदी का उत्तरार्ध एवं दसवीं सदी का पूर्वार्ध)
(आ)	रम्भामञ्जरी	जैन कवि नयचन्द्र	पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध
(इ)	चन्द्रलेखा	केरलीय पराशव जाति में वारियार नाम से विख्यात रुद्रदास	1660 ई. के आसपास
(ई)	शृङ्गारमञ्जरी	अल्मोड़ा जिलावासी विश्वेश्वर पण्डित	18वीं सदी
(उ)	आनन्दसुन्दरी	महाराष्ट्रचूडामणि घनश्याम	18वीं सदी

(ख) अनुपलब्ध सट्टकों की सूची

	सट्टक-अभिधान	**रचनाकार**	**काल**
(अ)	विलासवती	मार्कण्डेय कवीन्द्र	17वीं शताब्दी से पूर्व (प्राकृत-सर्वस्व में उल्लेख मात्र)
(आ)	वैकुण्ठचरित	सम्भवतः महराष्ट्रचूडामणि घनश्यामरचित	18वीं शताब्दी
(इ)	नवग्रहचरित	सम्भवतः महराष्ट्रचूडामणि घनश्यामरचित	18वीं शताब्दी

कर्पूरमञ्जरी की चर्चा करने से पूर्व परवर्ती सट्टकों का अवलोकन आवश्यक है -

1. रम्भामञ्जरी - इस सट्टक में काशीराज जयचन्द्र अथवा जैतचन्द्र और लाटनरेश देवराज की पौत्री एवं मदनवर्मन की पुत्री रम्भा की प्रणयकथा एवं परिणय को विचित्र, किन्तु रोमांचक एवं आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया गया है। रम्भामञ्जरी नाम के साथ-साथ विषयवर्णन की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी से पूर्णतः प्रभावित है तथापि कवि ने अपने इस सट्टक को कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा श्रेष्ठ घोषित किया है। यह सट्टक केवल तीन जवनिकान्तर में विभक्त है तथा कहीं-कहीं इसमें संस्कृत के श्लोक भी निबद्ध किये गये हैं। चतुर्थ जवनिकान्तर के अभाव के कारण इसमें अपूर्णता की स्थिति तथा कहीं-कहीं संस्कृत-श्लोक की निबद्धता से प्रतीत होता है कि कवि ने सट्टकीय-विधान का पालन नहीं किया है। यह ठीक है कि कर्पूरमञ्जरी की तरह इसका नायक धीरललित कोटि का, नायिका मुग्धा, कथानक काल्पनिक, विदूषक और दासी कर्पूरिका का वसन्त प्रसंग में विवाद, नायिका रम्भामञ्जरी के नाम पर सट्टक का नामकरण आदि प्राप्त होता है किन्तु कर्पूरमञ्जरी से भिन्न यह तीन जवनिकान्तरों में विभक्त है, कर्पूरमञ्जरी की तरह शृङ्गार रस निरूपण में परिपक्वता का अभाव है। यहाँ नायक स्वयं चक्रवर्ती सम्राट् बनने की इच्छा के कारण नायिका से विवाह करता है, भाषा की दृष्टि से यहाँ प्राकृत के साथ-साथ कहीं-कहीं संस्कृत का प्रयोग दिखाई पड़ता है, कथानक शिथिल है, सात रानियों वाला राजा जब रम्भामञ्जरी से विवाह करना चाहता है तो कोई भी रानी विवाह में बाधक नहीं बनती हैं बल्कि साधक ही सिद्ध होती हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि 'कर्पूरमञ्जरी' से प्रभावित होते हुए भी रस, भाव, कथानक, भाषा आदि की दृष्टि से यह सट्टक 'कर्पूरमञ्जरी' की अपेक्षा न्यून कोटि की है।

2. चन्द्रलेखा - यह अत्यन्त सुन्दर, सरस और आकर्षक सट्टक है। यहाँ सट्टककार ने अपने आश्रयदाता मानवेद के अङ्देश की राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ प्रणय और परिणय का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ चिन्तामणि देवता के प्रसाद से वह सुन्दरी चम्पा के उद्यान में क्रीडा करने के समय माया के द्वारा लायी गई है। यह सट्टक चार जवनिकान्तर में विभक्त है। वररुचि के प्राकृतप्रकाश पर आधारित इस रचना में भाषागत कृत्रिमता स्वाभाविक ही है तथा इस पर संस्कृत का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। यहाँ अङ्गी रस शृङ्गार है परन्तु अद्भुत आदि अङ्गरस भी यहाँ विद्यमान हैं। शैली ओजपूर्ण है। ऋतु आदि प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण हुआ है। कथानक में नाटकीय प्रवाह है। शब्दालंकारों एवं समासान्त पदावलियों के प्रयोग से कहीं-कहीं दुरुहता भी दिखाई पड़ती है। वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, स्रग्धरा आदि पन्द्रह छन्दों में यह सट्टक आबद्ध है। इसमें गद्यात्मक प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। नायक धीरललित कोटि का है, नायिका मुग्धा है, सम्पूर्ण कथानक प्राकृत भाषा में है किन्तु नाटकीय निर्देश संस्कृत भाषा में प्रदर्शित हैं। शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन होते हुए भी वियोग पक्ष का विशेष वर्णन है। नामकरण नायिका के नाम पर रखा गया है। यहाँ देवी आरम्भ से ही नायक-नायिका के विवाह का विरोध करती है किन्तु अपने मौसेरे भाई से अपने मौसा के प्रण को जानकर विवाह की अनुमति प्रदान करती है। 'कर्पूरमञ्जरी' से भिन्न विदूषक से किसी दासी आदि के विवाद की कथा यहाँ चित्रित नहीं है। चिन्तामणि देवता के कारण उपस्थित हुई नायिका के चक्रवर्तित्व लक्षण एवं अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर राजा मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। इसमें सट्टक के सभी गुणों का सुसंयोजन हुआ है। भाषा, भाव, वर्णना, शैली आदि की दृष्टि से 'कर्पूरमञ्जरी' से प्रभावित है। फिर भी इस सट्टक का अपनी निजी मौलिकता है जो कवि के पाण्डित्य एवं कवित्व के मनोरम सामञ्जस्य का फल है।

3. शृङ्गारमञ्जरी - पार्वती की कृपा से प्राप्त अवन्तिराज जटाकेतु की पुत्री शृङ्गारमञ्जरी एवं राजा

राजशेखर के प्रणय व परिणय को आधार बनाकर प्राकृत भाषा में इस उत्कृष्ट सट्टक की रचना की गई है। यह सट्टक चार जवनिकान्तर में विभक्त है। प्राकृत भाषा में रचित होते हुए भी यहाँ अभिनय के संकेत और पात्रों के नाम संस्कृत भाषा में निबद्ध है। सट्टक का नामकरण नायिका के नाम पर रखा गया है। नायक और नायिका की प्रणय कथा अन्तःपुर से ही सम्बद्ध है। यहाँ नायक धीरललित है, नायिका मुग्धा है एवं ज्येष्ठा नायिका के रूप में रूपलेखा है। शृङ्गार रस की प्रधानता होते हुए विप्रलम्भ शृङ्गार की अधिकता है। रचना अनुप्रास पदावली से युक्त है। अभिनेयता उत्कृष्ट एवं पात्र संवाद शिष्टतापूर्ण व श्रेष्ठ है। यहाँ विविध प्रकार के बीस छन्दों में 212 प्राकृत पद्य को निबद्ध किया गया है। नाटकीय सन्ध्यंगों का संयोजन कुशलतापूर्वक हुआ है। 'कर्पूरमञ्जरी' की तरह यहाँ तंत्र-मन्त्र शक्ति का समावेश नहीं किया गया है। 'कर्पूरमञ्जरी' के समान विदूषक और दासी का विवाद यहाँ दिखाई पड़ता है। यहाँ महारानी रूपलेखा को जब राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी के प्रणय का पता चलता है तो वह अवरोध उत्पन्न करती है तथा विदूषक और वसन्ततिलका को अलग-अलग बन्दीगृहों में डाल दिया जाता है एवं कड़ी निगरानी में शृङ्गारमञ्जरी को भी अज्ञात स्थान पर बन्दीगृह में डाल दिया जाता है। पुनः जब कारागार से किसी तरह मुक्त विदूषक से राजा नायिका के विषय में पूछते हैं तो विदूषक कहता है कि पार्वती की पूजा से लौटती हुई महारानी जब दिव्य वाणी से यह सुनती है कि अपने पति की सेवा करना ही पतिव्रता का धर्म है तब रानी उसे, वसन्ततिलका और शृङ्गारमञ्जरी को कैद से मुक्त कर सम्मान प्रदान करती है। इसी बीच महारानी शृङ्गारमञ्जरी और वसन्ततिलका को लेकर राजा के पास आती है तथा उपहारस्वरूप शृङ्गारमञ्जरी को राजा को सुपुर्द कर देती है। वह शृङ्गारमञ्जरी को सौत के रूप में स्वीकार कर लेती है। पुनः विदूषक के साथ लौटा हुआ चारुमूर्ति मंत्री चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में राजा का अभिनन्दन करता हुआ शृङ्गारमञ्जरी के रहस्य का उद्घाटन करता है जिससे महारानी दुःखी हो जाती हैं तथा पश्चाताप की ज्वाला में दग्ध होती हुई महारानी महाराज के साथ शृङ्गारमञ्जरी का परिणय करवा देती है। इस तरह कथानक का सुखद अंत होता है। यहाँ सट्टकीय मर्यादा एवं विधान का पूर्णतः पालन किया जाता है। इस सट्टक पर 'कर्पूरमञ्जरी' का स्पष्ट प्रभाव है किन्तु प्राकृतभाषा की प्रवाहमयी सरस काव्य लिखने में कवि का प्रभुत्व अक्षुण्ण प्रतीत होता है जो निश्चय ही चमत्कारी है।

4. **आनन्दसुन्दरी -** ऐसा कहा जाता है कि कंठोरव उपाधिवाले महाराष्ट्रचूडामणि घनश्यामरचित तीन सट्टकों में आनन्दसुन्दरी ही प्राप्त होता है, शेष दो सट्टक हैं - वैकुण्ठचरित एवं एक अज्ञातनामा सट्टक सम्भवतः नवग्रहचरित। गुणज्ञ एवं प्रतापी सम्राट् शिखण्डचन्द्र तथा अंगराज की कन्या आनन्दसुन्दरी के प्रणय और परिणय पर आधारित इस सट्टक की रचना की गई है। पुत्र प्राप्ति की चाहत रखने वाले राजा शिखण्डचन्द्र की स्नेह प्राप्ति हेतु अंगराज अपनी पुत्री को पुरुष वेश में पिंगलक नाम से राजा के दरबार में भेज देते हैं जो मन्दारक नामक प्रतिहारी के संरक्षण में रखी जाती है। ज्योतिषियों के अनुसार राजा को आनन्दसुन्दरी से पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। गर्भनाटक में प्रदर्शित अंगराज की पुत्री को पुरुषवेष में लाये जाने और अपने अन्तःपुर में रहने की बात को जानकर राजा वहाँ उपस्थित आनन्दसुन्दरी को देखकर उसके रूपसौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। किन्तु हेमवती के द्वारा रहस्य खुल जाने से महारानी मन्दारक को कारागृह में डाल देती है तथा आनन्दसुन्दरी को भी गुप्तस्थान पर कैद कर लिया जाता है। किन्तु अपने सद्प्रयत्नों से राजा महारानी से आनन्दसुन्दरी के साथ विवाह करने की सहमति प्राप्त कर लेता है। अन्ततः रानी शादी के जोड़े के साथ आनन्दसुन्दरी को लेकर आती है तथा अन्य प्रियजनों के मध्य दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है। आगे परिजात कवि द्वारा एक अन्य गर्भनाटक को मञ्चित किया जाना जिसमें राक्षस विभिण्डक का मारा जाना

चित्रित है। राजा जीत का समाचार पाकर प्रसन्न हैं उसी समय राजा को राजकुमार के जन्म का समाचार प्राप्त होता है। महारानी नायिका और नवजात शिशु के साथ राजा के समक्ष आकर उन्हें बधाई देती हैं तथा नवजात शिशु का नाम आनन्दचन्द्र रखती है।

चार जवनिकान्तरों में विभक्त तथा प्राकृत भाषा में रचित इस सट्टक में यद्यपि सट्टकीय विधान का पालन किया गया है तथापि कहीं-कहीं इसमें संस्कृत प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं, फलतः इसकी कोटि न्यून हो जाती है। अन्य सट्टकों से इतर यहाँ दो गर्भनाटक का अवतरण दिखाई पड़ता है, जो मूलकथा से सर्वथा सम्बद्ध है। 'कर्पूरमञ्जरी' में जहाँ देशी शब्दों का व्यवहार देखा जाता है, घनश्याम के रचना में बहुशः मराठी शब्दों एवं क्रियाओं का प्रयोग देखा जाता है, जो आज भी प्रचलित है। यहाँ हास्य का आकर्षक संयोजन दिखाई पड़ता है। कर्पूरमञ्जरी की तरह इस सट्टक में भी नायिका अन्तःपुरसम्बद्धा है। रानी आनन्दसुन्दरी और राजा के विवाह में अवरोध उत्पन्न करती है तथा अन्ततः सहमति प्रदान करती है। गेयता एवं रसात्मकता का यहाँ सुन्दर संयोग प्राप्त होता है। राजशेखर की 'कर्पूरमञ्जरी' से प्रभावित होते हुए भी इसमें अपेक्षाकृत अधिक मौलिकता दिखाई पड़ती है।

5. कर्पूरमञ्जरी - राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी' की रचना के पश्चात् लिखे गये प्रायः सभी उपलब्ध सट्टक किसी न किसी रूप में 'कर्पूरमञ्जरी' का ही ऋणी है, उससे प्रभावित है। भाषा, भाव, रचनाविधान, रस, वर्णन-योजना, कथानक या विषयवस्तु, नामकरण आदि की दृष्टि से परवर्ती सभी उपलब्ध सट्टकों में 'कर्पूरमञ्जरी' का ही अनुकरण किया गया है। उपलब्ध समस्त सट्टकों में राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी' सर्वप्रथम होने से यह सट्टकपरम्परा का प्रतिनिधि ग्रंथ है। शौरसेनी प्राकृत में लिखित चार जवनिकान्तरों में विभक्त इस सट्टक की कथा का आधार राजा चन्द्रपाल एवं विदर्भ नगर की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी है, जो राजा चन्द्रपाल की महारानी विभ्रमलेखा की मौसी शशिप्रिया और मौसा वल्लभराज की पुत्री है। विदूषक के साथ आये हुए भैरवानन्द नामक सिद्धयोगी से जब राजा कोई आश्चर्य दिखाने का अनुरोध करता है तो वह योगी विदूषक की सलाह पर विदर्भ नगर की राजकुमारी को योगशक्ति से सबके सामने ला दिखाता है, जिसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर राजा मंत्रमुग्ध हो जाते हैं और प्रथम दर्शन में ही उसके प्रेमपाश में बंध जाते हैं। महारानी के अनुरोध पर राजकुमारी को कुछ दिनों के लिए रनिवास में रखे जाने हेतु भैरवानन्द स्वीकृति प्रदान कर देता है। द्वितीय जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के वियोग में विह्वल राजा की दीनावस्था का वर्णन विदूषक विचक्षणा के सम्मुख करता है तथा राजा के वियोग में कर्पूरमञ्जरी की दीनदशा का वर्णन विचक्षणा विदूषक से करती है। हिन्दोलन चतुर्थी के अवसर पर गौरीपूजा के बाद महारानी द्वारा झूले पर झुलाये जाते हुए कर्पूरमञ्जरी को राजा मरकतकुञ्ज से देखते हैं। मरकतकुञ्ज से राजा कर्पूरमञ्जरी द्वारा किये जानेवाले कुरवक, तिलक और अशोक तीन वृक्षों के दोहद कर्म को देखते हैं। तृतीय जवनिकान्तर में राजा चन्द्रपाल विदूषक से कर्पूरमञ्जरी विषयक स्वप्न की बातों को बताता है। आगे कर्पूरमञ्जरी और कुरंगिका का आगमन, राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी का हस्तस्पर्श, प्रमदोद्यान में कर्पूरमञ्जरी द्वारा राजा का आलिंगन तथा महारानी को राजा और कर्पूरमञ्जरी के मिलन का वृत्तान्त का पता चल जाना आदि वर्णित है। चतुर्थ जवनिकान्तर में योगीश्वर भैरवानन्द से दीक्षास्वरूप गुरुदक्षिणा के रूप में प्रस्तावित लाटदेश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमञ्जरी के साथ राजा के विवाह को महारानी स्वीकार कर लेती है क्योंकि विवाह से पूर्व तक महारानी को यह ज्ञात नहीं था कि कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है। विवाहोपरान्त ही महारानी इस बात से विज्ञ हो पाती है। इधर भैरवानन्द कर्पूरमञ्जरी का विवाह राजा चन्द्रपाल से इसलिए कराता है कि वह ज्योतिषीय भविष्यवाणी के अनुरूप उससे विवाह करनेवाला चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा।

लोकजीवन से सम्बद्ध इस सट्टक में नाट्यविधान का पूर्णतः पालन किया गया है। यहाँ नायक धीरललित प्रकृति का है, नायिका मुग्धा कोटि की है, महारानी ज्येष्ठा नायिका या स्वकीया नायिका है। सट्टक का नाम नायिकाधारित है। सट्टकस्वरूप के अनुरूप सम्पूर्ण सट्टक प्राकृत में है। यह सट्टक चार जवनिकान्तरों में विभक्त है। शृङ्गार के दोनों ही पक्षों का सुन्दर चित्रण हुआ है। अद्भुत आदि रसों की भी योजना की गई है। कथानक सुगठित एवं काल्पनिक, किन्तु नाटिका सदृश है। यहाँ राजा चन्द्रपाल एवं कर्पूरमञ्जरी का प्रणय मुख्य कथावस्तु या आधिकारिक कथावस्तु है, भैरवानन्द विदूषक और विचक्षणा आदि का प्रसंग प्रासंगिक कथावस्तु है। यहाँ मुख, प्रतिमुख, अवमर्श और उपसंहृति आदि चार सन्धियों; बीज, बिन्दु, प्रकरी और कार्य इन चार अर्थप्रकृतियों; आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा और फलागम इन चार कार्यावस्थाओं का सफल संयोजन हुआ है। यहाँ गर्भसन्धि, पताका नामक अर्थप्रकृति एवं नियताप्ति नामक कार्यावस्था का अभाव दिखाई पड़ता है। विष्कम्भक और प्रवेशक का अभाव है। नमस्कारात्मक नान्दीपाठ एवं भरतवाक्य के दर्शन होते हैं। इसकी अभिनेयता, पात्र चित्रण एवं उपदेयता उच्च कोटि की है एवं रंगमञ्चीयता की दृष्टि से यह उत्कृष्ट है। प्रो. राधवल्लभ त्रिपाठी का मानना है कि उक्त सट्टक की रचना की दृष्टि से राजशेखर भवभूति की अपेक्षा लोकनाट्यपरम्परा के और भी अधिक निकट लगते हैं। सट्टकीय लक्षण के अनुरूप कर्पूरमञ्जरी पूरा प्राकृत में लिखा गया है फिर भी ध्यान देने के योग्य है कि राजशेखर मूलतः और मुख्यतः संस्कृत के नाटककार हैं। उनके सट्टक के सारे संवाद भले ही प्राकृत में हों किन्तु रंगनिर्देश संस्कृत में ही हैं और रूपक का नाम भी प्राकृत में न रखकर संस्कृत में रखा गया है। फिर भी कहा जा सकता है कि प्रस्तुत सट्टक सट्टकीय नियमों के अनुकूल होने से परवर्ती सट्टकों के लिए आदर्श है। परवर्ती सट्टककारों के लिए यह अनुकरणीय है। भाषा, अलंकार, छन्द, गुण, रीति आदि साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह उत्कृष्ट सट्टक है। यहाँ 20 उत्प्रेक्षा, 12 उपमा, 8 रूपक, 5 व्यतिरेक के साथ-साथ संकर और संसृष्टि आदि अलंकार के दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं अलंकारहीनता की स्थिति भी दिखाई पड़ती है। यहाँ गौडी रीति का सर्वथा अभाव है किन्तु वैदर्भी रीति की छँटा दर्शनीय है। वैदर्भी की बहुलता के साथ-साथ पाञ्चाली और लाटी रीति के भी दर्शन होते हैं। यहाँ यद्यपि प्रसाद गुण और माधुर्य गुण की प्रचुरता है किन्तु कहीं-कहीं पात्रों के संवाद या कथोपकथन में ओजगुण भी दृष्टिगत होता है। प्रसाद गुण के प्रति कवि का अधिक मोह है। छन्दविधान एवं विविध छन्दों की निबद्धता भी यहाँ दिखाई पड़ती है।

स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्रीय और साहित्यशास्त्रीय सौन्दर्य से आप्लावित यह कर्पूरमञ्जरी सट्टकीय नाट्यनिकष (कसौटी) पर सर्वाधिक सफल एवं सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ सट्टकीय नाट्यविधान एवं मर्यादा का पूर्ण पालन किया गया है। यही कारण है कि राजशेखरकृत यह सट्टक परवर्ती प्रायः सभी सट्टकों के लिए अनुकरणीय एवं आदर्श बन गया है।

संदर्भ -

1. *साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद का आरम्भ, पृ. 411*
2. *नाट्यशास्त्र, 1/11*
3. *नाट्य-अभिनवभारती, 1/11 पर, पृ. 36*
4. *दृश्यं तत्राभिनेयं - साहित्यदर्पण, 6/1*
5. *अवस्थानु—तिर्नाट्यम् - दशरूपक, 1/7*
6. *रूपं दृश्यतयोच्यते - वही*

7. रूपकं तत्समारोपात् - वही
   तद्रूपारोपात्तु रूपकम् - साहित्यदर्पण, 6/1
8. नटे रामाद्यवस्थारोपेण .. 'इन्द्रः पुरन्दरः शुक्रः' इतिवत्प्रवृत्तिनिमित्तभेदो वर्णितः - दशरूपक-अवलोक, 1/7 पर, पृ. 7
9. दशधैव रसाश्रयम्य वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः - दशरूपक, 1/7 एवं 1/11
10. अन्तर्भावगता ..... दशैतानि रूपाणीत्युदिता वै - नाट्यशास्त्र, 18/61
11. रसानाश्रित्य वर्तमानं दशप्रकारकम्, एवेत्यवधारणं ..... वक्ष्यमाणत्वात् - दशरूपक-अवलोक, 1/7 पर, पृ. 8
12. ननु-डोम्बी श्रीगदितं ..... भाणवत् ।। - वही, 1/8 पर, पृ. 9
13. अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम् - दशरूपक, 1/9
14. दशधैव रसाश्रयम् - वही, 1/7
15. नाट्यशास्त्र - अभिनवभारती, 4/274 पर, पृ. 499-502
16. उक्तव्याख्याने तु कोहलादिलक्षिततोटकसट्टकरासकादिसंग्रहः फलं नाटिकायाः उदाहरणत्वादि - नाट्यशास्त्र-अभिनवभारती, 18/1 पर, पृ. 617
    अतएव न दशसंख्याविभागार्थो येन सट्टकादीनां त्यागः स्यात् । - वही, 18/4 पर, पृ. 621
17. प्रबन्धश्चेह द्विधा-प्रेक्ष्यः श्रव्यश्च । तयोः अभिनेयः प्रेक्ष्यः । स च नाटिकादिभेदाच्चतुर्विंशतिप्रकारो भवति - नाटकं .. ... नाट्यरासकमिति । - शृङ्गारप्रकाश, एकादश प्रकाश, पृ. 659
18. नाटकं सप्रकरणं ..... त्रिंशद्रूपकभेदाश्च प्रकाश्यन्तेऽत्र लक्षणैः ।। - भावप्रकाशन, अष्टम अधिकार, पृ. 321
19. नाटकस्य प्रकरणस्योभयोः ..... सङ्कीर्णान्यानिवृत्तये । - वही, पृ. 358
    सैव प्रवेशकेनापि ..... सट्टकं नामतो भवेत् । - वही, पृ. 359-60
20. दशरूपेण भिन्नानां ..... पारिजातकमित्यपि । - वही, नवम अधिकार, पृ. 374
21. काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च - काव्यानुशासन, अष्टम अध्याय, पृ. 316
22. प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च - वही, पृ. 317
23. पाठ्यं नाटकप्रकरण ..... सट्टकादि - वही, पृ. 317
24. गेयं डोम्बिका ..... काव्यादि - वही, पृ. 327
25. रूपैर्द्वादशभिर्विश्वं ..... धृति पथि - नाट्यदर्पण, 1/1
26. नाटकं प्रकरणं ..... कैशिकीपरिवर्जनात् - वही, 1/3-4
27. अन्यान्यपि रूपकानि दृश्यन्ते । यदाहुः - नाट्यदर्पण, चतुर्थ विवेक, पृ. 403-408
28. नाटकं सप्रकरणं ..... सप्तविंशतिरेव तत् । - अग्निपुराण, 338/1-4
29. नाटकमथ प्रकरणं ..... रूपकाणि दश - साहित्यदर्पण, 6/3
30. नाटिका त्रोटकं ..... नाटकवन्मतम् - वही, 6/4-6
31. शेषमुत्तरतन्त्रेण कोहलः कथयिष्यति - 36/69
    कोहलादिभिरेवं तु वात्स्य ..... कञ्चित्कालमवस्थितैः ।। 36/75
32. प्रकरणसमुद्भवा ..... सट्टको नाटिकाप्रतिमः - शृङ्गारप्रकाश, 11/271-273
33. सैव प्रवेशकेनापि ..... प्रकृष्टप्राकृतमयी सट्टकं नामतो भवेत् - भावप्रकाशन, अष्टम अधिकार, पृ. 359-60
34. विष्कम्भकप्रवेशकरहितो ..... सट्टको नाटिकाप्रतिमः । - काव्यानुशासन, अष्टम अध्याय, पृ. 329
35. विष्कम्भकप्रवेशरहितो ..... स सट्टको नाटिका । - नाट्यदर्पण, 4/55

36. सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं ..... नाटिक सममं। - साहित्यदर्पण, 6/276-77
37. नाटिका क्लृप्तवृत्ता ..... सन्धयः पुनः।। - वही, 6/269-72
38. वही, 6/143
39. संस्कृत-हिन्दीकोश, पृ. 1061
40. साहित्यदर्पण - लक्ष्मीटीका, 6/276-77 पर, पृ. 623
41. सो सट्टओ त्ति भणइ ..... ण केवलं हींति।। - कर्पूरमञ्जरी, 1/6
42. अत्थणिबेसा ते ज्जेब्ब ..... सा होदु।। - वही, 1/7
43. परुसा ..... तेत्तिअमिमाणं।। - वही, 1/8
44. चाउहाणकुलमौलि ..... मिच्छदि।। - वही, 1/11
45. नाट्यशास्त्र, संस्कृत नाट्य तथा विश्व रंगमञ्च, पृ. 112

38

'कर्पूरमञ्जरी' का सांस्कृतिक महत्त्व

वर्षा रानी, ममता त्रिपाठी***

कर्पूरमञ्जरी सम्पूर्ण भारतीय समाज का दर्पण है। इसकी विशेषता यह है कि यह पूरी तरह से प्राकृत भाषा में लिखा गया है जिससे तत्कालीन लोकभाषा जनसंपर्क और सांस्कृतिक चेतना का बोध होता है। नायक चन्द्रपाल और नायिका कर्पूरमञ्जरी की प्रेमकथा के माध्यम से राजशेखर ने समाज की बहुस्तरीय संरचना, नारी की स्थिति, प्रेम की आत्मिकता, कला का महत्व, विवाह की मर्यादा, साथ ही शिक्षा व धर्म के मूल्यों को सरलता से स्पष्ट किया है। इस सट्टक के हास्य, व्यङ्ग्य, गीत संगीत, तथा संवाद शैली से तत्कालीन समाज जीवित हो उठता है। इसमें नारी की स्थिति केवल शृंगार की वस्तु नहीं है अपितु वह आत्मस्वाभिमानी, विवेकशील स्त्री के रूप में है। धार्मिक सङ्गकेत, शहरी और ग्रार्मीण जीवन, रंगमंच की परम्परा और कलात्मक अभिव्यक्ति के अनेक उदाहरण इस सट्टक को साहित्यिक ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी ऐतिहासिक बना देते है।

प्रस्तुत शोध पत्र आचार्य राजशेखर द्वारा विरचित कर्पूरमञ्जरी के सांस्कृतिक महत्त्व पर केन्द्रित है। सम् उपसर्ग के पश्चात् कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय लगकर संस्कृति शब्द बनता है जिसका अर्थ है परिशुद्धि।

राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी उपरूपक के 18 प्रकारों में से एक है। यह सट्टक है। सट्टक के सन्दर्भ में राजशेखर ने कहा है कि जिस प्रबंध में नाटिका का पूरा अनुकरण होता है कवि प्रवेशक और विष्कम्भक नहीं पाया जाता है वही सट्टक है। **''तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुहरति। किं पुनरत्र प्रवेशक विष्कम्भो न केवलं भवतः''**।[1] यह नाटक प्राकृत भाषा में है परन्तु फिर भी साांस्कृतिक चेतना का ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करता है, जिससे की हमें तत्कालीन जीवन मूल्यों, सामाजिक व्यवस्थाओं और आचार विचारों की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। इस ग्रन्थ की रचना लगभग नवी शताब्दी के उतरार्ध की मानी जाती है जब गुर्जर प्रतिहार वंश की सत्ता थी और भारत में कला, साहित्य, धर्म और दर्शन का विकास हो रहा था। कर्पूरमञ्जरी को राजशेखर ने अपनी पत्नी अवन्तीसुन्दरी के लिए लिखा था। इस ग्रन्थ में प्राकृत (शौरसेनी) का प्रयोग लोकसंस्कृति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

राजशेखर संस्कृत के प्रसिद्ध कवि थे परन्तु इस सट्टक को उन्होंने प्राकृत भाषा में लिखा क्योंकि यह उस समय की स्त्रियों के लिए बोलचाल की भाषा थी। प्राकृत भाषा की कोमलता ने इस नाटक को स्त्रियों के मनोभाव की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त बनाया है। वैसे तो आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में कहीं भी किसी

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

*** सहाकाचार्या, संस्कृत विभाग, गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

भाषा के पूर्व प्राकृत भाषा में होने का समर्थन नहीं किया है, और ना ही राजशेखर से परवर्ती आचार्य धनञ्जय के दशरूपक में ऐसे किसी नाटक का उल्लेख मिलता है जिसे की पूर्णतः प्राकृत में लिखा जाये। जिससे यह जान पड़ता है की राजशेखर की यह मूल कल्पना है। अर्नी इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए राजशेखर ने सूत्रधार से यह प्रश्न कराया कि सांस्कृत को छोड़कर प्राकृत भाषा में इस नाटक को क्यो लिखा गया पारिपार्श्विक उत्तर में कहता है की अर्थविशेष को कविता कहते है, भाषा कोई भी क्यो न हो। **''अर्थनिवेशास्त एव शब्दास्त एव परिणमन्तोऽपि। उक्तिविशेषः काव्य भाषा या भवति सा भवतु''।**[2] इसके समर्थन में पारिपार्श्विक एक श्लोक और कहता है कि संस्कृत भाषा की रचनायें तो पुरुष की भाँति नीरस भी हो सकती है किन्तु जिस प्रकार स्त्रियाँ सुकुमार होती है उसी प्रकार की ही यह प्राकृत रचना है।

''परूषाः संस्कृतबन्धा प्राकृतबन्धोऽपि भवति सुकुमारः। पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरां तावत् तेषु''।।[3]

भारतीय सभ्यता में हमेशा से ही समाज में नारी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इसलिए हमारे प्रारम्भिक कवियों जैसे कालिदास आदि ने नारी की प्रतिष्ठा को यथावत रखा था। राजशेखर का ध्यान स्त्रियों के चित्राङ्कन में तो है ही साथ ही वह इनके सौन्दर्य का चित्रण भी करते है। इस नाटक की नायिका कर्पूरमञ्जरी है। नाटक के प्रथम जवनिकान्तर में हम देख सकते है कि कर्पूरमञ्जरी के मञ्च पर उपस्थित होते ही राजशेखर ने उसके सौन्दर्य का राजा के मुख से सुंदर वर्णन कराया है और कर्पूरमञ्जरी की तुलना पूर्णिमा के चन्द्रमा से की गयी है **''अवतार्यतां पूर्णिमाहरिणाङ्को धरणीतले''।**[4] इस नाकि में कर्पूरमञ्जरी की स्वाभाविक प्रेमानुभूति, उसका आत्मविवेक साथ ही निर्णय लेने की क्षमता उस समय के समाज की स्त्रियों के उन्नत मानसिकता को दर्शाते है।

इस सट्टक का मुख्य कथानक चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को ध्यान में रखकर किया गया है। जिसमें हमें रति, सौन्दर्य, शृंगार और काम भावना के विविध पक्ष सांस्कृतिक रूप से महत्त्वपूर्ण दिखाई देते है। प्रेम का चित्रण आध्यात्मिकता और आत्मीयता से किया गया है। कर्पूरमञ्जरी में हमें तत्कालीन समाज की परिवार प्रणाली, वर्णव्यवस्था, स्त्री पुरुष संवाद आदि का स्पट चित्रण देखने को मिलता है। इस सट्टक के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित है यथा राजा, सेविका, प्रजा, विदूषक, गणिका, बटु और सेवक। यह वर्गीय व्यवस्था सांस्कृतिक समन्वय को दर्शाती है। राजशेखर किसी एक वर्ण विशेष का गुणगान नहीं करते बल्कि पूरे समाज को उसकी जीवंतता के साथ उजागर करते हैं। इस सट्टक से तत्कालीन निष्ठा और सामाजिक बाध्यताओं का ज्ञान होता है। समाज में स्त्रियों की भूमिका उनकी सामाजिक मर्यादा के प्रतिबन्ध स्पष्टतः देखने को मिलते है। प्राचीन काल से ही दोहद क्रिया का मुख्य स्थान रहा है। गर्भवती स्त्री द्वारा कुछ विशेष पाने की इच्छा करना ही दोहद नाम से जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि नारी द्विहृदया तब होती है जब वह गर्भिणी होती है। इसमें एक तो उसका स्वयं का हृदय होता है दूसरा उसके शिशु का होता है इसलिए संस्कृत साहित्य में गर्भिणी को ''दौहृदयिनी'' कहा गया है। रघुवंशम् महाकाव्य में कालिदास कहते है-

''एवं विधं दौहृदलक्षणम् गर्भचिन्हम् वक्ष्यमाणम् दधौ। स्वहृदयेन गर्भहृदयेन च द्विहृदया गर्भिणी''।।[5]

हम भवभूति के उत्तररामचरितम् में देखते है कि गर्भवती सीता के भागीरथी में पुनः अवगाहन की इच्छा को दोहद कहा गया है। **''आर्यपुत्र एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्न दोहदाया मम विज्ञेपनीयमस्ती'।**[6] दोहद का एक रूप और होता है जो वृक्ष दोहद के नाम से जाना जाता है। इसमें माना जाता है कि वृक्ष विशेष की भी कुछ अभिलाषाएँ होती है। वृक्ष दोहद की पूर्ति का कार्य किसी विशेष स्त्री से कराया जाता है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य में भी वृक्ष दोहद का अत्याधिक वर्णन मिलता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार वृक्ष विशेष की

भी यह इच्छा होती है कि कोई स्त्री युवावस्था में उसका स्पर्श करे या फिर उसे हाथ से थापे या पाद प्रहार करे। यही सन्दर्भ संस्कृत कवियों की वाणी में भी मिलता है मालविकाग्निमित्रम् में मदन महोत्सव के बाद अशोक वृक्ष में दोहद उत्पन्न किया जाता है और यह दोहद प्रक्रिया इस प्रकार होती थी कि कोई सुन्दरी स्त्री सभी प्रकार के आभूषण धारण कर और पैरो को रंग कर अशोक के वृक्ष पर चरणाघात करती थी जिससे वह पुष्पगुच्छो से भर जाता था।[7] कालिदास के मेघदूतम् में उल्लेख मिलता है कि दोहद ऐसी क्रिया है जो गुल्म, तरु और लतादियों में अकाल पुष्प धारण करने के लिए औषधि का कार्य करता है।[8] नैषधीयचरितम् में भी ऐसा वर्णन मिलता है कि दोहद ऐसा द्रव्य या द्रव्य की फूंक है जिससे वृक्षों में फूल फल देने की क्षमता आती है।[9] इसी प्रकार कर्पूरमञ्जरी में भी दोहद का प्रसंग आया है। यहाँ कुरबक, तिलक और अशोक के वृक्षों के दोहद का कार्य कर्पूरमञ्जरी द्वारा करवाया गया है इन वृक्षों को जयेष्ठा नायिका द्वारा लगाया गया था। कर्पूरमञ्जरी कुरबक वृक्ष का आलिङ्गन करते हुए, तिलक वृक्ष को तिरछी निगाहें देखकर और अशोक वृक्ष का पादप्रहार द्वारा दोहद करती है।

प्रथमतः कर्पूरमञ्जरी कुरवक वृक्ष का आलिङ्गन करती है जिसका वर्णन यहाँ है-

''नवकुरवकवृक्षः कुम्भस्थूलस्तनया रभसविरचितेन निर्भरालिङ्गनेन।
तथा कुसुमसमृद्धिं लम्भितः सुन्दर्या यथा भ्रमरकुलानां तत्र यात्रा प्रवृत्ता''।।[10]

इसके बाद तिलक के वृक्ष को कर्पूरमञ्जरी तिरछी निगाह से देखती है-

''पार्श्वे पञ्चशरं शिलीमुखधरं नित्यं कुर्वतोश्च। नेत्रेयोस्तिलकद्रुमे निपतिता घाटी मगाक्ष्या यत्
तत् स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिरा रोमाञ्चित इव स्थितः''।।[11]

इसके बाद आशोक वृक्ष पर पाद प्रहार का वर्णन है –

''अशोकतरुताडनं रणितनूपुरेणाङ् घ्रिणा—कृतश्च मृगलाच्छनच्छविमुख्या हेलोल्लासम्''।।[12]

इस काव्य विधा में हमें धार्मिक आस्था और आध्यात्मिक जीवन का विस्तृत प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। यहाँ हमें देवी देवताओं की पूजा, व्रत तथा धार्मिक त्योहारों का भी उल्लेख मिलता है। यह सब तत्कालीन युग के धार्मिक और सामाजिक जीवन की गहन अभिव्यक्ति प्रदान करते है। धार्मिक अनुष्ठान ऐसे होते हैं जो जीवन की गहराई से जुड़े होते है, ये समाज की नैतिक और आध्यात्मिक संरचना को बनाये रखने में कारगर सिद्ध होते है। यहाँ हमें विभिन्न प्रसंगो में धार्मिक पहलुओं का वर्णन मिलता है। नाटक में हमें विविध धार्मिक और आस्तिक दृष्टिकोण के दर्शन होते है। यहाँ हमें शिव, गणेश, पार्वती, ब्रह्मा आदि देवी देवताओं का उल्लेख मिलता है। साथ ही पूजा, व्रत, आशीर्वाद और सुभाशंसाओं की परम्परा का भी वर्णन मिलता है। जो उस काल की धार्मिकता और लोकविश्वास से हमे परिचित कराता है। यहाँ धार्मिकता केवल कर्मकाण्ड भर नहीं है, बल्कि आंतरिक श्रद्धा का विषय है जो कि भारतीय संस्कृति का मूल है।

इस सट्टक के प्रथम श्लोक अर्थात् नान्दी में कहा गया है कि देवी सरस्वती की जय हो इसके बाद चन्द्र मोली भगवान शिव से की गयी प्रार्थना वर्णन है ''चन्द्रकला से भूषित, सम्भोग की अभिलाषा रखने वाले देवताओं के प्रिय शंकर और पार्वती का संगम तुम दर्शको को आनन्दित करें''।

''शशिखण्डमण्डनयोः समोहनाशयोः सुरगणप्रिययोः। गिरिश-गिरीन्द्रसुतयोः सङ्घटना वः सुखं ददातु''।।[13]

प्रथम जवनिकान्तर में मधूत्सव का वर्णन है द्वितीय जवनिकान्तर में हिन्दोलक चतुर्थी उत्सव का वर्णन है जिसमें पार्वती की पूजा का वर्णन मिलता है। विचक्षणा के माध्यम से यह सूचना मिलती है कि आज बगीचे में केवड़े की लता पर एक फूल दिखायीं दिया है हिन्दोलक उत्सव की समाप्ति पर चतुर्थी के दिन महारानी ने इन्हीं दलों से पार्वती की पूजा की और कुछ दल अपनी छोटी बहन को भी गौरी पूजन के लिए दिए।

''अद्य हिन्दोलन चतुर्थी, तत्र देव्या गौरीकृत्वा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलके आरोयितव्या''[14]

इस सट्टक में ऋतु, प्रकृति और धार्मिक अनुष्ठान के समन्वय से जीवन की पूर्णता की अनुभूति होती है। इस सट्टक में विभिन्न स्थलों पर तत्कालीन समाज का जनजीवन, परिस्थिति, आचार विचार, आदि का वर्णन मिलता है। नाटक में वसन्त ऋतु का वर्णन अत्यंत ही मनमोहक है। वसंतोत्सव, पुष्प-वृक्ष, कोकिल की ध्वनि आदि वर्णन भारतीय ऋतु संस्कृति के प्रतीक है। द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में ही प्रतीहारी वसंत का वर्णन इस प्रकार करती है कोयल का कण्ठ विकास करते हुए भ्रमरों के गुञ्जन को और भी मधुर बना रहा है, विरहियों के हृदय में नवीन सा अनुराग उत्पन्न हो रहा है कोयल के पञ्चम स्वर और शृंगार रस को उत्पन्न करने वाले यह दिन निश्चय ही कैसे लम्बे हो जाते है।

''मूलात्प्रभृति परभृतबधूकण्ठमुद्रां दलन्तो ददतो दीर्घं मधुरिमगुणं जल्पिते षट्पदानाम्।
सञ्चारयन्तो विरहिषु नवं पञ्चमं किञ्च रागं रागोन्मत्ता रतिकुलगृहा वासरा विस्तीर्यन्ते''।।[15]

चतुर्थ जवनिकान्तर में वटसावित्री महोत्सव मनाने का उल्लेख है। इस महोत्सव में चर्चरी नर्तकियों की टोली धारायन्त्रनृत्य, भिल्लनृत्य, दण्डरासनृत्य आदि लोक नृत्य और गीत की भी प्रस्तुती करती है। राजशेखर इनकी वेशभूषा और भावभंगिमाओं का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण करते है –

परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडष नत्रक्यः। खेलन्ति तालानुगतपदास्तवाङ्गने दृश्यते दण्डरासः।।[16]

कविराज ने राजा के मुख से वसंतोत्सव का सुष्ठु वर्णन करवाया है राजा कहता है ''बालायें ओष्ठो पर विलेपन (क्रीम) का अधिक प्रयोग नहीं करती है और सुगन्धित तेल से अपने केशपासो का श्रृंगार नहीं करती और मुख पर भी कुमकुम आदि का प्रयोग नहीं करती है। इस कारण मै समझता हाँ कि शीत ऋतु को जीतकर वसंत ऋतु का महोत्सव आ गया है''।

''बिम्बोष्ठे बहल न ददति मदनं नो गंधतैलाबिला वेणीर्विरचयन्ति ददति न तथाऽङ्गेऽपि कूर्पासकम्।
यत् बाला मुखकुङ्कुमेऽपि घने वर्त्तन्ते शिथिलादरा तन्मन्येशिशिरां विनिर्जित्य बलात् प्राप्तो वसन्तोत्सवः''।।[17]

राजशेखर द्वारा स्वयं काव्यमीमांसा की रचना की गयी है उनकी काव्यदृष्टि कर्पूरमञ्जरी में स्वाभाविक रूप से समाहित है। उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग इस सट्टक की साहित्यिक सांस्कृतिक गरिमा को बढ़ाता है। व्यतिरेक अलंकार का उदाहरण इस प्रकार है-

''स अस्य कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति। हरिणाङ्कप्रतिपङक्तिसिद्धया निषकलङ्का गुणा यस्य''।।[18]

यहाँ वर्णन है कि चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को प्रकाशित करता है परन्तु राजशेखर के गुणों से त्रिभुवन प्रकाशित हो रहा है। यहाँ उपमेय राजशेखर का उपमान चन्द्रमा से व्यतिरेक अर्थात् आधिक्य का वर्णन है। नाटक में कहीं कहीं पर नैतिक शिक्षा और लोकमङ्गल की भावना साथ ही मानव धर्म का विचार भी प्रकट होता है। पात्रों के आचरण से ऐसा प्रतीत होता है कि वे केवल आनन्द नहीं बल्कि धर्म और मर्यादा का भी पालन करते हैं। यहाँ जीवन के मूल्य, धर्म, प्रेम और कर्तव्य का समन्वय देखने को मिलता है। इस सट्टक में कर्पूरमञ्जरी की सखियाँ संवादो में हास्य, व्यङ्ग्य और आत्मीयता के माध्यम से स्त्री संस्कृति की अनेक परतो को उद्घाटित करती है।

राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी न केवल एक प्राकृत नाटक है, बल्कि यह तत्कालीन भारतीय संस्कृति का एक सांस्कृतिक ग्रन्थ है। इसमें नारी चेतना, प्रेम, विवाह, धर्म, नीति, सौन्दर्य, सामाजिक, संरचना, लोकाचार, प्रकृति चित्रण और नाट्य परम्परा का उत्कृष्ट समावेश है।

संदर्भ -

1. *कर्पूरमञ्जरी, 1/6*
2. *वही, 1.7*
3. *वहीं, 1.8*
4. *वही, प्रथम जवनिका.*
5. *रघुवंश, तृतीय सर्ग श्लोक 1-7*
6. *उत्तरराम., प्रथम अंक*
7. *मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक*
8. *उत्तरमेघ. श्लोक 18*
9. *नैषध. सर्ग 3/21*
10. *कर्पूर. 1/44*
11. *वहीं, 2/46*
12. *वहीं, 2/47*
13. *कर्पूरमञ्जरी, 1.3*
14. *वहीं, 2/7*
15. *वहीं, 2/2*
16. *वहीं, 3/11*
17. *वहीं, 1.13*
18. *वहीं, 1.10*

39

'कर्पूरमञ्जरी' का वस्तु-विवेचन

देशराज *

भारतीय नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने रूपक के भेदक तत्त्वों में वस्तु (कथावस्तु), नेता (नायक) और रस को प्रमुख माना है।[1] इनमें वस्तु को केंद्रीय स्थान प्राप्त है, जिसे कथा, इतिवृत्त या कथानक के नाम से जाना जाता है। वस्तु ही वह आधार होती है जिसके माध्यम से पात्रों की सृष्टि होती है और उन्हीं पात्रों के माध्यम से रस की निष्पत्ति होती है। जब कोई रूपककार मंच पर विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा रस निष्पत्ति करता है, तब जिस घटनाक्रम का अभिनय होता है, वही उस नाटक की कथावस्तु कहलाती है। इस प्रकार वस्तु को पात्र और रस की तुलना में अधिक मूलभूत माना गया है।

सट्टक की कथावस्तु मूलतः नाटिका के अनुरूप होती है, किंतु प्रवेशक और विष्कम्भक की अनुपस्थिति इसे विशिष्ट बनाती है। इसका उद्देश्य जनसामान्य के लिए स्पष्ट और सजीव प्रस्तुति देना होता है, जिससे दर्शक सहज रूप से कथा और भावों को ग्रहण कर सकें। सट्टक में कथाचार जवनिकान्तरों में विभाजित होती है, जो यद्यपि अंक नहीं कहलाते, पर अंकीय संरचना से मेल खाते हैं। इसमें नायक प्रख्यात वंशीय और धीरललित होता है तथा शृंगार रस की प्रधानता रहती है। कथावस्तु आधिकारिक वृत्त पर आधारित होते हुए भी प्रासंगिक वृत्तों, अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं, संधियों एवं संध्यङ्गों के माध्यम से सुव्यवस्थित रूप से आगे बढ़ती है और एक सुनिश्चित फल पर पहुँचती है। संक्षेपतः, सट्टक एक सशक्त लघु रूपक के रूप में सरलता, संक्षिप्तता और रसबोध के साथ प्रभावी प्रस्तुति करता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक और उसका नाट्यशास्त्रीय विवेचन-

कर्पूरमञ्जरी सट्टक एक लघु नाट्यरूपक है, जिसकी कथावस्तु को नाट्यशास्त्रीय परंपरा के अनुसार चार जवनिकान्तरों में विभाजित किया गया है। इसके कथानक भाव, पात्र और रस की सजीव योजना द्वारा रचनात्मकता और रसात्मकता से परिपूर्ण है। प्रथम जवनिकान्तर में प्रस्तावना के पश्चात् राजा चंगपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक और दासी विचक्षणा का प्रवेश होता है। वसंत के वर्णन को लेकर विदूषक और विचक्षणा के बीच विवाद होता है, जिससे विदूषक क्रोधित होकर भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी को लाता है। भैरवानन्द योगशक्ति से विदर्भ की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को प्रकट करता है, जो रानी की मौसेरी बहन है। रानी उससे प्रसन्न होकर उसे कुछ दिन अपने पास रखती है। यह अंश नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तावना अङ्क के समतुल्य है, जिसमें पात्रों, विषय की पृष्ठभूमि और प्रारंभिक तनावों का परिचय मिलता है।[2] द्वितीय जवनिकान्तर में राजा

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, कालिन्दी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

और कर्पूरमञ्जरी के बीच प्रेम और आकर्षण का भाव उभरता है। राजा कर्पूरमञ्जरी की स्मृति में व्याकुल रहता है और उसके सौंदर्य की प्रशंसा करता है। दासी विचक्षणा के माध्यम से भेजे गए पत्र द्वारा उसकी स्थिति ज्ञात होती है। बाद में राजा छिपकर कर्पूरमञ्जरी से मिलता है और प्रेमोद्यान में रानी द्वारा लगाए वृक्षों की दोहदपूर्ति के माध्यम से शृंगार रस की चरम अभिव्यक्ति होती है। यह भाग वृद्धि अङ्क का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ भावों का उत्कर्ष और रसों की सघनता दिखाई देती है।[3] तृतीय जवनिकान्तर में राजा और विदूषक के स्वप्नों के माध्यम से वियोग और सौंदर्य का गूढ़ चित्रण होता है। राजा सुरंग मार्ग से प्रेमोद्यान में प्रवेश करता है परंतु रानी को इसका आभास हो जाता है और कर्पूरमञ्जरी रक्षागृह में चली जाती है। इस भाग में स्वप्न, रहस्य और संयोगों की योजना द्वारा कथा की गहराई बढ़ती है, जो स्वप्नादि अङ्क की विशेषता है।[4] चतुर्थ जवनिकान्तर में महारानी कर्पूरमञ्जरी पर नियंत्रण रखती है ताकि राजा उससे न मिल सके। उधर राजा को ज्ञात होता है कि उसका विवाह घनसारमञ्जरी से होने जा रहा है, जो वास्तव में कर्पूरमंजरी ही होती है, लेकिन रानी इससे अनभिज्ञ होती है। अंततः विवाह होता है और भरतवाक्य के माध्यम से सत्य उद्घाटित होता है। यह भाग परिणाम अङ्क के अनुरूप है, जहाँ कथा का नाटकीय तनाव समाप्त होकर पूर्णता को प्राप्त करता है।[5] इस प्रकार 'कर्पूरमञ्जरी सट्टक' अपनी नाट्यात्मक संरचना, भावात्मक अनुक्रम और रस निष्पत्ति के कारण एक प्रभावशाली लघु नाट्यरूपक के रूप में प्रतिष्ठित होता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण-

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण को कथानक, पात्रों, रस, संरचना और भाव-प्रस्तुति के माध्यम से स्पष्ट रूप से किया जा सकता है। सबसे पहले, इसकी वस्तु (कथानक) की बात करें तो यह पारंपरिक नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप निर्मित है, जहाँ प्रेम, वियोग, संधि-विवाह और रहस्योद्घाटन जैसे नाटकीय तत्त्वों का समुचित प्रयोग हुआ है। कथा का प्रवाह और परिणति एक सुनिश्चित फल की ओर अग्रसर होती है, जो इसे एक पूर्ण और संतुलित नाट्य रचना बनाती है।

पात्रों (नेता) की दृष्टि से यह सट्टक अत्यंत समृद्ध है। राजा चंगपाल, रानी विभ्रमलेखा, कर्पूरमञ्जरी, विदूषक और दासी विचक्षणा जैसे पात्र कथानक की गति और रस की निष्पत्ति में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक पात्र की अपनी विशिष्ट भावात्मक और नाटकीय पहचान है, जो नाटक को जीवंत और प्रभावशाली बनाते है।

रस-निष्पत्ति की दृष्टि से इसमें शृंगार रस की प्रधानता है, जो नायक-नायिका के मिलन, वियोग और सौंदर्य के चित्रण के माध्यम से प्रकट होती है। साथ ही, हास्य रस विदूषक के माध्यम से, करुण रस वियोग के क्षणों में, और अद्भुत रस योगशक्ति तथा रहस्योद्घाटन के दृश्यों में उभरकर सामने आता है।

संरचना की बात करें तो यह सट्टक चार जवनिकान्तरों में विभाजित है, जो यद्यपि पारंपरिक 'अंक' नहीं हैं, तथापि कथानक के क्रमिक विकास को सुव्यवस्थित करते हैं। यह विभाजन नाट्यशास्त्र के संधि एवं संध्यङ्ग सिद्धांतों के अनुकूल भाव-प्रवाह को निरंतर बनाए रखता है।

अंततः इसकी भाव-प्रस्तुति अत्यंत सजीव और प्रभावशाली है। स्वप्न, संवाद, संकेत, और अभिनय के माध्यम से पात्रों के अंतर्मन की भावनाओं का चित्रण इस प्रकार होता है कि दर्शक रसात्मक अनुभूति में सहभागी बन जाते हैं। इस प्रकार, कर्पूरमञ्जरी सट्टक नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों का सफल और कलात्मक अनुप्रयोग प्रस्तुत करता है, जो इसे एक उत्कृष्ट लघु नाट्यरूपक के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक के कथानक का स्वरूप और भेद-

नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से विविध स्तरों पर विश्लेषण योग्य है। सर्वप्रथम, कथानक का स्रोत और स्वरूप देखें तो यह स्पष्ट होता है कि कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु ऐतिहासिक सत्य पर आधारित न होकर कवि-कल्पित है।[6] यद्यपि इसमें विदर्भ, लाट और राजा चंगपाल जैसे ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नामों का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी प्रेमगाथा, योग द्वारा नायिका की उपस्थिति, विवाह आदि घटनाएँ पूर्णतः कल्पनाश्रित हैं।[7] अतः यह कथानक नाट्यशास्त्र की उस परिभाषा के अंतर्गत आता है, जिसमें कवि की कल्पना से उत्पन्न कथा को 'कल्पित' कहा गया है।[8]

दूसरे, कथानक के उत्पाद्य (प्रकार) की दृष्टि से नाट्यशास्त्र में कथाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है- दिव्य, मर्त्य और दिव्यादिव्य।[9] कर्पूरमञ्जरी का कथानक स्पष्टतः मर्त्य श्रेणी में आता है, क्योंकि इसके पात्र सांसारिक हैं, और उनकी इच्छाएँ, प्रेमभाव, संघर्ष और समाधान सामान्य मानवीय जीवन के संदर्भ में घटित होते हैं। भले ही इसमें योगी भैरवानन्द की योगशक्ति का प्रयोग एक अलौकिक संकेत प्रदान करता है, किन्तु यह चमत्कार के रूप में नहीं, बल्कि योगविद्या के सामान्य प्रयोग के रूप में चित्रित है, अतः यह कथानक दिव्यादिव्य की कोटि में भी नहीं आता।

नाट्यशास्त्र में कथानकों को दिव्य, मर्त्य और दिव्यादिव्य–इन तीन वर्गों में बाँटा गया है।[10] कर्पूरमञ्जरी का कथानक मर्त्य श्रेणी में आता है, क्योंकि इसमें सभी पात्र सामान्य मानव हैं और कथा प्रेम, वियोग, विवाह तथा सामाजिक परिस्थिति पर आधारित है। यद्यपि योगी भैरवानन्द की योगशक्ति का उपयोग अलौकिक प्रतीत होता है, किन्तु वह भी सांसारिक सहायता तक सीमित है, न कि चमत्कारिक। अतः यह नाटक दिव्य या दिव्यादिव्य नहीं, बल्कि पूर्णतः सांसारिक (मर्त्य) कथानक है।

तीसरे कथानक के प्रयोजन (फल) की दृष्टि से इसका उद्देश्य काम प्रधान है।[11] कथा का केंद्रीय भाव प्रेम, सौंदर्य, आकर्षण, वियोग और संयोग की स्थिति से संचालित होता है, जो शृंगार रस की निष्पत्ति करता है। यद्यपि कथा में राजा चंगपाल के चक्रवर्तित्त्व, महारानी की सामाजिक मर्यादाओं और योगी भैरवानन्द के माध्यम से धर्म और राजनीति के कुछ संकेत मिलते हैं, परंतु वे मुख्य कथावृत्त के सहायक मात्र हैं। कथा की परिणति एक काम के अनुगत धर्म में होती है, जहाँ प्रेम का सामाजिक स्वीकृति के माध्यम से समाधान प्राप्त होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों की कसौटी पर एक सुसंगठित कवि-कल्पित, मर्त्य और काम प्रधान कथा के रूप में खरा उतरता है, जो लघु नाट्यरूपक की अपेक्षाओं को पूर्णतः संतुष्ट करता है।

भारतीय नाट्य शास्त्रकारों ने आधिकारिक एवं प्रासंगिक वृत्त, अर्थोपक्षेपक, नाव्योक्ति, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थायें, सन्धि, सन्ध्यङ्ग आदि बिन्दुओं को दृष्टि में रखते हुए कथावस्तु के आन्तरिक स्वरूप पर विचार किया है। अतएव कर्पूरमंजरी के कथानक का भी इन्हीं दृष्टिकोणों से परिशीलन प्रस्तुत है। आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त कथानक के आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक दो प्रसिद्ध भेद हैं।[12] कर्पूरमञ्जरी के कथानक में आधिकारिक वृत्त स्पष्ट रूप से उपस्थित है।[13] जिसमें नायक चन्द्रपाल और नायिका कर्पूरमञ्जरी के विवाह तथा चक्रवर्तित्त्व की प्राप्ति मुख्य फल हैं। इनसे सम्बद्ध घटनाएँ—नायिका का आकर्षण, मिलन, नियंत्रण और अन्ततः विवाह—आधिकारिक वृत्त के अंग हैं।

प्रासंगिक वृत्त[14] के अन्तर्गत पताका और प्रकरी का अभाव है, क्योंकि विदूषक, भैरवानन्द आदि पात्रों की कोई स्वतंत्र कथा या प्रयोजन नहीं है जो मुख्य फल की सिद्धि में सहायक हो। अतः यह नाटक मुख्यतः केवल आधिकारिक वृत्त पर आधारित है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथानक के सूच्य अंशों की प्रस्तुति हेतु अर्थोपक्षेपकों की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अर्थोपक्षेपक पांच प्रकार के होते हैं—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य (अङ्कास्य) और अंकावतार (अङ्कावतार)[15] कर्पूरमञ्जरी एक उपरूपक सट्टक होने के कारण इसमें विष्कम्भक[16] और प्रवेशक[17] जैसे तत्त्वों का पूर्णतः अभाव है, क्योंकि इनका प्रयोग रूपक (पूर्ण नाटक) में ही होता है, उपरूपक में नहीं।

चूलिका की दृष्टि से यह सट्टक अत्यन्त समृद्ध है।[18] यवनिका के पीछे से पात्रों द्वारा की गई सूचनाएँ जैसे वैतालिकों द्वारा वसन्त का आगमन[19] राजा की वीरता[20] नायिका की कामव्यथा[21] चन्द्रमा का उदय[22] सन्ध्या का प्रवेश[23] महारानी के आगमन[24] की सूचना आदि स्पष्ट रूप से चूलिका के प्रयोग को दर्शाते हैं, जो दृश्यात्मक सौन्दर्य और वातावरण-निर्माण को सजीव बनाते हैं। इसके विपरीत, अंकास्य[25] का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं है, क्योंकि किसी भी अंक के अंत में पात्रों द्वारा छूटे हुए अर्थ की सूचना नहीं दी गई है। इसी प्रकार अंकावतार[26] का भी अभाव है, क्योंकि प्रत्येक जवनिकान्तर स्वतंत्र रूप से प्रारम्भ होता है, पूर्व के अंक से कोई अविच्छिन्नता नहीं दिखाई देती।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अर्थोपक्षेपकों में केवल चूलिका की सशक्त उपस्थिति है। शेष चारों प्रकार–विष्कम्भक, प्रवेशक, अंकास्य और अंकावतार का स्पष्ट रूप से अभाव देखा जाता है।

नाट्योक्ति का महत्त्व और उसका वर्गीकरण

नाट्योक्ति नाटक की कथावस्तु को आगे बढ़ाने तथा पात्रों के भावों को दर्शकों तक प्रभावी ढंग से पहुँचाने का एक मूलभूत साधन है। नाट्योक्ति के आधार पर नाटक में कथोपकथन को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया गया है -सर्वश्राव्य, अश्राव्य (स्वगत), और नियतश्राव्य।[27]

सर्वश्राव्य वे कथन होते हैं जो मंच पर उपस्थित सभी पात्रों द्वारा सुने जाते हैं।[28] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अधिकांश संवाद सर्वश्राव्य हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि नाटक का मुख्य कथानक संवादों के माध्यम से खुलकर प्रस्तुत किया गया है।

अश्राव्य (स्वगत या आत्मगत) वे कथन होते हैं जिन्हें बोलने वाला पात्र केवल स्वयं के लिए बोलता है अन्य पात्र उन्हें नहीं सुनते।[29] कर्पूरमञ्जरी में इस प्रकार की नाट्योक्ति का भी पर्याप्त प्रयोग मिलता है, जैसे जब नायिका कर्पूरमञ्जरी या राजा अपने मन के भाव प्रकट करते हैं, तब वे स्वगत रूप में व्यक्त होते हैं।[30] यह दर्शकों को पात्रों के अंतस से जोड़ने में सहायक होते हैं।

नियतश्राव्य[31] वे संवाद होते हैं जो मंच पर उपस्थित केवल कुछ विशेष पात्रों के लिए होते हैं, न कि सभी के लिए। ये जनान्तिक[32] (प्रकट) या अपवारित[33] (गुप्त) रूप में हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब राजा केवल विदूषक से अपने प्रेम की चर्चा करता है और रानी या अन्य पात्र अंजान रहते हैं, तब वह संवाद नियतश्राव्य होता है।[34]

अर्थप्रकृतियाँ और उनका कथानक में महत्त्व-

अर्थप्रकृतियाँ कथानक के फल की सिद्धि के लिए अपनाए जाने वाले उपाय होते हैं, जिनका शाब्दिक अर्थ 'फल का हेतु' या 'फल प्राप्ति के कारण' है।[35] दशरूपक के अनुसार, अर्थप्रकृतियाँ पाँच प्रकार की होती हैं- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।

कर्पूरमंजरी सट्टक का कथानक अपने लक्ष्य-कर्पूरमंजरी और चन्द्रपाल के विवाह तथा चन्द्रपाल के चक्रवर्तित्व की प्राप्ति की ओर निरंतर अग्रसर होता है। इस प्रक्रिया में अर्थप्रकृतियाँ कथावस्तु को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सबसे पहले 'बीज' की बात करें तो यह कथा का वह आरंभिक तत्त्व होता है जो बाद में विस्तार पाकर फल में परिणत होता है।[36] कर्पूरमंजरी में भैरवानन्द का यह कथन— ''चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतारना, सूर्य के रथ को रोकना, यक्ष-सुर-सिद्धों की स्त्रियों को लाना'' यही बीज है, जो राजा को प्रेरित करता है कि वह दुर्लभ स्त्रीरत्न की खोज करे। यही बीज आगे चलकर राजा के कार्य (प्रयास) को जन्म देता है।[37]

'बिन्दु' वह क्षण होता है जब कथानक में अवान्तर प्रयोजन समाप्त होकर एक क्षणिक विराम आता है और फिर मुख्य कथा सक्रिय होती है।[38] उदाहरण के लिए, विदूषक द्वारा अपने स्वप्न का वर्णन इस बिन्दु की भूमिका निभाता है, जहाँ कथावृत्त थोड़ी देर ठहरकर पुनः गति पकड़ता है।[39]

'पताका' और 'प्रकरी' दो ऐसी सहायक कथाएँ हैं जो मुख्य कथा के साथ जुड़ती हैं, किंतु कर्पूरमंजरी सट्टक में इन दोनों तत्त्वों की अनुपस्थिति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'पताका' वह वृत्त होती है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है[40], जबकि 'प्रकरी' थोड़ी दूरी तक चलने वाली सहायक कथा होती है[41]; परंतु यहाँ कथानक मुख्य रूप से सीधा और केंद्रित है, अतः इनकी आवश्यकता या प्रयोग नहीं दिखाई देता।

'कार्य' वह प्रयास है जो नायक फल प्राप्त करने हेतु करता है।[42] कर्पूरमंजरी में राजा चन्द्रपाल द्वारा नायिका कर्पूरमंजरी को प्राप्त करने और उससे विवाह करने का जो प्रयत्न है, वही कार्य है। यही प्रयास उसे उसके लक्ष्य—विवाह और चक्रवर्तित्व तक पहुँचाता है।

इस प्रकार कर्पूरमंजरी सट्टक में बीज, बिन्दु और कार्य जैसी अर्थप्रकृतियाँ कथानक को गतिशील और फलदायक बनाती हैं, जबकि पताका और प्रकरी का अभाव इसकी सुसंगठित और केंद्रित संरचना को दर्शाता है। ये तत्त्व न केवल कथा की दिशा तय करते हैं, बल्कि उसकी गत्यात्मकता को भी नियंत्रित करते हैं।

कर्पूरमंजरी सट्टक की कथावस्तु में अवस्थाओं का क्रमिक विकास-

कार्यावस्थाएँ अर्थात्घ नायक के व्यापार की वे विभिन्न अवस्थाएँ बताई गई हैं, जिनका उद्देश्य कथानक के फल (उपलब्धि) को प्राप्त करना है। ये पाँच प्रमुख अवस्थाएँ हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, एवं फलागम।[43]

कर्पूरमंजरी सट्टक की कथा में फल प्राप्ति की दिशा में पाँच अवस्थाओं का क्रमशः विकास होता है। सबसे पहले ''आरम्भ'' अवस्था आती है, जहाँ केवल फल की प्राप्ति की उत्सुकता होती है।[44] इसका उदाहरण प्रथम जवनिकान्तर में मिलता है, जब राजा एक अद्वितीय स्त्री के विषय में विदूषक से जानकर उसे देखने की इच्छा प्रकट करता है और भैरवानन्द से उसे उपस्थित करने का अनुरोध करता है।[45] इसके पश्चात् कथा ''यत्न'' अवस्था में प्रवेश करती है, जहाँ फल की प्राप्ति के लिए सक्रिय प्रयास किए जाते हैं।[46] द्वितीय और तृतीय जवनिकान्तर में नायिका का प्रेमपत्र राजा को भेजना, राजा का नायिका से प्रेमालाप करना तथा योजनाबद्ध प्रयास करना इसी अवस्था के संकेतक हैं। इसके बाद आती है ''प्राप्त्याशा'' अवस्था, जिसमें फल की प्राप्ति की संभावना तो बनती है, पर बाधाओं के कारण वह निश्चित नहीं होती।[47] तृतीय जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध में नायिका का सुरंग के मार्ग से लौट जाना इसी आशंका और अनिश्चितता को दर्शाता है। इसके पश्चात् ''नियताप्ति'' अवस्था आती है, जहाँ सभी विघ्न दूर हो जाते हैं और फल प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है।[48] चौथे जवनिकान्तर के अंत में राजा को यह निश्चित जानकारी मिलती है कि उसका विवाह कर्पूरमंजरी से

होने जा रहा है। अंततः कथा ''फलागम'' अवस्था में पहुँचती है, जहाँ राजा का कर्पूरमंजरी से विवाह सम्पन्न होता है और उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।[49] इस प्रकार, ये पाँच अवस्थाएँ कथा को उद्देश्य की ओर क्रमिक रूप से अग्रसर करती हैं और नायक की सफलता का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं।

कर्पूरमंजरी सट्टक की कथावस्तु में सन्धि-योजना-

नाट्यशास्त्र में सन्धि-योजना का तात्पर्य कथानक की विभिन्न प्रवृत्तियों और प्रयोजनों के बीच सामंजस्य और उनकी क्रमबद्ध रचना से है। जब एक मुख्य प्रयोजन के साथ अन्य अवांतर प्रयोजन जुड़ते हैं, तो उसे सन्धि कहा जाता है।[50] कुल पाँच प्रकार की सन्धियाँ मानी गई हैं[51] - मुखसन्धि, प्रतिमुख सन्धि, गर्भसन्धि, अवमर्शसन्धि और निर्वहणसन्धि, जिनका प्रयोग कर्पूरमंजरी जैसे नाटकों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

1. मुखसन्धि- कथा का प्रारंभिक चरण होता है, जहाँ कथा के बीज और विभिन्न रसों का अंकुरण होता है। कर्पूरमंजरी में यह अवस्था उस समय देखी जाती है जब राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमंजरी के प्रथम दर्शन से प्रेम का अंकुर फूटता है, और राजा नायिका के सौंदर्य से प्रभावित होकर उसे पाने के लिए जिज्ञासु हो उठता है। जब यह प्रेम-संकेत नायिका द्वारा प्रेम पत्र भेजे जाने जैसे अन्य प्रयोजनों से जुड़ता है, तब मुखसन्धि की पूर्णता होती है।[52]

2. प्रतिमुखसन्धि- जिसमें बीज (मुख्य प्रयोजन) का कुछ भाग स्पष्ट होता है और कुछ भाग अस्पष्ट रहता है। कर्पूरमंजरी में पात्रों के संवादों तथा स्वगत कथनों के माध्यम से प्रेम की अनुभूति कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त होती है, जिससे कथा की दिशा तो स्पष्ट होती है लेकिन पूर्ण परिणाम नहीं।[53]

3. गर्भसन्धि- वह अवस्था है जहाँ मुख्य प्रयोजन बार-बार उभरता है, उसमें जटिलताएँ आती हैं और कथा में उत्कंठा बढ़ती है। कर्पूरमंजरी में राजा के स्वप्न, पुनः नायिका से मिलने की आशा और फिर बाधाओं से उसकी विफलता, इस सन्धि का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें कथा का बीज उलझनों और तनावों के माध्यम से आगे बढ़ता है।

4. अवमर्शसन्धि- वह चरण है जहाँ पात्र फल प्राप्ति की संभावनाओं पर विचार करते हैं और योजना बनाते हैं। जैसे, राजा और विदूषक के मध्य कर्पूरमंजरी से विवाह हेतु योजनाबद्ध वार्तालाप और विमर्श इसी सन्धि के अंतर्गत आता है, जहाँ लक्ष्य के प्रति गंभीर सोच दिखाई देता है।

5. निर्वहणसन्धि- में नाटक की सभी पूर्ववर्ती सन्धियाँ एक सूत्र में बंधती हैं और कथानक अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। कर्पूरमंजरी नाटक में यह अवस्था राजा चन्द्रपाल के कर्पूरमंजरी से विवाह और चक्रवर्ती पद प्राप्त करने की परिणति में देखी जाती है, जहाँ सारे प्रयोजन सफल होते हैं और कथा में संपूर्णता आती है।

निर्वहणसन्धि में कथा का सुखद और पूर्ण समाधान दिखाया गया है। इसमें नायक-नायिका का मिलन, संघर्षों का अंत, और सामाजिक आदर्श की पुनः स्थापना दर्शाई जाती है। कर्पूरमंजरी में यह सन्धि अत्यंत सुगठित रूप में प्रस्तुत की गई है, जिससे कथा का समापन नाट्य और भाव दोनों दृष्टियों से संतोषजनक होता है।

निष्कर्ष- कर्पूरमंजरी सट्टक का कथानक नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक विशिष्ट प्रकार के आधिकारिक वृत्त में आता है, जिसमें नायक-नायिका के विवाह एवं चक्रवर्तित्व प्राप्ति को केंद्रीय उद्देश्य बनाया गया है। इस नाटक में पताका और प्रकरी जैसे गौण वृत्तों की अनुपस्थिति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि अन्य पात्रों का कोई स्वतंत्र अथवा पृथक् कथानक नहीं है। कथानक की रचना में अर्थोपक्षेपक के रूप में

केवल चूलिका का प्रयोग हुआ है, जबकि विष्कम्भक, प्रवेशक, अङ्कास्य और अंकावतार जैसी प्रस्तुति युक्तियाँ अनुपस्थित हैं। यद्यपि कथा में कहीं-कहीं दिव्य या चमत्कारी तत्त्वों का समावेश किया गया है, फिर भी उसका मूल केंद्र मर्त्यलोक की घटनाएँ हैं, जो सामाजिक और सांसारिक वास्तविकताओं पर आधारित हैं।

इस नाटक में बीज, बिन्दु और कार्य जैसी अर्थप्रकृतियाँ कथानक की दिशा, गति और उद्देश्य को स्पष्ट करती हैं, जबकि पताका और प्रकरी जैसे साधनों का प्रयोग नहीं हुआ है। कथा की रूपरेखा आरम्भ, यत्न, प्राप्याशा, नियताप्ति और फलागम –इन पाँच अवस्थाओं के अनुसार क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ती है। साथ ही इसमें उपक्षेप, गर्भ, अवमर्श, विमर्श और निर्वहण–पाँचों सन्धियों का सुनियोजित प्रयोग नाटक की गत्यात्मकता और भावानुभूति को सजीव बनाए रखता है।

इसके अतिरिक्त, कर्पूरमंजरी में सर्वश्राव्य, अश्राव्य (स्वगत) तथा नियत श्राव्य नाट्योक्तियों का संतुलित प्रयोग हुआ है, जिससे संवादों में विविधता आती है, पात्रों के भाव स्पष्ट होते हैं और मंचीय दृश्य-संरचना में गहराई उत्पन्न होती है। यही नाट्योक्ति की विशेषता है, जो संवाद को नाट्यरस से परिपुष्ट कर दर्शकों को भावात्मक रूप से बाँध लेती है। इस प्रकार, कर्पूरमंजरी की कथावस्तु नाट्यशास्त्रीय मानकों के अनुरूप गढ़ी गई है, जिसमें कथानक की सरलता, घटनाओं की सुसंगतता, उद्देश्य की स्पष्टता तथा भावात्मक सम्पन्नता उसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

संदर्भ -

1. *वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः। दशरूपक*
2. *कर्पूरमंजरी, प्रथम जवनिकान्तर।*
3. *कर्पूरमंजरी, द्वितीय जवनिकान्तर*
4. *कर्पूरमंजरी, तृतीय जवनिकान्तर*
5. *कर्पूरमंजरी, चतुर्थ जवनिकान्तर*
6. *मर्त्यलोकीय प्रस्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्तेधापि तत्विधा।- दशरूपक 1/15*
7. *उत्पाद्य कविकल्पितम-दशरूपक 1/15*
8. *द्रष्टच्य-तातिंका का लक्षण, दशरूपक-पृष्ठ241*
9. *उत्पाद्य कविकल्पितम-दशरूपक 1/15*
10. *दशरूपक,श्री निवास शास्त्री व्याख्यायितपृष्ठ 16 -17*
11. *कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानुबन्धि च-दशरूपक 1/16*
12. *वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमज्ज प्रासङ्गिकं विदुः।। दशरूपक 1/11*
13. *अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्लभुः। तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्त स्यादाधिकारिकम्।।दशरूपक 1/12।।*
14. *प्रासंङ्गिकं पराधस्य स्वार्थों यस्य प्रसङ्गतः। सानुबन्ध पताकास्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।। दशरूपक 1/13*
15. *अर्थपक्षेपकैः सूच्यं पद्नपिः प्रतिपादयेत्। विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्गावतारप्रवेशकैः।। दशरूपक 1/58*
16. *वृत्तवर्तिष्यममाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।। दशरूपक 1/59*
17. *तददेवानुदात्तोकत्या : नीचपात्रप्रयोजितः। प्रवेशोऽडंद्यस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।। दशरूपक 1/60-61*
18. *अंतर्जवनिकासन्स्थेश्चूलिकार्थस्य सूचना। दशरूपक 1/61*

19. बैतालिकः---जपुब्बदिअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णकऊर! लीलाणिजिअराददेस! विक्कमक्कंतकामः अ? हरिकेलीकेलिआरअ! अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण! सब्बंगसुंदरत्तगरमणिशङ्ख! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारंभो। इह हि- पंडीणं माणं कण्णाडीणं गंडबालीपुलअणचबला दो खंडअंता कंचिबालाबलीणं रइरहसकला लोचलोचप्पिआणं। कुणंता चिउरतरलणं कुतंलीणं पिएसुं गुंफता णेहगंथिं मलअसिहरिणो सीअला बांति बाआ। द्वितीयः जॉदें,.... बि दिसाभाएसु लग्गोहिं ब। कर्पूर मंजरी 1/15 -16
20. कर्पूरमंजरी 1/35-36
21. कर्पूरमंजरी 3/20
22. कर्पूरमंजरी 3/25-28
23. (नेपथ्ये) बैतालिकः- सुहसंझा भोदु देवस्स (सुखसन्ध्या भवतु देवस्थ)- लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणन्तो मुंनन्तो तिकव्व भाव सह अ सरभस माणिणीमाणसेहिं। मजिद्ठारत्तसुत्तत्छविकिरणचआ चक्कवाएक्क मित्तो जादो अत्थाचलत्थी सपदि दिणमणी पकक्कणणारंगपिंगो।। (लोकानां लोचनैः सह कमलवनमर्द्धनिद् कुर्वन् मुञ्चनंस्तीक्षाभाव सह च सरभसं मानितनीमानसैः। मजिष्ठारक्तसूत्रच्छ विकिरणचयश्चक्रवाकैक मित्र ह जातो-स्ताचलार्थी सपदि दिनमणिः पक्वषनारज्नपिज्नः। कर्पूरमंजरी-2/50
24. कर्पूरमंजरी, श्रीरामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ 124
25. अड्जान्तपानैरड्गास्यं छिन्नाड्गुस्यार्थसूचनातृघ ।- दशरूपक -1/62
26. अद्जावतारस्ववड्भान्ते पातोड्डस्याविभागतः। दशरूपक-1/62
27. नादयधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते-दशरूपक-1/63
28. सर्वक्राव्यं प्रकाशं स्थातू--दशरूपक- 1/64
29. अभाव्य स्वगतंमतमृघ -दशरूपक-1/64
30. एस उण परिअणो। (विचिन्त्य) ता कि ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी म बहु मण्णेदि? 'तथा जो मह माउस्सआए पई होदि। (यो मम मातृष्वसु : पतिर्भवति) "एवं" सावि' मे माउस्सिआ (सा-पि मे मातृष्वसा) कर्पूरमंजरी श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ 33-34 वही, पृष्ठ 40
31. निम्रतस्मैव भ्राव्यम् ..... /-दशरूपक-1/64
32. द्विधाइन्यन्नाट्यपर्मास्यंजनान्तमपवारितमू-दशरूपक- 1/65
33. श्एदाए- ज मुक्का सबणंतरेण तरला तिक्खा कउक्खच्छडा शुं गाधशिट्ठिअकेदअग्गिमदलददो णी सरिच्छच्छई । त कप्पूररसेण णंधबलिदो? ज्योण्हाअ णंण्हाबिदों? मुत्ताणं घणरेणुण व्व छुरिदो? जादोम्हि एत्यंतरे।। कर्पूरमंजरी 1/29
34. ''सच्च किंदे तुए आभाणकं। तडं गदाए वि णावाए ण विससीदब्बंय ता तुण्हिं चिट्ठ। (सत्यं कृतकृत्यया आभाणकम्। तं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यमृघ य तत्तृण्णीं तिष्ठ)'' कर्पूरमंजरी,श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ 151
35. प्रयोजनसिद्धहेतवः अर्थप्रकृतयः ।-दशरूपक-संपादक श्री निवास शास्त्री
36. स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा।--दशरूपकं- 1/17
37. दंसेमि थंभेमि आणेमि तं तस्स पि ससिणं बसुहाबइण्णं वि रविस्स रहं णहद्धे। जक्खसुरसिद्धगणं गणाओ तं णत्यि भूमिबलए मह जं ण सद्धं।। कर्पूरमंजरी,श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, 1/25
38. अवाक्तरार्थविच्छेदे -बिच्दुरच्छेदकारणमृघ --दशरूपक-1/9 दशरूपक, व्याख्याकार--श्रीनिवास शास्त्री

39. (नेपथ्ये) सहि कुरंगिए! इमिणा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ कामं किलिस्सामि- ह विसं व्व विसकन्दली विसहरो वव हारच्छडा वअस्संमिव अत्तणों किरइ तालवेण्टाणिलो। तहा--अ : करणिग्गलं जलइ जन्तधाराजलं ण चन्दणमहोसहँ हरइ देहदाहं च मे।।-कर्पूरमंजरी -2/20
40. सानुबत्धं पताकास्थ..... ।-- दशरूपक -1/3
41. प्रकरी च प्रदेशभाक ।- दशरूपक -1/13
42. दशरूपक, व्याख्याकार-श्रीनिवास शास्त्री, पृष्ठ (89)
43. अवस्थाः पंचकार्यस्य प्रारब्धस्थ फलार्थिभिः। आरम्भयलप्राप्याशानियताप्तिफलागमाः।। दशरूपक- 1/19
44. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। दशरूपक- 1/20
45. तथा नांयिका--ख्सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एसो महाराओ को बि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहाससमुदाएण जाणिज्जदि।.....(विचिन्त्य) ता कि ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि?- कर्प्रमझरी, रांमकुमार आचार्य, पृष्ठ. 33-34एवं ज मुक्कणि संबणंतरेण तरला तिकखा कडक्खच्छडा... ।- कर्पूरमंजरी 1/29
46. अयत्लस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोइतित्वरान्वितः ।-दशरूपक-1/20
47. उपायापायशल्लभ्याम् प्राप्याशा प्राप्तिसम्भवः ।-दशरूपक-1/21
48. अपायाभावतः प्राप्तिनिग्रताप्तिः सुनिश्चिता ।-दशरूपक-1/21
49. कुन्तलेस्सरसुआकरफस्सप्फारसोक्खसिढिली किदसग्गो ।
पालएमि वसुहातलरज्जंचक्क वट्ठिपदवी रमणिज्जं।। कर्पूरमंजरी - 4/22
50. अन्तरैकार्थसंबन्धः सन्धिरेकान्वये सति ।-दशरूपक-1/22
51. मुखप्रतिमुखे गर्भः साअमश्श पसंहृतिः ।-देशरूपक- 1/24
52. कर्पूरमंजरी 2/1
53. जाआ तौअचंउब्बिधा तणुलआः णिज्ञाअअंती अ मं।-कर्पूरमअझरी-2/1 केधं अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसंचओ, ताओ विअ अक्खरपंतीओ।-कर्पूरमंजरीपृष्ठ 46

40

'कर्पूरमञ्जरी' के नायक का सात्त्विक गुण-विवेचन

*भूपेन्द्र लोधी[1] *, शशिकुमार सिंह ***

काव्य मानवीय सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति है, वस्तु जगत् उसका प्रधान उपजीव्य है। काव्य निर्माण में कल्पना का योग अनिवार्य सा है, किन्तु मानव की सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पना भी वस्तु जगत् से सर्वथा असम्पृक्त नहीं हो सकती, वस्तुतः कल्पना की प्रधान उपयोगिता सौन्दर्यानुभति के उत्कर्ष में है और काव्य का मौलिक आधार वस्तु जगत् है। श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य दोनों की रचना मूलतः शब्दार्थों से होती है परन्तु नाट्यकला की प्रक्रिया में ढलते ही इनके स्वरूपों में भिन्नता आने लगती है। संस्कृत काव्यपरम्परा दो श्रृंखलाओं में विभक्त है- दृश्य एवं श्रव्य। दृश्य एवं श्रव्य काव्य में रस का आस्वादन भी पृथक-पृथक तरीके से किया जाता है। दृश्य काव्य में रस का आस्वादन मुख्य रूप से चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत श्रव्य काव्य में श्रवण तथा अध्ययन दोनों से आनन्द की उपलब्धि होती है। दृश्य काव्य अभिनेय है। यह रंगमंच की वस्तु है। यह अभिनय के द्वारा दर्शकों में रसोद्बोध उत्पन्न करता है। समाज में रस की उत्पत्ति करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। संस्कृत साहित्य में दृश्य काव्य विधा 'नाट्य' नाम से प्रसिद्ध है। दृश्य काव्य अर्थात् नाट्य विभिन्न रुचि के लोगों के मनोरंजन का एकमात्र साधन है। समस्त नाट्य साहित्य दो भेद में वर्णित है, रूपक एवं उपरूपक। वस्तु, नेता और रस ये तीनों रूपक के भेदक तत्त्व हैं। जैसा कि दशरूपककार ने लिखा है वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः।[2] किसी एक रूपक की कथावस्तु, उसका, नायक, नायक की प्रकृति तथा उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य रूपकों से भिन्न करता है। इस आधार पर आचार्यों ने रूपक के दशविध भेद स्वीकार किए है- नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईहामृग।

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः। व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।[3]

उपरूपक भावाश्रित होता है यह अपेक्षाकृत भाव विशेष को प्रदर्शित करता है। वस्तु, नेता एवं रस की योजना के आधार पर रूपक की भांति उपरूपक के भी अनेक भेद हैं,

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्। प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा ॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका। दुर्मल्लिक प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरूपरूपकाणि मनीषिणः। बिना लक्ष्म नाटकवन्मतम्।।[4]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*
*** सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

उपरूपक 18 हैं- नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, सम्लापक श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीशक, भाणिका।

उपरूपक के अठारह भेदों के अनन्तर हमें यह ज्ञात होता है जिसमें सट्टक भेद ही उपरूपक के अन्तर्गत आताहै। सट्टक विधा का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ राजशेखर विरचित कर्पूरमञ्जरी है, सौभाग्य से ही आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी में ही सट्टक का लक्षण प्राप्त होता है-

तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुहरति। किं पुनरत्र प्रवेशक विष्कम्भकौ न केवलं भवतः।।[5]

साहित्यदर्पण में सट्टक का लक्षण निर्धारण इस प्रकार है-

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम्। न च विष्कम्भकोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः।।

अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम्।[6] **यथा-कर्पूरमञ्जरी।**

राजशेखर प्रणीत कर्पूरमञ्जरी चार अंकों का एक सट्टक नामक उपरूपक है, इसमें राजा चन्द्रपाल तथा रानी कर्पूरमञ्जरी की प्रणय कथा वर्णित है, रत्नावली नाटिका के समान यहाँ भी राजा अपनी ज्येष्ठा रानी के भय से अपनी प्रेमिका से छिपकर मिलता है, राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी को तान्त्रिक भैरवानन्द स्नान क्रीड़ा के समय राजसभा में उपस्थित कर देता है। दोनों परस्पर आसक्त हो जाते हैं, कर्पूरमञ्जरी को रानी कारागार में डाल देती है किन्तु राजा सुरंग मार्ग से जाकर उससे मिलता है, भैरवानन्द रानी को यह बताते हैं कि लाट राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी से विवाह होने पर राजा सार्वभौम सम्राट बन जाएंगे। तब रानी दोनों का विवाह करवा देती है, इस प्रकार इसका सुखद अन्त होता है।

नायक का लक्षण निबद्ध करते हुए दशरूपक में धनञ्जय लिखते हैं-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियम्वदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा।।

बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः। शूरो दृढ़श्व तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्व धार्मिकः।।[7]

नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, समाज को प्रसन्न रखने वाला, पवित्र, वार्तालाप करने में कुशल, कुलीन वंश में उत्पन्न, स्थिर मन वाला तथा युवा होता है। वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला और मान से युक्त होता है। यह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक भी होता है।

कर्पूरमञ्जरी का नायक राजा चन्द्रपाल है, यह नाट्यशास्त्र नियमानुसार धीरललित प्रदर्शित होता है। दशरूपक में धीरललित नायक को निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी और मृदुस्वाभाव[8] का बतलाया गया है।

सपञ्चमतरङ्गिणः श्रवणशीतला वेणवः समं शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी।

स चन्दनघनस्तनी कायनशीतला कामिनी निदाघदिवसौषधं सहजशीतलं कस्यापि।।[9]

रागमय, पञ्चम स्वर के साथ तथा कानों को मधुर लगने वाला वंशीरव, शीतल जल के साथ मुख को ठण्डा करने वाली मदिरा, चन्दन लगे हुए तथा कठोर स्तनों वाली और शय्या में सुख देने वाली कामिनी ये तीन स्वभाव से ही शीतल चीज किसी भाग्यवान् को ही ग्रीष्मऋतु में उपचार रूप से मिलती हैं।

संस्कृत साहित्य में सत्त्व, रज एवं तम त्रिगुणों का विस्तृत ढंग परिचय संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों में दृष्टिगत होता है, जिनमें वैदिक साहित्य, दर्शन ग्रन्थ, साहित्य के ग्रन्थ एवं काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ आदि में सूक्ष्मता से वर्णन प्राप्त होता है।

सत्त्वं रजस्तम इति त्रयो गुणाः प्रकृति सम्भवाः। निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।[10]

हे महाबाहो (अर्जुन), सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। ये गुण अविनाशी आत्मा को शरीर में बाँधते हैं।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्। जन्म मृत्यु जरादुः खैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।[11]

जब देही शरीर से उत्पन्न इन तीन गुणोंसत्त्व, रज और तमको पार कर जाता है, तब वह जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे और दुःखों से मुक्त हो जाता है और अमृत का अनुभव करता है।

सत्त्वं लघु प्रकाश कमिष्टमुपस्थम्भकं चलं च रजः। गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।[12]

सत्त्वगुण हल्का, प्रकाश देने वाला, प्रिय एवं सहायक होता है; रजोगुण चंचल होता है; तमोगुण भारी, आवरणकारी एवं अज्ञान का कारण होता है। अर्थ की दृष्टि से इनकी प्रवृत्ति दीपक की तरह समझी जा सकती है। **सत्त्वं शुद्धिं जनयति, रजः स्पर्धा, तमः प्रमादम्।**[13] सत्त्वगुण शुद्धता उत्पन्न करता है, रजोगुण प्रतिस्पर्धा को जन्म देता है और तमोगुण प्रमाद (अविवेक या लापरवाही) को जन्म देता है।

मम्मटकृत काव्यप्रकाश एवं आनंद वर्धनकृत ध्वन्यालोक में भी रस एवं भावों के साथ त्रिगुणों का संबंध दिखलाते हुए वर्णन मिलता है। प्रथम गुण सत्त्व के विषय जाने तब पायेगें-सत् कृत्व प्रत्यय लगने से सत्त्व बना जिसका अर्थ शुद्धता का भाव, इसके अनन्तर ही सत्त्व+इक प्रत्यय करने पर सात्त्विक शब्द निर्मित हुआ जिसका अर्थ जो सत्त्व गुण से युक्त हो। इसके अनन्तर अभिनय की चार अवस्थाओं में आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक भी होती है यहाँ भी सात्विक है दिखलाई पड़ता है। राजा चन्द्रपाल में यह सब गुण प्रचुरता से पाए जाते हैं, इसे राज्य की कोई चिन्ता नही है। यह संगीतकला में भी रुचि रखता है और कोमल प्रवृत्ति का तो यह है ही। कर्पूरमञ्जरी को देखकर एकदम यह उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है। कर्पूरमञ्जरी के वियोग को लेशमात्र भी नही सह सकता है, उसी के ध्यान में मग्न रहता है। दशरूपककार नायक में पुरुषत्व युक्त आठ सात्विक गुणों का होना आवश्यक बताते हैं। नाट्यशास्त्रीय आचार्य इस बात से सुपरिचित थे कि नायक के चरित्र का व्यापक प्रभाव सामाजिकों पर पडता है, इसीलिए उन्होंने नायक के लिए पृथक् से इन गुणों का विधान किया है। आचार्य धनंजय नायक के गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं- **शोभा विलासो माधुर्य गाम्भीर्य स्थैर्यतेजसी। ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्विकाः पौरूषा गुणाः।।**[14]

शोभा, विलास, माधुर्य, गम्भीरता, स्थैर्य, ललित और औदार्य ये आठ नायक के पुरुषत्वयुक्त सात्विक गुण होते हैं। नायक के सात्यिक गुणों में सर्वप्रथम शौर्य आवश्यक गुण है। शोभा गुण का लक्षण है-

नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते।[15]

अधम व्यक्ति के लिए घृणा, अन्य व्यक्ति को अधिक गुणवान देखकर उससे स्पर्धा, अतिशय वीरता और कुशलता होना शोभा गुण में परिगणित होते हैं। कर्पूरमञ्जरी में राजा यह कहकर अतिशयता को उच्चरित कर रहा है-

कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्गः। पालयामिवसुधातलराज्यंचक्रवर्त्तिपदवीरमणीयम्।।[16]

कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के करस्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है, और चक्रवर्ति के साथ सारे महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ।

विलास गुण का लक्षण- **गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः।**[17]

नायक धैर्य से युक्त गति, धैर्ययुक्त दृष्टि तथा वाणी से युक्त होता है, तो विलास नामक गुण होता है। कर्पूरमञ्जरी में राजा विदूषक को विलासत्त्व बता रहा है-

अङ्ग सुन्दरं निजगुणगणालङ्कृतं कामिनीनां प्रच्छादयन्ती पुनस्तनुश्रियं भाति नेपथ्यलक्ष्मीः।
इत्थं यासामवयवगता काऽपि सौन्दर्यमुद्रामन्ये तासां वलयित धनुर्नित्य भृत्योऽनङ्गः।।[18]

कामिनियों का सुन्दर अंग अपने विभ्रम और विलास गुणों से ही अच्छा लगता है, बाह्य सजावट तो दूसरी स्त्रियों की ही शोभा बढ़ाती है। जिन स्त्रियों का सौन्दर्य इस तरह अनिर्वचनीय होता है, कामदेव धनुष लिये हुए इमेशा उनकी सेवा में तत्पर रहता है। उनके आशय को जान कर उनके बिना कहे ही कामदेव कामियों को वश में कर लेता है। **माधुर्य गुण का लक्षणदृश्लक्ष्णो विकारो माधुर्य संक्षोभे सुमहत्यपि।**[19]

बड़े क्षोभ के उपस्थित होने पर भी नायक में बहुत कम विकार होना माधुर्य है। कर्पूरमञ्जरी में राजा कर्पूरमञ्जरी का लिखा हुआ पत्र पढ़ रहा जिसमें माधुर्यता झलक रही है -

हंसीं कुङ्घ कुमपङ्कपिञ्जरतनुं कृत्वा यद्वञ्चितः तद्भर्तृता किल चक्रवाकगृहिण्येषेति मन्यमानः।
एतत्तन्मम दुष्कृतं परिणतं दुःखानां शिक्षकंएकस्थोऽपि न यासि येन विषयं दृष्टित्रिभागस्यापि।।[20]

अपने से प्रेम करने वाली हंसिनी को कुङ्कुमराग से सजाकर पुनः भूल से उसे चक्र बाकी समझने वाला हंस उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें जरा भी नहीं देख पाती हूँ। **गाम्भीर्य गुणका लक्षण है-गाम्भीर्ये यर्तृभावेन विकारो नोपलक्ष्यते।।**[21]

विकार का हेतु उपस्थित होने पर भी जब विकार का किंचित् भी प्रभाव नायक पर न हो तो गाम्भीर्य गुण होता है। कर्पूरमञ्जरी में राजा विकार रहित गम्भीरता से मन ही मन वक्तव्य कह रहा-

गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु बोलासु विभ्रमवतोषु निषण्णदृष्टिः।
चद्याति खञ्जितत्तुरङ्गरथो दिनेशः तेनैव भवन्ति दिवसा अतिदीर्घदीर्घा।।[22]

गाती हुई और झूले पर चढ़ी हुई गोपियों के चरणों से आन्दोलित तथा मन को हरने वाले झूलों पर सूर्य की दृष्टि के कारण उसके घोड़ों की गति विकल हो गई और उसका रथ अस्थिर रूप से चलता मालूम पड़ता है। इसी कारण दिन अधिक लम्बे होते जाते हैं। **स्थैर्य गुण कालक्षण-व्यवसायादचलनं स्थैर्य विघ्नकुलादपि।**[23] अनेक विघ्नों के समुपस्थित होने पर भी नायक का अपने व्यवसाय या मार्ग से विचलित न होना स्थैर्य नामक सात्विक गुण होता है। कर्पूरमञ्जरी में राजा धैर्य का परिचय देते हुए सौन्दर्य वर्णित कर रहे-

कदापि सङ्घटते कस्यापि प्रेमग्रन्थिः एवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम्।
चङ्गत्वंपुनर्मृग्यतेयत्तत्रापितद्दीयतेपिशुनलोकमुखेषुमुद्रा।।[24]

किसी भी समय किसी का किसी पर प्रेम यों ही हो जाता है, इस प्रेम-बन्धन में सौन्दर्यकारण नहीं होता। फिर भी प्रेम में सौन्दर्य को जो कारण बताया जाता है वह दुष्ट लोगों के मुँह को बन्द करने के लिये ही दुष्ट लोग जिस किसी से भी प्रेम करने को बुरा न बतायें इसलिये सुन्दरता आदि गुणों का उल्लेख कर दिया जाता है। **तेज गुण का लक्षण-अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि।**[25]

नायक के द्वारा तिरस्कार आदि को प्राण त्याग करते समय तक भी न सहना तेज नामक सात्विक गुण होता है। कर्पूरमञ्जरी में राजा तेस्विता के साथ कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड़कर अपमान के भय से मुक्त उसे ले जा रहे-

येन नवस्य त्रपुषस्य कण्टका ये कदम्बमुकुलस्य केसराः।
अद्य तव करस्पर्शसङ्गिभिस्ते भवन्ति ममाङ्गनिर्जिताः।।[26]

मैंने अपने हाथ से तेरा कोमल हाथ पकड़ लिया है, तू धीरे-धीरे चलने के लिये प्रयत्न कर, ताकि हंसों की चाल भी तेरी चाल के समान अप्रिय हो जाय। **ललित गुण का लक्षण-श्रृंगाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।**[27]

नायक में स्वाभाविक श्रृंगारपरक चेष्टाओं का होना ललित गुण होता है। यह स्वाभाविक श्रृंगार कोमल होता है। कर्पूरमञ्जरी में राजा विदूषक से ललितश्रृंगार का वर्णन कर रहे-

यत् मुक्ता श्रवणान्तरेण तरला तीक्ष्णा कटाक्षच्छटाशृङ्गाधिष्टितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसवृक्षच्छविः।
तत् कर्पूररसेन ननु धवलितो? ज्योत्स्नया ननु स्नापितः? मुक्तानां घनरेणुनेव छुरितो? जातोऽस्म्यत्रान्तरे।।[28]

इस नायिका ने कानों तक फैले हुये, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मैं कर्पूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चाँदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियों का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है।

औदार्य गुण का लक्षण- **प्रियोक्त्याऽजीविताद्दानमौदार्य सदुपग्रहः।**[29]

नायक का प्रियवचनों के द्वारा कहा गया प्राणोत्सर्गार्थ प्रस्तुत होना तथा सज्जनों को अपने आचरण से अनुकूल बना लेना औदार्य नामक सात्विक गुण है। कर्पूरमञ्जरी में राजा अपने औदार्य का परिचय दे रहे इस माध्यम से-

मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त! नेपथ्यकल्पनगुणेननितम्बिन्यः।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः द्राक्षारसो न मधुरीयति शर्करया।।[30]

बड़े दुःख की बात है कि सुन्दर नितम्बों वाली स्त्रियां अपनी अनोखी वेष रचना के द्वारा मुग्धों (मूर्खों) का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। जो अनुभवी और चतुर हैं, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते हैं। क्या मिठास के लिए द्राक्षारस को शक्कर की आवश्यकता पड़ती है? वह तो स्वतः मीठा होता है। इसी तरह स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नहीं हैं।

राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी में नायक के सात्विक गुण विवेचन यह जाना की राजा केवल एक प्रेमी नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, संयमी और भावनात्मक रूप से परिपक्व व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया नायक है जिसमें सात्विक गुणों का होना स्वाभाविक है, इसलिए यह धनञ्जय मतानुसार आठ सात्विक गुण व्यक्ति के जीवन में सम्पूर्ण परिपक्वता दिलाने के लिए अमूल्य हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. *विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण, व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी*
2. *धनञ्जयकृत दशरूपक, संपादक डॉ. श्री निवास शास्त्री, प्रकाशन साहित्य भण्डार, सुभाषनगर मेरठ*
3. *कर्पूरमञ्जरी राजशेखरकृत, संपादक श्री रामकुमार, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012*
4. *व्यासकृत श्रीमद्भागवतगीता, भाष्यकार स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, दिल्ली संस्कृत अकादमी*
5. *नारायणपण्डितकृत हितोपदेश, भाषान्तरकार प. रामेश्वर भट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली*
6. *ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका, व्याख्याकार डॉ. रामशंकर त्रिपाठी, बालकृष्ण त्रिपाठी भदैनी, वाराणसी*

संदर्भ -

1. *साहित्यदर्पण 6/1*
2. *दशरूपक 1/11*
3. *दशरूपक 1/8*
4. *साहित्यदर्पण 6/2*
5. *कर्पूरमंजरी 1/6*
6. *साहित्यदर्पण 6/276*

7. दशरूपक 2/1-2
8. दशरूपक 2/3
9. कर्पूरमंजरी 4/6
10. श्रीमद्भागवतगीता 14/5
11. श्रीमद्भागवतगीता 14/20
12. सांख्यकारिका 13
13. हितोपदेश
14. दशरूपक 2/10
15. दशरूपक 2/11
16. कर्पूरमंजरी 4/22
17. दशरूपक 2/11
18. कर्पूरमंजरी 1/33
19. दशरूपक 2/12
20. कर्पूरमंजरी 2/8
21. दशरूपक 2/12
22. कर्पूरमंजरी 1/21
23. दशरूपक 2/13
24. कर्पूरमंजरी 3/9
25. दशरूपक 2/13
26. कर्पूरमंजरी 3/24
27. दशरूपक 2/14
28. कर्पूरमंजरी 1/29
29. दशरूपक 2/14
30. कर्पूरमंजरी 2/26

41

'कर्पूरमञ्जरी' में स्त्रीविमर्श

*हर्षित राय *, दयाशंकर तिवारी ***

राजशेखर का जन्म नवम से दशम शताब्दी के संधिकाल में माना जाता है। विद्वानों का अभिमत है कि उनका जन्म संभवतः महाराष्ट्र प्रदेश में हुआ, तथापि उनका कार्य क्षेत्र मालवा, उज्जयिनी तथा कन्नौज जैसे सांस्कृतिक केंद्रों तक विस्तृत रहा। आचार्य राजशेखर ने स्वयं को ''माहेन्द्रकुलोत्पन्न'' एवं ''महाराष्ट्रकुलतिलक'' कहकर संबोधित किया है, जिससे ज्ञात होता है कि वे एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण वंश से संबंध रखते थे, जो अपनी विद्वत्ता और साहित्यिक परंपरा के लिए प्रसिद्ध था। राजशेखर ने अपने पूर्वजों का निर्देश अपनी कृतियों में किया है और वे अपने पूर्वजों का तथा अपना उल्लेख आत्मश्लाघा-पूर्वक करते हैं। उन्होंने काव्यमीमांसा में अपने कुल का नाम यायावर बतलाया है- **यायावरीयःसंक्षिप्य मुनीनां मतविस्तरः।**[1]

राजशेखर के प्रपितामह का नाम अकालजलद था जिनका उल्लेख उन्होंने बालरामायण 1/23 में किया है। विद्धशालभञ्जिका में राजशेखर अपने को दौहुकि तथा बालरामायण में उन्होंने अपने आपको दौर्दुकि बतलाया हैं। अतः यह स्पष्ट है कि राजशेखर के पिता का नाम दुहुक या दुर्दुकथा। बालरामायण में राजशेखर ने अपनी माता का नाम शीलवती बताया है। राजशेखर की पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी था, जो परमविदुषी चाह मान वंश की रत्न थी। कर्पूरमञ्जरी में राजशेखर ने स्वयं लिखा है कि राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी सट्टक का अभिनय अवन्ति-सुन्दरी के आदेश पर हुआ था-

चाहमान-कुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी। भर्तुःकृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति।।[2]

आचार्य राजशेखर को साहित्यिक संरक्षण एवं प्रोत्साहन तत्कालीन प्रतापी शासक गुर्जर- प्रतिहार वंश के राजा महीपाल प्रथम (913–944 ई.) से प्राप्त हुआ था। वे महीपाल के राजदरबार में राजपंडित तथा कवि के रूप में प्रतिष्ठित थे। राजशेखर ने स्वयं अपनी कृतियों में महीपाल एवं उनके उत्तराधिकारियों – महेंद्रपाल द्वितीय तथा देवपाल की कीर्ति का उल्लेख करते हुए उनकी साहित्यिक रुचि, विद्वत्सम्मान और संस्कृति- प्रेम की सराहना की है। राजशेखर के अनेकानेक विशेषण प्रसिद्ध हैं, जैसे- रजनीवल्लभ शिखंड, बालकवि, कवियों में शिरोमणि आदि।

राजशेखर द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या इस समय पाँच है- कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका,

---

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

*** आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

बालरामायण, बालभारत तथा काव्यमीमांसा। इनमें कर्पूरमञ्जरी तथा विद्धशालभञ्जिका क्रमशः रूपक के भेद सट्टक तथा नाटिका हैं और बालभारत तथा बालरामायण नाटक हैं। काव्यमीमांसा काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। संस्कृत साहित्य की परंपरा में नाट्यविधा का एक विशिष्ट स्थान रहा है। नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विचारों के प्रस्तुतीकरण का भी माध्यम रहा है। इस परंपरा में राजशेखर जैसे कवियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिन्होंने न केवल नाटकों की रचना की, बल्कि उनमें स्त्रीपात्रों को विशिष्ट रूप से चित्रित किया।

स्त्रीविमर्श के प्रमुख तत्त्व :

राजशेखर के नाट्यसाहित्य में स्त्रियाँ केवल सौंदर्य या प्रेम की प्रतीक नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना, आत्मनिर्णय और संवाद की वाहक हैं। नारी को प्रेरणास्रोत के रूप में प्रस्तुत करना, नारी पात्रों के माध्यम से उनकी भावनात्मक और बौद्धिक भूमिका को सामने लाना – ये सभी उनके साहित्य की आधुनिक स्त्रीवादी व्याख्या को पुष्ट करते हैं। स्त्रीविमर्श वह बौद्धिक एवं साहित्यिक प्रयास है, जिसमें नारी को एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और समर्पित इकाई के रूप में देखा जाता है। यह विमर्श स्त्री की गरिमा, अस्तित्व और अधिकारों की चर्चा करता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक युग में लोकप्रिय हुआ, किन्तु भारतीय परंपरा में इसके बीज प्राचीन ग्रंथों में भी विद्यमान हैं। राजशेखर इसी चेतना को नाट्यसाहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। राजशेखर के नाटकों में स्त्रीविमर्श के प्रमुख तत्त्व उनके युग की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक संरचनाओं के संदर्भ में स्त्री की स्थिति, भूमिका और उसकी चेतना को प्रकट करते हैं। विशेषतः ''कर्पूरमञ्जरी'' एवं ''बालरामायण'' जैसे नाटकों में स्त्रियों के चित्रण में राजशेखर की दृष्टि अत्यंत संवेदनशील, सशक्त और विचारोत्तेजक है।

कर्पूरमञ्जरी :

कर्पूरमञ्जरी एक सट्टक है, जो चार जवनिकाओं में विभक्त है। इसमें राजा चंद्रपाल, विदूषक, भैरवानंद, रानी विभ्रमलेखा, कर्पूरमञ्जरी तथा विचक्षणा आदि मुख्य पात्र हैं। सट्टक का लक्षण देते हुए स्वयं राजशेखर ने कहा है-

तत्सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुहरति। किं पुनरत्र प्रवेशकविष्कम्भको न केवलं भवतः।।[3]

अर्थात् जिस प्रबन्ध में नाटिकाओं का पूरा-पूरा अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कंभक न पाये जायें उसे सट्टक कहते हैं। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी की रचना प्राकृत भाषा में की है तथा इसी ग्रंथ में उसका कारण भी बतलाते हुए संस्कृत को पुरुष के समान कठोर एवं प्राकृत को स्त्री के समान कोमल बताया है। इस नाट्य को स्त्री विशेष रखने के कारण ही उन्होंने इसकी भाषा प्राकृत रखने का निर्णय किया होगा। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि संभवतः उस समय समाज में इस भाषा का व्यापक प्रचलन रहा होगा, इसी कारण राजशेखर ने जनसामान्य की भाषा का चयन किया होगा, क्योंकि नाट्य अंततः समाज को ही समर्पित होता है।

स्त्री की प्रेम में स्वतंत्र भागीदारी :

कर्पूरमञ्जरी अपने प्रेम को छुपाती नहीं, बल्कि उसका साहसपूर्वक समर्पण करती है। वह स्वयं ही प्रियतम के सौंदर्य पर मोहित हो गई है और उसके सामने अपने को समर्पित करने को तैयार है। द्वितीय जवनिका में कर्पूरमञ्जरी राजा को स्वयं लिखकर कहती है अपने से प्रेम करने वाली हंसिनी को कुंकुमराग से

सजाकर पुनः भूल से उसे चक्रवाकी समझने वाला हंस उसे छोड़ देता है। यह मेरे दुःखद पापों का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मैं तुम्हें जरा भीनहीं देख पाती हूँ-

एतत्तन्मम दुष्कृतं परिणतं दुःखानां शिक्षकम्। एकस्थोऽपि न यासि येन विषयं दृष्टित्रिभागस्यापि।।[4]

इसी जवनिका में एक अत्यंत रोचक वर्णन और भी प्राप्त होता है जहां विचक्षणा कहती है की सखियों के द्वारा कर्पूरमञ्जरी के सन्ताप के कारण और स्वरूप को पूर्णतया जानने के लिए उसके स्तनों पर रखा हुआ हाथ अत्यन्त गरम लगने पर बार-बार हटा लिया जाता है। यदि इससे भी उसका सन्ताप ठीक न जाना जाय, तो संतोष और डर उत्पन्न करने वाली यह बात सुनिए। हाथ के छत्र से ही चन्द्रमा की किरणों को बचाती हुई वह किसी तरह रात काटती है। अर्थात् 'कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है' यह बात तो महाराज को सन्तोष पहुँचाती है लेकिन चन्द्रमा की किरणों तक से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है-

तस्थास्तावत्परीक्षणाय निहितो हस्तः स्तनोत्सङ्गतो, दाहोद्गामरितः सखीभिर्बहुशो हेलया दृश्यते।
किं तेनापीमां निशामयगिरं सन्तोपिर्णीं त्रासिनीं, हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणाऽतिवाह्यति सा यामिनीम्।।[5]

स्त्री सौन्दर्य का अनुपम वर्णन :

कर्पूरमञ्जरी में स्त्री सौंदर्य का चित्रण अत्यंत कोमल, नैसर्गिक एवं साहित्यिक शैली में किया गया है। राजशेखर ने नारी के बाह्यसौंदर्य के साथ-साथ उसके आंतरिक सौंदर्य, लज्जा, प्रेम, भावाभिव्यक्ति आदि को भी भावपूर्ण काव्यात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी के नेत्रों की कोमलता और चपलता को मानसरोवर के हंसों से उपमा दी है। यह उपमा स्त्री सौंदर्य की नाजुकता, आकर्षण और उसके सौम्य प्रभाव को दर्शाती है। नेत्रों को आत्मा का दर्पण कहा गया है और यहाँ नायिका के नेत्रों में वह दिव्यता है जो सखियों को मानो स्वर्ग का अनुभव करा दे। द्वितीय जवनिका में कर्पूरमञ्जरी के नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए वो कहते हैं, उस नायिका ने जिन लोगों को अपने पैने और चञ्चल नेत्र के तीसरे भाग से भी देखा है उन्हें कामदेव, चन्द्रमा, वसन्त और कोकिल का स्वर शीघ्र ही मार डालेगा। जिन लोगों पर उसकी भरपूर आंखें पड़ी हैं, उन्हें तो मरा हुआ ही समझो-

येतयातीक्ष्णचलचक्षुस्त्रिभागदृष्टास्तेकामचन्द्रमधुपञ्चममारणीयाः।
येषुपुनर्निपतितासकलाऽपिदृष्टि-र्वर्त्तन्तेतेतिलजलाञ्जलिदानयोग्याः।।[6]

स्त्री की समग्र बाह्य एवं आंतरिक सुंदरता को केंद्रित करते हुए कविराज राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी को बिना आभूषणों के भी अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक बतलाते हुए कहा है कि उठे हुए स्तनों, बड़ी बड़ी आंखों, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और कान्तिमान् शरीर को विभिन्न प्रसाधनों से कोई लाभ नहीं होता है। (बल्कि ये चीजें सौन्दर्य को और बिगाड़ देती हैं) फिर भी लोगों को यह अच्छे लगते हैं। अर्थात् जिस तरह रूढ़ि अर्थयौगिक अर्थ से बलवान् होता है उसी तरह स्वभाव से ही सुन्दर व्यक्ति के लिए भूषणों के योग की अपेक्षा ही नहीं है-

स्थूलानां स्तनानां कर्णकलिकालङ्घिनोरक्ष्णोर्वा, भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसो गात्रस्य च।
को नेपथ्यकलाभिः क्रियते गुणो यत्तदपि सर्वप्रियं, संयुक्तं शृणु तत्र कारणमिदं रूढेः का खण्डना।।[7]

इसी प्रकार तृतीय जवनिका में राजा चंद्रपाल ने स्वयं कर्पूरमञ्जरी को चंद्रमा से भी अधिक सुंदर बतलाते हुए कहा है कि चंद्रमा में भी दोष है लेकिन कर्पूरमञ्जरी के मुखमंडल की दीप्ति और सौंदर्य के सामने चंद्र भी नहीं ठहरता है। राजा कहता है- हे निर्लज्ज चन्द्रमा ! जिस सुन्दरी के मुख ने तेरे गोरे-गोरे गालों पर सफेदी दी है उस सुन्दरी के पास तू क्यों नहीं घूमता? तू बड़ा निर्लज्ज है-

मुक्तशङ्क! हरिणाङ्क! कित्वंसुन्दरीपरिसरेणहिण्डसे?। गौरगण्डपरिपाण्डुरत्वं पश्यदत्तममुनामुखे न ते?।।[8]

राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी के सौंदर्य को चंद्रमा से तुलना करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी शोभा मानव कल्पना की सीमाओं से भी आगे है। यह तुलना न केवल आलंकारिक है, बल्कि यह उनके स्त्रीसौंदर्य दृष्टिकोण की श्रद्धा, संवेदना और सौंदर्य-बोध को दर्शाती है।

स्त्रियों की आपसी बातचीत में विवेक एवं सलाह :

विचक्षणा और कर्पूरमञ्जरी के बीच के संवादों में स्त्री की भावनाएँ, आशंका, और निर्णय की स्वतंत्रता पर बल दिया गया है। कर्पूरमञ्जरी ने स्वयं कहा है की यदि वह (प्रिय) मुझे बहुत समय तक नजर अंदाज करता है तो मैं स्वयं निर्णय लूँगी और भी हे सखी! यह प्रेम मैंने अपनी इच्छा से चुना है। इसके बिना मैं कभी भी मोहित या भ्रमित नहीं हुई। विचक्षणा भी अपनी सखी के मनोभावों को भलीभाँति समझती है और उस पर कोई दबाव नहीं डालती वह अनेकों बार कर्पूरमञ्जरी के संदेश एवं उसकी अवस्थाओं की जानकारी लेकर राजा के पास जाती है। यहाँ कर्पूरमञ्जरी अपनी सखी विचक्षणा से संवाद करते हुए यह स्पष्ट करती है कि उसने प्रेम का निर्णय उसने स्वयं लिया है वह प्रेम में विवेकशील है, न कि भावनात्मक रूप से भ्रमित एवं वह अपनी इच्छा को व्यक्त करने में संकोच नहीं करती है। ये सभी स्त्री की निर्णय-स्वतंत्रता, स्त्री के आत्म-बल और आत्म-संयम तथा आत्मविश्वास और स्वतंत्र चेतना को प्रतिपादित करते है। कर्पूरमञ्जरी और विचक्षणा के संवाद केवल नाटकीय नहीं,अपितु स्त्री जीवन के गहन भावनात्मक यथार्थ को दर्शाते हैं। यह संवाद राजशेखर की इस सोच को प्रमाणित करता है कि स्त्री सिर्फ भावना की दासी नहीं, बल्कि वह अपनी इच्छाओं, निर्णयों और आशंकाओं को समझने और अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

स्त्रीपुरुष संबंधों में समानता का चित्रण :

कर्पूरमञ्जरी में राजशेखर ने स्त्री–पुरुष संबंधों में केवल कामना या आधिपत्य नहीं, बल्कि संवाद, सहमति और समानता की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने दिखाया है कि सच्चा संबंध तभी संभव है जब दोनों पक्ष स्वतंत्र, संवेदनशील और समर्पित हों। स्त्रीपुरुष में समानता का चित्रण करते हुए प्रथम जवनिका में ही कविता पाठ करते समय राजा चंद्रपाल ने विदूषक के साथ-साथ विचक्षणा को भी अवसर प्रदान किया था एवं मुक्त कंठ से प्रशंसा भी की थी- **सत्यं विचक्षणाविचक्षणाचतुरत्वे-नोक्तीनाम् य तल्किमन्यत्कवीनामपि कविः ।**[9]

इसी प्रकार द्वितीय जवनिका में ही राजा चंद्रपाल तथा कर्पूरमञ्जरी दोनों को एक दूसरे के दर्शन के पश्चात् दाह ज्वर का होना भी इस बात का संकेत है की स्त्री और पुरुष दोनों के मन में मिलने की समान उत्कंठा उत्पन्न हुई थी। इसी प्रकार स्त्री पुरुष संबंध में प्रेम कोबतलाते हुए तृतीय जवनिका में राजा एवं विदूषक के मध्य एक अत्यंत रोचक संवाद प्रदर्शित किया गया है जिसमें विदूषक ने राजा से प्रेम के बारे में पूछा है, और राजा ने उत्तर देते हुए प्रेम को परिभाषित किया है कि एक दूसरे के पास बैठे हुये स्त्रियों एवं पुरुषों का काम देव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भावप्रेम कहलाता है-

अन्योऽन्यमिलितस्य मिथुनस्य मकरध्वजशासने, प्ररूढं प्रणयग्रन्थिप्रेमेति विदग्धा भणन्ति ।[10]

कर्पूरमंजरी में स्त्रीविमर्श करते हुए हमें दो पक्षों पर विचार करना चाहिए- एक पक्ष यह है कि राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्राङ्कन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन में अधिक रमा हुआ है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है। किन्तु कर्पूरमञ्जरी में ही मञ्च पर नारी द्वारा अभिनय करने की परम्परा का भी संकेत मिलता है; जब पारिपार्श्विक कहता है कि- महाराज की भूमिका आर्य सूत्रधार एवं देवी की भूमिका आर्य भार्या को करनी है। कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना से यह विदित होता है कि राजशेखर की धर्मपत्नी अवन्तिसुन्दरी के आदेश पर सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी सट्टक का मञ्चन किया गया था

जिससे यह स्पष्ट है कि-एक तरफ पुरुषवर्ग का दृष्टिकोण नारी के प्रति सकुचित था, तो दूसरी तरफ नारी विभिन्न समारोहों एवं अवसरों पर अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने के प्रति सजग थी।

राजशेखर का नाट्यसाहित्य स्त्रीविमर्श की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और विचारणीय है। उन्होंने स्त्रीपात्रों को केवल प्रेम, सौंदर्य या त्याग की सीमित परिधि में नहीं बाँधा, बल्कि उन्हें निर्णयात्मक, विचारशील और आत्मनिर्भर रूप में प्रस्तुत किया। 'कर्पूरमञ्जरी' की नायिका ''स्त्रीस्वतंत्रता'' की प्रति मूर्ति है। उनके साहित्य में स्त्री केवल विषय नहीं, विचार है। यह विशेषता उन्हें अन्य संस्कृत साहित्यकारों से अलग बनाती है और उन्हें आधुनिक नारी विमर्श का एक पूर्वगामी सर्जक सिद्ध करती है। कर्पूरमञ्जरी स्वयं एक मुखर, विवेकशील और आत्मनिर्भर नायिका है, जो पारंपरिक स्त्री छवि से भिन्न है। इस नाटक में कई ऐसे बिंदु हैं, जहाँ स्त्रीपात्र अपनी भावनाओं और विचारों को स्वतंत्रता से प्रकट करती हैं। कर्पूरमञ्जरी अपने प्रेम और निर्णय में आत्मनिर्भर है। वह नायक के साथ विवाह जैसे निर्णय स्वयं लेती है, जो मध्ययुगीन समाज में स्त्री के लिए दुर्लभ था। कर्पूरमञ्जरी सत्य, प्रियता और संवाद में संतुलन बनाए रखती है। उसका संवाद-विन्यास तर्कपूर्ण, आत्मीय और निर्णायक है। यह स्त्रीविमर्श के 'वॉयस' सिद्धांत को परिपुष्ट करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कर्पूरमञ्जरी' की प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है।

संदर्भ -

1. *काव्यमीमांसा, प्रस्तावना*
2. *कर्पूरमञ्जरी, 1/11*
3. *कर्पूरमञ्जरी, 1/6*
4. *कर्पूरमञ्जरी, 2/8*
5. *कर्पूरमञ्जरी, 2/29*
6. *कर्पूरमञ्जरी 2/5*
7. *कर्पूरमञ्जरी, 2/27*
8. *कर्पूरमञ्जरी, 3/34*
9. *कर्पूरमञ्जरी, प्रथम जवनिका*
10. *कर्पूरमञ्जरी, द्वितीय जवनिका*

42

'कर्पूरमञ्जरी' में आचार-मीमांसा

अंकित शाण्डिल्य *

बालकविः कविराजो निर्भयराजस्य ह्योपध्यायः इत्येतस्य परम्परया आत्मामोहात्म्यभारुढः।।[1]

'आचार' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है ''आचरण'' या ''व्यवहार''। यह शब्द धार्मिक, सामाजिक, नैतिक आदि सन्दर्भों में स्वीकार्य किया जाता है। इसी प्रकार ''मीमांसा'' भी एक संस्कृत अर्थ है। जिसका अर्थ ''प्रतिबिम्ब'' या ''आलोचनात्मक जांच''। मीमांसा भारतीय दर्शन की एक प्रणाली है। इसके अनुसार मीमांसा ''विवेचना'' या ''गहन विचार'' है। ''मीमांसा'' शब्द का शाब्दिक अर्थ है ''विचार'' या ''जांच'' इसका तात्पर्य किसी विषय पर गहराई से विचार करना और उसे समझने की कोशिश करना है। अर्थात् ''मीमांसा'' शब्द का मुख्य उद्देश्य किसी विषय के मूल सिद्धान्तों और अर्थों को समझकर उससे संबंधित तर्क, प्रमाण और विचार विमर्श करना। आचार मानव जीवन के सर्वांगीण विकास की एक प्रक्रिया है। सर्वांगीण विकास का यह चिन्तन भारतीय मानव को एकांगी बनने से रोकता है तथा उसे इहलौकिक एवं पारलौकिक, अभ्युदय एवं निःश्रेयस, प्रेय एवं श्रेय तथा अविद्या एवं विद्या के रूप में उसका सुन्दर मार्गदर्शन करता है। **विद्यां चाविद्या च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्ययामृत्युंतीत्वां विद्ययाऽमृतमश्नुते।।**[2] वेदों में मानव के लिए विधि एवं प्रतिषेध रूप से आचारों का उपदेश किया गया है ज्ञान महत्वपूर्ण होता है किन्तु कर्म या आचार के बिना उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता है इसलिए मनुस्मृति में सभी तपों का मूल ''आचार'' को ही बताया गया है। **सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्।।**[3] इसी प्रकार यजुर्वेद का यह मन्त्र सत्यपथ पर चलने का निर्देश करता है -

ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा। विस्वः पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः।।[4]

अग्ने व्रतपते व्रतचरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यताम्। इद महमनृतात् सत्यमुपैमि।।[5]

धार्मिक पक्ष - कर्पूरमञ्जरी में जनता में धर्म के प्रति विश्वास हटने की शुरुआत को बताया गया है, यही कारण है कि -भरतवाक्य में जनता का धर्म में दृढ़ विश्वास बने रहने की अपेक्षा की गयी है।[6] फिर भी शिव, सरस्वती, कामदेव, गौरी, चामुण्डा आदि देवी-देवताओं की पूजा आराधना की जाती थी। सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा की मान्यता थी।[7] देवी-देवताओं की स्थापना एवं प्राण प्रतिष्ठा विधि विधान पूर्वक करने का विधान था। समाज में गुरु को एक विशिष्ठ स्थान प्रदान कर गुरु से इष्टमंत्र लेने का उल्लेख भी किया गया है।[8] मुख्य रूप से हिंडोला चतुर्थी एवं वटसावित्री महोत्सवों जैसे धार्मिक समारोह का आयोजन किया जाता था। अर्थात् धार्मिक आचार व्यवहार एवं पूजा प्रथा में नारी की पूर्ण आस्था बतलाई गई है; जैसा कि देवी द्वारा गौरी पूजा[9] तथा वटसावित्री

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक प्राध्यापक-(वेद विभाग) महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)*

उत्सव मनाने का उल्लेख हुआ है। मञ्च पर नारी द्वारा अभिनय करने की परम्परा का भी संकेत कर्पूरमञ्जरी में मिलता हैय जब पारिपार्श्विक कहता है कि - महाराज की भूमिका आर्य सूत्रधार एवं देवी की भूमिका आर्य भार्या को करनी है।[10] तंत्र विद्या को प्राथमिकता दी जाने लगी थी। अर्थात् तांत्रिक सम्प्रदाय अपने उत्कर्ष पर था। भैरवानन्द के कथनों एवं क्रियाओं से स्पष्ट होता है कि तांत्रिकों द्वारा कुछ अभ्यास किये जाते थे, जिनसे उनकी आध्यात्मिक उन्नति होती थी, उन्हें कुछ गुह्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती थी, जिनसे वे आश्चर्यजनक कार्य कर सकते थे। तन्त्र सम्प्रदाय की शिक्षाओं में सन्यास से कोई भी सामञ्जस्य नहीं था। इसलिए तन्त्रमत का अनुयायी यह नहीं मान सकता था कि अपनी स्त्री को साथ रखने और थोड़ी सी मदिरा और मांस प्रयोग में लेने से मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। तंत्र मत के अनुयायी वैदिक कर्मकांड और परम्पराओं को प्रोत्साहन नहीं देते थे, जैसा कि भैरवानन्द ने कहा है कि ''ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कहते हैं कि ध्यान, वेदपाठ और यज्ञ करने से मोक्ष मिलता है। केवल भगवान शंकर ने सुर और स्त्रियों के संसर्ग से मोक्ष बताया है।[11] समाज में ऐसे तांत्रिकों की प्रतिष्ठा थी। इनका प्रभाव क्षेत्त राजपरिवारों तक था। राजपरिवार के सदस्यों द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए तांत्रिकों की सेवायें ली जाती थी। राजशेखर कर्पूरामश्नरी में जहां एक ओर धर्म के प्रति विश्वास को कम कर तंत्र विद्या की ओर अधिक प्रभावित होना बताते है जिससे हमारी ईश्वरीय आस्था और आध्यात्मिकता का हनन होता है। हमारे वेदों में भी ईश्वरीय आस्था और पूजा पाठ को मोक्ष का मार्ग बताया गया है।

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्। स्कम्भकृत्वा वेद प्रत्यक्षं इन्द्रे सर्व समाहितम्।।[12]

वह ईश्वर संसार का आधार है, उसमें ही सारे लोकस्थित है अतः उसे 'स्कम्भ' कहा गया है। वह सारे ऐश्वर्यो का स्वामी है, सारे संसार का नियन्ता है अतः उसे 'इन्द्र' नाम से सम्बोधित किया गया है। 'इन्द्रे सर्वं समाहितम्' के द्वारा बताया गया है कि संसार का आधार परमात्मा है। संसार के समस्त लोक, समस्त तप, सभी प्राकृतिक नियम उसकी सत्ता में ही स्थिर है। इन सबमें ईश्वरीय शक्ति ही काम कर रही है। तथा उसकी शक्ति से ही संसार का सारा काम नियन्त्रित होता है। अतः जीवन को सफल बनाने के लिए उस परमात्मा को प्रत्यक्ष रूप से जानना जरूरी है। और उसी परमात्मा की महत्ता को कम होते बताया गया है। जो कि निन्दनीय पक्ष ज्ञात होता है।

सामाजिक पक्ष - कर्पूरमञ्जरी में राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्रांकन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन में अधिक रमा हुआ है। विधिवत परिणीता सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री- रत्न की खोज में लगे रहने की प्रवृत्ति राजाओं में बताई गई है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक से तत्कालीन विवाह पद्धति के विषय में पर्याप्त जानकारी होती है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि यौवन प्राप्त होने पर ही कन्या के विवाह का प्रचलन था। नायिका कर्पूरमञ्जरी युवावस्था को प्राप्त है, अन्यथा नायिका की कामनाओं का वर्णन संभव ही नहीं हो सकता। नायक और नायिका दोनों समान रूप से परस्पर तारुण्य सुलभ आकर्षण से अभिभूत है ज्येष्ठा नायिका से डरे हुए छुप-छुपकर एक दूसरे से मिलते हैं; जिसकी परिणति विवाह की व्यवस्था के रूप में होती है। इस सट्टक में भारतीय परम्परा में जो विवाह की आठ विधियां है उनसे भिन्न विधि से विवाह को बतलाया गया है। नायक-नायिका का विवाह विधि-विधान के साथ सम्पन्न हुआ, भाँवरे दी गयी है, अग्नि में खीले छोड़ी गयी है।[13] ऐसा ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्ष एवं दैव विवाहों में ही होता है। किन्तु इनके पूरे लक्षण कर्पूरमञ्जरी एवं चन्द्रपाल के विवाह में नहीं मिलते। इनका विवाह आसूर या राक्षस एवं पिशाच कोटि का भी नहीं है। जहाँ तक गान्धर्व विवाह का प्रश्न है तो इसके कुछ लक्षण इस विवाह पद्धति में है, जैसे कि नायक नायिका का विवाह पूर्व प्रेम, कन्यादान कर्ता का अभाव आदि। अतः प्रसिद्ध आठ विवाह पद्धतियों से भिन्न प्रकार की विवाह परम्परायें भी

समाज में विद्यमान थी एवं उनको मान्यता प्राप्त थी। भैरवानन्द के यह कथन कि -''विधवा, चंडा (चाण्डाल स्त्री) एवं तांत्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को मैं धर्मानुकूल अपनी पत्नी समझता हूं।''[14] इससे यह प्रतीत होता है कि समाज में विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह का भी प्रचलन था।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में ''कुरबक, तिलक एवं अशोक वृक्ष के दोहद का प्रसङ्ग भी आया है। ''दोहद'' क्रिया वह क्रिया है जिसे प्राचीन भारतीय साहित्य में कतिपय रूढ़-प्रक्रियाओं अथवा विषयों के अन्तर्गत कवि प्रसिद्धि की कोटि में प्रमुख स्थान दिया गया है।[15] अर्थात् किसी गर्भवती स्त्री द्वारा किसी विशेष वस्तु को पाने की अभिलाषा को 'दोहद' नाम दिया गया है, जैसा कि कवि कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा की स्पृहा विशेष को 'दोहद' कहा है।[16] ज्येष्ठा नायिका द्वारा लगाये गये इन वृक्षों के दोहद का कार्य कर्पूरमञ्जरी द्वारा भी करवाया गया है। कर्पूरमञ्जरी कुरबक वृक्ष का आलिंगन द्वारा यतिलक वृक्ष को तिरछी निगाहें देखकर और अशोक वृक्ष का पाद प्रहार द्वारा दोहद करती है।[17] दोहद की क्रिया को तत्कालीन समाज में विद्यमान प्रकृति प्रेम के भाव के रूप में देखा जा सकता है। आचार्य भवभूति भी कहते है कि - **''आर्यपुत्र! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्न दोहदाया मम विज्ञेपनीयमस्ती।**[18] अर्थात् गर्भवती सीता की पवित्रसलिला भागीरथी में पुनः अवगाहन करने की इच्छा को दोहद कहा है। इसके अतिरिक्त कली आने के समय पौधों की इच्छा 'दोहद' कहलाती है।[19] सामान्यतः इस 'दोहद' का अर्थ वृक्ष को बलात अर्थात् असमय में पुष्पित कराने से लिया जाता है। दोहद में अशोक चाहता है कि- तरुणियाँ उसे ठोकर मारे, बकुल चाहता है कि उसके ऊपर मदिरा से कुल्ले किये जायं। भारतीय रूपकों में वृक्ष को बलात पुष्पित कराने वाले दोहद को विशेष महत्व दिया गया है यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि-दोहद पूर्ति का कार्य किसी सामान्य युवती से नहीं कराया जाता। कभी-कभी यह कार्य किसी अज्ञातकुल शीलवाली युवती की वंश परीक्षा की दृष्टि से भी कराया जाता है। अर्थात् दोहद उच्चकुल की औरतें ही करती है।

कर्पूरमञ्जरी में समाज में वर्ण-व्यवस्था पर भी एक विशेष व्यवस्था थी। यहाँ समाज में जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था पूर्णतः प्रतिष्ठित प्रतीत होती है। विदूषक ब्राह्मण है, उसे अनपढ़ होने पर भी पूज्य बताया गया है, जो ब्राह्मण वर्ण की समाज में विशेष महत्ता का द्योतक है। दासियां सुयोग्य, सुशिक्षित होने के बावजूद भी सेवाकार्यमें नियुक्त होती थीं तथा अनपढ़ ब्राह्मण से भी अवरकोटि की मानी जाती थी।[20] ब्राह्मण वर्ण अपनी सामाजिक श्रेष्ठता के कारण अहंकार में था तथा दासी को अपने से बात करने के योग्य नहीं समझता था। भरत वाक्य में यह अपेक्षा की गयी है, कि-ब्राह्मणों के आशीर्वाद सदा सत्य निकलें।[21] अन्तःपुर में पायदान उठाने वाली, स्नान कराने वाली, स्वर्णदण्ड लेने वाली, चॉवर डुलाने वाली, सैरन्ध्रियों आदि वर्ग की दासियां थी। शिकारी, वैद्य, बन्दीजन, वेधकार आदि समाज के विभिन्न कर्मभार वर्ग थे।

कर्पूरमञ्जरी में गुरु को भी एक विशिष्ट स्थान दिया गया है। उस समय गुरु दक्षिणा का समाज में महत्व था। इसे किसी भी कीमत पर अदा करना पुनीत कर्तव्य माना जाता था। ज्योतिष पर लोगों का विश्वास था। मदिरा निंदित वस्तु रही होगी ऐसा ध्वनित होता है, किन्तु इसका प्रयोग किया जाता था। पञ्चगव्य का प्रयोग पवित्रमाना जाता था। दोपहियों के रथ का प्रयोग होता था। लोगों में विमान की कल्पना थी। जैसा कि ध्यानरूपी विमान एवं देवांगनाओं के विमान शब्द का प्रयोग हुआ है।

किसी भी समुदाय विशेष की सांस्कृतिक, सामाजिक उन्नति अथवा अवनति का आंकलन नारी के प्रति सामान्य जन के दृष्टिकोण से किया जा सकता है। नारी वर्ग के प्रति अनास्था समाज की हीनता का द्योतक है। भारतीय सभ्यता के अरुणोदय से ही समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कालिदास, भास, भवभूति आदि प्रारम्भिक कवियों ने नारी की प्रतिष्ठा को यथावत रखा था। किन्तु कर्पूरमञ्जरी में नारी के चित्रण से

उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति का संकेत नही मिलता है। इस सन्दर्भ में यह बहाना भी उचित नहीं कि - सट्ट का वस्तु विन्यास ही कुछ इस प्रकार का है, कि नारी को भोग्या से इतर रूप में चित्रित कर पाना कठिन है। नाटिका या सट्टक की प्रकृति के ही कथानक वाले मालविकाग्निमित्रम् की ज्येष्ठा नायिका महारानी धारणी के महनीय चरित्र को यदि देखें तो यह मानना पड़ेगा कि - कालिदास और राजशेखर के समाज में पर्याप्त अन्तर है। राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्रांकन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन में अधिक रमा हुआ है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है। विधिवत परिणीता सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री-रत्न की खोज में लगे रहने की प्रवृत्ति राजाओं में पायी जाती है।

राजशेखरने कर्पूरमञ्जरी में जहां वर्ण भेद, नारी के विषय में जो भी वर्णन किया है। वह वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उचित नहीं है। यहां सभी वर्ग के लोगों को समान नागरिकता का अधिकार है। अर्थात् व्यक्ति का समाज के साथ, समाज का राष्ट्र के साथ और राष्ट्र का विश्व के साथ अविच्छिन्न संबंध रहा है। मनुष्य व्यष्टि है और समाज समष्टि। समाज एवं राष्ट्र की उन्नति और अवनति से व्यक्ति की उन्नति एवं अवनति होती है। प्रत्येक मनुष्य का समाज, राष्ट्र एवं मातृत्व के प्रति उत्तरदायित्व होता है।

आचार्य राजशेखर द्वारा रचित कर्पूरमञ्जरी बहुत ही युक्तियां सट्टक है। जिसमें आचार्य राजशेखर द्वारा रचित कर्पूरमञ्जरी में आचरण के अन्तर्गत धार्मिक व सामाजिक पक्ष का बहुत ही कि सटीक उल्लेख किया है। और इन्हीं पक्षों की मीमांसा अर्थात् इन पक्षों की गहराई को समझते हुए इन पर विचार किया गया है। क्योंकि जिस देश में जो आचार विचार परम्परानुसार ब्राह्मणादि वर्षों के लिए पहले से प्रचलित है, अर्थात् नवनिर्मित नहीं है, या कपोल कल्पित नहीं है, उस देश एवं वर्ण का वही कुल परम्परागत आचार सदाचार शब्द से व्यवहृत होता है। आचार को परम धर्म कहा गया है, तथा आचारहीन को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते अतः आचार को प्रथम धर्म भी कहा गया है आचार से ही सब कुछ प्राप्त होता है। यथा - आचारः परमो धर्मः[22], आचारः प्रथमोइत्यादि अनेक शाखेक्त वचन हमारे लिए पाथेय स्वरूप है, जिनके अनुपालन से हम अपने मूल्यों की रक्षा कर सकते हैं।

संदर्भ-

1. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - 1/9*
2. *यजुर्वेद - 40/14*
3. *मनुस्मृति - 1/110*
4. *यजुर्वेद - 7/45*
5. *यजुर्वेद -1/5*
6. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर -4/23*
7. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर -पृ. 108*
8. *कर्पूरमंजरी -राजशेखर -पृ. 143*
9. *कर्पूरमञ्जरी -राजशेखर - पृ. 70*
10. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर पृ. 10*
11. *कर्पूरमञ्जरी -राजशेखर - 1/24*
12. *अथर्ववेद -10/7/29*
13. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - पृ. 153*
14. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - 1/23*
15. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - पृ. 517*
16. *रघुवंश -कालिदास - 3/6-7*
17. *कर्पूरमञ्जरी -राजशेखर - 2/44-47*
18. *उत्तररामचरितम् - प्रथम अंक*
19. *वामन आप्टे - संस्कृत -हिन्दी कोश पृ. 478*
20. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - पृ.23*
21. *कर्पूरमञ्जरी - राजशेखर - 4/23*
22. *मनुस्मृति - 1/108*

43

'कर्पूरमञ्जरी' में रसतत्त्व का विश्लेषण

कीर्ति देवांशी त्रिपाठी, अवधेश प्रताप सिंह**, सुभाषचन्द्र****

संस्कृत-काव्य-धारा दो सरणियों में विभक्त है- दृश्य एवं श्रव्य। दृश्य-काव्य वह है, जिसका आस्वादन मुख्यतः चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है, जबकि श्रव्य-काव्य प्रधानतः श्रवणेन्द्रिय के द्वारा आनन्द की अनुभूति कराता है। जब काव्य का रसास्वादन केवल पढ़ने या सुनने से होता है, तो वह श्रव्य काव्य कहलाता है, जबकि जो काव्य मंच पर अभिनय, दृश्य प्रस्तुति, और अन्य नाट्यकौशल के माध्यम से ग्रहण किया जाता है, उसे दृश्य काव्य कहा जाता है। दोनों प्रकार के काव्य की अपनी-अपनी विशेषताएँ, प्रभाव क्षमता और सौंदर्य होते हैं (बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ463)। संस्कृत साहित्य में दृश्य-काव्य-विधा 'नाट्य' नाम से प्रसिद्ध है। नाट्य को 'रूप' तथा 'रूपक' भी कहा जाता है। समस्त रूपक साहित्य, रूपक एवं उपरूपक भेद से मूलतः दो वर्गों में विभाजित है, जिसमें प्रत्येक के कई उपभेद हैं। रूपक रसाश्रित होते हैं, रूपकों के द्वारा प्रेक्षकों के अन्तःकरण में स्थित स्थायी भाव को रस-स्थिति में पहुँचा दिया जाता है। इसमें कोई एक रस प्रधान होता है तथा शेष गौण एवं प्रधान के सहायक मात्र होते हैं (सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, 1970 ई.)। उपरूपक भावाश्रित होता है। इसमें प्रेक्षकों का रति आदि स्थायी-भाव, रस की स्थिति को नहीं पहुँच पाता। यह अपेक्षाकृत भाव विशेष को प्रदर्शित करता है। इसमें भावावेश और गीतनृत्य की प्रधानता रहती है। नाट्य साहित्य में इन दो वर्गों का भेद वास्तविक है काल्पनिक नहीं (सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, 1970 ई.)। इस विभाजन के मुख्यतः भेदक रस एवं भाव हैं (उमाशंकर शर्मा, पृष्ठ 441)। आचार्यों ने वस्तु, नेता एवं रस को नाट्य के भेदक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है, जो अपनी बहुरूपता एवं विभिन्नता के कारण दश प्रकार के रूपकों एवं 18 या 20 अथवा इससे अधिक प्रकार के उपरूपकों के भेद का आधार प्रस्तुत करते हैं (उमाशंकर शर्मा, पृष्ठ 437)। संस्कृत साहित्य की विशाल परंपरा में नाट्यकाव्य का विशेष स्थान रहा है। कालिदास, भास, भवभूति, विशाखदत्त आदि महान् नाटककारों की श्रेणी में महाकवि राजशेखर का नाम भी अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। मध्यकालीन संस्कृत कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। ''उपाध्यायो यायावरीयः राजशेखरः'' बालरामायण के इस कथन से यह प्रतीत होता है, कि राजशेखर यायावरवंश के थे। यायावर का अर्थ है, जो निरन्तर चलने वाला हो।

बालरामायण- नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए राजशेखर ने स्वयं लिखा है, कि-वे महाराष्ट्र

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** शोधच्छात्रा-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

*** सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

**** आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

चूड़ामणि अकालजलद के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र एवं दर्दुक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शीलवती था। राजशेखर ने अपने बालरामायण में षट्-प्रबन्धों का निर्देश किया है। वर्तमान में राजशेखर-प्रणीतकाव्य-मीमांसा, बालरामायण, बालभारत (अथवा प्रचण्ड पाण्डव), विद्धशालभञ्जिका एवं कर्पूरमञ्जरी ये पाँच ग्रन्थ उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। उनकी छठवीं कृति अनुपलब्ध है। राजशेखर का काव्यगत योगदान उनकी रचनाओं में विविध रूपों में दृष्टिगोचर होता है, किन्तु उनकी विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने अपने नाट्यकाव्य ''कर्पूरमञ्जरी'' की रचना संस्कृत के स्थान पर प्राकृत भाषा में की, जो उस समय के लिए एक नवीन प्रयोग था। इसके पद्यों में महाराष्ट्री एवं गद्यों में शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया गया है। कर्पूरमञ्जरी एक सट्टक है, जो उपरूपकों के अन्तर्गत परिगणित होता है। यह सट्टक केवल भाषाई दृष्टि से ही नहीं, अपितु रसतत्त्व की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध और महत्त्वपूर्ण है। सट्टक विधा का प्राचीनतम उपलब्ध उदाहरण राजशेखर-रचित कर्पूरमञ्जरी ही है (डॉ. श्यामावर्मा, 1971 ई.)। आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी में सट्टक का लक्षण उपलब्ध होता है। जिसके अनुसार जिस प्रबन्ध में नाटिकाओं का पूरा-पूरा अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक न पाये जाये, उसे सट्टक कहते हैं। कर्पूरमञ्जरी नाट्यशास्त्र की परंपरा में एक विशिष्ट शैली को दर्शाता है (अतुल कुमार मिश्र, 2023 ई.)। यह एकल अभिनय पर आधारित नाटकीय प्रस्तुति है जिसमें नायिका की मनोभावनाओं, आशाओं, विरह, मिलन और प्रेम की विविध अवस्थाओं को प्रकट किया गया है। राजशेखर-प्रणीत कर्पूरमञ्जरी सट्टक चार जवनिकान्तरों में निबद्ध है; जिसमें राजा चन्द्रपाल एवं कुन्तल देश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी की प्रणय कथा वर्णित है। प्रथम जवनिकान्तर में, प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक एवं विचक्षणा का प्रवेश होता है। वसन्त के वर्णन को लेकर विदूषक एवं विचक्षणा में विवाद हो जाता है, जिससे विदूषक रुष्ट होकर चला जाता है, एवं पुनः भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी को साथ लेकर लौटता है। भैरवानन्द राजा की इच्छा एवं विदूषक के परामर्श से विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपनी योगशक्ति से प्रकट करता है। राजा कर्पूरमञ्जरी को देखकर उसके प्रति आकर्षित होता है। शशिप्रभा एवं वल्लभराज की पुत्री कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसेरी बहन है। रानी उससे मिलकर बहुत प्रसन्न होती है एवं भैरवानन्द की अनुमति से उसे कुछ दिनों के लिए अपने पास रख लेती है। द्वितीय जवनिकान्तर के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है कि-राजा एवं कर्पूरमञ्जरी एक दूसरे पर आसक्त हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी की स्मृति में विह्वल है और उसके सौन्दर्य की बार-बार प्रशंसा करता है। उधर कर्पूरमञ्जरी भी राजा पर मुग्ध हो उठी है। दासी विचक्षणा कर्पूरमञ्जरी द्वारा केतकी के पल्लदव पर लिखित एक पत्र राजा को देकर उससे कर्पूरमञ्जरी की दशा का वर्णन करती है। विदूषक भी कर्पूरमञ्जरी के वियोग में राजा की दशा का वर्णन करता है। विचक्षणा एवं विदूषक के सहयोग से राजा मरकतकुञ्ज में छिपकर कर्पूरमञ्जरी को देखता है, जहाँ कर्पूरमञ्जरी महारानी द्वारा लगाये गये कुरबक, तिलक एवं अशोक वृक्षों का क्रमशः आलिंगन, कटाक्षपात एवं पादाघात करती है। सन्ध्याकाल के साथ ही यह जवनिकान्तर समाप्त हो जाता है। तृतीय जवनिकान्तर में, राजा एवं विदूषक अपने-अपने स्वप्न का वृतान्त सुनाते हैं। इस प्रसंग में दोनों में प्रेम, यौवन एवं सौन्दर्य पर चर्चा होती है। तदनन्तर राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी से मिलने, सुरंग के रास्ते प्रमदोद्यान में जाने तथा राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी का आलिंगन कर लेने की घटनायें घटित होती हैं। उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी का राजा से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। इसलिए कर्पूरमञ्जरी घबराकर सुरंग के रास्ते रक्षागृह में चली जाती है। चतुर्थ जवनिकान्तर में, रानी, कर्पूरमञ्जरी को कठोर नियन्त्रण में रख देती है, जिससे राजा के साथ उसका मिलाप न हो सके। राजा वट-सावित्री महोत्सव देखने जाता है, जहाँ उसे सारंगिका द्वारा सायंकाल अपना विवाह होने की बात ज्ञात होती है, क्योंकि रानी ने भैरवानन्द से गौरी प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा करवा करके, दक्षिणा स्वरूप घनसारमञ्जरी से

राजा का विवाह करवाने का वचन दिया है, जिससे राजा चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सके। क्योंकि घनसारमञ्जरी का पति चक्रवर्ती होगा सुनिश्चित है। अंततः घनसारमञ्जरी से राजा की शादी होती है। कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है, यह बात रानी को मालूम नहीं रहती है। शादी के बाद भेद खुलता है, तथा भरतवाक्य के साथ सट्टक की समाप्ति होती है।

इस कृति में सट्टक का अत्यन्त सुन्दर एवं निखरा हुआ रूप प्रस्तुत है। इस सट्टक का प्रमुख विषय शृंगार है, जिसमें माधुर्य, कोमलता, नायिका की अभिलाषा और प्रेम की सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ प्रमुख रूप से वर्णित हैं। काव्य का प्रमुख उद्देश्य ही रसोत्पत्ति है, और यह तभी सम्भव है जब काव्य में भावों की यथोचित प्रस्तुति हो। आचार्य राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी में शृंगार रस का प्रमुखता से निरूपण किया गया है, किंतु इसके साथ-साथ हास्य, करुण, और शांत रस के लक्षण भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं। यह रसों की बहुलता ही इस सट्टक को एक विशिष्ट कलात्मक दृष्टि प्रदान करती है। आचार्य राजशेखर ने इस रचना के लिए प्राकृत भाषा का चयन किया, जो उस समय संस्कृत की अपेक्षा अधिक जनसामान्य की भाषा मानी जाती थी। प्राकृत की कोमलता, मधुरता और प्रवाहशीलता ने शृंगार रस की अभिव्यक्ति को और भी प्रभावी बना दिया है। शब्दों की संगीतिकता, अलंकारों की योजना, और वाक्य विन्यास के कारण रसों का प्रभाव दर्शक या पाठक के मन पर गहरा पड़ता है। इस रचना में प्रयुक्त भाषा शैली और अभिव्यक्ति के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि भाषा मात्र संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि रसोत्पत्ति का प्रमुख कारक है। यही कारण है कि कर्पूरमञ्जरी एक प्रायोगिक नाट्यरचना होते हुए भी साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। कर्पूरमञ्जरी का अध्ययन केवल साहित्यिक रसों की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि नाट्यकलात्मक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें पात्रों की अभिव्यक्ति, संवादों की प्रकृति, मंचन की संभावनाएँ, और सर्वप्रमुख- दर्शकों के मन में उत्पन्न होने वाले भावनात्मक उद्वेलन, इसे एक प्रभावशाली सट्टक बनाते हैं। आचार्य राजशेखर ने रसों का इतना संतुलित और सशक्त प्रयोग किया है कि यह रचना एक आदर्श नाट्यकृति बन गई है। आज के संदर्भ में भी, जब रंगमंच और साहित्य पुनः लोकचेतना में स्थान बना रहे हैं, उसी सन्दर्भ में यह रचना हमें न केवल रस के शास्त्रीय सिद्धांतों का प्रयोग दिखाती है, बल्कि यह भी सिखाती है कि साहित्य में भावों की सजीवता कैसे उत्पन्न की जा सकती है (हरिदत्त शास्त्री, 1970 ई.)।

इस शोध-पत्र की प्रविधि विश्लेषणात्मक है, जिसमें कर्पूरमञ्जरी सट्टक में निहित रसतत्त्वों का गहन परीक्षण और विवेचन किया गया है। इसके लिये मुख्य रूप से कर्पूरमञ्जरी के पाठ्य का सूक्ष्म अवलोकन करके उसमें निहित रस तथा भावों का विश्लेषण करके उसे रसशास्त्र के सैद्धांतिक तत्त्वों के आलोक में प्रस्तुत किया गया है।

कर्पूरमञ्जरी में रस स्वरूप-

महाकवि राजशेखर का कर्पूरमञ्जरी एक अनुपम साहित्यिक कृति है जो रसों की सघनता, भाषा की माधुर्यता, और नाट्यकला की जीवंतता के कारण आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायी है। इस सट्टक में शृंगार रस की प्रधानता होने के पश्चात् भी अन्य रसों की सन्निवेशना ने इसे एक पूर्ण नाट्यरचना का स्वरूप प्रदान किया है। रसतत्त्व के गहन और प्रभावशाली निरूपण के कारण यह रचना न केवल महाकवि राजशेखर की रचनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है, बल्कि सम्पूर्ण संस्कृत नाट्य की गरिमा को भी पुष्ट करती है। कर्पूरमञ्जरी में रस की प्रस्तुति अत्यंत स्वाभाविक, सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक है। नायिका की मनोदशा, उसकी व्याकुलता, प्रिय मिलन की आकांक्षा, और उससे उत्पन्न भावनात्मक द्वंद्व शृंगार रस के अंतर्गत मार्मिक रूप में व्यक्त हुए हैं।

विशेषतः विप्रलम्भ शृंगार (विरहजन्य प्रेम) की अभिव्यक्ति इतनी सजीव और आत्मीय है कि पाठक या दर्शक को पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में समय नहीं लगता। यहाँ पर महाकवि राजशेखर ने केवल स्थूल भावनाओं को ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म भावों को भी मूर्त रूप में अभिव्यक्त किया है। जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है, नायिका की मानसिक अवस्था में परिवर्तनों के साथ रसों की विविध छवियाँ उभरती हैं। हास्य रस के तत्त्वों को भी उन्होंने चतुराई से प्रयुक्त किया है, जिससे नाटक में रोचकता और सहजता बनी रहती है। कहीं-कहीं करुण रस भी देखने को मिलता है, जब नायिका के वियोग का वर्णन होता है। यह रस-परिवर्तन न केवल नाट्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि महाकवि राजशेखर रस के गूढ़ तत्त्वों को कितनी सहजता से प्रस्तुत कर सकते थे। महाकवि राजशेखर ने नाट्यकला के सभी प्रमुख रसतत्त्वों का प्रयोग करते हुए एक ऐसी रचना प्रस्तुत की है, जो रस सिद्धांत के व्यावहारिक उदाहरण के रूप में देखी जा सकती है। यह कृति भारतीय नाट्यकाव्य परंपरा में रस की सजीवता और गहनता का एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत करती है। इस रचना में भावनाओं की कोमलता, नायिका की अंतर्यात्र, प्रेम की विविध अवस्थाएँ, विरह की पीड़ा तथा हास्य और करुण रस के सूक्ष्म संकेत, सभी रसतत्त्वों के गहन और कलात्मक प्रयोग को प्रकट करते हैं।

कर्पूरमञ्जरी में वर्णित रस तथा भाव-

महाकवि राजशेखर रसवादी आचार्य हैं। इन्होंने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' में स्पष्ट रूप से 'रस' को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। अतएव इन्होंने अपनी कृतियों में भी रस को आत्म रूप में चित्रित किया है। कर्पूरमञ्जरी में कवि ने रस के परिपोष पर विशेष ध्यान दिया है। इसमें शृंगार, हास्य एवं अद्‌भुत रसों की अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है। कर्पूरमञ्जरी में प्रयुक्त रसों एवं भावों का विवरण इस प्रकार है-

शृंगार रस- कर्पूरमञ्जरी सट्टक में मुख्य रूप से शृंगार रस को प्रधानता दी गई है। यद्यपि इसमें अन्य रसों की झलक भी मिलती है, लेकिन चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी के प्रेम के माध्यम से शृंगार रस ही प्रमुख रूप से प्रकट हुआ है। शृंगार रस के प्रभाव को बढ़ाने के लिए सट्टक के प्रारम्भ में ही काम और रति को प्रणाम करते हुए उनका स्मरण किया गया है। वास्तव में, यह सब चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को सूक्ष्म रूप से व्यक्त करने का एक उपाय है। इस सट्टक में नायक-नायिका के बीच आकर्षण के लिए प्रसिद्ध चार कारण-श्रवण (सुनना), चित्र (चित्र देखना), स्वप्न (स्वप्न में देखना) और प्रत्यक्ष दर्शन (सामने देखना) - ये सभी उपस्थित हैं।

- नायक पहले विदूषक से एक अद्‌भुत स्त्री (कर्पूरमञ्जरी) के बारे में सुनता है, जिससे वह उसकी ओर आकर्षित हो जाता है और उसे देखने की इच्छा प्रकट करता है।
- जब वह नायिका को प्रत्यक्ष देखता है, तो उसके सौंदर्य पर मोहित हो जाता है।
- वियोग की स्थिति में वह नित्य उसका चित्र बनाता है, जिसका वर्णन द्वितीय अंक में प्रतिहारी के कथन से होता है।
- साथ ही, वह स्वप्न में भी नायिका को देखता है।

इस नाटक में शृंगार रस के दोनों रूप-संयोग (मिलन) और विप्रलम्भ (वियोग) - को बहुत ही सुंदर और भावनात्मक ढंग से दर्शाया गया है। लेकिन वियोग-शृंगार की अनुभूति और अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली ढंग से की गई है।

संभोग शृंगार अभिव्यञ्जना के भी अनेक प्रसंग कवि ने सन्निवेशित किये हैं। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के रूप माधुर्य पर मोहित नायक का कथन है, कि- 'इस नायिका की जंघायें इतनी चौड़ी हैं कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नहीं होती, स्तन इतने ऊँचे हैं कि मुख

नाभि तक आ ही नहीं सकता, आँखें इतनी बड़ी हैं कि कानों में कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान् है, जैसे कि पूर्णमासी रात्रि में दो चन्द्रमा निकल आये हों।'

इस वर्णन में नायक की ओर से नायिका के प्रति प्रेम और आकर्षण को दर्शाया गया है। यहाँ नायिका 'आलम्बन विभाव' है, जबकि नायक 'आश्रय' है। नायिका की जंघाएं, आँखें और मुख की आभा उस आकर्षण को और भी प्रबल करने वाले उद्दीपन विभाव हैं, जो नायक के प्रेम को जाग्रत करती हैं।

यद्यपि अनुभाव शब्दशः वर्णित नहीं हैं, फिर भी नायक की लालसा से भरी दृष्टि, लंबी साँसे और विरहजनित खेद जैसे भाव स्पष्ट रूप से प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। जब ये विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव (जैसे उत्कंठा, खेद, स्मृति आदि) आपस में मिलते हैं, तो स्थायी भाव यानी प्रेम (रति) जाग्रत होता है और उससे रस की अनुभूति होती है। इस प्रकार, पाठक या दर्शक को प्रेम रस की गहराई तक पहुँचने का अनुभव होता है।

काम संताप से व्यथित नायिका के पास पहुँचकर नायक द्वारा कहे गये वचनों में संभोग शृंगार का अनुपम सन्निवेश किया गया है-

'हरिणी के समान नयनों वाली! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नहीं है, साफ किया हुआ सोना भी तेरे सौन्दर्य के सामने तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना नहीं कर सकते। मेरी जिन आँखों ने तुझको देखा है, उनकी मैं सुवर्ण के फूलों से पूजा करूँगा ।'

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है, नायक आश्रय है। नायिका के हरिणी के समान नेत्र उद्दीपन विभाव है। वे पथु, दीर्घ-श्वास, स्वेद आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव 'रति' उद्‌बुद्ध होकर रसास्वादन की स्थिति को प्राप्त हुआ है।

नायिका का हाथ पकड़कर नायक का कथन है कि-'त्रापुष नाम के फल में जो काँटे होते हैं अथवा कदम्ब के फूल में जो केसर होते है, ये सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुए रोमाञ्च वाले मेरे अंगों के सामने कुछ भी नहीं है।'

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है, नायक आश्रय है। पृष्ठभूमि में कथित चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं, रोमाञ्च अनुभाव है। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं, इनके संयोग से रति उद्‌बुद्ध होकर शृंगार रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

विप्रलम्भ शृंगार का उत्कृष्ट रूप कर्पूरमञ्जरी में प्राप्त होता है क्योंकि विप्रलम्भ के बिना संयोग परिपुष्ट नहीं होता। यह सट्टक विद्वत् समाज की इस मान्यता का सुन्दर निदर्शन है। कवि ने विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर समायोजन किया है। कुछ प्रमुख उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

'चञ्चल नेत्रों वाली वह तरुण नायिका सर्वदा मेरे चित्त में बसी रहती है, उसके गुण सततघ् मुझे याद आते रहते हैं, वह मेरे पास शय्या पर सोती हुई-सी प्रतीत होती है, मुझे हर तरफ वह चलती हुई दिखाई देती है, मेरे वचनों को सुनती है, मेरे सम्बन्ध में काव्यरचना करती है और मेरे ध्यान से कभी नहीं उतरती है।'

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायिका के गुण आदि उद्दीपन विभाव, वे पथु, संताप आदि अनुभाव शब्दशः अकथित हैं। उन्माद व्यभिचारी भाव है। इनके संयोग से उद्‌बुद्ध स्थायी भाव रति, शृंगार रस की अभिव्यक्ति कराता है।

नायक के विरह में जल रही नायिका की स्थिति का वर्णन करने वाले निम्न पद्य में विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यञ्जना उत्कृष्ट कोटि की है-

हे सौभाग्यशालिन्! तुम्हारे कारण कर्पूरमञ्जरी बड़ी गहरी साँसे लेती है, उसकी साँसे हारलता के समान विस्तार वाली हैं, चन्दन का रस उसके शरीर पर जलन उत्पन्न करता है, चन्द्रमा उसके देह को जलाता है, उसके मुख पर मुस्कराहट भी (मैं मर रही हूँ, मेरी याद रखना, इस तरह का) स्मरण सा कराती है, उसका शरीर पीला पड़ गया है, जैसे कि दिन के समय चन्द्रमा फीका-सा लगता है, उसके निरन्तर बहते हुए आँसू किसी कृत्रिम नदी की तरह लगते हैं ।

यहाँ नायक आलम्बन विभाव है, नायिका आश्रय है। गहरी साँसें लेना, शरीर संताप, शरीर का पीला पड़ना, अश्रु प्रवाह आदि अनुभाव हैं, यहाँ व्याधि नामक व्यभिचारी भाव है, रति स्थायीभाव है जो उद्बुद्ध होकर रस चर्वणा की स्थिति को प्राप्त कर रहा है।

हास्य रस- कर्पूरमञ्जरी में हास्य रस का चित्रण अत्यंत रोचक और प्रभावशाली ढंग से किया गया है। इस नाटक में हास्य रस का मुख्य आलम्बन विदूषक है, जो आरंभ से अंत तक मंच पर सक्रिय रहता है और अपनी बातों, हाव-भावों और व्यवहार से पूरे सट्टक में हास्य का वातावरण बनाए रखता है। विदूषक की वाकपटुता, व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ, पाण्डित्य दिखाने की कोशिशें और अतिशयोक्तिपूर्ण गर्वोक्तियाँ दर्शकों में हास्य का उद्भावन कर देती हैं। वह अपनी चतुराई, चालाकी और थोड़े-से मूर्खतापूर्ण व्यवहार के कारण हास्य का केंद्र बन जाता है। सट्टक के संवादों को जीवंत और मनोरंजक बनाने में विदूषक की बड़ी भूमिका है। वह केवल हास्य उत्पन्न ही नहीं करता, बल्कि मंच पर हल्के-फुल्के क्षणों के माध्यम से दर्शकों को नाटक से जोड़े रखने में भी सहायक होता है। हास्य रस की सुंदर अभिव्यक्ति के कुछ प्रमुख उदाहरण नाटक के विभिन्न दृश्यों में देखे जा सकते हैं, जैसे-

- जब विदूषक स्वयं को अत्यंत ज्ञानी और बुद्धिमान् बताकर बात-बात पर शास्त्रों का हवाला देता है।
- जब वह नायक के प्रेम प्रसंगों में सलाहकार बनकर खुद को बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है, लेकिन उसकी सलाहें हास्यास्पद होती हैं।
- जब वह परिस्थितियों को गलत समझकर मजेदार भ्रम पैदा करता है।

उदाहरणार्थ-

'विदूषक कहता है-तुम सब में मैं ही एक मूर्ख हूँ, जिसके ससुर का ससुर भी पण्डितों के यहाँ पुस्तकें उठाता रहता था ।

चेटी- (हंसकर) तब तो तुम वंश परम्परा से विद्वान् ठहरे।

विदूषक- (क्रोध के साथ) अरे दासी की पुत्री, कुट्टिनी होने वाली, निर्लक्षण और मूर्ख! मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि तू भी मेरा उपहास करे।'

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव है। चेटी, राजा, रानी आदि आश्रय हैं। कथित न होने पर भी विदूषक की भावभंगिमाएं, वस्त्रादि उद्दीपन विभाव हैं। हंसना अनुभाव है। गर्व एवं असूया व्यभिचारी भाव हैं। इन विभावातुभाव व्यभिचारियों के संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव हास उद्बुद्ध होकर हास्य रस की अभिव्यक्ति करता है।

श्वेत वर्ण पुष्प की ओदन से एवं स्वच्छ विचकिल के फूल की भैंस के दही से दी गयी उपमा वाली विदूषक की कविता एवं तत्तसम्बन्धी वार्ता हास्य रस का सुन्दर उदाहरण है-

'विदूषक कविता पढ़ता है- कलमों (नामक चावल) के भात की तरह श्वेत वर्ण के फूल जिनसिन्धुवार वृक्षों पर आते हैं, वे प्रिय हैं। बिलोए हुए भैंस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूल भी मुझे बहुत प्रिय हैं।

विचक्षणा- (तुम्हारी कविता) तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न करने योग्य है।
विदूषक-अयि प्रियभाषिणी! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ।
देवी- (हँसकर) सखि विचक्षणा... ।'

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव, देवी, विचक्षणा आदि आश्रय, विदूषक की भावभंगिमाएँ, वस्त्राभरण आदि उद्दीपन विभाव हैं, मुस्कुराना, हंसना आदि अनुभाव हैं। असूया आदि व्यभिचारीभाव हैं। इनके संयोग से स्थायी भाव हास उद्‌बुद्ध होकर रसोद्रेक की स्थिति को प्राप्त होता है।

तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक का स्वप्न वर्णन बड़ा ही सरस एवं विनोदपूर्ण है। राजा की स्मरपीड़ा एवं विदूषक की विनोदप्रियता का एक साथ चित्रण किया गया है, जो रोचक एवं परिहासपूर्ण है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर विदूषक अपने हावभाव एवं मनोरंजक कथनों द्वारा हास्यरस की उद्‌भावना करने में सफल हुआ है।

अद्‌भुत रस- कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अद्‌भुत रस का समावेश भीमनोहारी रूप से किया गया है। इस रस को सट्टक में आवश्यक और स्वाभाविक माना गया है, क्योंकि यह दर्शकों में उत्सुकता और नवीनता की भावना बनाए रखता है।

अद्‌भुत रस का प्रभाव नाटक के शुरुआत से ही दिखाई देने लगता है, जैसे-

- पात्रों के माध्यम से नायिका के अनुपम सौंदर्य, रूप, गुणों का वर्णन होता है, दर्शकों और पात्रों, विशेषकर नायक और विदूषक में आश्चर्य और विस्मय की भावना उत्पन्न होती है।
- नायिका की अद्वितीय छवि, उसकी चेष्टाएँ, उसकी कला और सौंदर्य को देखकर नायक स्तब्ध रह जाता है, जो अद्‌भुत रस का प्रतीक है।
- साथ ही, कई ऐसे प्रसंग भी आते हैं जहाँ परिस्थितियाँ अप्रत्याशित रूप ले लेती हैं, जो दर्शकों के मन में कौतुहल और विस्मय भर देते हैं।

कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

भैरवानन्द के चमत्कारी कार्य के प्रसंग में अद्‌भुत रस की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। विदूषक एवं राजा के कहने पर भैरवानन्द विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपने योगबल से उपस्थित कर देता है। यह घटना एवं राजकुमारी का सौन्दर्य दोनों ही विस्मयजनक हैं। अतः उसे देखते ही राजा कह उठता है –

- 'इसकी आँखों से अंजन धुला हुआ है, इसीलिए इसकी आँखें लाल हैं, मुख पर अलकें बिखरी हुई हैं, हाथ से अपने केशों को पकड़े हुई है और केशों से पानी की बूँदें टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान क्रीड़ा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहाँ पर उपस्थित किया है ।' यहाँ नायिका आलम्बन, राजा आश्रय, नायिका को लाने की घटना एवं उसका सौन्दर्य उद्दीपन, स्पृहापूर्वक अवलोकन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एवं हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। उनके संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव विस्मय उदबुद्ध होकर आस्वाद्य की स्थिति को प्राप्त करता है।

द्वितीय जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी द्वारा दोहद के प्रसंग में अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है। नायिका के प्रगाढ़ आलिंगन ने कुरबक वृक्ष में एकाएक फूल खिला दिया है, जिससे चकित होकर विदूषक कहता है-

- 'अरे इस जादू विद्या को देखो, जिससे कि-इस छोटे ही कुरबक वृक्ष पर इस सुन्दरी के प्रगाढ़ आलिंगन से एकाएक ही कामदेव के बाणों की तरह फूल निकलने लगे हैं। राजा-दोहद का प्रभाव ही ऐसा है।'

यहाँ कुरबक वृक्ष आलम्बन विभाव, विदूषक आश्रय, फूल खिलना उद्दीपन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एवं हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभावादि के संयोग से स्थायी भाव विस्मय उद्बुद्ध होकर अद्भुत रस की अभिव्यक्ति करता है।

- तिलक वृक्ष एवं अशोक वृक्ष के दोहद के प्रसंग में भी अद्भुत रस अभिव्यंजितहुआ है।
- चतुर्थ जवनिकान्तर में महारानी द्वारा महाराज का विवाह कराने की बात सुनकर विदूषक आश्चर्यचकित होकर कहता है-''भो! कि इदं अकालकोहण्डपउणं?'' राजा भी विस्मित है एवं सारंगिका से सविस्तार सुनता है, जिस कारण से महारानी ने महाराज के विवाह का निर्णय लिया है।

इस स्थल पर भी अद्भुत रस की अनुपम अभिव्यञ्जना की गयी है।

भाव अथवा भावध्वनि - प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि संचारी तथा देवता, गुरु आदि के विषय में अनुराग एवं सामग्री के अभाव में रसरूप को अप्राप्त उद्बुद्ध मात्र रति, हास आदि स्थायी, ये सब भाव कहलाते हैं। कर्पूरमञ्जरी में इन सभी प्रकार के भाव के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

देव विषयक रति का सुन्दर उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तार में भैरवानन्द के इस कथन में मिलता है-

- 'महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकाल रूपी क्रीड़ा मन्दिर में ब्रह्मा के कपाल रूपी प्याले से प्राणियों के रुधिर रूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो।'यहाँ चामुण्डा के प्रति प्रेम प्रकट हो रहा है, अतः भाव ध्वनि है।

राजा विषयक रति का उदाहरण द्रष्टव्य है-

- वैतालिक कहता है- 'पूर्वदिशा के स्वामी! चम्पा नगरी का पालन करने वाले! राढ़देस को खेल-खेल में ही जीतने वाले! कामरूप देश के विजेता! हरिकेलि देश में विहार करने वाले, पराजित किये हुए लोगों में सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अंगों के सौन्दर्य से युक्त हे राजन्! तुम्हारी जय हो, वसन्ततऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखकर हो।' यहाँ राजा के प्रति रति भाव व्यञ्जित हुआ है, अतः यह भाव ध्वनि का स्थल है।

प्रधानता से प्रतीयमान संचारीभाव वाले भावध्वनि का उदाहरण है-

- भैरवानन्द कहता है- 'चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ। सूर्य का भी आकाश मार्ग में रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणों की स्त्रियों तक को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको मैं न कर सकूँ।'

यहाँ स्थायीभाव विस्मय को उद्बुद्ध करने योग्य कथन होने के पश्चात् भी, भैरवानन्द का सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य का अभिमान होने से गर्व नामक संचारी भाव प्रधानता से ध्वनित हो रहा है, अतः यहाँ भाव ध्वनि है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में विस्मय (आश्चर्य) नामक स्थायी भाव के केवल जाग्रत होने के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। ये ऐसे प्रसंग हैं जहाँ दर्शकों या पात्रों में आश्चर्य तो उत्पन्न होता है, लेकिन वह भावना इतनी तीव्र नहीं होती कि वह रस के रूप में परिणत हो जाए। उदाहरण के लिए, विदूषक के स्वप्न का वर्णन एक ऐसा ही प्रसंग है। जब विदूषक अपने विचित्र और असामान्य स्वप्न को राजा को सुनाता है, तो राजा आश्चर्यचकित रह जाता है। लेकिन यह आश्चर्य क्षणिक होता है, जिससे केवल विस्मय भाव का उद्बोधन होता है, रस का पूर्ण विकास नहीं। इसी तरह, जब वसंत ऋतु में अचानक केवड़े की सुगंध फैलती है और यह पता चलता है कि यह भैरवानन्द के प्रभाव से असमय में उत्पन्न हुई है, तो यह घटना भी राजा को विस्मित करती है। मगर यहाँ भी भावना क्षणिक है और रसोद्रेक (रस की परिपक्व अवस्था) तक नहीं पहुँचती है।

सट्टक के अंतिम चरण में भी अद्भुत रस के तत्त्व दिखाई देते हैं, जो नाटक को रोचकता और चमत्कारिकता से भर देते हैं। ये सभी प्रसंग अद्भुत रस के सौम्य और सीमित रूप को प्रस्तुत करते हैं, जिससे नाटक में विविधता बनी रहती है।

निष्कर्ष-

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'कर्पूरमञ्जरी' में रसतत्त्व का अत्यंत प्रभावशाली एवं कलात्मक रूप से समावेश हुआ है। इस सट्टक में शृंगार रस को अंगी रस के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जबकि हास्य, अद्भुत, करुण एवं अन्य रसों का सहानुभाविक प्रयोग करके रचना को बहुआयामी और रसपूर्ण बनाया गया है। महाकवि राजशेखर ने रस के सिद्धांत को केवल ग्रंथों में वर्णित परिभाषाओं तक सीमित न रखकर, उसे अपनी साहित्यिक रचना के माध्यम से जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। इस सट्टक में शृंगार रस, विशेषकर विप्रलम्भ शृंगार, की प्रधानता है, जो नायक चन्द्रपाल और नायिका कर्पूरमञ्जरी के मध्य प्रेम के विविध पक्षों- प्रतीक्षा, वियोग, स्वप्न-दर्शन, चित्र-निर्माण, आदि के माध्यम से भावुकता और संवेदना का संचार करता है। नायिका यहाँ आलम्बन विभाव है, जबकि नायक आश्रय। उनके सौंदर्य, क्रियाएँ एवं भाव-भंगिमाएँ उद्दीपन विभाव के रूप में कार्य करती हैं। दीर्घश्वास, नेत्रों की गति, चित्रों का निर्माण, आदि अनुभावों से यह स्पष्ट होता है कि महाकवि राजशेखर को रस निष्पत्ति के सभी अंगों का गहन ज्ञान था और वे उन्हें सफलतापूर्वक प्रयोग में लाने में भी निपुण थे। इसके अतिरिक्त, हास्य रस का भी सशक्त प्रयोग विदूषक के माध्यम से हुआ है। वह हास्य का कारक बनकर कथा को बोझिल होने से बचाता है। अद्भुत रस का प्रयोग विशेषकर विस्मय के भाव को जाग्रत करने हेतु हुआ है। ये प्रसंग रसोद्रेक (रसोत्कर्ष) तक नहीं पहुँचते, फिर भी दर्शकों में कौतूहल बनाए रखते हैं और नाटक को चमत्कृत बनाते हैं। इस सट्टक में रसतत्त्व का समन्वय न केवल सैद्धांतिक दृष्टि से पूर्ण है, बल्कि नाट्य-प्रस्तुति की दृष्टि से भी अत्यंत सफल है। महाकवि राजशेखर ने 'रसनिष्ठ साहित्य' की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए यह प्रमाणित किया है कि नाटक केवल कथा या संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि वह रसभावना के माध्यम से हृदय को स्पर्श करने वाली कला भी है। अतः यह कहा जा सकता है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि रसतत्त्व की व्यावहारिक प्रयोगशाला है, जिसमें कवि ने रसों की सूक्ष्मता, परस्पर संबंध और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभाव को गहराई से समझते हुए अभिव्यक्त किया है। यह सट्टक भारतीय काव्यशास्त्र और नाट्यकला में रस-सिद्धांत की सफलता का एक जीवंत उदाहरण है, जो आज भी पाठकों और शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

संदर्भ -

1. *दृश्यश्रव्यभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतमृ -साहित्यदर्पण- 6/1*
2. *वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः दशरूपक (1/10)*
3. *एदाए-*
   तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ काञ्चीलआ, तहा अ थणतुंगिमा जह ण एह णाहिं मुहं।
   तहा णअणबंहिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं,तहा अ मुहमुज्जलं दुससिणी जहा पुण्णिमा - कर्पूरमञ्जरी (1/34)
4. *जिस्सा पुरने ण हरिदा दलिआ हलिद्दा, रोसाणिअं ण कणकं ण अ चम्पआइं ।*
   ताइं सुवण्णकुसुमेहिंविलोअणाइं,अच्चेमि जेहिं हरिणच्छ! तुमंसि दिट्ठा - कर्पूरमञ्जरी (3/22)

5. जे णवस्थ तिउसस्स कण्टआ जे कदम्बमउस्स केसरा ।
   अज्ज तुज्झ करफंससंगिहि ते हुअंति मह अंगणिज्जिदा - कर्पूरमञ्जरी (3/24)
6. चित्ते चिहुट्टइ ण खुट्टइ सा गुणेसुं,सेजासु लोट्टइ विसप्पइ दिम्मुहेसुं ।
   बोलम्मि बट्टइ पअट्टइ कव्वबंधे,झाणेण तुट्टदि चिरं तरुणी चलाक्खी - कर्पूरमंजरी (2/4)
7. णीसासा हारजट्ठीसरिसपसरणा चन्दणं फोडकारी, चन्दो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि ।
   अङ्गाणं पण्डुभाओ दिवससंसिकलाकोमलो किं च तीए,णिच्चं बाहप्पवाहा तुह सुहअ! कए होंति कुल्लाहिं तुल्ला - कर्पूरमञ्जरी (2/10)
8. विदूषकः -भो! तुम्हाणं सब्वाणं मज्झे अहम् एक्को कालक्खरिओ जस्स में ससुरस्यससुरो पण्डितघरे पुत्थि आइं बहंतो आसि!
   चेटी :- (विहस्य) तदो आगदं अण्णएण पंडित्तएं ।
   विदूषक :- (सक्रोधम्) आ दासीए धूए! भविस्सकुट्टणि! विल्लक्खणे! अविअक्खणे! ईदिसोऽहं मुक्खो जो तए बि उवहसिआमि?.- कर्पूरमञ्जरी(रामकुमार आचार्य), पृष्ठ 18
9. विदूषक- (पठति)-
   फुल्लक्कुरंकमलकूरसमंबहंति, जे सिंदुबारबिडबा मह बल्लभा दे ।
   जे गालिअस्स महिसीदहिणी सरिच्छा ते किंचमुद्धबिअइल्लपसूणपुंजा ।।- कर्पूरमञ्जरी (1/19)
   विचक्षणा-णिअकंतारंजणजोग्गं दे बअणं ।
   विदूषक-ता उआरबअणे!तुमं पढ़ ।
   देवी-(किञ्चित् स्मित्वा) सहि विअक्खणे... । - कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ 19-20
10. अहह! अच्चरिअं! अच्चरिअं!
    जंधोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं, हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो ।
    जं एक्कं सिचअंचलं ण्णिबसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा,आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा? - कर्पूरमञ्जरी (1/26)
11. भो! पेक्ख पेक्ख महिन्दजालं । जेण-
    बालोविकुरवअतरूतरुणीएगाढ़मुवगूढ़ो ।
    सहस त्ति कुसुमणिअरं मअणसरं विअ समुग्गिरइ - कर्पूरमञ्जरी (2/45)
    राजा-ईदिसो ज्जेव दोहलअस्स प्पहावो ।
12. सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः ।
    उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते - साहित्यदर्पण (3/260)
13. कप्पन्तककेलिभवणेकालस्यपुराणरुहिरसुरम् । जअदि पिअन्ती चण्डी परमेट्ठिकवालचसएण ।। -
    कर्पूरमञ्जरी (4/19)
14. 'जअ पुब्बदिअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णऊर! लीलाणिज्जिअराढ़देस! विक्कमक्कंतकामरूअ?
    हरिकेलीकेलिआरअ! अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण!संब्बंगसुन्दरत्तणरमणिज्ज! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारंभो ।' -
    कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ 12
15. दंसेमि तं पि ससिणं बसुहाबइण्णं थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे ।
    आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ तं णत्थि भूमिबलए मह जं ण सद्धं - कर्पूरमञ्जरी (1/25)

44

'कर्पूरमञ्जरी' में रस-संवेदना एवं भाव-ध्वनि

हरविन्दर कौर *

महाकवि राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी एक अनूठा प्राकृत सट्टक है, जिसमें रस-परिकल्पना और ध्वनिवादी सिद्धांतों का प्रभावशाली समन्वय प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोधलेख में इस सट्टक में निहित रसों- विशेषतः शृंगार, हास्य, एवं अद्भुत रस - की सजीव एवं सप्राण अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, भावध्वनि के चारों भेदों का सूक्ष्म परीक्षण किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं देवता एवं राजा विषयक अनुराग, प्रधान संचारीभाव की व्यंजना, तथा उद्बुद्ध मात्र स्थायीभाव की अभिव्यक्ति।

शृंगार रस की दृष्टि से यह नाट्य सृष्टि विशेष महत्व की है, जहाँ संयोग और विप्रलम्भ दोनों अवस्थाओं को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। नायक-नायिका के आलंबन रूपों, उद्दीपन स्थितियों तथा अनुभाव-व्यभिचारी भावों के माध्यम से रसचर्वणा की परिपक्व स्थिति उत्पन्न होती है। हास्य रस की योजना विदूषक के संवादों, हावभावों और वाक्चातुर्य द्वारा की गई है, जो पूरे नाटक में विनोदमय वातावरण निर्मित करता है। अद्भुत रस की निष्पत्ति भैरवानन्द के योगबल, दोहद से वृक्षों में पुष्प-प्रस्फुटन तथा अप्रत्याशित घटनाओं से होती है, जो दर्शकों में विस्मय का संचार करती है।

ध्वनिवाद के परिप्रेक्ष्य में भावध्वनि का प्रयोग राजशेखर की साहित्यिक सूक्ष्मदर्शिता को प्रकट करता है। देवी चामुण्डा एवं राजा के प्रति अनुराग, भैरवानन्द की गर्वोक्ति, तथा विस्मयजनक घटनाओं में रसाभास न होकर केवल भाव का बोध - इन सभी में भावध्वनि का साक्षात् अनुभव होता है। यह रचना न केवल रसात्मक परिपक्वता का उदाहरण है, अपितु ध्वनिवादी आलोचना के लिए भी मूल्यवान आधार प्रस्तुत करती है।

अतः कर्पूरमञ्जरी एक ऐसा काव्यात्मक नाट्य प्रयोग है जिसमें नाट्यशास्त्रीय रस सिद्धांत और काव्यशास्त्रीय ध्वनि सिद्धांत का संगम प्राप्त होता है। यह रचना अपने रस विधान, चरित्र-चित्रण, चमत्कारिक घटनाओं एवं ध्वनि-व्यंजना की समरसता के कारण संस्कृत-प्राकृत नाट्य परंपरा में अद्वितीय स्थान रखती है।

बीज शब्द -कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सट्टक साहित्य, रस सिद्धांत, शृंगार रस, हास्य रस, अद्भुत रस, भावध्वनि, ध्वनि सिद्धांत, आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव, संयोग-विप्रलम्भ, नाट्यशास्त्र, प्राकृत नाटक, ध्वनिवाद, साहित्यदर्पण, नाट्यरंग सौंदर्य, भाव प्रधानता।

महाकवि राजशेखर को रसवादी आचार्य माना गया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है - ''रसः काव्यस्य

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सह आचार्य-संस्कृत विभाग, कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

आत्मा'', अर्थात्रस ही काव्य की आत्मा है।[1] इस सिद्धांत को उन्होंने अपनी प्रसिद्ध नाट्य कृतिकर्पूरमञ्जरी में पूर्णतः मूर्त रूप दिया है। इस सट्टक में कवि ने रस के परिपोषण पर विशेष ध्यान दिया है और विशेषतः शृंगार रसको अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यद्यपि हास्य और अद्‌भुत रस की भी यत्र-तत्र झलक मिलती है, फिर भी संपूर्ण कृति में शृंगार रस की प्रधानता है।

शृंगार रस -

राजशेखर ने सट्टक के प्रारंभ में ही काम एवं रति की सुरत-क्रीड़ाओं को नमस्कार अर्पित करते हुए स्पष्ट संकेत दिया है कि यह काव्य प्रेम और रति की सजीव अभिव्यक्ति पर आधारित है। नायक चन्द्रपाल और नायिका कर्पूरमञ्जरी के बीच के आकर्षण को प्रकट करने हेतु कवि ने शृंगार रस के चार प्रमुख साधनों - श्रवण, चित्र, स्वप्न, एवं प्रत्यक्ष दर्शन - को अत्यंत कलात्मक रूप में चित्रित किया है। उदाहरणतः, विदूषक द्वारा कर्पूरमञ्जरी की अनुपम सुंदरता का वर्णन सुनने पर नायक उसे देखने की उत्कंठा व्यक्त करता है (श्रवण)। प्रत्यक्ष मिलन में वह उसके रूप माधुर्य पर मोहित हो जाता है (प्रत्यक्ष दर्शन)। वियोग की दशा में वह चित्र फलक पर उसकी आकृति बनाता है (चित्र), और स्वप्न में भी उसका दर्शन करता है (स्वप्न)। इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने नायक-नायिका के प्रेम को गहराई से अनुभूत कर उसे रसात्मकता प्रदान की है।

संयोग शृंगार रस का एक प्रमुख उदाहरण प्रथम जवनिकान्तर में मिलता है, जहाँ नायक कर्पूरमञ्जरी के रूप माधुर्य का वर्णन करते हुए कहता है -

''तहा रमणवित्थरों जह ण ठाइ काञ्चीलआ, तहा अ थणतुंगिमा जह ण एह गाहिं मुहं।
तहा णअणबंहिमा जह ण किपि कण्णुप्पलं, तहा अ मुहमुज्जलं दुस्ससिणी जहा पुण्णिमा।।''[2]

अर्थात् इस नायिका की जंघाएँ इतनी चौड़ी हैं कि करधनी पर्याप्त नहीं होती; स्तन इतने ऊँचे हैं कि मुख नाभि तक नहीं पहुँच सकता; नेत्र इतने बड़े और मनोहारी हैं कि कानों में कर्णाभूषण की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती; और मुख इतना कान्तिमान है कि जैसे पूर्णिमा की रात में दो चन्द्रमा एक साथ निकल आए हों।

इस उद्धरण में नायिका आलम्बन विभाव के रूप में प्रस्तुत है, नायक आश्रय विभाव है। नायिका की जंघा, नेत्र, मुखकान्ति आदि उद्दीपन विभाव हैं। नायक की भाव-भंगिमा, आकर्षण, दीर्घश्वास, स्पृहापूर्वक अवलोकन आदि अनुभाव हैं, तथा स्मृति, चिंता, उत्कंठा जैसे भावव्यभिचारी भावकी कोटि में आते हैं। इन समस्त भावों के समुचित संयोग से नायक के भीतर रति स्थायी भाव जाग्रत होता है, जिससे शृंगार रस की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार, राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी रस चिंतन की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध नाट्य रचना है, जिसमें शृंगार रस का सौंदर्यपरक और रसात्मक रूप अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुआ है। यदि रस ही काव्य की आत्मा है, तो कर्पूरमञ्जरी उस आत्मा का साक्षात् साक्ष्य है।

महाकवि राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी में संयोग शृंगार रस की अत्यंत सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। एक स्थल पर नायक, काम-संताप से व्याकुल नायिका के पास पहुँचकर उसके सौंदर्य की प्रशंसा करता है -

जिस्सा पुरा ण हरिदा दलिया हलिदुदा, रोसाणिअआं ताई ण कणक ण अ चम्पआई।
सुवण्णकुसुंमेहि विलोअणाई, अच्चेमि जेहिं हरिणच्छ! तुमंसि दिट्ठा।।[3]

''अपि हरिणी-नयनवाली! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नहीं है, हुआ सोना भी तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना में फीके हैं; मेरी जिन आँखों ने तुझे देखा है, वे अब केवल तुझी की पूजा करना चाहेंगी।''

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायक आश्रय विभाव, नायिका की नेत्र-छवि उद्दीपन विभाव, और वेपथु, दीर्घश्वास, स्वेद आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य, लज्जा आदि व्यभिचारी भावों के संयोग से रति नामक स्थायीभाव उद्दीप्त होता है, जिससे शृंगार रस की निष्पत्ति होती है।

एक अन्य स्थल पर नायक नायिका का हाथ पकड़कर कहता है -

जे णवत्थ तिउसस्स कण्टआ जे कदम्बमउस्स केसरा। अज्ज तुज्झ करफंससंगिहि ते हुअंति मह अंगणिज्जिदा।[4]

अर्थात् ''त्रपुष फल के काँटे और कदम्ब के फूल की केसर भी तेरे हाथ के स्पर्श से उत्पन्न हुए मेरे अंगों के रोमांच के सामने कुछ नहीं हैं।''

यहाँ रोमांच अनुभाव, चंद्रप्रकाश जैसे बाह्य तत्व उद्दीपन, और प्रेमजन्य संतुलित उत्साह व्यभिचारी भाव हैं, जिनसे पुनः रति स्थायीभाव जाग्रत होकर शृंगार रस को मूर्त करता है।

इसी प्रकार, काव्य की रस-सम्पन्नता विप्रलम्भ शृंगार के द्वारा और गहराई पाती है। एक स्थल पर विरहाग्नि में तपती हुई नायिका की मानसिक दशा का वर्णन है -

णीसासा हारजट्टीसरिसपसरणा चन्दर्ण फोडकारी चन्दो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि।
अड्ढाणं पण्डुभाओ दिवससससिकलाकोमलो कि च तीए णिच्च बाहप्पवाहा तुह सुहअ! कए होंति कुल्लाहि तुल्ला।।[5]

''उसकी साँसें हारलता जैसी हैं, चन्दन उसके शरीर को जलाता है, चन्द्रमा उसकी देह को दाह देता है, मुख की मुस्कान मृत्युकामना का स्मरण कराती है, शरीर पीला पड़ गया है और बहते आँसू कृत्रिम नदी जैसे प्रतीत होते हैं।''

यहाँ नायक आलम्बन, नायिका आश्रय, शरीर संताप, पीला रंग, अश्रुपात अनुभाव, और व्याधि, स्मृति, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। रति का विकृत रूप यहाँ करुणा और विरह के रंग में रंगा है, जो रस की उत्कटता को चरम तक ले जाता है। इसी प्रकार, एक अन्य स्थल में नायक का यह कथन अत्यंत मार्मिक है -

चित्ते चिहुट्टइ ण खुट्टइ सा गुणेसुं, सेजासु लोट्टइ विसप्पइ दिस्सुहेसुं।
ह बोलम्मि बट्टइ पअट्टइ कब्बबंधे, झाणेण श्तुटूटदि चिरं तरुणी चलाक्खी।।[6]

''वह चंचल नेत्रें वाली तरुणी मेरे चित्त में सदा विद्यमान है, वह मेरे साथ शय्या पर प्रतीत होती है, मेरी बातों को सुनती है, मेरे विषय में काव्य रचती है और मेरे ध्यान से कभी भी ओझल नहीं होती।''

यहाँ उन्माद की स्थिति है, जो विप्रलम्भ शृंगार की चरम परिणति है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, और व्यभिचारी भावों के संयोग से पुनः रसोत्कर्ष की अवस्था उत्पन्न होती है।

हास्य रस -

कर्पूरमञ्जरी में हास्य रसकी अभिव्यक्ति भी अत्यंत प्रभावशाली है, जिसका केन्द्र बिंदु है - विदूषक। विदूषक की गर्वोक्तियाँ, मूर्खतापूर्ण व्यंग्य और पाण्डित्य-प्रदर्शन हास्य का वातावरण निर्मित करते हैं। एक स्थान पर विदूषक चेटी से कहता है -

विदूषक :- भो! तुम्हाणं सव्वाणं मज्झे अहम् एक्को कालक्खरिओ जस्स में ससुरस्य ससुरो पण्डितघरे पुत्यथि आई बहंतो आसि!

चेटी :- (विहस्य) तदो आगदं अण्णएण

विदूषक :- (सक्रोधम्) आ दासीए धूए भविस्सकुट्टणि! विललक्खणे! अविअक्खणे! ईदिसोऋहं मुक्खो जो तए बि उवहसिआमि?[7] **...**

अर्थात् ''मैं ही सब में अकेला मूर्ख हूँ, जिसके ससुर का ससुर भी पंडित था।'' चेटी हँसते हुए उत्तर देती है - ''तो फिर तो तुम वंश परम्परा से विद्वान हुए!'' विदूषक क्रोधित होकर कहता है - ''अरे दासी की पुत्री! निर्लक्षण! तू भी मेरा उपहास करती है?''

यहाँ विदूषक आलम्बन, चेटी, रानी, राजा आदि आश्रय, उसकी वेशभूषा व चेष्टाएँ उद्दीपन, हँसना, मुस्कुराना आदि अनुभाव तथा गर्व, असूया आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिनसे हास्य रस की निष्पत्ति होती है। एक अन्य स्थान पर विदूषक द्वारा श्वेत वर्ण के पुष्पों की तुलना ओदन (भात) और दही से की जाती है -

विदूषक - (पठति)-

फुल्लक्कुरं कमलकूरसमं बहुंति जे सिंदुबारबिडबा मह बल्लभा दे।
जे गालिअस्स महिसीदहिणी सरिच्छा ते कि च मुद्धबिअइल्लपसूणपुंजा।।[8]
विचक्षणा-णिअकंतारंजणजोग्गं दे बअर्ण। विदूषक-ता उआरबअणे! तुम पढ़।
देवी-(किञ्चत् स्मित्वा) सहि विअक्खणे...।[9]

''श्वेत पुष्प तो उस भात की तरह हैं जो विचक्षणा जैसी पत्नी को प्रिय लगते हैं।'' इस पर देवी हँसकर उत्तर देती है - ''प्रियभाषिणी! तुम्हारी कविता तो सास को प्रसन्न करने योग्य है।''

यहाँ भी वही रस-संरचना है - विदूषक आलम्बन, देवी आश्रय, पुष्प-तुलनाएँ उद्दीपन, हँसी-मजाक अनुभाव, और विनोदप्रियता, पाण्डित्य का गर्व आदि व्यभिचारी भाव।

तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक का स्वप्न-वर्णन भी हास्यरस की अद्भुत अभिव्यक्ति करता है, जहाँ उसकी कल्पना, राजा की स्मरपीड़ा, और विदूषक का विनोद एक साथ हास्यरस को उत्तेजित करते हैं। इस प्रकार, कर्पूरमञ्जरी सट्टक में संयोग, विप्रलम्भ एवं हास्य रसों की त्रिवेणी के माध्यम से राजशेखर ने रसात्मक सौंदर्य का एक सजीव और कलात्मक संसार रच दिया है, जो नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान है।

अद्भुत रस -

महाकवि राजशेखर द्वारा रचित कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अद्भुत रस का समावेश अत्यंत कलात्मक ढंग से हुआ है। नाटकीयता की दृष्टि से अद्भुत रस का समुचित समायोजन आवश्यक माना जाता है, क्योंकि इससे कथानक में विस्मय, नवीनता एवं दर्शनीयता का संचार होता है। कर्पूरमञ्जरी में यह रस प्रारम्भ से ही विद्यमान है और समय-समय पर विशेष घटनाओं, चमत्कारों और प्रकृतिपरक आश्चर्यजनक दृश्यों के माध्यम से सजीव होता गया है। निम्न उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं:

(क) भैरवानन्द द्वारा राजकुमारी को उपस्थित करने का चमत्कार - प्रथम जवनिकान्तर में राजा तथा विदूषक के आग्रह पर भैरवानन्द योगबल से विदर्भ नगर की राजकुमारी को एक क्षण में प्रस्तुत कर देता है। यह घटना स्वयं में अत्यंत अद्भुत है। राजकुमारी का सौंदर्य और उसका अलौकिक प्रवेश राजा को विस्मित कर देता है, और वह कह उठता है -**''अहो! अच्चरिअं! अच्चरिअं जंधोआजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो। ज एक्के सिचअंचलं ण्णिबसिदं त ण्हाणकेलिट्ठिदा आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा?**[10]

अर्थात् राजकुमारी की दशा का वर्णन इस प्रकार किया गया है। ''धोआ जल से भीगे नेत्र, बिखरे हुए केश, हाथों में केशों को पकड़ना, एक ही वस्त्र से ढका शरीर और टपकती जल बिंदुएँ – यह सब देखकर प्रतीत होता है कि यह योगी भैरवानन्द स्नान करती हुई राजकुमारी को वहीं से उठा लाया है।''

यहाँ नायिका आलम्बन, राजा आश्रय, योगबल से लाने की घटना एवं सौंदर्य उद्दीपन विभाव, नेत्र-विकास, विस्मयादि अनुभाव, और हर्ष, आश्चर्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनका समुचित संयोग विस्मय स्थायी भाव को उद्दीप्त करता है जिससे अद्‌भुत रस की निष्पत्ति होती है।

(ख) दोहद के प्रभाव से कुरबक वृक्ष में पुष्पोद्‌ भवन - द्वितीय जवनिकान्तर में एक अत्यंत मनोरम दृश्य प्रस्तुत हुआ है, जहाँ कर्पूरमञ्जरी द्वारा कुरबक वृक्ष के प्रगाढ़ आलिंगन से उसमें एकाएक फूल खिल उठते हैं। यह घटना विदूषक को विस्मय में डाल देती है और वह कह उठता है -

''भो! पेक्ख पेक्ख महिन्दजालं'', अर्थात्, ''अरे देखो तो सही! यह कैसी चमत्कारी जादू विद्या है!'' वह आगे कहता है -

''बालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढमुवगूढ़ो...मअणसरं विअ समुग्गिरइ।''[11]

राजा इस अद्‌भुत घटना को दोहद का प्रभाव बताता है - **''ईदिसो ज्जेव दोहलअस्स प्पह्मवो।''** यहाँ कुरबक वृक्ष आलम्बन, विदूषक आश्रय, फूल खिलना उद्दीपन, हर्ष, विस्मय आदि अनुभाव, तथा चकितता, कौतूहल, रोमांच आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिनसे विस्मय स्थायी भाव जागृत होकर अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति करता है।

(ग) अशोक[12] **एवं तिलक वृक्ष**[13] **के दोहद तथा विवाह प्रस्ताव की घटना -** चतुर्थ जवनिकान्तर में जब महारानी द्वारा राजा का विवाह तय करने की बात सामने आती है, तब विदूषक आश्चर्यचकित होकर कहता है - ''भो! कि इदं अकालकोहण्डपउणं?'' अर्थात् – ''अरे! क्या यह अकाल विवाह का आयोजन है?''

राजा भी विस्मित हो जाता है और सविस्तार इस निर्णय का कारण जानना चाहता है। यहाँ राजा आश्रय, सारंगिका की सूचना उद्दीपन, विवाह निर्णय की अप्रत्याशितता अनुभाव, तथा आश्चर्य, उच्छंवास आदि व्यभिचारी भाव हैं, जो अद्‌भुत रस को उत्पन्न करते हैं।

भाव-ध्वनि -

कर्पूरमञ्जरी में राजशेखर ने न केवल रसों की सजीव योजना की है, बल्कि भावध्वनि की सुकुमार अभिव्यक्तियाँ भी प्रस्तुत की हैं। साहित्य दर्पण के अनुसार जब निर्वेद, गर्व, औत्सुक्य आदि संचारी भाव प्रमुखता से प्रकट होते हैं, अथवा जब स्थायी भाव (जैसे रति, हास आदि) केवल उद्‌बुद्ध होकर रस रूप को नहीं प्राप्त कर पाते, तब उन्हें ''भाव'' या ''भावध्वनि'' कहा जाता है।[14] इस दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी में भावध्वनि के चारों प्रकारों के उत्तम उदाहरण मिलते हैं।

(क) देवता विषयक अनुराग की अभिव्यक्ति - द्वितीय जवनिकान्तर में भैरवानन्द चामुण्डा देवी के प्रति भावनात्मक अनुराग प्रकट करता है :

''कप्पन्तककेलिभवे कालस्य पुराणयहिरसुरं। जअदि पिअन्ती चण्डी परमेट्ठिकवालचसएण।।''[15]

अर्थात् ''प्रलयकाल में महाकाल के क्रीड़ा-मन्दिर में ब्रह्मा के कपाल से निकले रक्तरस को पीती हुई चामुण्डा की जय हो।'' यहाँ रति स्थायीभाव देवी विषयक अनुराग के रूप में प्रकट है, परन्तु रस की पूर्णावस्था को नहीं प्राप्त कर सका है। अतः यह देव विषयक रति भाव ध्वनि का उदाहरण है।

(ख) राजा विषयक अनुराग का भावात्मक स्तवन - वैतालिक राजा के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहता है- **''जअ पुब्बदिअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णऊर!...संब्बंगसुन्दरत्तणरमणिज्ज!''**[16] यहाँ राजा के सौन्दर्य, पराक्रम और शील का अत्यधिक प्रशंसात्मक वर्णन है, जिससे राजा के प्रति रति भाव की स्पष्ट व्यंजना होती है, यद्यपि वह रस रूप में विकसित नहीं होता। अतः यह भी भाव ध्वनि का उत्तम उदाहरण है।

(ग) गर्व नामक संचारी भाव की प्रधानता - भैरवानन्द अपनी शक्तियों का गर्वपूर्वक वर्णन करते हुए कहता है- **''दंसेमि तं पि ससिणं बसुहाबइण्णं...तं णत्थि भूमिबलए मह जं ण सद्धं ।''**[17] अर्थात्, ''मैं चंद्रमा को नीचे उतार सकता हूँ, सूर्य को रोक सकता हूँ, यक्षों और सिद्धों की स्त्रियों को ला सकता हूँ - पृथ्वी पर ऐसा कोई कार्य नहीं जो मुझसे न हो ।''

यहाँ यद्यपि कथन विस्मय रस के योग्य है, परन्तु गर्व नामक संचारी भाव इतना प्रबल है कि वही प्रधानता से प्रकट होता है । इसीलिए इसे प्रधान सजंचारी भाव की भाव ध्वनि माना जाता है ।

(घ) उद्‌बुद्धमात्र स्थायी भाव - कई प्रसंगों में स्थायी भाव केवल जाग्रत होते हैं, किंतु रस रूप में पूर्ण नहीं होते । जैसे कि विदूषक के विचित्र स्वप्न को सुनकर राजा कहता है- ''अहो! विचित्तदा सिविणअस्स ।'' यहाँ विस्मय तो उत्पन्न हुआ है, परंतु अन्यविभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावके अभाव में वह रस के रूप में पूर्ण नहीं हो पाता । इसी प्रकार वसंत ऋतु में केवड़े की सुगंध से असमय में उसका खिल जाना तथा अंतिम जवनिकान्तर में घनसारमञ्जरी की जगह कर्पूरमञ्जरी को देखकर महारानी का कहना - **''आए! सारिच्छएण विडंबिदाम्हि ।''**[19]

(अर्थात्, ''अरे! इस समानता ने मुझे चकित कर दिया है ।'' यह सब विस्मय के केवल उद्‌बुद्ध मात्र स्थायी भाव के उदाहरण हैं, जहाँ रसोत्कर्ष नहीं हो सका, अतः इन्हें भाव ध्वनि की चौथी कोटि में रखा जाता है ।

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एक अद्वितीय नाट्यकृति है, जिसमें नाट्यशास्त्रीय रस-सिद्धांत और काव्यशास्त्रीय ध्वनि-सिद्धांत का सशक्त समन्वय प्राप्त होता है । इस सट्टक में कवि ने शृंगार, हास्य और अद्‌भुत रसकी अत्यंत प्रभावशाली योजना की है, जो पात्रों की मनोवृत्तियों, संवादों और घटनाओं के माध्यम से पूर्णतः रसानुभूति प्रदान करती है । शृंगार रस की संयोग और विप्रलम्भ की विविध स्थितियाँ, हास्य रस में विदूषक की विदग्धता, और अद्‌भुत रस में भैरवानन्द के चमत्कारी कार्यों का वर्णन दर्शकों के भाव-जगत को उद्वेलित कर देता है । इन रसों के साथ-साथ कवि ने भाव ध्वनि के चारों प्रमुख भेदों - देवता एवं राजा विषयक अनुराग, गर्व जैसे संचारी भाव की प्रधानता, तथा विस्मय आदि स्थायी भावों की केवल उद्‌बुद्ध स्थिति - का कलात्मक संयोजन किया है । इन भावों की व्यंजना न केवल रचनात्मक सौंदर्य को सघन करती है, अपितु नाटकीय अनुभूति में गहराई भी उत्पन्न करती है । बी इस प्रकार, कर्पूरमञ्जरी केवल एक नाट्य-कृति नहीं, अपितु रस एवं ध्वनि के सिद्धांतों का जीवंत प्रयोग क्षेत्र है । यह नाटक यह सिद्ध करता है कि भाव, रस और ध्वनि का संतुलित प्रयोग किसी भी रचना को कालजयी बना सकता है । राजशेखर का यह सट्टक प्राकृत साहित्य की परंपरा में और भारतीय नाट्यशास्त्रीय परिपाटी में एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो शोध और रसपरक समीक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

संदर्भ -

1. *रस आत्मा,..... । काव्यमीमांसा, तृतीय अध्याय, (पं. केदारनाथ शर्मा सारस्वत), पृष्ठ 15*
2. *कर्पूरमंजरी 1/34*
3. *कर्पूरमञ्जरी, 3/22*
4. *कर्पूरमञ्जरी, 3/24*
5. *कर्पूरमञ्जरी, 2/10*
6. *कर्पूरमञ्जरी, 2/4*

7. कर्पूरमञ्जरी, (राम कुमार आचार्य) पृष्ठ 19-20
8. कर्पूरमञ्जरी, 1/19
9. कर्पूरमञ्जरी, (राम कुमार आचार्य) पृष्ठ 19
10. कर्पूरमञ्जरी 1/26
11. कर्पूरमञ्जरी 2/45
12. कर्पूरमञ्जरी 2/46
13. कर्पूरमञ्जरी 2/47
14. सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः। उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते।। साहित्यंदर्पण 3/260
15. कर्पूरमञ्जरी 4/19
16. कर्पूरमञ्जरी राम कुमार आचार्य पृष्ठ 12
17. कर्पूरमञ्जरी 1/25
18. कर्पूरमञ्जरी राम कुमार आचार्य पृष्ठ 17
19. कर्पूरमञ्जरीराम कुमार आचार्य पृष्ठ 19

45

'कर्पूरमञ्जरी' में शृंगार रस-परिपाक

गुलशन कुमार *

जगज्जाल में आबद्ध जीव की प्रायः एक ही परमेषणा रहती है आनन्द की प्राप्ति। आनन्द अनुभूति और साक्षात्कार का विषय है। आनन्द के स्वरूप व अनुभूति के सन्दर्भ में हमारे शास्त्रों में अनेक तथ्य मिलते है। कभी-कभी इस आनन्द के लिए सौन्दर्य शब्द का भी प्रयोग होता है। आनन्द और सौन्दर्य ये शब्द पूरक और पर्याय दोनों हो सकते है, आनन्ददायक वस्तुएं सौन्दर्यशील है, सौन्दर्य दर्शन से आनन्द प्राप्ति होती है। हम यह भी कह सकते है; जहाँ सौन्दर्य है, वहीं आनन्द है और जहाँ आनन्द है, वहीं सौन्दर्य। सुन्दर वस्तुओं के प्रति नैसर्गिक आकर्षण सौन्दर्य भावना के कारण होता है। स्थित्यनुसार सौन्दर्य के मानक बदलते रहते हैं किन्तु उद्देश्य केवल आनन्द की प्राप्ति ही है। जगन्मूल के विषय में कथन है- **'ते वा एते रसानां रसाः। वेदाः हि रसाः।**[1] **रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'**।[2] रस हमारे यहां मूल तत्त्व से लेकर आनन्दमय ब्रह्म तक है। रस की सर्वव्यापकता को दिखाते हुए वैशेषिक में रस को जल एवं पृथ्वी का आधार कारण तथा आकाश, वायु एवं तेज को उसका अप्रधान कारण कहा गया है। भरतमुनि कहते हैं कि जिस प्रकार नाना व्यंजनौषधि द्रव्य के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार अनेक भावों (विभाव, अनुभाव एवं सञ्चारी भाव) के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। **विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।**[3] इन्होंने रस को आस्वाद्य बताया। **'रसः आस्वाद्यतात्'**[4]**।** कविजन तो जरा और मृत्यु से रहित **रससिद्धाः कवीश्वराः**[5] हैं। रस के अनेक रूप हमें अपने वाङ्मय में देखने को मिलते हैं। विश्वनाथ ने **वाक्यं रसात्मकं काव्यं**[6] कहकर काव्य लक्षण ही किया है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रस के अनेक भेद किये गये है, जिनमें शृंगार रस की बहुत प्रतिष्ठा है, भोज ने इसे रसराज तक कह दिया है। भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में कवि के लिए शृंगारी होना आवश्यक कहा है- **शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्। स एव चेदशृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्।।**[7] जो मनुष्य को शृंग तक पहुंचा देता है। वह शृंगार है। 'शृंगं प्राधान्यं इर्यति इति शृंगारः' शृंग अर्थात् कूट भावना के उच्चतम स्तर पर पहुंचाने वाला रस शृंगार कहलाता है। शृंगार रस के सन्दर्भ में भी जाकी रही भावना जैसी वाली बात आ जाती है। कोई कवि सूक्ष्म दृष्टि रखकर शृंगार को ब्रह्मानन्द सरोवर तक पहुंचा देता है तो कोई स्थूल दृष्टि रखकर स्त्री पुरुष सुरत लीला तक सीमित रखता है। जिसे विद्वान् क्रमशः अश्रेयस्कर कहते हैं। हालाँकि शृंगार का स्वरूप तो वृहद् ही है। इसके मूल में आनन्द और सौन्दर्य निहित है। सामान्य स्थूल चेतना (प्रजनन) एवं सर्जनात्मकता, आनन्दानुभूत्यात्मकता सब शृंगार के

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *शोधच्छात्र-संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)*

अङ्ग है। काम चाहे जितना भी विवादित हो किन्तु यह भी निर्विवाद है कि जगत् के मूल में काम है। काम के बाधित होते ही सृजन स्वतः रुक जाता है। सृजन के लिए कामना व काम अपरिहार्य है। काम भी शृंगार रस का ही एक अहम हिस्सा है जो परवर्ती काल में मुख्य रूप से शृंगार रस के रूप में काव्य का भाग रहा। परमात्मा भी सृजन के लिए कामना करता है। मैं एक हूँ अनेक हो जाऊं। **सोऽकामयत्। बहुस्याम। प्रजायेय।**[8] मनुस्मृति में ब्रह्मा स्वयं को जगत् की सृष्टि के लिए स्त्री और पुरुष दो भागों में विभक्त करते है। जिससे स्त्री व पुरुष मिलकर सृजन की क्रिया निरन्तर करते रहे ।

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरूषौभवत्। अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ।।[9]

शृंगार व काम के सन्दर्भ में भी हमारी देवमयी संस्कृति अपनी आभा बिखेरती है। समग्र सृष्टि में काम का सञ्चरण और नियमन करने वाले अधिष्ठातृ देवता कामदेव को माना जाता है। इन्हें मन्मथ, कन्दर्प, मदन, मनोज, रतिकान्त, पुष्पधन्वा आदि नामों से जाना जाता है। प्रायः साहित्य का हेतु पुरुषार्थ चतुष्टय को मानते है, किन्तु नाट्यशास्त्र के आचार्य भरतमुनि ने कामशास्त्र को ही व्यापक भूमि प्रदान की है। काम से ही समस्त भावों की निष्पत्ति होती है, काम ही इच्छागुण सम्पन्न होकर नाना रूप धारण करता है।

प्रायेण सर्वभावानां कामान्निष्पत्तिरिष्यते। सचेच्छा गुणसम्पन्नो बहुधा परिकीर्तितः।।[10]

हम यह देखते है कि नाट्यशास्त्र में काम पुरुषार्थ की महत्ता है और भगवान् मन्मथ इसके देव है, अतः नाट्यशास्त्रीय परम्परा में जो रचनाएँ होंगी वह कहीं न कहीं इसी मूलभावना(शृंगार) के इर्द गिर्द रहेगी। इसी परम्परा में आचार्य राजशेखर का प्रसिद्ध उपरूपक कर्पूरमञ्जरी है, जिसकी पूरी कथा काम पुरुषार्थ के आस-पास ही चलती है। सट्टक की कथावस्तु भी सीमित होती है, अतः कथानक में भी केवल शृंगार रस ही मुख्य रूप से आ पाया है। भैरवानन्द के ऐन्द्रजालिक कर्म की सहायता से राजा चन्द्रपाल द्वारा कर्पूरमञ्जरी को देखना और परस्पर अनुराग उत्पन्न होने पर कामातुर हो अन्त में विवाह कर लेना ही मुख्य कथानक है। सम्पूर्ण कथा में इसी घटना को लेकर शृंगारिक वर्णनों की झड़ी लगा दी गई है, कुछ स्थानों पर प्रेम के स्वाभाविक और कहीं वास्तविक रूप का भी कथन किया गया है। मंगलाचरण रूपी दूसरे श्लोक में कवि काम और रति की सुरत क्रीडाओं को नमस्कार करने की बात कर नाटक की शृंगारिकता को बता देता है। तीसरे श्लोक में भी सुरत की इच्छा करने वाले शिव पार्वती से आनन्द की कामना की गई है। राजा चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी परस्पर आलम्बन के रूप में, प्रकृति उद्दीपक के रूप में, परिवेश तथा इनके द्वारा व्यक्त शृंगारिक कथन अनुभावों के रूप में तथा अभिलाषा, चापल्य, आशा, स्मृति, आवेग, चिन्ता, मोह, उन्माद आदि संचारी भाव के रूप में है।

भारतीय साहित्य में वसन्त ऋतु को शृंगार प्रधान ऋतु माना गया है, इस ऋतु में प्रकृति अपने यौवन के उमङ्ग में रहती है। जिसके प्रभाव से युवा व रसिक जन भी यौवन के मद में उत्सव मनाते हैं। इस ऋतु का प्रभाव महारानी पर देखा जा सकता है।

बिबोट्टे बहलं ण देंति मअणं णो गंधतेल्लाबिला बेणीआ बिरअंति देंति ण तहा अंगम्मि कुप्पासअं।[11]
जं बाला मुहकुंकुमम्मि बि घणे बट्टंति ठिल्लाअरा तं मण्णे सिसिरं बिणिज्जिअ बला पत्ती बसंतूसओ।।[12]

अर्थात् महारानी स्वयं ओष्ठ पर विलेपन कम लगाती है, बालों में सुगन्धित तेल लगाकर शृंगार नहीं करती, चोली तथा वस्त्रों को भी ठीक से नहीं पहनती, मुख में राग तक नहीं लगाती। मैं (राजा) समझता हूँ कि शीत ऋतु को पराजित कर वसन्तोत्सव आ गया है। वसन्त ऋतु में हरे भरे पर्वतों से टकराकर आने वाले वाली वायु भी अपना प्रभाव दिखलाती है। यथा -

पंडीणं गंडबालीपुलअणचबला कंचिबालाबलीणं माणं दो खंडअंता रइरहसकला लोलचोलप्पिआणं।
कण्णाडीणं कुणंता चिउरतरलणं कुतंलीणं पिएसुं गुंफंता णेहगंथि मलअसिहरिणो सीअला बांति बाआ।।[13]

अर्थात् पश्चिमी घाट मलयाचल से चल रही सुरम्य वात पूरे दक्षिण भारत की कामिनियों को काम भाव से पूर्ण कर देती है। इसके प्रभाव में पाण्ड्य देश की रमणियों के कपाल रोमाञ्चित हो रहे है, कांची की कामिनियां प्रायः सायं काल भी काम चेष्टा कर रही है, चोल की चपल नारियां सम्भोग के लिए उत्साहित है, कर्णाट की स्त्रियाँ बालों के बन्धन को ढीला रखती है, कुन्तल देश की प्रेयसियां प्रेमियों का आलिंगन कर रही है। और भी - मलय पर्वत की इन हवाओं से प्रकृति नृत्य कर रही है, इसके प्रभाव से रूठी प्रेमिकाएं भी अपना कोप छोड़ दे रही है और सभी आनन्द में है।[14] इस प्रकार के वसन्तोत्सव के समय में ही सट्टक की पटकथा है, अतः शृंगार तो होना ही था। तांत्रिक भैरवानंद तो यहाँ तक कहता है कि हम तो स्त्री सहवास से ही मोक्ष पाते है। शृंगारिक वर्णनों में प्रायः सौन्दर्य से परिपूर्ण रमणी व उसके सज्जा की वस्तुओं व उद्दीपक विभावों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की जाती है। वह यहाँ भी है। स्नानोपरान्त गीले वस्त्रों में नायिकाओं का आङ्गिक सौन्दर्य उभरकर दिखता है ,अतः कवि अति शृंगारिकता का प्रदर्शन करते हुए मुख्य नायिका कर्पूरमञ्जरी को सर्वप्रथम इसी अवस्था में मञ्च पर उपस्थित करता है। यथा

एक्केण पाणिणलिणेण णिबेसअंती बत्थंचलं घणथणत्थलसंसमाणं।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स विसंजमंती अण्णेण चंकमणदो चलिदं कडिल्लं।।[15]ध

अर्थात् कर्पूरमञ्जरी बढ़े हुए स्तनों से खिसकते हुए वस्त्र को एक हाथ से ठीक करती है, चलते समय उसका कटि वस्त्र ढीला पड़ता है, उसे भी हाथ से सम्भालती है। ऐसी नायिका भला किसके हृदय को न जीत ले। विदूषक भी इस सद्यः स्नाता रमणी का सौन्दर्य वर्णित करते हुए कहता है-

मण्णे मज्झं तिबलिबलिअं डिभमुट्ठीअ गेज्झं णो बाहूहिं रमणफलअं बेट्टिदुं जादि दोहिं ।
णेत्तक्खेत्तं तरुणिपसुईदिज्जमाणोबमाणं ता पच्चक्खं मह बिलिहिदुं जादि एसा ण चित्ते।।[16]

अर्थात् स्नान के कारण आभूषण विहिन होने पर यह नायिका अपने दर्शन से सौन्दर्य की वृष्टि करती है। वह कहता है कि इस सुदीर्घी नायिका की तीन रेखाओं से युक्त कमर बच्चे की मुट्ठी से पकड़ी जा सकती है, किन्तु जंघाओं को दोनों हाथों से पकड़ना पड़ेगा। राजा चन्द्रपाल भी कहता है कि जंघाएँ इतनी चौड़ी है कि करधनी उन पर नहीं आती, पयोधर इतने ऊँचे है कि मुख को नाभि तक नही लाया जा सकता, आखें इतनी बड़ी है कि कुण्डल की आवश्यकता ही नहीं है, मुख इतना प्रकाशित है कि पूर्णमासी की रात्रि में 1+1 = दो चन्द्रमा हो गये है।[17] (तहा रमण .... इत्यादि श्लोक)

इस प्रकार की सुन्दरी को देखकर राजा चन्द्रपाल को कर्पूरमञ्जरी से अनुराग हो जाता है, कर्पूरमञ्जरी को भी प्रथम दृष्ट्या गम्भीर व मधुर शोभा से युक्त अपनी ओर ही ध्यान से देखते चन्द्रपाल से प्रेम हो गया। कहा भी गया है कि प्रेम के लिए तो एक ही दृष्टि काफी है। जब किसी से अनुराग होता है तो उसके दृष्टि से ओझल होते ही विरहोत्पत्ति होती है, केवल प्रेमी या प्रेयसी ही विचार में आती है, कामज्वर सताता है, यही सब घटनाएँ चन्द्रपाल और कर्पूरमञ्जरी के साथ भी घटित होती है। राजा प्रेयसी के सुकुमार शरीर, नितम्बों, त्रिवली, तिरछी निगाहें, स्तनों पर बिखरें बालों का ध्यान करते हुए कहते है कि वह चञ्चल नेत्रों वाली तरुणी मेरे हृदय में बस गई है, वह मेरे साथ ही सोई है, हर तरफ मुझे वही दिखाई देती है, वह मेरे वचनों को सुनकर मेरे लिए काव्य रचना करती दिखाई पड़ती है। कर्पूरमञ्जरी से तनिक भी दूर रहना राजा को असह्य हो जाता है। चंद्रपाल कह उठता है- **जे तीअ तिक्खचलचक्खुतिभाअदिट्ठा ते कामचंदमहुपश्चममारणिज्जा।**

जेसुं पुणो णिवडिआ सअला वि दिट्ठी वट्टन्ति ते तिलजलाञ्जलिदाणजोग्गा।।[18]

अर्थात् उस नायिका ने जिसे अपने तीक्ष्ण नेत्रों के तीसरे भाग से भी देख लिया, उन्हें काम के प्रतीक कामदेव, चन्द्रमा, वसन्त, कोकिल स्वर शीघ्र ही मार डालेंगे। जिन लोगों पर उसकी भरपूर दृष्टि पड़ेगी, उन्हें तो मरा हुआ ही समझो, तात्पर्य है कि चन्द्रपाल प्रेमाभाव में प्राणशून्यता का अनुभव करता है। कर्पूरमञ्जरी भी अपने प्रेमी से मिलने के लिए व्याकुल है। विचक्षणा उसकी विरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है -

सह दिवसाणिसाहिं दीहरा सासदण्डा सह मणिवलएहिं बाहधारा गलन्ति।
सुहअ! तुह विओए तेअ उव्वेअणीए सह अ तणुलदाए दुव्वला जीविदासा।।[19]

अर्थात् तुम्हारें (चन्द्रपाल) के वियोग में उसके लिए दिन-रात सुदीर्घ हो गए है और वह लम्बी सांसे छोड़ती है। विरह में वह इतनी दुबली हो गई है कि उसके हाथ का कङ्गन निकल कर गिर पड़ा है, उसकी आखों से अश्रुधारा बहती रहती है, शरीर के दुर्बल हो जाने से वह मृत्यु के निकट चलती जा रही है। प्रेमी युगल चकवा-चकवी की तरह विलाप करते है, पारस्परिक सौन्दर्य को याद कर निरन्तर उसका वर्णन करते रहने के अलावा प्रेमियों को भला अन्य बात कहाँ सूझती है, यदि यकायक प्रेयसी दिख पड़े तो प्रफुल्लित हृदय बड़ी कोमलता से उसके सौन्दर्य को निहारता हुआ उसे ही सर्वसुन्दरी कहता है। हिंडोले पर झूलती कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए चन्द्रपाल कहता है कि उसका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख नगर की सभी नायिकाओं के मुखों को अपने सौन्दर्य से पीछे छोड़ दे रहा है। नेत्रों को सुख प्रदान करती प्रेयसी जैसे ही पुनः आखों से दूर हटती है तत्क्षण प्रेमी का मन भी शून्य हो उदास हो जाता है, इस सट्टक में भी कर्पूरमञ्जरी जैसे ही झूले से उतरती है, चन्द्रपाल कहता है- **कधमवदिण्णा कप्पूरमञ्जरी! रित्ता दोला, रित्तं अ मह चित्तं, रित्ताइं दंसणुस्सुआइं मह णअणाइं।**[20] अर्थात् अरे कर्पूरमञ्जरी तो उतर गई, झूला खाली होते ही मेरा मन भी खाली हो गया, उसको देखने के लिए उत्सुक मेरी आँखें भी खाली हो गई हैं। नायिका के जाते ही नायक विरही हो नायिका को अपने स्मृति पटल पर लाकर उसके सौन्दर्य वर्णन में खो जाता है। कामज्वर से पीड़ित नायक को बर्फ भी गर्म अनुभूत होता है। यथा - **अदिसिसिरं वि हिमाणि संतावदाइणि अणुहवामि।**[21]

अर्थात् नए पुष्प के समान यह कोमलाङ्गी कर्पूरमञ्जरी भी सन्ताप उत्पन्न कर रही है। पुनः राजा कहता है कि उसकी उत्तम दृष्टि तो मेरे मन में समाई है। कर्पूरमञ्जरी राजा को इतना प्रिय है कि रात्रि में सोते समय भी राजा की कल्पनाओं में वह आती है, अङ्क में बैठती है और नायक उसको बाँहों में भर लेना चाहता है, वह छुड़ाकर भागना चाहती है तो निद्रा टूट जाती है। संस्कृत प्रेम कथाओं की एक विशेषता यह भी होती है कि यहाँ प्रायः प्रेम व काम दोनों पक्षों में होता है। विचक्षणा कहती है- प्रिय सखी को बहुत तेज बुखार है, यह बुखार सामान्य बुखार नहीं है, यह तो किसी धीर-वीर, सौन्दर्यशाली युवक को देखने से ही किसी युवती को चढ़ता है। विरहाकुल कर्पूरमञ्जरी अपनी सखी से कहती है य हे सखी! जो तुम मेरे ज्वर को दूर करने के लिए यह शिशिरोपचार कर रही हो, वे मेरे ताप को कम नहीं कर पायेंगे। वियोग के बाद मिलन का भी समय आता है, इस मिलन के समय में नायिका नायक को देखकर कह उठती है कि सखि मैं तो चमत्कार देखती हूँ। मुदित मना हो नायक कहता है - मेरी जिन आखों ने तुम्हें देखा है, उनकी तो मैं हिरण्यमय पुष्प से पूजा करूँगा। महारानी के आने के डर से कर्पूरमञ्जरी पुनः चली जाती है। राजा कहता है कामार्तों के लिए प्रियजन से वियोग बड़ा ही कष्टकारी है। इसका प्रियजन की महत्ता को रेखांकित करते हुए कथन है -

पच्चंगं णवरूअभंगिघडणारम्भे जणे संगमो जाणं ताणं खणं व्व झत्ति दिअहा वट्टन्ति दीहा अपि।
जाणं ते अमणम्मि देन्ति ण रइं चित्तस्स सन्दाविणो जाणं जान्ति जगम्मि दीहरतमा मासोवमा बासरा।[22]

अर्थात् अगर अपना प्रिय पास में हो तो उस समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए क्योंकि प्रियजनों के साथ रहने पर लम्बे-लम्बे दिवस अति शीघ्र व्यतीत हो जाते है। प्रिय जनों के वियोग में तो दिन भी महीनों के बराबर होते है। अन्त में भैरवानन्द नामक तांत्रिक के उद्योग से महारानी स्वयं चन्द्रपाल एवं कर्पूरमञ्जरी का विवाह करा देती है। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा का वैशिष्ट्य है कि यह किसी भी तथ्य परसामान्य व विशेष दोनों प्रकार से विचार करती है, अतः रचनाओं में भी यह दिखलाई पड़ता है। सामान्यतः नायक-नायिका परस्पर अवलोकन के पश्चात् आसक्त हो विरहाकुल हो विवाह को प्राप्त होते है। अब प्रश्न उठता है कि विशिष्ट रूप में प्रेम का वास्तविक स्वरूप क्या है? प्रेम कैसे होता है? क्या प्रेम केवल शरीराकर्षण मात्र है अन्यथा कुछ और? इस प्रश्न का उत्तर भी यहाँ है। राजा चन्द्रपाल विदूषक से कहता है- **कदा वि संघडइ कस्स वि पेम्मगण्ठी एवमेव तत्थ ण हु कारणमत्थि रूअं।**[23] अर्थात् किसी का किसी से कभी भी प्रेम हो सकता है, प्रेम-बन्धन में बंधने के लिए सौन्दर्य ही कारण नहीं होता। प्रेम तो पास बैठे युगल का कामदेव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भाव है। यह भाव ऐसा है कि इसके उत्पन्न होने पर प्रेमी और प्रेमिका का चित्त निर्मल होकर स्वच्छ हो जाता है, इस स्वच्छ चित्त में पूर्ण आनन्द का रस बहता है और शृंगारभूषित कामदेव के द्वारा प्रेम उत्कर्ष को प्राप्त होता है। इसकी पुष्टि करते हुए चन्द्रपाल विदूषक से कहता है- **अन्तो णिविट्ठमअणविब्भमडम्मरं जं तं भण्णए अ मअणमण्डणमेत्थ पेम्मं।**[24] अर्थात् कामदेव ही लोगों के हृदय को रसासिक्त करते है, उस रस से जो विलास का आडम्बर होता है, वहीं प्रेम कहलाता है। रसोद्रेक का कार्य अनंग है, किन्तु रसोत्पत्ति के लिए उचित धरातल की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता। फिर वह कौन सी स्थिति है जो रस निष्पत्ति के लिए मूल है। सट्टक में कवि इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते है कि जितने भी कृत्रिम शृंगार किये जाते है; सब व्यर्थ है, कभी-कभी तो सौन्दर्य भी व्यर्थ हो जाता है। नृत्य, गीत, संगीत, मदिरा, सुगन्धि सब वृथा है। केवल मनुष्य की रूचि ही मुख्य है। मनुष्य की रूचि तो समस्त बाह्य सौन्दर्य को पीछे छोड़ देती है, रूचि का चयन ही प्रेम का निर्धारण कर देता है। प्रेम के सन्दर्भ में राजा, रानी या फिर सामान्य पुरुष किसी में भी कोई भेद नहीं है। युवती चाहे कितना भी शृंगार कर ले किन्तु उसकी मोहिनी शक्ति जो किसी भी युवक के हृदय को अपने वश में कर लेती है, वह तो कामदेव के छठें बाण के समान उनका यौवन है। कितनी भी सुन्दर कामिनी हो, भला वो अपने यौवन के ढल जाने पर किसी रसिक को रसासिक्त कर सकती है? नहीं कर सकती है। युवावस्था में ही रमणियों के अङ्ग प्रत्यङ्गों की शोभा अपने शिखर पर होती है। इस उपरूपक में शृंगार रस को छोड़कर अन्य कोई भी रस तनिक भी अपना प्रभाव नहीं बना पाया है। शृंगार कभी संयोग कभी वियोग के रूप में आता रहा। कहीं-कहीं छिटपुट रूप में हास्य रस व अद्भुत रस, शान्त रस भी दिखाई पड़ते है, पर इनका सट्टक पर कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

प्रकृति ने नैसर्गिक रूप से मनुष्य जाति के शरीर में प्रेम, अनुराग या काम का भाव दिया है। यह मनुष्य जब अपनी युवावस्था को प्राप्त होता है तो उसे अपने लिए एक साथी की कामना होती है। इस कामना की पूर्ति सामाजिक विधि-विधान से भी पूर्ण की जाती है और कभी-कभी नायक या नायिका किसी यौवन से परिपूर्ण युवक या युवती को देखकर उसको अपना लेने का इच्छुक हो जाता है, उसके हृदय के वेश्म फड़कने लगते है, आखों में वही छवि समा जाती है। इस परिस्थिति में चाहे राजा हो या फिर सामान्य व्यक्ति वह अपनी प्रेयसी में एकाकार हो जाने के लिए उन्मादित हो जाता है। सामान्य व्यक्तियों को प्रायः समाज में बगावत करनी पड़ती है, ठोकरें खानी पड़ती है। जिसमें सफलता- असफलता दोनों सामान रूप से सम्भावी होते है, किन्तु जब बात राजाओं की आती है तो किसी ज्योतिषि या ऐन्द्रजालिक की सहायता से अपनी इच्छानुरूप प्रेयसी का वरण कर लिया जाता है। अनेकानेक रचनाओं में हमें यह तथ्य सामान्यतः मिलता ही है कि यदि अमुक राज्य के राजा

की पुत्री का वरण कर लिया जाये तो हमारे महाराज चक्रवर्ती पद को प्राप्त होंगे। पुष्पधन्वा के बाण तो सभी मानवों के हृदय को समान रूप से बेंधते है, किन्तु रतिराग की सहजता संसाधनों की मांग अवश्य करती है।

सन्दर्भ-

1. *छान्दोग्योपनिषदः, 3/5/4*
2. *तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली , सप्तम अनुवाक्*
3. *नाट्यशास्त्र, अध्याय 6*
4. *नाट्यशास्त्र, अध्याय 6*
5. *नीतिशतकम् , चौखम्बा संस्कृत भवन , सम्पादक , ड०. बलवान सिंह यादव , श्लोक सं. 24*
6. *साहित्य दर्पण, प्रथम परिच्छेद , आचार्य विश्वनाथ*
7. *सरस्वतीकण्ठाभरण , 5/3*
8. *छान्दोग्य 6।2 ।3*
9. *मनुस्मृति 1/32*
10. *नाट्यशात्र 22/65*
11. *प्रथम जवनिका श्लोक सं. 13, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर , सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। 2021*
12. *प्राकृत श्लोकों का संस्कृत रूपान्तर, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी में द्रष्टव्य।*
13. *प्रथम जवनिका श्लोक सं. 15, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी। 2021*
14. *वहीं, 16, 17, 20 श्लोक इत्यादि। 15. वहीं, श्लोक सं. 27 16. वहीं श्लोक सं. 30*
17. *वहीं श्लोक सं. 34*
18. *द्वितीय जवनिका श्लोक सं. 5, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
19. *द्वितीय जवनिका श्लोक सं. 9,कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
20. *द्वितीय जवनिका पृ. सं. 78, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
21. *द्वितीय जवनिका पृ. सं. 80, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
22. *चतुर्थ जवनिका श्लोक सं. 9, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
23. *तृतीय जवनिका श्लोक सं. 9, कर्पूरमञ्जरी, राजशेखर, सम्पादक श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी । 2021*
24. *वहीं, श्लोक सं. 12*

46

'कर्पूरमञ्जरी' में अलङ्कार-योजना

रजनी गोस्वामी *

रसवादी आचार्य कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर ने भी काव्यमीमांसा में अलङ्कार को परिभाषित करते हुए कहा है कि –**अनुप्रासोपमादयश्चत्वामलङ्कुर्वन्ति।**[1] तथा अलङ्कारों के माहात्म्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि स्वभाव से सुन्दर मनुष्य को आभूषण और अधिक शोभायमान करते हैं –

मुग्धानां नाम ह्व्यानि हरन्ति हन्त! नेपथ्यकल्पनगुणेन नितस्वबन्यः।
छेकाःपुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः द्राक्षारसो न मधुरीयति शर्करयाः।।[2]

यही कारण है कि राजशेखर ने अपनी कृतियों को अलङ्कारों से चमत्कृत किया है।

उपमाः- साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने उपमा को परिभाषित करते हुए कहा है कि एक वाक्य में दो पदार्थों के, वैधर्म्य रहित, वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं –**साम्यं वाच्यमवैधर्म वाक्यैक्य उपमा द्रव्योंः।।**[3]

राजशेखर ने उपमा को अलङ्कारों में शिरोमणि, काव्य -सम्पत्ति का सर्वस्व तथा कवि वंश की माता कहा है- अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्। उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम।।

यही कारण है कि कर्पूरमञ्जरी में भी उपमा के कई उदाहरण द्रष्टव्य हैं। प्रथम जवनिका के अंत में उपमालङ्कार में संध्याकाल के वर्णन में प्रस्तुत किया गया है कि प्राणों के समान सूर्य का मण्डल कहां छिप गया यह कौन जानता है। नलिनी भी सूर्यास्त होने पर विरहिणी-सी हो गई है और इसके मुंदे हुए कमल देख कर ऐसा लगता है मानो इसकी आँखें शोक से मूर्च्छा आ जाने पर बंद हो गई हैं – **को जानाति क्वापि सम्प्रति गतमेतस्मिन् कालान्तरे। जाता किं चेयमपि दीर्घविरहा शोकेन नाथे गते मूर्च्छामुद्रितलोचनेव नलिनी मीलत्पङ्केरुहा।।**[4] तृतीय जवनिका में विदूषक एवं राजाके मध्य वार्ता में कामदेव के छठे और प्रबल बाण की उपमा कामिनियों के यौवन से की गई है –

रणितवलयकाञ्चीनूपुरावासलक्ष्मीर्मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टिः।
हृदयहणमन्त्रं यौवनं कामिनीनां जयति मदनकाण्डः षष्ठको वर्द्धकश्च।।[5]

विदूषक की द्वितीय जवनिका के इस गद्योक्ति में मालोपमा की छटा दर्शनीय है-**एष प्रियवयस्यो हंस इव विमुक्तमानसः, करीव मदक्षामः, मृणालदण्ड हुव घनघर्मम्लानः, दिनदीप इव विगलितच्छायः, प्रभात पूर्णिमा चन्द्र इव पाण्डुरपरिक्षीणस्तिष्ठति।**[6]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
* *संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय*

अर्थात् यह मेरा प्रिय मित्र मानसरोवर से छुटे हुए हंस के समान उद्विग्र मन वाला, मदस्रव से दुर्बल हाथी की तरह प्रचण्ड सूर्यातप से मुरक्षाये हुए कमलनाल की तरह, दिन में कान्तिहीन दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआा है। उपरोक्त गद्यांश में प्रत्येक उपमान तथा उपमेय में भेद होने पर भी उनके साधर्म्य का वर्णन होने से मालोपमा अलङ्कार है।

उत्प्रेक्षाः- ''संभावनमयोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत्''[7] अर्थात् प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। राजशेखर द्वारा कर्पूरमञ्जरी में उत्प्रेक्षा अलंकार के उदाहरण सहज ही द्रष्टव्य हैं।

तृतीय जवानिका मेंनायिका शिशिरोपचार से उकता जाने पर कुरंगिका से कहती है कि यह कमल का नाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार सांपों की तरह लग रहे हैं,पंखों की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलाती है, यंत्र धाराओं का जल भी तप रहा है चंदन का यह लेप भी शरीर की तपन को दूर नहीं कर पा रहा है-

विषमिव बिसकन्दली विषधर इव हारच्छटा वयस्यमिवात्मनः किरति तालवृन्तानिलः।
तथा च करनिर्गतं ज्वलति यन्त्रधाराजलं न चन्दनमहौषधं हरति देहदाहं च मे।।[8]

द्वितीय जवनिकान्तर में नायिका के झूला-झूलने के प्रसङ्ग में कवि ने उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा दी है। जहां कर्पूमञ्जरी के सौंदर्य का वर्णन करते हुए विदूषक कहता है कि हिंडोले की लीला के साथ खेल करने के लालची और चक्र की तरह गोल कर्पूरमंजरी के नितंब, करधनी में लगी हुई रत्नों की छोटी-छोटी घंटियां शब्द द्वारा हर्ष के साथ मानो किलकिलाते हैं-

हिन्दोलनलीलालन लम्पटं चक्रवर्तुलं रमणम्। किलकिलायतीव सहर्ष काञ्चीमणिकिङ्किणी रवेण।।[9]

रूपक :- 'रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे'[10] अर्थात् अपह्नव के उपमेय में रूपित उपमान के आरोप को रूपक कहा जाता है। द्वितीय जवनिकांतर में झूला झूलने के प्रसंग में ही रूपक के भी उदाहरण द्रष्टव्य हैं जहां विदूषक कहता है कि झूले चलने के साथ चलती हुई मुक्तावली के द्वारा कर्पूरमंजरी का हार कामदेव रूपी राजा की कीर्ति परंपरा को फैलता सा है-

दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेनास्या हारः। विस्तारयतीव कुसुमायुधनरपतेः कीर्तिवल्लीः।।[11]

नायिका के सौंदर्य का वर्णन रूपक अलंकार में द्रष्टव्य है जिसमें कर्पूरमंजरी की बड़ी-बड़ी आंखें कौतूहल में अचानक खुलने से ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानों कामदेव ने नीलकमल रूपी बाढण कामीपुरुषों के मन पर छोड़ दिए हों-

नयने प्रसूतिसदृशे झटिति फुल्ले कौतूहलेन। अप्यते इव. कुवलय शिलीमुखेपञ्चबाणस्य।।[12]

अर्थान्तरन्यास- 'सामान्यं वा विशेषो व तदन्येन समर्थ्यते यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।'[13] जहाँ सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाए वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है- विदूषक एवं राजा के वार्तालाप में विदूषक राजा से प्रश्न करता है कि यदि हृदय का प्रेम ही आसक्ति उत्पन्न करता है तो अलंकारों की योजना में क्यों बेकार परिश्रम किया जाता है इसके उत्तर में राजा कहते हैं कि गाने और नाचने से कुछ नहीं होता है, मदिरा भी बेकार है, अगुरु का सुगन्धित धुआँ भी निरर्थक है, कुङ्कुमराग से भी कुछ लाभ नहीं। मनुष्य की रुचि के समान पृथ्वी पर कोई भी वस्तु मधुर नहीं है,यहां सामान्य का विशेष से समर्थन होने पर अर्थातन्यास अलंकार है- **कि गेयनृत्यविधिना? किमु वारुण्या? धूपेन किमगुरुणा किमु कुङ्कुमेन। मधुरत्वे महीतले न किमप्यन्यत् रुचेरस्ति सदृशं पुनर्मानुषस्य।।**[14]

परिकर- आचार्य मम्मट के अनुसार साभिप्राय विशेषणों की उक्ति परिकर होती है- **'विशेषणैर्यत्साकूर्तरुक्तिः परिकरस्तु सः।।**[15]

तृतीय जवानिकांतर में उन्मत्त हुआ राजा, भूख से व्याकुल ब्राह्मण, पुरुष संसर्ग को चाहने वाली धूर्त स्त्री और विरही मनुष्य जैसे साभिप्राय विशेषण की उपस्थिति के कारण यहां परिकर अलंकार उपस्थित है- **भ्रष्टो क्षुधाक्लान्तो अ वअस्स!! पुच्छेमि, कस्स उण एसो पहाओ? ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरयमोदकैरात्माने विडम्बयति। अपि च वयस्य ! पृच्छामि, कस्य पुनरेष प्रभावः?**[16]

स्वभावोक्ति- किसी वस्तु का इस तरह चामत्कारिक वर्णन करना कि वह साक्षात् आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाए, स्वभावोक्ति अलंकार होता है-**स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।**[17]

नायक चंद्रपाल द्वारा युवावस्था में किशोरियों के सौंदर्य का स्वाभाविक वर्णन किया गया है, जिसमें वह कहता है कि युवावस्था में सुन्दरियों का शरीर लावण्य से भरपूर हो जाता है, आँखें भी आकर्षक और बड़ी लगने लगती है, वक्षःस्थल पर स्तन खूब उभर आते हैं, कमर पतली हो जाती है तथा उस पर त्रिवलियाँ पड़ जाती हैं, नितम्बभाग खूब सुडौल और गोल हो जाता है-

अङ्ग लावण्यपूर्ण श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे वक्षः स्थूलस्तनं त्रिवलिवलयितं मुष्टिग्राह्याञ्च मध्यम्।
चक्राकारो नितम्बस्तरुणिसमये कि त्वन्येन कार्यम्? पञ्चभिरेव बाला मदनजयमहावैजयन्त्यो भवन्ति।।[18]

स्वाभावोक्ति अलङ्कार' के कुछ अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत कृति में प्राप्त होते हैं। इस अलङ्कार से अलङ्कृत निम्न पद्य प्रशंसनीय है जहां भैरवानंद द्वारा दक्षिण देश की कन्या रत्न के सौंदर्य का वर्णन प्रस्तुत है, इसकी आँखों में अंजन धुला हुआ है, आँखें लाल हैं, मुख पर अलकें बिखरी हुई हैं। हाय से अपने केशों को पकड़ी हुई है और केशों से पानी की बूँदें टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढका है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि स्नानक्रीड़ा के बाद योगीश्वर ने इस अपूर्व सुन्दरी को उपस्थित किया है-

यत् धौताञ्जनशोणलोचनयुगं लग्नालकाग्रं मुखं हस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद्विबन्दवः।
यदेक सिचयाञ्चल निवसितं तत्स्नानकालस्थिता आनीतेयमद्भुतैकजननी योगीश्वरेणामुना?।।[19]

काव्यलिङ्ग- जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ किसी बात का हेतु बनता हो, वहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार होता है- **काव्यलिंग-हेतोर्वाक्यपदार्थता।**[20]

नायिका के सौंदर्य के विषय में स्पष्ट करते हुए नायक कहता है कि इस नायिका का सौंदर्य नवीन और उत्कृष्ट स्वर्ण की तरह है, इसके नेत्र बड़े विशाल हैं, कपोल अर्धचंद्र की तरह सुंदर हैं, धनुष लेकर साक्षात् कामदेव इसकी रक्षा कर रहे हैं, इसको देखकर कामदेव के शोषण और मोहन इत्यादि बाण मुझे व्याकुल कर रहे हैं, यहां शोषण और मोहन जैसे बाण नायक की व्याकुलता के हेतु हैं अतः यहां काव्यलिंग अलंकार परिलक्षित होता है-

लावण्यं नवजात्यकाञ्चननिभं नेत्रयोर्दीर्घत्वं कर्णाभ्यां स्वलितं कपोलफलको द्विखण्डचन्द्रोपमौ।
एषा पञ्चशरेण सज्जितधनुर्दण्डेन रक्ष्यते येन शोषणमोहनप्रभूतयो विष्यन्ति मां मार्गणाः।।[21]

सन्देह- सादृश्य के कारण उपमान के उपमेय के साथ संशयात्मक ज्ञान को ससन्देह अलंकार कहा है- **ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्ती च संशयः।।**[22]

नायिका कर्पूरमञ्जरी द्वारा सहसाही नायक को देखने पर उसके मन में एक संदेह उत्पन्न होता है कि अचानक आसमान से पूर्णिमा का चंद्रमा कैसे उतर आया? क्या शिवजी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया? क्या मेरे हृदय को चुराने वाला और आंखों को तृप्त करने वाला कोई मुझे प्रसन्न कर रहा है?

अहो! किमेष सहसा गगनाङ्गनादवतीर्णः पूर्णिमाहरिणाङ्क? किं वा तुष्टेन नीलकण्ठेन निजदेहं लम्भितो मनोभवः? किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनानां सज्जनो तनो मां सम्भावयति? सखि कुरङ्गिके। इन्द्रजालमिव पश्यामि।[23]

अनुप्रास- आचार्य मम्मट के अनुसार- **'वर्णसाम्यमनुप्रासः'**[24]। स्वरों के असमान होने पर भी व्यञ्जनों की समानता अनुप्रास अलंकार कहलाता है।

बालोऽपि कुरबकतरुस्तरुण्या गाढमुपगूढः। सहसेति कुसुमनिकरं मदनशरमिव समुद्गिरति।।[25]

उपर्युक्त पद्य में तरुस्तरुण्यातरु में 'तरु','गाढमुपगूढः में 'ग' 'ढ', तथा सहसेति, कुसुम, समुद्र, में 'स' का अर्थात अनेक व्यंजनों का एक बार सा दृश्य होने से यहां छेकानुप्रास है।

रणन्मणिनूपुर झणझणायमानहारच्छटं क्लक्वणितकिङ्किणीमुखरमेखलाडम्बरम्।
विलोलवलपावलीजनितमञ्जुशिञ्जारवं न कस्य मनोमोहनं शशिमुख्या हिन्दोलनम्?।।[26]

यहाँ ण, झ, क, व, ल, म, स बादि वर्षों की एकाधिक बार नावृत्ति हुई है, जिससे यहाँ वृत्यानुप्रास अलङ्कार है।

व्यतिरेक- 'उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।'[27] अर्थात् व्यतिरेक वह अलङ्कार है जहाँ उपमान की अपेक्षा अन्य अर्थात् उपमेय का व्यतिरेक गुण-विशेष के द्वारा उत्कर्ष वर्णित किया जाता है।

कर्पूरमञ्जरी में व्यतिरेक अलङ्कार का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है, राजशेखर द्वारा स्वयं के विषय में लिखा गया यह व्यतिरेक का सुन्दर उदाहरण है-

स अस्य कविः श्रीराजशेखरः त्रिभुवनमपि धवलयन्ति।
हरिणाङ्कप्रतिपङ्क्तिसिद्धया निष्कलङ्का गुणा यस्य।।[28]

अर्थात् इस सट्टक के लेखक कवि राजशेखर हैं, जिनके निष्कलङ्क गुणों से त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को प्रकाशित करता है, ये तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं यहाँ उपमेय राजशेखर का उपमान चन्द्रमा से व्यतिरेक अर्थात् आधिक्य वर्णन किया गया है, अतः व्यतिरेक अलङ्कार उदाहरण है।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन के सन्दर्भ में व्यतिरेक अलङ्कार कानिम्न उदाहरण है जिसमें उपमेय नायिका का उपमान चंद्रमा से व्यतिरेक किया गया है-**मा कथमपि वदनेन विभ्रमो भवत्विति तव नूनमिन्दुना। लाञ्छनच्छलमसीविशेषकः पश्य विम्बफलके निजे कृतः।।**[29]

अतिशयोक्ति - काव्यप्रकाशकार ने अतिशयोक्ति का लक्षण देते हुए कहां है की अपमान के द्वारा उपमेय का पृथक निर्देश करके उसके साथ कल्पित अभेद का निश्चय या कार्य तथा कारण के पूर्व अप्रभाव का विपरीत होना अतिशयोक्ति कहलाता है- **निगीर्याध्यव सानन्तु प्रकृतस्य प्रेरेण यत्। प्रस्तुतस्य यदम्यत्त्वं यद्यर्थोक्तौ च कत्पनम्।। कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः विशेयाऽतिशयोक्तिः सा।।**[30]

प्रथम जवानिकांतर में विदूषक द्वारा नायिका के सौंदर्य के वर्णन प्रसंग में यह कहा जाना कि इसकी त्रिवलि से युक्त कमर बच्चों की मुट्ठी तक से पकड़ी जा सकती है यह अतिशयोक्ति का उदाहरण है-

मन्ये मध्यं त्रिवलिवलितं डिम्भमुष्टया ग्राह्यं, नो बाहुभ्यां रमणफलकं वेष्टितुं याति द्वाभ्यात्।[31]

विशेषोक्ति- आचार्य मम्मट के अनुसार **'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।'**[32]

अर्थात् जहाँ (प्रसिद्ध) कारणों के हो पर भी कार्य की उत्पत्ति का कथन नहीं किया जाए, विशेषोक्ति कहलाता है। विदूषक द्वारा नायिका के प्रत्यक्ष होने पर भी यह कहना कि यह मेरे सामने है फिर भी मैं इसको अपने मन में नहीं रख सकता हूं विशेषोक्ति अलंकार का उदाहरण है-

नेत्रक्षेत्रं तरुणीप्रसुतिदीयमानोपमानं। तत् प्रत्यक्षं मम विलिखितुं यात्येषा न चित्ते।।[33]

निष्कर्षतः राजशेखर ने रस को काव्य का मूल तत्व मानने के पश्चात् भी अलङ्कारों के प्रयोग को काव्यमञ्जरी में विशेष महत्व प्रदान किया है। उनके सभी श्लोकविविध अलङ्कारों से सजाये एवं संवारे गए हैं। जिससे

उनकी कृति स्वतः चमत्कृत हो उठी है। सौंदर्य- शोभा में अलंकार के माहात्म्य को राजशेखर स्वयं अभिव्यक्त करते हैं -**जाने श्रिया यदि क्रियते कोऽपि भावो माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमेः।।**[34]

संदर्भ -

1. *काव्यमीमांसा, पृष्ठ 14*
2. *कर्पूरमञ्जरी, 2/26*
3. *साहित्यदर्पण, 10/14*
4. *कर्पूरमञ्जरी , 1/35 ?*
5. *कर्पूरमञ्जरी, 18/3*
6. *द्वितीय जवनिका, कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 51*
7. *काव्यप्रकाश, 10/137,*
8. *कर्पूरमञ्जरी, 3/20, ?*
9. *कर्पूरमञ्जरी, 2/34*
10. *काव्यप्रकाश, 10/139*
11. *कर्पूरमञ्जरी, 2/35*
12. *कर्पूरमञ्जरी, 2/38*
13. *काव्यप्रकाश, 10/109*
14. *कर्पूरमञ्जरी, 3/14*
15. *काव्यप्रकाश, 10/183*
16. *कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 101/तृतीय जवनिका*
17. *काव्यप्रकाश, 10/111*
18. *कर्पूरमञ्जरी, 3/9*
19. *कर्पूरमञ्जरी, 3/26*
20. *काव्यप्रकाश, 10114*
21. *कर्पूरमञ्जरी, 1/32*
22. *काव्यप्रकाश, 10/92*
23. *कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ 113/तृतीय जवनिकान्तर*
24. *काव्यप्रकाश, 104/9*
25. *कर्पूरमञ्जरी, 2/45*
26. *कर्पूरमञ्जरी, 2/32*
27. *काव्यप्रकाश, 10/159*
28. *कर्पूरमञ्जरी, 1/10*
29. *कर्पूरमञ्जरी, 3/32*
30. *काव्यप्रकाश, 10/100*
31. *कर्पूरमञ्जरी, 1/30*
32. *काव्यप्रकाश, 10/163*
33. *कर्पूरमञ्जरी, 1/30*
34. *कर्पूरमञ्जरी, 3/16*

47

'कर्पूरमञ्जरी' में छंद विश्लेषण

ठण्डी लाल मीना *

भ्वादिगण की आह्लादार्थक 'चदि' धातु से 'चन्देरादेश्छः' इस उणादिसूत्र से असुन् प्रत्यय लगाने पर 'चकार' के स्थान पर 'छ्कार' करने पर छन्दस् शब्द नपुसंक लिंग में निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है आच्छादित करने वाला। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में 'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः' अर्थात् जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या निर्धारित होती है, उसे छंद कहा है।[1] निरुक्त में भी छन्दस् शब्द का अभिप्राय आच्छादन या नियमन को ही बताया है -'छन्दांसि छादनात्'[2]। आचार्य पाणिनी ने वेद को पुरुष रूप में कल्पित करते हुए उसके छह अंग बतलाये हैं जो षड् वेदांग के रूप में संस्कृत वाङ्मय में ख्यात हैं और वे अंग हैं- छंद, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा और व्याकरण।[3] इन छह अंगों में छंद को उस वेदपुरुष का पाद या चरण कहा गया है- छन्दः पादौ तु वेदस्य। अर्थात् जिस प्रकार बिना पैरों वाला व्यक्ति चलने में असमर्थ होता है ठीक उसी प्रकार छन्द के बिना भी काव्य की गति बाधित होती है।

छन्द गेयपद है जो स्व-गेयता के कारण ही श्रोताओं एवं पाठकों को आह्लादित करते हैं। यद्यपि छंद बाह्य वेशभूषा के साधन हैं फिर भी छन्दों का एक विलक्षण सौन्दर्य और आकर्षण होता है। काव्य का अर्थ न समझने वाले भी सस्वर पाठ को पढ़कर एवं सुनकर आनन्दमग्न हो जाते हैं। सामान्य से सामान्य कथन को भी जिसमें कोई चमत्कार नहीं है, यदि छंदोंबद्ध कर दिया जाए तो उसमें सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। छन्दों से युक्त एवं लयबद्ध रचना, भाषा का अर्थ न जानने वालों को भी उसके मूलभाव से परिचित करा देती है।

संस्कृत साहित्य में नवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य का वाङ्मयाकाश राजशेखर की काव्य और शास्त्र के मञ्जुल सामंजस्य से आलोकित रहा है। आज आचार्य राजशेखर प्रणीत पाँच रचनायें उपलब्ध हैं। बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमंजरी, विद्धशाल भंजिका और काव्यमीमांसा। इनमें बालरामायण और बालभारत नाटक, कर्पूरमंजरी सट्टक, विद्धशाल भंजिका नाटिका तथा काव्यमीमांसा एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी सट्टक और विद्धशालभंजिका नाटिका इन दोनों की गणना उपरूपकों में की है। यह निर्विवाद है कि सट्टक परम्परा की नींव इन्होंने ही डाली है। कर्पूरमंजरी के प्रथम जवनिकान्तरम् में स्थापक के पूछने पर पारिपार्श्वक कहता है- **कधिदं जेव छइल्लेहिं- सो सट्टओ त्तिभण्णइ दूरं जो णाडिआए अणुहरइ। किं उण पवेसविक्कंभंकाइ केवलं ण दीसंति।।**[4]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग, ज़ाकिर हुसैन, दिल्ली महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

अर्थात् विद्वानों का कथन है कि जिस प्रबंध में नाटिका का पूर्ण अनुकरण हो, जिसमें प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना न हो उसे सट्टक कहते हैं। यहाँ स्थापक द्वारा प्रयुक्त 'विद्वान्' शब्द कवि राजशेखर के लिए प्रयुक्त किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सट्टक एक प्रकार की नाटिका है। नाटिका के विषय में आचार्य भरतमुनि[5] से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक सभी आचार्यों ने अपने मत प्रकट किए है। नाटिका के विषय में साहित्यदर्पणकारने कहा है कि-

नाटिका क्लृप्तवृता स्यात्स्त्री प्राया चतुरंड़िकका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।।
स्यादन्तः पुरसम्बद्धा संगीतव्यापृताथवा। नवानुरागा कन्याऽत्र नायिका नृपवंशजा।
सम्प्रवर्तते नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः।। देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।
पदे पदे मानवती तद्वंशःसंगमो द्वयोः।। वृत्तिः स्यात्कैशिकी स्वल्पविमशार्रू सन्धयः पुनः।।[6]

आचार्य राजशेखर जब कर्पूरमंजरी की रचना कर रहे थे तब नाटिका के लक्षण सम्बन्धित सभी बातें उनके मष्तिष्क में विद्यमान थी लेकिन नाटिका को सट्टक का नेपथ्य परिधान कराने के लिए उन्होंने जिस सामग्री की सहायता ली, वे ही आगे चलकर सट्टक की निजी विशेषताएं बन गई। उदाहरण स्वरूप जैसे- नाटिका में प्रयुक्त अंक के स्थान पर जवनिका शब्द का प्रयोग, नायिका के नाम पर ही सट्टक का नामकरण, नृत्य का प्रमुखता से प्रयोग, सभी पात्रों द्वारा केवल प्राकृत भाषा का प्रयोग इत्यादि। राजशेखर के परवर्ती आचार्यों जिनमें अभिनवगुप्त, हेमचन्द्र, शारदातनय, विश्वनाथ ने उनके द्वारा दी गई 'सट्टक' की परिभाषा की समीक्षा करते हुए उसे अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। आचार्य शारदातनय ने 'सट्टक' का लक्षण इस प्रकार बताया है-

सट्टक नाटिकाभेदो नृत्यभेदात्मक भवेत्। कैशिकीभारतीयुक्तहीनरौद्ररसादिकम्।।
सर्वसन्धि विहिनश्च नाटिकाप्रतिरुपकम्। शूरसेनीमहाराष्ट्रवाच्यभाषादिकल्पितम्।।
अंकस्थानीय विच्छेद चतुर्यवनीकान्तरम्। नाटिका प्रतिरूपं यद्विशेषो रूपकस्य तत्।।
सट्टकं तेनतस्याहुः भाषां तां प्राकृतीं परे। राजशेखरक्लृप्तं तद् यथा कर्पूरमंजरी।।[7]

कर्पूरमंजरी सट्टक के चार जवनिकान्तरम् में कुल 143 पद्य हैं, जिनमें उन्होंने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के कुल 19 छन्दों का प्रयोग किया है जिनमें आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, स्त्रग्धरा, रथोद्धता, मालिनी, मन्दाक्रान्ता का प्रमुख रूप से प्रयोग किया है। इनमें आर्या और शार्दूलविक्रीडित छन्द आचार्य राजशेखर के अत्यन्त प्रिय छन्द है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने राजशेखर के शार्दूलविक्रीडित छंद की प्रशंसा करते हुए कहा है कि-

शार्दूलविक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः। शिखरिव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः।।[8]

कर्पूरमंजरी सट्टक में प्रयुक्त होने वाले छन्दों का विवरण निम्न प्रकार है-

आर्या[9] - जिस छंद के प्रथम तथा तृतीय पाद में द्वादश मात्राएँ, द्वितीय पाद में अठारह मात्राएँ एवं चतुर्थ पाद में पन्द्रह मात्राएँ हों, वहाँ आर्या छन्द होता है। कर्पूरमंजरी में इस छन्द का उदाहरण –

। ।ऽ ।ऽ ।ऽऽ

ससिहंडमंडणाणं = 12 मात्राएँ छम्मुहणासाणं सुरअणपिआणंद्य =18 मात्राएँ

ऽ ।ऽऽ।। ।।।ऽऽ । ।।।ऽ।ऽ।

गिरिसगिरिंदसुआणं = 12 मात्राएँ

ऽ ऽऽऽ ।ऽऽऽ

संघाडी वो सुहंदेउ।।[10] = 15 मात्राएँ

इस पद्य में आर्या के लक्षणानुसार प्रथम और तृतीय पाद में 12-12 तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद में 18 एवं 15 मात्राएँ है। कर्पूरमंजरी में इसके अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग 30 बार हुआ है। प्रथम जवनिकान्तर के 1,7,8,9,10 पद्यों में, द्वितीय जवनिकान्तर के 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 42, 43, 48, 49 पद्यों में, तृतीय जवनिकान्तर के 8 वे पद्य में, चतुर्थ जवनिकान्तर के 19 वे पद्य में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है।

वसन्ततिलका- ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः।[11] अर्थात् जिस छंद के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगणतथा अन्त में दो गुरु हो, वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है। कर्पूरमंजरी में इस छन्द का उदाहरण-

तगण भगण जगण जगण गु.गु.

ऽ ऽ। ऽ।।। ऽ ।। ऽ। ऽऽ

कीए वि संघडदि कस्स वि पेम्मगंठी, एमेअ इत्थण हु कारणमत्थि रू अं।
चंगत्तणंपुणु महिज्जदि जं तहिं पि, तं दिज्जए पिसुणलोअमुहेषु मुद्दा।।[12]

इस उदाहरण के अतिरिक्त कर्पूरमंजरी में इस छन्द का 22 बार प्रयोग किया है यथा- प्रथम जवनिकान्तर के 14,19, 21, 24, 25, 27 पद्यों में, द्वितीय जवनिकान्तर के 4, 5, 6, 26 पद्य में, तृतीय जवनिकान्तर के 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 22 पद्यों में, चतुर्थ जवनिकान्तर के 5, 8, 21 पद्य में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है।

शार्दूलविक्रीडित --सूर्याश्वेर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।[13] अर्थात् जिसके चारों चरणों में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और गुरु वर्ण हों, उसको शार्दुलविक्रीडित कहते है। इसमें क्रमशः बारह और सात वर्णों पर यति होती है। कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण है-

मगण सगणजगण सगण तगण तगण गु.

ऽ ऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ।ऽऽ

आत्थाणीजणलोअणाण बहला लावण्ण कल्लोलिणी, लीला विब्भमहासवासणअरी सोहग्गपालित्तिआ।
णेत्तेंदीवरदीहिआ मह पुणो सिंगार संजीविणी, जं जादा अह मम्महेण धणुहे तिक्खो सरो संधिदो।।[14]

इसके अतिरिक्त शार्दूलविक्रीडित छन्द का कर्पूरमंजरी में 22 जगह ओर प्रयोग हुआ है। जो निम्न प्रकार है- प्रथम जवनिकान्तर के 1, 13, 16, 17, 18, 20, 26, 29, 32, 35 पद्यों में , द्वितीय जवनिकान्तर के 1, 8, 27, 29, 46 पद्यों में, तृतीय जवनिकान्तर के 1, 3, 25, 27 पद्यों में, चतुर्थ जवनिकान्तर के 4, 9, 23 पद्यों में इस छन्द का प्रयोग किया गया है।

स्त्रग्धरा- म्रभ्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्रग्धरा कीर्तितेयम्[15] अर्थात् जिसके चारों चरणों में क्रमशः मगण, रगण, भगण,नगण और तीन यगण हो उसको स्त्रग्धरा छंद कहते है। इसमें सात, सात, सात वर्णों पर यति होती है। कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण है-

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण

ऽऽऽ।ऽऽ । ।।।।।ऽऽ।ऽऽ।ऽऽ

ईसारोसप्पसाअप्पणइसु बहुसो सग्गगंगाजलेहिं आमूलं पूरिआए तुहिणकरकलारुप्पसिप्पीएँ रुद्दो।
जोण्हामुत्ताहलिल्लं णअमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं दोहिं अग्घं सिग्घं व देंतो जअइ गिरिसुआपाअपंकेरुहाणं।।[16]

स्त्रग्धरा का प्रयोग कर्पूरमंजरी में ग्यारह पद्यों में हुआ है। जो निम्न प्रकार है- प्रथम जवनिकान्तर के

4, 15, 36 पद्यों में, द्वितीय जवनिकान्तर के 10, 28, 31, 41, 50 पद्यों में, तृतीय जवनिकान्तर के 19, 28 में तथा चतुर्थ जवनिकान्तर के 7वे पद्य में इस छन्द का प्रयोग किया गया है।

रथोद्धता[17] **-** जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एकरगण, एक नगण,एकरगणतथा अन्त में एक लघु और एक गुरु इस तरह ग्यारह वर्ण होते हैं उसे रथोद्धता छंद कहते है घ कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण है –

रगण नगण रगण ल.गु.

ऽ।ऽ ।।।ऽ।ऽ।ऽ

चाहुआणकुलमोलिमालिआ, राअसेहरकइंदगेहिणी। भत्तुणो किइ मवंतिसुंदरी, सा पउंजइउमेअमिच्छइ।।[18]

इस उदाहरण के अतिरिक्त सात जगहों पर कर्पूरमंजरी में इस छंद का प्रयोग हुआ है , जो इस प्रकार है द्वितीय जवनिकान्तर के 7वें पद्य में, तृतीय जवनिकान्तर के 21, 24, 31, 32, 33, 34 पद्यों में रथोद्धता छन्द का प्रयोग हुआ है।

मालिनी[19] जिस के प्रत्येक चरण में क्रम से दो नगण, एक मगण और दो यगण कुल पन्द्रह अक्षर हों तथा आठवें अक्षर पर विराम होता हो उसे मालिनी छन्द कहते हैं। कर्पूरमंजरीमें इसका उदाहरण है -

नगण नगण मगण यगण यगण

।।।।।ऽऽ ऽ।ऽऽ ।ऽऽ

मरगअमणिगुच्छा हारलट्टि व्व तारा, भमरकवलिअंताममलाईमालिअ व्व।
रहसवलिअकंठीतिल दिट्ठी वरिट्ठा, सवणपहणिविट्ठा माणसं मे पइट्ठा।।[20]

इस उदाहरण के अतिरिक्त अन्य छह स्थानों पर इस छन्द का प्रयोग हुआ है, जो निम्न प्रकार है- द्वितीय जवनिकान्तर के 9, 24, 34 पद्यों में, तृतीय जवनिकान्तर के 7 और 18 वें पद्य में तथा चतुर्थ जवनिकान्तर के 20 वें पद्य में इस छन्दका प्रयोग किया गया है।

इन्द्रवज्रा - स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः[21] अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, तगण, जगण, गुरु और गुरु होता है, वहाँ इन्द्रवज्रा छन्द होता है। कर्पूरमंजरी में उदाहरण है-

तगण तगणजगणगु. गु.

ऽ ऽ।ऽऽ।ऽ। ऽऽ

मुत्ताहलिल्लाहरणोच्च आओ लासावसाणे तलिणंसुआओ।
सिंचंति अण्णोण्ण मिमीउ पेच्छ जंतज्जलेणं मणिभाइणेहिं।।[22]

इसके अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग प्रथम जवनिकान्तर के 22 वें, तृतीय जवनिकान्तर के 5 और 6 पद्य में हुआ है।

मन्दाक्रान्ता- मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ गयुग्मम्[23] अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण, तगण, तगणऔर दो गुरु वर्ण हों, उसको मन्दाक्रान्ता छन्द कहते है। इसके प्रत्येक चरण में सत्रह अक्षर होते हैं। कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण है –

मगण भगण नगण तगण तगण गु.गु.

ऽऽ ऽऽ।।।।।ऽऽ।ऽऽ।ऽऽ

मण्णे मज्झं तिवलिवलिअं डींममुट्ठि गेज्झं, णो बाहूहिं रमणफलअं वेट्ठिदुं जादि दोहिं।
णेत्तच्छेत्तं तरुणिपसईदिज्जमाणोवमाणं, ता पच्चक्खं मह विलिहिदुं जादि एसा ण चित्ते।।[24]

इसके अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग प्रथम जवनिकान्तर के 33, द्वितीय जवनिकान्तर के 2, 23 और 30 वें पद्य में हुआ है।

उपजाति- अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।[25]

अर्थात् इस छंद के प्रत्येक चरण मंव ग्यारह वर्ण होते हैंद्य यह छंद इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा- दोनों के मिश्रण से बनता है। कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण निम्न प्रकार है-

जगण तगण जगण गु.गु.

।ऽ।ऽऽ।ऽ।ऽऽ

णिसग्गचंगस्स वि माणुसस्स, सोहा समुम्मीलदि भूषणंहिं।

मणीणं जच्चाणं वि कंचणेण, विभूसणे लब्भदिकावि लच्छी।।[26]

इसके अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग प्रथम जवनिकान्तर के 28, 31 तथा चतुर्थ जवनिकान्तर के 10, 11, 12 एवं 14 वें पद्य में हुआ है।

पृथ्वी[27] **-** जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु और गुरु हो एवं आठवें और नवमें अक्षर पर विराम हो तो सत्रह अक्षर वाले ऐसे छंद को वृत्तमर्मज्ञ पृथ्वी कहते हैं। कर्पूरमंजरी में इसका उदाहरण निम्न प्रकार है-

जगण सगण जगण सगण यगण ल.गु.

।ऽ।।ऽ।ऽ।।ऽ।ऽऽ।ऽ

सपंचमतरंगिणो सवणसीअला वेणुणो, समं सिसिरवारिणा वअणसीअला वारुणी।

सचंदणघणत्थणी सअणसीअलाकामिणी, णिदाहदिवसोसहं सअलसीअलंकस्सवि।।[28]

इस पद्य के अतिरिक्त इस छंद का प्रयोग प्रथम जवनिकान्तर के 24वे पद्य में, द्वितीय जवनिकान्तर के 32, 47 वे पद्य में, तृतीय जवनिकान्तर के 3 पद्य में प्रयोग हुआ है।

स्वागता-– स्वागता रनभगैर्गुरुणा च[29] अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण, और दो गुरु वर्ण हों, उसको स्वागता छंद कहते है। जैसे-

रगण नगण भगण गु.गु.

ऽ ।ऽ।।।ऽ। ।ऽऽ

का वि वामिदकरालहुडुक्का, रम्ममद्दलरवेणमअच्छी।

दोल्लआहिं पडिवाडिचलाहिं, चल्लिकम्मकरणम्मि पअट्टा।।[30]

प्रस्तुत श्लोक में स्वागता के लक्षणानुसार रगण, नगण, भगण और दो गुरु के क्रम से व्यवस्थित है। इसके अतिरिक्त इस छंद का चार जगह ओर प्रयोग हुआ है, जो इस प्रकार है - प्रथम जवनिकान्तर के 12वां पद्य, चतुर्थ जवनिकान्तर के 17, 18 और 22 वें पद्य में।

पुष्पिताग्रा- अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा[31] अर्थात् जिसके विषम चरणों में दो नगण, रगण, यगण तथा सम चरणों में नगण, दो जगण, रगण और गुरु वर्ण हों, उसको पुष्पिताग्रा वृत्त कहते हैं। कर्पूरमंजरी में इस छंद का प्रयोग दो बार प्रथमजवनिकान्तर के द्वितीयऔर चतुर्थजवनिकान्तर के प्रथम पद्य में हुआ है। जैसे-

नगण नगणरगण यगण

।।।।।ऽ।ऽ ।ऽऽ

अकलिअपरिरंभविब्भमाइं नगण जगण जगण रगण गु. अजणिअचुंबणडंबराइ दूरं।

।।।ऽ।ऽ।ऽऽ

अघडिअथणताडणाइँणिच्चणमह अणंगरईण मोहणाइं।।[32]

वही कुछ ऐसे छंद भी है जिनका प्रयोग पूरी कृति में मात्र एक बार ही हुआ है। जैसे-

शिखरिणी- रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी[33] अर्थात् जिसके चारों चरणों में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु वर्ण हों, उसको शिखरिणी छंद कहते हैं। इसमें 6 और 11 वर्णों पर यति होती है। कर्पूरमंजरी के द्वितीय जवनिकान्तर के 11वें पद्य में इस छंद का प्रयोग हुआ है जैसे-

यगण मगण नगण सगण भगण ल.गु.

।ऽऽऽ ऽ ।।।। । ऽऽ।।ऽ

परं दोण्हा उण्हा गरलसरिसो चंदणरसो, खअक्खारो हारो रअणिपवणा देहत वणा।

मुणाली बाणाली जलइ अ जलद्दा तणुलदा, वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलअवणा सा सुणअणा।।[34]

शशिवदना --शशिवदना न्यौ[35] अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण हो उसको शशिवदना छंद कहते हैं। कर्पूरमंजरी के तृतीय जवनिकान्तर के 29वे पद्य में इस छंद का प्रयोग हुआ है।

नगण यगण

।।।ऽऽ

दिसअवअंसो

णहसरहंसो। णिहुअणकंदो वट्टइचंदो।[36]

शालिनी - मात्तौ गौचेच्छालिनी वेदलोकैः[37] अर्थात् जिसके चरण में मगण, तगण, तगण, गुरु और गुरु वर्ण हों एवं जिसके 4 तथा 7 अक्षरों में यति हो, उसको शालिनी वृत्त कहते हैं। कर्पूरमंजरी के प्रथम जवनिकान्तर के 23वें पद्य में इस छंद का प्रयोग हुआ है।

मगण तगण तगण गु.गु.

ऽ ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

रंडा चंडा दिक्खिदा धम्मदारा, मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।

भिक्खा भोज्जं चम्मखंडं च सेज्जा, कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो।।[38]

वंशस्थ --वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ[39] अर्थात् जिसके चारों चरणों में क्रमशः जगण, तगण, जगण, रगणहों, उसको वंशस्थ वृत्त कहते है। कर्पूरमंजरी के तृतीय जवनिकान्तर के चतुर्थ पद्य में इसका प्रयोग हुआ है।

जगण तगण जगण रगण

।ऽ।ऽऽ।ऽ । ऽ।ऽ

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो घणंबुबिंदु जिदवंसरी अणो।

सुवत्तुलं णिच्चलमच्छमुज्जलं कमेण पत्तो णवमोत्तिअत्तणं।।[40]

इनके अतिरिक्त उपगीति (2/45), गीति (1/6), उपेन्द्रवज्रा (4/14) छंदों का प्रयोग भी मात्र एक बार ही हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि आचार्य राजशेखर ने कर्पूरमंजरी के 143 पद्यों में उन्हीं 19 छन्दों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग संस्कृत कवि करते रहे हैं।

सन्दर्भ -

1. कात्यायन सर्वानुक्रमणी,12.6.
2. निरुक्तम्
3. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरक्तंश्रोत्रमुच्यते।।
   शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं समृतम्। तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। - पाणिनीय शिक्षा-41-42
4. कर्पूरमंजरी,1/6।
5. नाट्यशास्त्रम्,अ.20/63-63।
6. साहित्यदर्पणः, षष्ठः परिच्छेदः, 269-272।
7. भावप्रकाशन, 9 अधिकार
8. सुवृत्ततिलकम्,
9. यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयऽपि। अष्टादश द्वितीय चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।। श्रुतबोध,6
10. कर्पूरमंजरी, प्रथमजवनिकान्तरम्, 3
11. छन्दोमंजरी,द्वितीयः स्तबकः
12. कर्पूरमंजरी, 3/9
13. छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तबकः, पृ. 100
14. कर्पूरमंजरी,2/3
15. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ.108
16. कर्पूरमंजरी, 1/4
17. रनरैरन्वितं युक्तंलघुना गुरुणा तथा। ख्यातं रथोद्धतानाम वृत्तमेकादशाक्षरम्।। सुवृत्ततिलकम्, 1/23.
18. कर्पूरमंजरी,1/11
19. अष्टाक्षरविरामेण युक्ता ननमयैः सयैः। वदन्ति मालिनीनाम वृत्तं पञ्चदशाक्षरम्।। सुवृत्ततिलकम्, 1/30.
20. कर्पूरमंजरी, 3/2
21. छन्दोमंजरी,द्वितीयःस्तबकः, पृ.33.
22. कर्पूरमंजरी, 4/9
23. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ. 87
24. कर्पूरमंजरी,1/30
25. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ. 35
26. कर्पूरमंजरी,2/25
27. जसजैः सयलैर्गेन युताष्टनवसंहृतिः। दशसप्ताक्षरा पृथ्वी कथिता वृत्तकोविदैः।। सुवृत्ततिलकम्,१६३२.1/32
28. कर्पूरमंजरी, 4/6
29. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ.42
30. कर्पूरमंजरी, 4/16
31. छन्दोमंजरी, तृतीयः स्तबकः, पृ.129
32. कर्पूरमंजरी,1/2
33. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ. 84
34. कर्पूरमंजरी, 1/11
35. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ. 21
36. कर्पूरमंजरी, 3/29
37. छन्दोमंजरी,द्वितीयः स्तबकः, पृ. 38
38. कर्पूरमंजरी, 1/23
39. छन्दोमंजरी, द्वितीयः स्तबकः, पृ. 46
40. कर्पूरमंजरी, 3/4

48

'विद्धशालभञ्जिका' नाटिका का दार्शनिक अनुशीलन

प्रमोद कुमार सिंह, कौशल पंवार***

भारतीय नाट्यपरम्परा में नाटक मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है, अपितु जीवन–दर्शन और दार्शनिक चिन्तन का दर्पण भी है। नाट्याचार्य राजशेखर द्वारा रचित विद्धशालभञ्जिका इसी परम्परा की एक विशिष्ट एवं अद्वितीय नाटिका है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में नाटिका का शास्त्रीय स्वरूप प्रतिपादित करते हुए विद्धशालभञ्जिका को प्रत्यक्षतः नाटिका के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है। उनके अनुसार नाटिका वह नाट्यरचना है जो चार अङ्कों से युक्त होती है, जिसका स्वरूप प्रायः स्त्री–प्रधान होता है और जिसमें कविकल्पित चरित्रों का विशेष स्थान होता है। इसमें नायक प्रख्यात एवं धीरललित राजा होता है और नायिका राजवंशजा कन्या होती है, जो सामान्यतः नव–अनुरागयुक्त और अन्तःपुर–सम्बद्ध मानी जाती है। नायक प्रायः रानी के भय से शङ्कित रहता है, नायिका से उसका संसर्ग रानी के अधीन रहता है, और इसमें कैशिकी वृत्ति के साथ अल्प विमर्शवाली सन्धियाँ होती हैं।[1] इन शास्त्रीय लक्षणों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि चार अंकों में उपनिबद्ध विद्धशालभञ्जिका नाटिका उसी परम्परा की अति–उत्कृष्ट नाट्यकृति है। इसमें नायक धीरललित है, नायिका राजवंशजा है और कथा का विकास श्रृंगार एवं हास्य की मधुर छटा से सुसम्पन्न है। यही कारण है कि आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में रत्नावली के साथ विद्धशालभञ्जिका का उल्लेख भी नाटिका के प्रामाणिक उदाहरण के रूप में किया है, **''नाटिकामुदाहरति- यथा रत्नावली - विद्धशालभञ्जिकाऽऽदिः''[2]।**

नाटिका के शास्त्रीय लक्षणों से युक्त होकर भी विद्धशालभञ्जिका अपनी दार्शनिक एवं अन्य शास्त्रीय मौलिकताओं से विशिष्ट है। इसमें केवल साहित्यिक दृष्टि से श्रृंगार और हास्य ही नहीं, अपितु जीवन–तत्त्व, समाज–संरचना और दार्शनिक विमर्श भी अन्तर्निहित हैं। प्रथम अङ्क में एक प्रसंग है-**''न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुञ्चति मौक्तिकानि[3]।''** अर्थात् बिना प्रयत्न के हाथ में पकड़ी हुई शुक्ति भी मोती नहीं देती। यह कथन न्याय-वैशेषिक दर्शन के कार्य–कारण सिद्धान्त का प्रत्यक्ष स्मरण कराता है, जिसमें यह प्रतपादित है कि कोई भी परिणाम तभी सम्भव है, जब उसके लिए उपयुक्त कारण विद्यमान हो। जिस प्रकार बिना व्यापार या प्रयत्न के मोती प्राप्त नहीं हो सकता, उसी प्रकार जीवन में भी प्रयत्न और साधना के बिना कोई फल उपलब्ध नहीं होता। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर विदूषक कहता है- **''न खल्वनुत्पीडितः**

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

** सहाचार्य-संस्कृत विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय, (दिल्ली विश्वविद्यालय) चाणक्यपुरी, नई दिल्ली*

*** आचार्य, संस्कृत अनुशासन, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली*

सहकारपृष्ठग्रन्थिः रससर्वस्वं मुञ्चति[4]''- अर्थात् सहकार–फल बिना दबाव के अपना रस नहीं देता। प्रस्तुत कथन में इस दार्शनिक सत्य की ओर संकेत मिलता है कि सुख स्वतन्त्र और स्थायी नहीं होता, बल्कि वह प्रयत्न, संघर्ष और कभी–कभी पीड़ा की प्रक्रिया के माध्यम से ही उपलब्ध होता है। जैसे फल का सार दबाव दिए बिना नहीं निकलता, वैसे ही जीवन के आनन्द और उपलब्धियाँ भी कठिनाई और साधना के पश्चात् ही प्राप्त होती हैं। यह विचार बौद्ध दर्शन के दुःखसत्य और अनित्यता की स्मृति कराता है, साथ ही सांख्य और वैशेषिक दर्शन के कार्य–कारण–तत्त्व की भी प्रतिध्वनि करता है। विद्धशालभञ्जिका में ऐसे ही अनेकानेक उद्धरण मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि यह नाटिका केवल रसात्मक मनोरंजन की प्राप्ति का माध्यम नहीं है, अपितु इसमें गहन दार्शनिक तत्त्व भी अन्तर्निहित हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में विद्धशालभञ्जिका नाटिका में निहित दार्शनिक तत्त्वों का अनुशीलन किया जाएगा।

2. विद्धशालभञ्जिका नाटिका में आस्तिक दर्शन के तत्त्व

भारतीय दार्शनिक परम्परा में आस्तिक दर्शनों के अन्तर्गत मुख्यतः सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त का परिगणन किया जाता है। ये सभी दर्शन वेद स्वीकृत तथा मोक्ष–प्रधान माने गये हैं। विद्धशालभञ्जिका नाटिका में पात्र–संवाद, परिस्थितियों के विवेचन और नाट्य–विन्यास में आस्तिक दार्शनिक सम्प्रदाय की विभिन्न मान्यताएं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में दिखालाई पड़ती हैं। कहीं त्रिगुण–सिद्धान्त (सांख्य) की छाया है, तो कहीं आत्मसंयम और साधना (योग) का संकेतय कहीं तर्क–युक्ति (न्याय) का प्रयोग है, तो कहीं पदार्थ–गुण–कर्म (वैशेषिक) की झलकय इसी प्रकार धर्म–विधि (मीमांसा) और आत्म–ब्रह्म–अभेद (वेदान्त) का दार्शनिक प्रतिपादन भी नाटिका में अन्तर्निहित दिखाई देता है। अब हम आगे विभिन्न उपविषयों में इन आस्तिक दर्शनों के आलोक में विद्धशालभञ्जिका नाटिका का विश्लेषण करेंगे और यह देखने का प्रयास करेगें कि किस प्रकार राजशेखर ने दर्शनशास्त्रीय तत्त्वों को नाटकीय स्वरूप में उपनिबद्ध किया है।

2.1 विद्धशालभञ्जिका एवं सांख्य दर्शन

भारतीय आस्तिक दर्शन–परम्परा में सांख्य दर्शन का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका मूलाधार प्रकृति–पुरुष का द्वैत और त्रिगुण सिद्धान्त है। ईश्वरकृष्ण ने सांख्यकारिका में त्रिगुणों का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है-सत्त्व गुण हल्का और प्रकाशक है, जो मन और इन्द्रियों को स्पष्टता एवं संतुलन प्रदान करता है; रजस् चञ्चल और प्रवर्तक है, जो मनुष्य को कर्म की ओर प्रवृत्त करता है तथा तमस् गुरु और आवरणकारी है, जो जड़ता एवं मोह का कारण बनता है। इन तीनों गुणों का पारस्परिक सहयोग उसी प्रकार कार्य करता है, जैसे दीपक की ज्योति, उसका तेल और बाती मिलकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं[5]। विद्धशालभञ्जिका नाटिका में पात्रों के संवाद और आचरण सांख्य के दार्शनिक तत्त्वों की प्रतिध्वनि करते हैं। द्वितीय अङ्क में कहा गया है-**''नहि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि**[6]'', अर्थात् स्नेह का बन्धन उचित और अनुचित, दोनों को समान रूप से बाँध लेता है। यह संवाद रजोगुण की उस प्रवृत्ति का द्योतक है, जो मनुष्य को विवेक और सत्त्व से विमुख कर आसक्ति एवं मोह की ओर प्रवृत्त करता है। इसी प्रकार द्वितीय अङ्क में ही एक अन्य प्रसंग प्राप्त होता है- **''अहो इह सुवर्णचतुष्किकासङ्क्रान्ता केऽपि ब्रह्मराक्षसाः जल्पन्ति**[7] **।''** अर्थात्- ''अहो! यहाँ तो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्णमण्डप में ब्रह्मराक्षसों का जमावड़ा हो गया हो और वे कोलाहल कर रहे हों।'' यह संवाद केवल हास्य–व्यंग्य का माध्यम नहीं है, बल्कि तमोगुण के प्रभाव से उत्पन्न भ्रान्ति और असत्याभास का दार्शनिक संकेत भी है। सांख्य के अनुसार तमस् जड़ता, अज्ञान और विकृति का कारण है, और जब उसका आधिक्य होता है, तो वस्तुओं का वास्तविक स्वरूप विकृत होकर भ्रान्ति के रूप में अनुभूत होता है। इस प्रकार नाटिका का यह प्रसंग

त्रिगुण–सिद्धान्त की सजीव अभिव्यक्ति है, जहाँ रजस् और तमस् दोनों की प्रवृत्तियाँ पात्रों के आचरण और अनुभूति में प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होती हैं।

सांख्य के अनुसार प्रकृति के गुण केवल भोग कराने के लिए प्रवृत्त नहीं होते, बल्कि अन्ततः पुरुष को कैवल्य की ओर ले जाते हैं। ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका में कहा है- प्रकृति का प्रयोजन पुरुष की भोग–अनुभूति और अन्ततः कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति है[8]। विद्धशालभञ्जिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में सहेलियों का संवाद इसका प्रत्यक्ष साहित्यिक स्वरूप है- **''अइ सुलक्खणे, किं विअ लक्खणं मंतीअदि। जदो सहस्साणं पाणिहिस्स कोउहलहलहलो[9]''**। इसका भावार्थ है-''अरी सुलक्षणे! यह कौन-सा लक्षण है? जब सहस्रों युवतियों का पाणिग्रहण होने जा रहा है, तब कौतूहल और भोग–उत्साह स्वाभाविक है।'' यह प्रसंग भोग और आसक्ति–प्रधान वृत्ति का उद्घाटन करता है, किन्तु सांख्य की दृष्टि से यही भोग–अनुभव आगे चलकर वैराग्य और आत्मबोध का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका में भावनाओं और आचरण का चित्रण केवल नाटकीय कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि सांख्य दर्शन की गहन मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि और त्रिगुण–सिद्धान्त का साहित्यिक रूपान्तर भी है। इसमें जहाँ धैर्य और विवेक की झलक है, वहाँ सत्त्वगुण की उपस्थिति है; जहाँ आकर्षण और आसक्ति है, वहाँ रजस् की प्रधानता है; और जहाँ प्रमाद एवं अज्ञान है, वहाँ तमस् का प्रभुत्व स्पष्टतः परिलक्षित होता है। साथ ही भोग और आसक्ति के चित्रण से यह भी स्पष्ट होता है कि नाटिका सांख्य के उस दार्शनिक सिद्धान्त को प्रत्यक्ष रूप में उपस्थापित करती है जिसके अनुसार भोग केवल अनुभव–मात्र है और अन्ततः पुरुष को आत्मबोध और कैवल्य की दिशा में ही अग्रसर करता है।

2.2 विद्धशालभञ्जिका एवं योग दर्शन

भारतीय दार्शनिक परम्परा में योगदर्शन वह तत्त्वज्ञान है, जो मुख्यतया चित्तवृत्तियों के निरोध पर अवलम्बित है। पतञ्जलि ने योगसूत्र में योग को परिभाषित करते हुए लिखा है-**''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः[10] ''**, अर्थात् योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है। यह वह अवस्थाविशेष है, जिसमें चित्त की वृत्तियाँ का उपशमन हो जाता है। इन वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य के द्वारा सम्भव है-**''अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः''**[11]। यह अभ्यास दीर्घकाल तक, निरन्तरता और श्रद्धा के साथ किए जाने पर सुदृढ़ हो जाता है- **''स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः''**[12] पतञ्जलि यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि साधक को चित्त की शान्ति को बलपूर्वक प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए, अपितु संयम और साधना के माध्यम से उसे समाधि की ओर अग्रसर करना चाहिए।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका में योगदर्शन की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। चतुर्थ अङ्क का एक कथन है-**''युष्मादृशचेटीजनचित्तवृत्तिकुटिलेन दण्डकाष्ठेन भुजगजनजुगुप्सितानि करिष्यामि[13]।''** यहाँ ''चित्तवृत्ति'' शब्द का प्रयोग प्रत्यक्षतः पतञ्जलि के सूत्र का स्मरण कराता है। योगसूत्र में वृत्तियों के पाँच भेद बताए गए हैं- **''वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः''**[14], अर्थात् चित्तवृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं और वे कभी क्लेशयुक्त और कभी क्लेशशून्य भेदों वाली हो सकती हैं। नाटिका का यह संवाद इस तथ्य की पुष्टि करता है कि असंयमित चित्त की वृत्तियाँ विकृत और कुटिल हो जाती हैं, जिन्हें संयम और साधना के द्वारा ही सुस्थापित एवं सुव्यवस्थित किया जा सकता है। इसी क्रम में चतुर्थ अङ्क में विदूषक ब्राह्मणी से कहता है- **''भोः पुत्ताणां मादे, उट्ठेहि संज्झं वंदितुं... ब्राह्मणा भणन्ति-सुखसुप्तो न प्रतिबोधयितव्यः**[15]''- हे पुत्रों की माता,

उठो और संध्या–वन्दन करो। ब्राह्मण कहते हैं कि जो सुखपूर्वक सो रहा हो, उसे जगाना उचित नहीं। यह कथन केवल धार्मिक संध्या–वन्दन का निर्देश नहीं है, अपितु मानसिक अनुशासन और आत्मशुद्धि का भी प्रतीक है। विदूषक के कथन में स्थित **''सुखसुप्तो न प्रतिबोधयितव्यः**[16]**''** यह वाक्य योगदर्शन की उस गूढ़तम शिक्षा को स्मरण कराता है, जिसमें कहा गया है कि जब चित्त स्वाभाविक शान्ति में हो, तब उसे व्यर्थ में विचलित नहीं करना चाहिए। पतञ्जलि ने कहा भी है-**''तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः**[17]**''** अर्थात् चित्त को उसकी स्थिर अवस्था में बनाए रखने का प्रयास ही अभ्यास है।

इस प्रकार विद्धशालभञ्जिका नाटिका के प्रस्तुत उपस्थापित प्रसंग एवं ऐसे ही प्राप्त अनेक अन्य उद्धरण योगसूत्रों के साथ प्रतिध्वनित होते हैं। पतञ्जलि जहाँ निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त को समाधि की ओर ले जाने का उपदेश देते हैं, वहीं नाटक के संवाद यह इंगित करते हैं कि चित्त की स्वाभाविक स्थिरता को बलपूर्वक विचलित करना अनुचित है। नाटक के पात्र संयम और असंयम के बीच संघर्ष करते हुए दिखाए गए हैं। जहाँ आत्मनियन्त्रण और तपोभाव है, वहाँ योग का अनुशासन स्पष्ट झलकता है; और जहाँ इन्द्रियनिग्रह का अभाव है, वहाँ परिणाम विपरीत रूप से सामने आते हैं। इस प्रकार यह नाटिका केवल साहित्यिक रसाभिव्यक्ति या श्रृंगार का माध्यम नहीं है, अपितु योगदर्शन की साधना और चित्त–अनुशासन का भी सजीव नाट्य–प्रतिबिम्ब है।

2.3 विद्धशालभञ्जिका एवं न्याय दर्शन

भारतीय आस्तिक दर्शन–परम्परा में न्यायशास्त्र का स्थान विशेष है। महर्षि गौतम द्वारा प्रणीत इस दर्शन का मूल उद्देश्य तर्क और प्रमाण के आधार पर यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है। न्यायसूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस या मोक्ष की प्राप्ति होती है- **''प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डाहेत्वाभास-च्छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानात् निःश्रेयसाधिगमः**[18]**।''** न्याय का लक्ष्य है यथार्थ ज्ञान, और यथार्थ ज्ञान से ही संसारिक दुःखों की निवृत्ति सम्भव है।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका के संवादों में न्याय की तर्कप्रधान शैली स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। चतुर्थ अङ्क में सहेलियों का संवाद है- **''हला कुरंगिए, कहिं उण महाराओ पेक्खिदव्वो**[19]**।''** यह प्रश्न तत्कालीन परिस्थिति के बारे में संशय उत्पन्न करता है। उत्तर में दूसरी सहेली कहती है- **''जणो दीसइ''**[20] अर्थात्, ''व्यक्ति सामने दिख रहा है।'' यह उत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित है। न्यायशास्त्र प्रत्यक्ष को मुख्य प्रमाण मानता है और उसके अतिरिक्त अनुमान, उपमान और शब्द भी प्रमाणता को स्वीकार करता है। इस प्रकार नाटक का यह छोटा-सा संवाद न्याय के संशय और समाधान की शैली को जीवन्त कर देता है। जिसमें न्याय के प्रथम पदार्थ प्रमाण का प्रतिविम्ब स्पष्टतः परिलक्षित होता है। तृतीय अंक का एक और कथन है- **''यदि चन्द्रमणिहुतवहं निस्यन्दते कोऽत्र प्रतीकारः**[21]**।''** इसका अर्थ है- ''यदि चन्द्रमणि से अग्नि निकलने लगे तो उसका उपाय (प्रतिकार) क्या होगा?'' यह उदाहरण न्यायशास्त्र में वर्णित हेत्वाभास की स्मृति कराता है। सामान्य अनुभव के अनुसार चन्द्रमणि से अग्नि का निस्सरण सर्वथा असम्भव है; यदि ऐसा कल्पित किया जाए तो वह असंगत कारण (असिद्ध हेतु) माना जाएगा। न्यायसूत्र में हेत्वाभास के पांच प्रकार बताए गए हैं- **''सव्यभिचार- विरुद्ध-प्रकरणसम-साध्यसम-कालातीताः हेत्वाभासाः**[22]**।''** अर्थात् सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, कालातीता- ये सभी असत् हेतु अर्थात् हेत्वाभास हैं, जिनका युक्तिपूर्वक निराकरण करना आवश्यक है। नाटक का यह प्रसंग इसी न्यायपरक पद्धति का साहित्यिक कलात्मक प्रतिरूप है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल भावनाओं और श्रृंगार की अभिव्यक्ति भर नहीं है, बल्कि उसमें प्रश्न, संदेह, प्रमाण और समाधान की न्याय दार्शनिक प्रक्रिया भी अन्तर्निहित है। ऐसे ही अन्य प्रकरण भी प्राप्त होते हैं, जिनमें न्यायदर्शन के सिद्धान्त सन्निहित हैं। पात्रों के प्रश्न और उत्तर केवल कथानक को आगे नहीं बढ़ाते, अपितु वे दार्शनिक स्तर पर यह दिखाते हैं कि मानव–विचार की प्रगति तर्क और प्रमाण के द्वारा ही सम्भव है। न्यायदर्शन के सोलह पदार्थों में से संशय, प्रमाण और हेत्वाभास की छाया यहाँ प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। जबकि अन्य पदार्थों का प्रतिविम्ब भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। इस प्रकार यह नाटिका साहित्य और न्यायशास्त्र के बीच सेतु का कार्य करती है, जहाँ रस और तर्क दोनों ही मिलकर काव्य को गहन अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

2.4 विद्धशालभञ्जिका एवं वैशेषिक दर्शन

भारतीय आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक दर्शन महर्षि कणाद द्वारा प्रणीत एक महत्त्वपूर्ण चिन्तन है, जिसका आधार सात पदार्थों की स्वीकृति पर है- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। अन्नंभट्ट ने तर्कसंग्रह के उद्देश–प्रकरण में स्पष्ट रूप से कहा है-**''द्रगव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः**[23]**।''** इन सात पदार्थों के माध्यम से सम्पूर्ण जगत् की व्याख्या की जा सकती है और इन्हीं के आधार पर वैशेषिक दर्शन ने वास्तविकता की एक दार्शनिक रूपरेखा प्रस्तुत की है। द्रव्य और गुण का सम्बन्ध, कर्म के द्वारा उनके कार्यरूप में प्रकट होना, सामान्य और विशेष का अभेद तथा समवाय का नित्य और अविनाशी सम्बन्ध—ये सभी वैशेषिक अनुचिन्तन के मूल तत्त्व हैं।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका में निहित अनेक संवाद इन वैशेषिक तत्त्वों की छाया प्रकट करते हैं। द्वितीय अङ्क का एक कथन है- **''न विना चन्द्रशेफालिकायां विकसन्ति कुसुमानि**[24]**।''** इसका भाव यह है कि चन्द्रमा की शीतल किरणों के बिना शेफालिका के पुष्प नहीं खिल सकते। यह सूक्ति इस तथ्य की स्मृति कराती है कि चन्द्रमा में नित्य–सम्बद्ध से शीतलता का गुण सन्निहित है और शेफालिका में नित्य–सम्बद्ध विकसन का। वैशेषिक मतानुसार यह समवाय सम्बन्ध द्रव्य और उसके गुण के मध्य है। इस नित्य सम्बन्ध (समवाय) को तर्कसंग्रह में परिभाषित किया गया है-**''नित्यसम्बन्धः समवायो। अयुतसिद्धवृत्तिः**[25]**''** अर्थात्, समवाय नित्य सम्बन्ध है, जो अयुतसिद्ध पदार्थों (जैसे द्रव्य और उसके गुण, द्रव्य और उसके कर्म इत्यादि) में पाया जाता है। चन्द्रमा और उसकी शीतलता, तथा शेफालिका और उसका विकसन – ये अपने-अपने द्रव्यों से नित्य–सम्बद्ध या समवाय सम्बन्ध से संयुक्त हैं। परन्तु जब चन्द्रमा का शीतल गुण शेफालिका के विकसन गुण को सहायक कारणरूप से प्रकट करता है, तब वहाँ सहकार–कारण–सम्बन्ध प्रत्यक्ष होता है, न कि समवाय सम्बन्ध। इसी प्रकार प्रथम अङ्क में ही एक और कथन मिलता है- **''न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुञ्चति मौक्तिकानि**[26]**।''** इसका तात्पर्य यह है कि बिना प्रयत्न के हाथ में पकड़ी हुई शुक्ति भी मोती उत्पन्न नहीं करती। यह कथन वैशेषिक के द्रव्य–गुण–कर्म सम्बन्ध की ओर संकेत करता है। द्रव्य (शुक्ति) में मोती उत्पन्न करने की सम्भावना तो निहित है, किन्तु उसका प्राकट्य तभी सम्भव है जब कर्म अथवा प्रयत्न उसके साथ जुड़ता है। इस प्रकार नाटक में यह प्रतिपादन अप्रत्यक्ष रूप से वैशेषिक दृष्टि को प्रतिबिम्बित करता है कि जगत् की समस्त घटनाएँ द्रव्य, गुण और कर्म की पारस्परिक क्रियाशीलता से ही घटित होती हैं।

इन प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल भावनात्मक और श्रृंगार प्रधान नाट्यकृति मात्र नहीं है, अपितु वह वैशेषिक दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को भी साहित्यिक सौन्दर्य में रूपान्तरित करती

है। राजशेखर ने अपने काव्य–विन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार द्रव्य और गुण, कर्म और परिणाम के सम्बन्ध जैसे दार्शनिक सत्य मानवीय जीवन और प्राकृतिक घटनाओं के रूप में नाट्य–संवादों से जुड़ सकते हैं।

2.5 विद्धशालभञ्जिका एवं मीमांसा दर्शन

भारतीय आस्तिक दर्शन में परिगणित महर्षि जैमिनि प्रणीत मीमांसा का मुख्य उद्देश्य वेदवाक्यों की वैज्ञानिक व्याख्या करना और निश्चित धर्म का निर्धारण करना है। जैमिनि ने अपने सूत्रों में धर्म की परिभाषा देते हुए कहा है-**''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**[27] **।''** अर्थात् वेदवाक्य में जो विधिरूप से प्रतिपादित अर्थ है, वही धर्म है। इस आधार पर मीमांसा दर्शन कर्मकाण्ड, नित्यकर्म और विधि–निषेध को जीवन का मूलाधार मानता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि धर्म के निर्णय में अन्य कोई साधन स्वतंत्र प्रमाण नहीं हो सकता। यही दृष्टि मनुस्मृति में भी प्रतिपादित है-**''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**[28]**''** अर्थात् सम्पूर्ण वेद ही धर्म का मूल है। इसी प्रकार मीमांसक आचार्य लौगाक्षीभास्कर ने अर्थसंग्रह में स्पष्ट कहा है- **''वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः**[29] **।''** अर्थात् वेद में प्रतिपादित प्रयोजनयुक्त अर्थ ही धर्म है।

इसी दार्शनिक पृष्ठभूमि में विद्धशालभञ्जिका नाटिका के संवादों को देखा जाए तो अनेक प्रसंगों में मीमांसा- दृष्टि अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होती है। द्वितीय अङ्क में विदूषक कहता है- **''अहं पुनर्जानेऽनुप्रविश्यास्मान् छलितुम्.....भूतपिशाचवासस्थाना सन्ध्या सन्निहिता वर्तते**[30] **।''** इसका अर्थ है- ''मैं भीतर जाकर छल करूँगाय अहो! यहाँ तो ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्णमण्डप में ब्रह्मराक्षस बोल रहे हों। यह भूत–पिशाचों का वासस्थल है और संध्या समीप आ रही है।'' यहाँ 'संध्या' का उल्लेख मात्र समय के बोध के लिए नहीं, बल्कि वेदविहित नित्यकर्म का द्योतक है। मीमांसा दृष्टि के अनुसार यदि संध्या–वन्दन जैसे नित्यकर्म समय पर न किए जाएँ, तो अधर्म और अनिष्ट (भूत–पिशाच का भय) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार उसी अंक का एक अन्य कथन है-**''सुखायः सायन्तनी सन्ध्या भवतु देवस्य**[31] **।''** इसका आशय यह है कि संध्या–वन्दन देवताओं के सुख और अनुग्रह का साधन है। यह विचार मीमांसा के उस सिद्धान्त को प्रतिध्वनित करता है कि वेदविहित नित्यकर्म केवल अनुष्ठानात्मक क्रियाएँ नहीं, बल्कि धर्मपालन और लोकमंगल के अनिवार्य तत्व भी हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल श्रृंगार और हास्यप्रधान नाटीका न होकर मीमांसा दर्शन की गम्भीर अंतर्दृष्टि को भी अपने संवादों में समाहित किए हुए है। राजशेखर ने यह दिखाया कि वेदविहित कर्म साहित्यिक संरचनाओं और नाटकीय प्रसंगों के माध्यम से भी धर्म की अनिवार्यता और जीवन की नैतिकता को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिपादित कर सकते हैं।

2.7 विद्धशालभञ्जिका एवं वेदान्त दर्शन

भारतीय आस्तिक दर्शन की परम्परा में वेदान्त को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जो उपनिषद्वाक्यों को परम प्रमाण मानता है - **वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणम्**[32] **।** उपनिषदों का निष्कर्ष है कि दृश्य–जगत् के मूल में केवल एक ही परमसत्ता है, जिसे ब्रह्म कहा जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में यह उद्घोष सन्निहित है-''सर्वं खल्विदं ब्रह्म[33]'' - अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। इसी सत्य को बृहदारण्यकोपनिषद् और भी स्पष्ट करते हुए कहता है- **''नेह नानास्ति किञ्चन**[34]**''**, अर्थात् यहाँ कोई भेद या द्वैत नहीं है; सब एक ही तत्त्व की विविध अभिव्यक्ति है। यही अद्वैत–बोध वेदान्त दर्शन की केन्द्रीय दर्शनधारा है।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका के अनेक रूपक और वर्णन वेदान्त दार्शनिक तत्त्वों की स्मृति कराते हैं। तृतीय अङ्क का एक अनुपम वर्णन है-**''शितिकण्ठकण्ठसमुत्थमिव, नारायणतनुविनिर्गतमिव... अपरिच्छिन्नं भुवनगर्भाङ्गणं करोति**[35] **।''** यह रूपक स्पष्ट करता है कि शिव और विष्णु, यद्यपि नाम और रूप में भिन्न माने जाते हैं, किन्तु उनकी सत्ता का मूल एक ही परमचौतन्य है, जो समस्त विश्व को व्याप्त करता है। यह दृष्टि

उपनिषदों की उसी उद्घोषणा के अनुरूप है जिसमें देवताओं के भेद को केवल उपासना–भेद माना गया है; वास्तविक तत्त्व तो एक ही है, और वह है - ब्रह्म। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है-**''नेह नानास्ति किञ्चन**[36]''- यहाँ कोई द्वैत नहीं है। प्रस्तुत नाटिका में समागत यह रूपक उपनिषद् के इसी अद्वैत–सत्य का कलात्मक एवं साहित्यिक निरूपण है। इसी प्रकार नाटक की एक व्याख्यात्मक पंक्ति में उल्लिखित है- **''यद्यस्मात् कारणाद् वेधसो ब्रह्मणः सर्गक्रमः...**[37]''। यहाँ 'ब्रह्मा के सर्ग–क्रम' का उल्लेख वेदान्त के उस तत्त्व से जुड़ता है जिसे अभिन्न–निमित्तोपादान कारण कहा जाता है—अर्थात् वही ब्रह्म सृष्टि का कारण भी है और उपादान (आधार) भी। यह दृष्टि मुण्डकोपनिषद् की उपमा से प्रतिध्वनित होती है- **''यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः**[38]'', अर्थात् जैसे अग्नि से असंख्य चिन्गारियाँ उत्पन्न होती हैं, वैसे ही एक ब्रह्म से समस्त जगत् का विकास होता है।

इन रूपकों और उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल श्रृंगार और हास्य का नाट्य–प्रयोग नहीं है, बल्कि उसमें वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सूक्ष्म निरूपण भी सन्निहित है। नाटिका में देवताओं के भेद का उल्लेख वास्तव में इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सभी देवता अन्ततः उसी एक ब्रह्म की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। पात्रों की आसक्ति, मोह और संघर्ष अविद्या के प्रतीक हैं, जबकि उनकी विवेकपूर्ण प्रवृत्तियाँ विद्या और आत्मबोध की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार विद्धशालभञ्जिका नाटिका के कुछ अंश निःसन्देह वेदान्त दर्शन का साहित्यिक रूपान्तर है-जहाँ जगत् की विविधता के पीछे एकत्व की अनुभूति करायी जाती है, और यह दिखाया जाता है कि कला और काव्य भी अद्वैत–सत्य का सशक्त माध्यम बन सकते हैं।

3. विद्धशालभञ्जिका नाटिका में नास्तिक दर्शन

भारतीय दार्शनिक परम्परा में आस्तिक दर्शनों के साथ–साथ नास्तिक दर्शनों का भी विशिष्ट स्थान है। नास्तिक दर्शन वे हैं जो वेद की अपौरुषेयता और प्रमाण–स्वरूप को अस्वीकार करते हैं। इनमें मुख्यतः चार्वाक (लोकायत), जैन और बौद्ध परम्पराएँ आती हैं। चार्वाक दर्शन इन्द्रिय–प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानकर आत्मा, परलोक और मोक्ष का निषेध करता है। जैन मत जीव–अजीव, बन्धन–मोक्ष और अनेकान्तवाद पर आधारित है, जबकि बौद्ध दर्शन प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद और शून्यवाद जैसे सिद्धान्तों पर केन्द्रित है। विद्धशालभञ्जिका नाटिका में पात्रों की भाषा, उनके संवादों और कथानक की रूपरेखा में नास्तिक विचारधाराओं की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। कहीं केवल भौतिक उपभोग की प्रवृत्ति चार्वाक की याद दिलाती है, तो कहीं कर्म–फल और नैतिक अनुशासन जैन मत की स्मृति कराते हैं, इसी प्रकार कहीं-कहीं अनित्यता और अनात्मवाद का स्वर बौद्ध दर्शन से साम्य स्थापित करता है। इस प्रकार यह नाटिका केवल आस्तिक मतों का दर्पण नहीं, अपितु नास्तिक परम्पराओं के वैचारिक अंशों का भी प्रतिबिम्ब है।

3.1 विद्धशालभञ्जिका एवं चार्वाक (लोकायत) दर्शन

भारतीय नास्तिक परम्परा में परिगणित चार्वाक या लोकायत दर्शन को प्राचीनतम माना गया है। चार्वाक दर्शन केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है - ''प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्''-अर्थात् केवल प्रत्यक्ष इन्द्रियानुभव ही ज्ञान का साधन है। अनुमान, उपमान और शब्द जैसे अन्य प्रमाण असत्य और अविश्वसनीय हैं क्योंकि वे इन्द्रियगोचर नहीं हैं। इसी आधार पर चार्वाक आत्मा, ईश्वर और परलोक का निषेध करता है और केवल भौतिक जीवन के सुख को ही परम लक्ष्य मानता है- **तत् चैतन्यविशिष्टदेह एवात्मा, देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेरनङ्गीकारेण प्रामाण्याभावात्**[39]। इस मत का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धान्त है- सुखवाद। जिसके अनुसार जब तक जीवन है, सुखपूर्वक जियोय ऋण लेकर भी घी पियो। क्योंकि जब यह शरीर भस्म हो जाएगा तो पुनर्जन्म की सम्भावना नहीं है[40]।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका में के संवादों में लोकायत दृष्टि की छाया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। चतुर्थ अङ्क का एक संवाद है- **''अइ सुलक्खणे, किं विअ लक्खणं मंतीअदि। जदो सहस्साणं पाणिहिस्स कोउहलहलहलो**[41] **।''** इसका भावार्थ है- ''अरी सुलक्षणे! यह कौन-सा लक्षण है? जब सहस्रों युवतियों का पाणिग्रहण होने जा रहा है, तब कौतूहल और भोग–उत्साह स्वाभाविक है।'' यहाँ तत्कालिक भोग और इन्द्रिय–तृप्ति की प्रवृत्ति चार्वाक सिद्धान्त की प्रतिध्वनि करती है। इसी अंक में विदूषक कहता है- **''संबंधिजणाणुरूपं भुज्जं किं पि किदं**?[42]**''** इसका अर्थ है- ''सम्बन्धियों के अनुरूप कुछ भोज्य बनाओ।'' यह आहार–आसक्ति और उपभोग की प्रवृत्ति का सूचक है। इन प्रसंगों में न तो आत्मा और मोक्ष की चर्चा है, न ही परलोक और धर्म–फल का उल्लेख। यहाँ केवल प्रत्यक्ष अनुभव, इन्द्रियानन्द और तत्कालिक सुख ही मूल्यवान् हैं- जो कि चार्वाक का मूल प्रतिपादन है। इस दृष्टि से विद्धशालभञ्जिका नाटिका यह दर्शाती है कि कैसे लोकायत प्रवृत्ति साहित्य और नाट्य में भी जीवन्त रूप से प्रकट होती है, जहाँ इन्द्रिय–तृप्ति और भोग–विलास ही जीवन का परम ध्येय बना दिया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका में लोकायतदर्शन के प्रसिद्ध सिद्धान्त विशेषतः सुखवाद के उदाहरण बहुतायत में समाहित हैं।

3.2 विद्धशालभञ्जिका एवं जैन दर्शन

जैन दर्शन का केन्द्रीय प्रतिपाद्य विन्दु जीव और अजीव का भेद तथा कर्म–बन्धन और मोक्ष की प्रक्रिया है। इसके साथ अहिंसा को सर्वोपरि सदाचार माना गया है और अनेकान्तवाद–स्याद्वाद को सत्य की दार्शनिक दृष्टि के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रत्येक जीव स्वतन्त्र होते हुए भी कर्म–बन्धनों में फँसकर संसार–चक्र में प्रवृत्त होता है, और संयम, तप तथा व्रतों के द्वारा ही उससे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तत्त्वार्थसूत्र में स्पष्ट कहा गया है- **''सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः**[43] **।''** अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही मोक्ष का मार्ग हैं। इसी प्रकार आचाराङ्गसूत्र में अहिंसा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है- **''एयावंति सव्वाति लोगंसि कम्मसमारंभा परिनाणियध्वा भवंति। जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मेत्ति बेमि**[44] **।''** अर्थात् लोक में हिंसा के सभी रूप जानने और त्यागने योग्य हैं, और जो उन्हें जानकर त्याग देता है वही 'परिज्ञातकर्मा' मुनि कहलाता है। यह प्रतिपादन स्पष्ट करता है कि जैन दृष्टि में अहिंसा केवल एक आचार नहीं, बल्कि मुक्ति–मार्ग का मूलाधार भी है।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका में यह जैन दृष्टि बहुधा दृष्टिगोचर होती है। द्वितीय अङ्क में विदूषक का संवाद- **''अहं उण जाणे अणुप्पविसी अह्म छलिदुं.....भूतपिशाचवासस्थाना सन्ध्या सन्निहिता वर्तते। तदेहि अवतरावः**[45] **।''** - अनुशासन और समयपालन की ओर संकेत करता है, जो जैन अनुशीलन में संयम और नियमबद्धता का अभिद्योतक है। यहाँ आगत 'संध्या' पद केवल धार्मिक अनुष्ठान का प्रतीक न होकर जीवनानुशासन और आत्मसंयम का भी अभिव्यञ्जक है। इस प्रकार नाट्य–संवाद संयम, समयपालन और अहिंसा जैसे तत्त्वों को अप्रत्यक्ष रूप से रूपायित करता है। इसी के साथ, जैन दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण आयाम अनेकान्तवाद है। इसके अनुसार सत्य किसी एक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं होता, अपितु बहुपक्षीय होता है। इसी से विकसित स्याद्वाद प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक सत्य को 'स्यात्' कहकर विभिन्न दृष्टियों से अभिव्यक्त किया जा सकता है। विद्धशालभञ्जिका नाटिका में भी यह बहुविध दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है। तृतीय अङ्क का संवाद- **''सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीमारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते। आस्ते केवलमञ्जिनी किसलयप्रस्तारशय्यातले चित्तेन सा**[46] **।।''** - इस तथ्य का प्रमाण है कि एक ही परिस्थिति नायिका को अनेक दृष्टिकोणों से भिन्न–भिन्न अनुभव कराती है। उपवन त्याज्य प्रतीत होता है,

चन्द्रकान्ति अप्रिय लगती है, मनोरंजन–स्थल विष समान प्रतीत होता है, और अन्ततः वह केवल पत्तों की शय्या पर स्थिर हो जाती है। यह प्रसंग जैन अनेकान्तवाद की दार्शनिक संवेदना को मूर्त करता है, जहाँ सत्य एकांगी नहीं, बल्कि बहुपक्षीय और बहुरूप है।

इस प्रकार, विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल भोग और श्रृंगार की प्रस्तुति नहीं, बल्कि उसमें जैन मत की संयमशीलता, अहिंसा और अनेकान्त दृष्टि भी कलात्मक रूप में व्यक्त हुई है। विद्धशालभञ्जिका के माध्यम से राजशेखर ने यह उपस्थापित किया है कि साहित्य जीवन और दर्शन का संगम है, जहाँ रसात्मक अभिव्यक्ति के भीतर दार्शनिक चिंतन और नैतिक अनुशासन का भी समावेश होता है।

3.3 विद्धशालभञ्जिका एवं बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन का मूल प्रतिपादन त्रिलक्षणों में निहित है, जिसका सुव्यवस्थित स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित है- **''सर्वे संखारा अनिच्चा, सर्वे संखारा दुःखा, सर्वे धम्मा अनत्ता[47]''।** अर्थात् समस्त संस्कार अनित्य हैं, समस्त संस्कार दुःखस्वरूप हैं और समस्त धर्म अनात्मा हैं। यही सिद्धान्त आगे चलकर चार आर्यसत्यों में व्यवस्थित रूप से प्रतिपादित हुआ है- **''चत्वार्यार्यसत्यानि। तद्यथा- दुःखम्, समुदयः, निरोधः, मार्गश्चेति[48]।''** इन आर्यसत्यों के अनुसार जगत् का प्रत्येक अनुभव दुःखमूलक है; दुःख का कारण तृष्णा और आसक्ति है; उसका निरोध सम्भव है और अष्टाङ्गिक मार्ग ही उस निरोध की दिशा है।

विद्धशालभञ्जिका नाटिका में अनेक संवाद इन बौद्ध तत्त्वों की प्रतिध्वनि करते हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर कहा गया है-**''कियच्चिरं वा चन्द्रे प्रसारितकरे अविस्पष्टनीलोत्पलिनी तिष्ठति[49]।''** इसका आशय यह है कि चन्द्रमा की आभा केवल क्षणभर ही स्थिर रहती है और तत्पश्चात् विलुप्त हो जाती है। यह दृश्य बौद्ध दृष्टि से वस्तुओं की क्षणभंगुरता और अनित्यता (अनिच्चता) का दार्शनिक संकेत है। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा गया है- **''न खल्वनुत्पीडितः सहकारपृष्ठग्रन्थिः रससर्वस्वं मुञ्चति[50]।''** यहाँ यह भाव व्यक्त होता है कि बिना दवाब के सहकार (आम्र) रस का सार नहीं छोड़ता। यह प्रतीक है कि प्रत्येक सुख-दुःख या अनुभव उत्पन्न होते ही लुप्त हो जाता है। यही क्षणभंगुरता बौद्ध दर्शन की 'अनित्यता' का मूर्तिमान स्वरूप है। इसी क्रम में, नाटिका में एक अन्य प्रसंग प्राप्त होता है, जहाँ बादल की क्षणभंगुरता का बोध कराते हुए कहा गया है- **''सखे सोमदत्त किमात्य? तदकालजलदस्य प्रणप्तुस्तस्य गुणगणः किमिति न वर्ण्यते?[51]''** अर्थात्- ''मित्र सोमदत्त! बताओ, उस सामयिक (क्षणिक) बादल के गुणों का वर्णन क्यों न किया जाए?'' यहाँ बादल के क्षणिक सौन्दर्य का चित्रण है, जो बौद्ध दृष्टि से समस्त वस्तुओं की नश्वरता और अस्थिरता का प्रत्यक्ष रूपक है। इसी प्रकार, एक नायिका के विषाद का वर्णन करते हुए कहा गया है- **''सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीम्... आस्ते केवलमञ्जिनी किसलयप्रस्तारशय्यातले चित्तेन सा[52]।।''** जिसका अर्थ है -''वह भवन से विरक्त होकर उपवन छोड़ देती है, चन्द्रमा की उज्ज्वल आभा से घृणा करती है और केवल कोमल पत्तों की शय्या पर उदास चित्त से बैठी रहती है।'' यहाँ बाह्य सुखों से वितृष्णा और दुःखपूर्ण मनोदशा का जो चित्रण है, वह बौद्ध 'सर्वं दुःखम्' सिद्धान्त का साहित्यिक प्रतिरूप है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका केवल श्रृंगार और विनोद की प्रस्तुति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें अनित्य, दुःख और अनात्मा जैसे बौद्ध त्रिलक्षणों की गहन प्रतिध्वनि सुनाई देती है। राजशेखर ने पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से यह दिखाया कि जीवन के सुख-दुःख क्षणभंगुर हैं और स्थायी आत्मसत्ता का आग्रह व्यर्थ है। इस प्रकार यह नाटिका बौद्ध दर्शन के त्रिलक्षण और आर्यसत्य की अनुभूति को कलात्मक ढंग से मूर्त करती है।

राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका चतुरङ्किका नाटिका केवल रसों और काव्य-रमणीयता की साधना मात्र नहीं है, अपितु भारतीय दार्शनिक परम्पराओं का कलात्मक और संवेदनशील रूपान्तर भी है। इस नाटिका के संवाद, पात्रों की प्रवृत्तियाँ तथा घटनाओं का विन्यास यह सिद्ध करते हैं कि दर्शन के अमूर्त सिद्धान्त केवल ग्रन्थीय सीमाओं में बंधे नहीं रहते, बल्कि साहित्य और नाट्य के माध्यम से वे मानवीय जीवनानुभवों, सामाजिक- सांस्कृतिक परिस्थितियों और नैतिक द्वन्द्वों का जीवंत रूप भी धारण कर लेते हैं। इसमें सांख्य का त्रिगुण, योग का चित्त-अनुशासन, न्याय-वैशेषिक की तर्क-प्रक्रियाएँ, मीमांसा का धार्मिक-आचारिक दृष्टिकोण, वेदान्त की अद्वैतानुभूति तथा चार्वाक–जैन-बौद्ध जैसी नास्तिक परम्पराओं की वैकल्पिक धारणाएँ-सभी एक ही नाट्य-प्रवाह में परस्पर संवाद करते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार यह नाटिका यह प्रमाणित करती है कि नाट्यकला केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं, अपितु दर्शन के प्रचार-प्रसार और दार्शनिक चिन्तन के सामाजिक अनुकरण का सशक्त साधन भी है। अतः विद्धशालभञ्जिका केवल एक श्रृंगार-प्रधान नाटिका नहीं, बल्कि साहित्य, दर्शन, नाट्यशास्त्र, सांस्कृतिक इतिहास और नैतिक चिन्तन के अन्तर्विषयी अध्ययन के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण आधारभूमि है। यह कृति साहित्य और दर्शन के मधुर संयम का अनुपम उदाहरण है, जो न केवल प्राचीन भारतीय बौद्धिक परम्परा की बहुरंगी विचारधारा को मूर्त करती है, वरन् समकालीन चिन्तन के लिए भी नये आयाम प्रस्तुत करती है।

सन्दर्भ -

1. *नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरङ्किका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।।*
   स्यादन्तः पुरसम्बद्धा सङ्गीतव्यापृताथवा। नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा।।
   सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः। देवी भवेत्पुनजर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।।
   पदे पदे मानवती, तद्वशः सङ्गमो द्वयोः। वृत्तिः स्यात्कैशिकीस्वल्पविमर्शाः सन्धयः पुनः।।
   –साहित्यदर्पण, 6.269-272
2. *वही, 6.272 (वृत्तिभाग)।*
3. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.-42*
4. *वही, प्रथम अङ्क, पृ.–16*
5. *''सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।*
   गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतः वृत्तिः।।'' – सांख्यकारिका, 13
6. *विद्धशालभञ्जिका, द्वितीय अङ्क, पृ.–48*
7. *वही, द्वितीय अङ्क, पृ.–76*
8. *''संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्यादधिष्ठानात्।*
   पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।'' – सांख्यकारिका, 17
9. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–140*
10. *योगसूत्र, 1.2*
11. *वही, 1.12*
12. *वही, 1.14*

13. विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–142
14. योगसूत्र, 1.5
15. विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–124
16. वही, चतुर्थ अङ्क, पृ.–124
17. योगसूत्र, 1.13
18. न्यायसूत्र, 1.1.1
19. विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–140
20. वही, चतुर्थ अङ्क, पृ.–140
21. विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.–109
22. न्यायसूत्र, 1.2.4
23. तर्कसंग्रह, (उद्देश प्रकरण), पृ.–20
24. विद्धशालभञ्जिका, द्वितीय अङ्क, पृ.–73
25. तर्कसंग्रह, पृ.–170
26. विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.–42
27. मीमांसा सूत्र, 1.1.2
28. मनुस्मृति, 2.6
29. अर्थसंग्रह, धर्मलक्षण प्रश्न, पृ.-6
30. विद्धशालभञ्जिका, द्वितीय अङ्क, पृ.–76
31. वही, द्वितीय अङ्क, पृ.–76
32. वेदान्तसार, पृ.-4
33. छान्दोग्योपनिषद्, 3.14.1
34. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4.4.19
35. विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.–76
36. बृहदारण्यकोपनिषद्, 4.4.19
37. विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.–17
38. मुण्डकोपनिषद्, 2.1.1
39. चार्वाकदर्शनम्, श्लोक-8, सर्वदर्शनसंग्रह, पृ.-3
40. ''यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।''
    – सर्वदर्शनसंग्रह, चार्वाकदर्शनम्, श्लोक-25,पृ.-10
41. विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–140
42. विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.–142
43. तत्त्वार्थसूत्र, 1.1
44. आचाराङ्गसूत्र, 1.8-9
45. विद्धशालभञ्जिका, द्वितीय अङ्क, पृ.–76
46. वही, तृतीय अङ्क, पद्य–2, पृ.–76
47. ''सब्बे संखारा अनिच्चति, यदा पञ्या पस्सतियअथ निब्बिन्दति दुक्खे, एसा मग्गो विशुद्धिया।''
    ''सब्बे संखारा दुक्खति, यदा पञ्या पस्सतियअथ निब्बिन्दति दुक्खे, एसा मग्गो विशुद्धिया।''
    ''सब्बे धम्मा अनत्तति, यदा पञ्या पस्सतियअथ निब्बिन्दति दुक्खे, एसा मग्गो विशुद्धिया।'' - धम्मपद, 277-279
48. धर्मसंग्रहः, 21
49. विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.–20
50. विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.–16
51. विद्धशालभञ्जिका प्रथम अङ्क, पृ.–10
52. विद्धशालभञ्जिका तृतीय अङ्क, पद्य–2, पृ.–86

49

'विद्धशालभञ्जिका' की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

सञ्जय कुमार *

महाकवि राजशेखर प्रणीत विद्धशालभंजिका एक नाटिका उपरूपक है जिसे कवि ने अपने शक्ति, निपूणता और अभ्यास का प्रयोग करते हुए एक विशिष्ट प्रकारता प्रदान किया है। वस्तुतः जब हम रूपकों की बात करते हैं तो दश प्रकार के रूपक और अट्ठारह प्रकार के उपरूपक की संख्या उपस्थित हो जाती है साथ ही उपरूपकों के महात्म्य का भी बोध होने लगता है। यह उपरूपक भारतीय नाट्य परम्परा के मेरुदण्ड के रूप में सामने आते हैं क्यों कि इनमें इतनी विविधता होती है कि सभी भाषाओँ के नाट्य धर्मो का बोध होने लगता है। उपरूपक की चर्चा करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में इस प्रकार लिखा है –

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्। प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका। दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणिमनीषिणः। विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्।।[1]

अर्थात् नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश तथा भाणिका - इस प्रकार विद्वानों ने उपरूपक के अटठारह भेद कहे हैं। इन सब प्रकरण आदि रूपक तथा नाटिका आदि उपरूपकों का लक्षण विशेष पक्ष को छोड़कर शेष नाटक के समान ही होता है। यहाँ प्रतिपाद्य कृति विद्धशालभंजिका जिसे विश्नाथ नाटिका के रूप में स्वीकार करते हैं – यथा--रत्नावली-विद्धशालभञ्जिकादिः।[2] अर्थात् रत्नावली, विद्धशालभंजिका आदि नाटिका हैं। इसके सम्बन्ध में स्वयं सूत्रधार ने कहा है अये ! यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्धशालभञ्जिका-नाम नाटिकाया वस्तूपक्षेपो गीयते। (विभाव्य) तन्मन्ये तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदाज्ञा। तदहमपि मन्त्रिणो भागुरायणस्य प्रतीकवृत्या शिष्यैर्विहितचारुनाम्नोऽन्तेवासिनो भूमिकां हरदत्तस्य सम्पादयामि।[3], अर्थात् अरे यायावर वंश में उत्पन्न श्रीदुहिक के पुत्र कवि राजशेखर निर्मित विद्धशाल भंजिका नामक नाटिका की कथावस्तु का आक्षेप गाया जा रहा है (विचार कर) इसे मैं यह समझ रहा हूं कि श्रीयुवराजदेव की सभा मुझे इसी अभिनय को प्रस्तुत करने की आज्ञा दे रही है। इसीलिए अब मैं भी मंत्री भागूरायण के शिष्य हरदास की भूमिका ग्रहण करता हूं जिनका शिष्यों ने प्रतीकात्मक नाम चारु रखा है। प्रसंगतः यहाँ सूत्रधार को बताना आवश्यक हो जाता है, इस सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि नाट्य के विभिन्न उपकरणों को सूत्र कहते हैं जो सूत्र को धारण करता है, संभालता है वह सूत्रधार कहलाता है।[4] अतः नाटिका का लक्षण इस प्रकार दिया गया है -

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
** सह आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007*

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्किका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।।
स्यादन्तः पुरसंबद्धा संगीतव्यापृताथवा। नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा।।
संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रसेन शङ्कितः। देवी भवेत्पुनजञ्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।।
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः। वृत्तिः स्यात्कौशकी स्वल्पविमर्शाः संधयः पुनः।।[5]

अर्थात् नाटिका की कथा कविकल्पित होती है। इसमें अधिकांश स्त्रियां होती हैं, इसमें चार अङ्क होते हैं। नायक प्रसिद्ध वीर, ळलित राजा होता है। रनिवास से सम्वन्ध रखने वाली या गानेवाली राजवंश की कोई नवानुरागवती कन्या इसमें नायिका होती है। नायक का प्रेम देवी (महारानी) के भय से शंकायुक्त है और देवी राजवंशोत्पन्न प्रगल्भा नायिका होती है। यह पद-पद पर मान करती है। नायक का प्रेम दैवी भय से शंकायुक्त होता और दैवी राजवंश उत्पन्न प्रगल्भा नायिका होती है। यहाँ वृत्ति कैशिकी होती है और अल्प विमर्श शून्य सन्धियाँ होती हैं। इस आधार पर विद्धशालभंजिका भी कविकल्पित नाटिका है, महाराज विद्याधरमल्ल तथा नायिका मृगांकावली एवं कुवलयमाला की प्रणय कथा प्रस्तुत नाटिका की कथावस्तु है जो समग्र नाटिका में व्याप्त है तथा जिससे घटनाएं संलग्न होकर लक्ष्य प्राप्ति तक बढ़ती चलती हैं। यदि स्त्री पात्रों की बात की जाय तो यहाँ मदनवती, मृगांकावली, कुवलयमाला, पिंगलिका, विचक्षणा, सुलक्षणा, तरंगिका, कुरंगिका, हारयष्टि, कलकंठी, बसंतलता, कल्पलता, मंगलिका, कामकेलि, मृगांकलेखा, बकुलावली, परभ्रतिका और मेखला नाम से स्त्री पत्रों की बहुलता सूचित होती है।

यदि नायक – नायिका पर विचार किया जाय तो इस विद्धशालभंजिका का नायक विद्याधरमल्ल हैं। यह अन्य पुरुष पात्रों में मुख्य है इसलिये इसे 'नायक' माना गया है। यह मृदुस्वभाव तथा सुखोपभोगनिरत है। शास्त्रानुसार 'धीरललित' प्रकृति के होने के कारण सचिवायत्तसिद्धि कहलाता है तथा इसी कारण समग्र राजकार्य मन्त्री भागुरायण के अधीन रहता है। धीरललित नायक के विषय में कहा गया है कि चिंता से मुक्त नृत्य- गीत आदि कलाओं में आसक्त सुखी एवं मधुर प्रकृति का नायक धीरललित होता है।[6] नाटिका के नायक के धीरलालित्य को उपस्थित करते हुए राजशेखर यहाँ लिखते हैं –

बाणान् संहर मुंच कार्मुकलतां लक्ष्यं तवकृत्यम्यकः के नामात्र वयं शिरीषकलिकाकल्पं यदीयं मनः।
तत् कारुण्यपरिग्रहात् कुरु दयामस्मिन् विधेये जने स्वामिन् मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वप्नाद्भुतं दर्शय।।[7]

अर्थात् हे मेरे स्वामी कामदेव तुम अपने बाणों को लौटा दो और अपने धनुष को छोड़ दो क्योंकि जब भगवान् शिवजी आपके लक्ष्य बन चुके तो फिर हम जैसों की गणना ही क्या? जिनके मन सीरीज पुष्प की कलिका के समान अतिशय कोमल हो। तुम दयावान हो करके इस सेवक पर भी इतनी दया अवश्य करो और वैसा ही अद्भुत स्वप्न फिर से मुझे दिखलाओ। इस प्रकार नायक की शृंगरिक प्रियता को बोध हो रहा है। नायक विद्याधरमल्ल कलासक्त पुरुष है जिन्हें अष्टादश लिपियों का ज्ञान है तथा काव्य के गुण दोषों की परीक्षा में सक्षम रहने से वे तुरन्त किसी अभिनव काव्य के प्राप्त होते ही उसकी प्रशंसा करने लगता है। प्रकृति का भी वह प्रेमी है तथा वसन्तादि ऋतु की चर्चा में विविध क्रीडाओं के साथ व्यस्त रहता हुआ मनोरंजन के अवसरों की प्रतीक्षा करता है। इनके प्रत्येक व्यवहार में कुलीन व्यक्ति की गम्भीरता परिलक्षित होती है, अतः वह नायिका मृगांकावली के सौन्दर्य का रात-दिन स्मरण चिन्तन करता है। हृदय में अनुराग रखता हुआ भी महारानी मदनवती के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार रखता है और उसके प्रति पर्याप्त सम्मान भी रखता है तथा उन्हें प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है। यहाँ पर राजा अपने मित्र विदूषक से मृगांकवली से प्रेम को छिपता हुआ रानी के प्रति

प्रेम प्रदर्शित करता हुआ कहता है –**नो मालतीदामविमर्दयोग्यं न प्रेम नव्यं सहतेऽन्तरायम्। म्लानापि मोच्या नहि केसरस्रग् देवी न खण्ड्यप्रणया कथञ्चित्।।**[8]

अर्थात् मालती की माला को मसला नहीं जा सकता परन्तु नवीन प्रणय भी व्यवधान को सहन नहीं कर सकता है। मौलसिरी की माला म्लान होने पर छोड़ी नहीं जा सकती है। महारानी से किसी भी प्रकार से प्रेम का तोड़ना संभव नहीं हो सकता। इस पर विदूषक कहता भी है कि ब रहने दीजिये अपने चतुराई भरे इन वचनों को। बिना पुराने पत्तों के गिरे नवीन पल्लव नहीं निकलता और कस्तूरीमृग नवीन प्रन्थिपर्ण के अंकुरों को खाने का लोभी होता है, यह धतूरे की क्यारी में क्यों रमने लगा। पुनः राजा उत्तर देता हुआ कहता है कि मित्र, तुम निरर्गल वचन बोल रहे हो, क्योंकि जिसकी शंका नहीं करना चाहिए उसी की तुम्हें आशंका होने लगी है। इसी रूप में 'विद्धशालभंजिका' नाटिकाकी नायिका मृगांकवली है, जिसे स्वकीया (स्वीया) मुग्धा नायिका माना जाता है। साहित्यदर्पण में स्वकीयामुग्धा नायिका का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्ध।।[9]

अर्थात् इन स्वीया नायिकाओं में यह नायिका मुग्धा मानी जाया करती है जिसके शरीर में यौवन अवतरित हो चुका है, जिसके मन में काम का उन्मेष प्रारम्भ हो रहा हो, जिसे रतिलीला में झिझक होती हो जिसका प्रणयकोप कोमलता लिये हो और जो अपनी लज्जाशीलता के कारण प्रेम प्रकाशन में विवश रहा करे। इस तरह हम देखते हैं कि मृगांकवली में ये सभी लक्षण विद्यमान हैं जिसके कारण उसे मुग्धानायिका कहा जाता है। मृगांकवली लाटदेश के राजा चन्द्रवर्मा की पुत्री तथा सम्राट विद्याधरमल्ल की प्रेयसी है। सम्पूर्ण नाटिका में मृगांकवली की ही बात राजा विद्याधरमल्ल या अन्य पात्रों के द्वारा की गयी है। यह अनुपम सौन्दर्य से युक्त है। नायक प्रथम दर्शन में ही इसके प्रति अनुरक्त हो जाता है। यह भी नायक विद्याधरमल्ल को अपनी ओर आकर्षित करने का पूरा प्रयास करती है। उसे स्वप्न में देखकर राजा विद्याधरमल्ल उस पर मोहित हो जाता है और कह उठता है- **'धिक् कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ च यदि ते किं वा बहु ब्रुमहे।'**[10] अर्थात् उसकी भौहों के सामने कामदेव का धनुष भला क्या है? जब राजा महामन्त्री भागुरायण द्वारा बनवाये स्फटिक शिला मन्दिर केलि कैलाश को देखने जाता है तो वहाँ उसे वही स्वप्न सुन्दरी सी चित्रकृति दिखाई देती है। जिसके विषय मंत राजा कहता है- **स्वप्नदृष्टजनमुखपद्मसंवादिनी लावण्यलक्ष्मीः**[11] अर्थात् यह सौन्दर्य लक्ष्मी स्वप्न में देखी सुन्दरी के मुख कमल की शोभा से बिल्कुल मिलती-जुलती दिखाई पड़ती है। साथ ही राजा उसे पके हुए सरकण्डों के समान गौर वर्ण का भी बताता है। उस चित्रमय मृगांकवली के सौन्दर्य के विषय में कहता है-

चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते वक्तस्य मित्रं शशीभ्रूसूत्रस्य सनाभिमन्मथधनुर्लावण्यपण्यं वपुः।
रेखा कापि रदच्छदे च सतुनोर्गात्रे च तत् कामिनीमेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवेद्वैग्ध्यमभ्यस्यति।।[12]

अर्थात् यह अपूर्व ही है न इससे हमारा, न कामदेव का कुछ लाभ है। यह तो वही है जो हमारे मन रूपी मृग की चन्द्ररेखा है। अहो! कैसा उत्कृष्ट रूप है। इसके श्याम नेत्र नीलकमल को पराजित कर रहे हैं चन्द्रमा इसके मुख का कामदेव का धनुष भौहों का मित्र है। शरीर रूप का बाजार (अगार) है। सुन्दरी के ओठ पर अपूर्व मुस्कान की रेखा है। कामदेव यदि नैपुण्य का कुछ दिन अभ्यास करें तो कदाचित् इस सुन्दरी का वर्णन करने में समर्थ हो सके हैं। उसके इस स्वाभाविक रूप में मुग्धानायिका की स्पष्ट झलक मिलती है। जिसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ राजा ने ठीक ही कहा है-

क्रमपरिणतरेखामांसलैरङ्गभागैर्लघुरपि लिखितेयं लक्ष्यते पूर्णमूर्तिः।
अयमपि सुकुमारः सात्त्विकिानां निवेशश्चतुरमसृणमुग्धं भावमाविष्करोति।।[13]

अर्थात् सभी अंग क्रम से परिणत रेखाओं से मांसल हैं जिससे लघुरूप में चित्रित भी पूर्ण मूर्ति दिखाई पड़ती है। सात्त्विक भावों के सुन्दर संनिवेश से मनोज्ञ एवं स्निग्ध मुग्धभाव (सीधापन) स्पष्ट प्रकट हो रहा है। उसे देखने पर काम पीड़ा होती है। कवि मृगांकवली के नखशिक का भी एक बिम्ब उपस्थित किया गया है जो इस प्रकार है-

मात्रानर्तितमण्डनभ्रू वदनं किंचित्प्रगल्भे दृशौ। स्तोकोद्भेदनिवेशित स्तनमुरो मध्यं दरिद्राति च।
अस्या यज्जघनं घनं च कलया प्रत्यङ्गमेणी-शःसत्यंकार इव स्मरैक सुहृदा तद् यौवनेनार्पितः।।[14]

अर्थात् उसके नेत्र कुछ धृष्ट हैं एवं वक्षस्थल में स्तनों का थोड़ा-थोड़ा उभार हुआ है। उसका कटिभाग क्षीण हैं, नितम्ब स्थल स्थूल है। उस मृगनयनी के सुन्दर शरीर मानो कामदेव के अनन्यमित्र यौवन ने सत्यांकर (जमानतदार) के रूप में अर्पित किया है। पुनः राजा के द्वारा हाथ की अंगुनियों और नेत्र की अलक्ष्यता के रूप में मृगांकवृली की लज्जाशीलता को भी बतलाया गया है-

यद् भ्रूलते तरलिते यदुदङ्गुलीकः पाणिः पुरो यदपि चक्षुरलग्नलक्ष्यम्।
उन्मुद्रिताधरदलं च यदास्यमस्या-स्तत्कार्यकर्मणि निषक्तमवैमि चेतः।।[15]

अर्थात् मैं समझता हूँ कि इसका मन किसी काम के करने में लीन है इसकी भौहें चंचल हैं, हाथ की उंगुलियाँ ऊपर की ओर उठी हैं नेत्र किसी लक्ष्य पर लगा नहीं है और अधर दल खिला हुआ है। कवि ने उसके तीन स्वरूप का यहाँ प्रतिपादन किया है। मृगांकवली की भौहें चंचल है और अधर दल खिला हुआ है, इससे उसकी काम भावना सूचित होती है। हाथ की उंगुलियाँ ऊपर की ओर उठी है इससे उसकी कर्मशीलता व्यक्त होती है और नेत्र किसी लक्ष्य पर लगा नहीं है यानि वह सामने की ओर न देखकर नीचे की ओर देख रही है इसलिए वह लज्जाशील है। वह मृगांकवली कामदेवरूप राजा को प्राप्त करने के लिए कण्ठस्थित हार चढ़ाकर अचर्ना करती है। पुनः झूले पर स्वामी को दर्शन देती है। केलीकैलास नामक वासगृह की स्फटिकमय दिवाल पर अपना चित्र अंकित कराती है। तदनन्तर स्फटिक की दिवाल की आड़ में दर्शन देती है। अपने रूप से सर्वथा मिलती-जुलती शालभंजिका (मूर्ति) निर्मित कराती है और रत्नावली की चौकी पर वह कन्दुक क्रीड़ा करती हैं। (अंक-3) मृगांकवली के इन विविध विलासों को देखकर राजा विद्याधरमल्ल सहज ही उससे आकर्षित हो जाता है। मृगांकवली प्रेमपरायणा है। उसकी विरहावस्था के विषय में कवि कहता है-

सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेस्टि प्रभामैन्दवीमारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेषं विषं मन्यते।
आस्ते केवलमब्जिनी किसलयप्रस्तारशय्यातलेसंकल्पोपनमत्तदाकृति रसायत्तेन चित्तेन सा।।[16]

अर्थात् वह मृगांवली महल में रहने से उद्विग्न हो जाती है। उपवन को भी छोड़ देती है। चन्द्रमा की प्रभा से भी द्वेष करती है। चित्तकेलि नामक वासगृह से भी बहुत दुःखी होती है। वस्त्राभूषण को विष समझती है। केवल कल्पनाओं से युक्त तथा उस महाराज के रूप के ध्यान में मग्नचित्त एवं कमलिनी के नूतन कोमल पत्रों की शय्या पर पड़ी रहती है। इसी तरह अनेक प्रकार से मृगांकवली की काम पीड़ा का तीसरे अंक में राजशेखर ने वर्णन किया है। जो अनेक प्रकार से राजा को उपालंभ देती है। वह अपनी सखी से कहती है कि ''क्या करू सखी! प्रेम की दुर्दीली दुर्भेद्य होती है। वे बहुत ही निष्करुण, दयाहीन हैं क्योंकि दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाला कोई विरला ही होता है। ऐसे वृक्ष थोड़े ही होते हैं जिनके पुष्प कोयल द्वारा दलित होने से बच जाये। त्रिभुवन में सबसे बड़े धनुर्धारी कामदेव! अपने वाणों की तीक्ष्णता की आजमाइश शंकर जी मेरे ऊपर पर तो कर ही चुके हैं। अब ऐसे तीखे बाणों का प्रहार एक अबला पर करते हुए उन्हें लज्जा नहीं आती। मैं तुझे तो

तभी समझूंगी जब उसी प्रकार साहस और बहादुरी उस विद्याधरमल्ल में दिखलाओगे।[17] वह राजा को पत्र लिखती है। जिसे राजा वाचता हुआ कहता है- **विधत्ते सोल्लेखं कतरदिह नाङ्ग तरुणिमातथापि प्रागल्भयं किमपि चतुरं लोचनयुगे। यदादत्ते –श्यादखिलमपि भावव्यतिकरम्।** [18]

अर्थात् यौवन किस अंग को विशेष सुन्दर नहीं कर देता अर्थात् सभी अंगों को सुन्दर कर देता है। तथापि यौवन नेत्रों में एक विशेष प्रकार का नैपुण्य एवं प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। इसी से वे किसी को केवल देखकर ही उसके हृदयगत समस्त भावों को जान लेता है। इस प्रकार प्रेम के कारण दोनों का विवाह हो जाता है। लेकिन देवी (रानी) हसी करने के उद्देश्य से मृगांकवर्मा को वस्तुतः बालक ही जानकर उसे स्त्री वेश में रखकर राजा के साथ विवाह कराती है। अनन्तर उसके मामा का सन्देश आता है-

जातः सम्प्रति मे कुलैकतिलकः पुत्रस्तदेषा त्वयाभव्याकान्तिमती कलासु कुशला केलिप्रिया नीतिभूः।
देवज्ञोदित चक्रवर्तिगृहिणीभावा मृगांकवलीदेया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयशः पूतस्य पृथ्वीपतेः।।[19]

अर्थात् अब मेरे एक कुलतिलक पुत्र हो गया है। अतः तुम इस सुन्दरी, कला-कुशला, केलिप्रिया, नीतिज्ञा, मृगांकवली का विवाह चन्द्र के समान उज्ज्वल यश से पवित्र किसी राजा के साथ कर दो। इसके विषय में दैवज्ञो ने यह बताया है कि यह चक्रवर्ती की गृहिणी होगी। यहाँ पर मृगांकवली को सुन्दरी के साथ कला-कुशला, केलिप्रिया और नीतिज्ञा कहा गया है जिससे मृगांकवली के उत्तम व्यक्तित्व भान होता है। इस प्रकार मृगांकवली परम सुन्दरी, तरुणी, शिल्पकारिका, कला कुशला, लज्जाशील, सहज प्रकृति विलासिनी, लेखकुशला आदि के रूप में सामने आती है। साथ ही वह अत्यन्त धैर्यशीला भी है जो राजा विद्याधरमल्ल को प्राप्त करने के लिए पुरुष भेष में रहकर उन्हें रीझाने का प्रयास करती है।

नाटिका लक्षण के अनुसार ही मदनवती महारानी (ज्येष्ठा नायिका) है। यह विद्याधरमल्ल प्रधान महिषी तथा लाटाधिपति चन्द्रवर्मा की भतीजी है। स्वरूपतः ज्येष्ठा नायिका की स्थिति महत्वपूर्ण रहती है क्योंकि नायक पर कोप एवं प्रसाद करने के कारण बिना इसकी सहमति के नवनायिका के साथ नायक का प्रणय हो जाने पर भी मिलन सम्भव नहीं होता है। इसी कारण नायिका के बाद महत्वपूर्ण पात्र के रूप में इसी की भूमिका रहती है तथा मूख्य अधिकार के कारण विद्याधरमल्ल मृगांकवली से प्रणय करते समय सदा महारानी से आशंकित भी रहता है। मदनवती स्वभाव गम्भीर है तथा यह मानवती होती है। उत्सुकता-वश यह सदा महाराज की प्रतीक्षा करती रहती है तथा उनके साथ बनी रह कर बिहार करने की इच्छुक रहती है तथा उन्हें आमन्त्रित करती हुई नवीन मनोविनोद के लिए उपक्रम करती रहती है। वह सदा अपने स्वामी के अभ्युदय एवं मंगल की आकांक्षा रखने वाली राज महिषी भी है। नाटिका के तृतीय अंक में यह विशेष रूप से प्रतिपादित है।

शास्त्रकारों के अनुसार रूपक जिसे समग्र फलप्राप्ति होती है उसे 'आधिकारिक कथावस्तु' माना जाता है। इसी के साथ चारायण के मिथ्याविवाह तथा मेखला के जीवन वृत्तान्त की घटनायें अपने अल्प आयाम तथा मुख्य कथावस्तु की उपकारक रहने के कारण 'प्रासंगिक कथावस्तु' के रूप चित्रित किया गया हैं। प्रासंगिक कथावस्तु के विषय में आचार्य विश्वनाथ स्पष्ट कहते हैं - **अस्योपकरणार्थं तू प्रासंगिक मितीष्यते**[20]**।** अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के परितोष के लिए जो कथानक होता है वह प्रासंगिक कहा जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि इतिवृत्त जनित फल का जो स्वामी है वह अधिकार है और उस अधिकार का स्वामी अधिकारी कहलाता है। उस अधिकारी का इति वृत्त कवियों द्वारा आधिकारिक कहलाता है। यथा यहाँ राजा

विद्याधरमल्ल का चरित आधिकारिक कथावस्तु है। इसमें कथावृत्तान्त की सम्यक् संगति के लिये विष्कम्भक तथा प्रवेशक जैसे अर्थोपक्षेपकों की भी यथावसर योजना की गयी है। इनमें प्रथम अङ्क में सुषिरस्तम्भनिर्माण तथा वासगृह-निर्माण की सूचना के लिये विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः विष्कमभक व्यतीत हो चुके और आगे घटित होने वाले कथा के भाग का सूचक, संक्षिप्त अर्थवाला तथा मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा प्रयुक्त अर्थोपक्षेपक कोविष्कम्भक कहा जाता है।[21] विद्धशालभंजिका नाटिका के द्वितीयअङ्क के तरंगिका एवं कुरंगिका दासियों के वार्तालाप के द्वारा चारायण के झूठा विवाह प्रसंग की कथा, तृतीय अङ्क के दासियों के वार्तालाप से महामन्त्री भागुरायण की उस योजना की जिसमें मृगांकावली एवं कुवलयमाला के आयोजित होने वाले परिणय प्रसंग की सूचना है- सभी में 'प्रवेशक' की योजना प्रतिपादित है। प्रवेशक के विषय में आचार्य धनञ्जय ने कहा है - **तद्वदेवानुदात्तोर्कत्या नीचपात्रप्रयोजितः। प्रवेशोऽङ्कद्वयस्थान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।**[22]

अर्थात् उसी तरह (अर्थात् विष्कम्भक की तरह अतीत एवं भविष्य के कथांशों को जोडने वाला यानि सूचक) अधम पात्रों के द्वारा प्राकृत भाषा में सम्पादित (प्रयुक्त), दो अङ्कों के मध्य में स्थित, शेष (अर्थात् अभिनय के द्वारा अप्रदर्शित) अर्थों (कथांशों) का सूचक प्रवेशक कहा जाता है।

विद्धशालभंजिका नाटिका में प्रसंगानुरूप संवाद के प्रकारों स्वगत, प्रकाश, आकाशभाषित तथा अपवारित का भी व्यवस्थित विन्यास है इसके अतिरिक्त प्रसंगानुसारी संवाद के प्रकारों में भाषित तथा अपवारित का भी प्रयोग किया गया है, जिससे नाटिका की अभिनेयता को शास्त्रीयता के साथ-साथ प्रभावपूर्ण अभिनय कीभी झलक मिलाती है। सन्धियों का अपने अङ्गों के साथ पूर्व अवस्था एवं अर्थप्रकृति के साथ 'नाटिका' में संयोजन किया गया है। यहाँ प्रथम अङ्क में नायिका को स्वप्न में देखने पर महाराज विद्याधरमल नायक के हृदय में अंकुरित नायिकानिष्ट प्रणय भावना 'आरम्भ' नामक अवस्था को प्रकट करती है जो नायिका को प्रथम स्वप्न में, फिर चित्र में तथा आगे शालभञ्जिका के रूप में तथा बाद में भित्तिगृह की ओट से देखने पर नायक के औत्सुक्य को उत्तरोत्तर बढ़ाती है। यहाँ पर बिदूषक पात्र की भी योजाना की गयी है। विदूषक राजा का प्रिय मित्र होता है, राजशेखर विदूषक और राजा के मध्य वार्तालाप को उपस्थित करते हुए कहते हैं –

विदूषकः - भोः अपूर्व इव कोऽपि प्राभातिकोऽध्ययनविधिः, प्रियवयस्यस्य

विदूषक - ओ हो ! प्रियमित्र की प्रभातकालीन अध्ययन की यह विधि तो अनोखी ही है।

राजा - तथैव (उसी पद्य को पुनः पढ़ता है)

विदूषकः- अहो अस्य हृदय विक्षेपः। तत् किन्नू खल्येवतत् भवत्वनुबन्धिष्ये। न खल्वनुत्पीडितः सहकारपृष्ठग्रन्थिः रससर्वस्वं मुंचति। परिणामस्फुटितमिव दाडिमीफलं स्फुटनभूयिष्ठं वर्तते मे हृदयं कौतूहलेन तद्यथाप्रस्तुतमाचक्षाणः कार्यरहस्येन सम्भावयतु मां प्रियवयस्यः।

विदूषक - जो हो इसके मन में यह कैसी जमावट हो रही है। तो क्या बात होगी । (विचार कर) अच्छा पहिले सम्बन्ध तो इससे लगाऊँ जिससे प्रिय मित्र मुझे प्रस्तुत कथन का रहस्य बतलाए। क्योंकि आम की गुठलियों को दबाये बिना उससे रस नहीं निकलता। इस समय कौतुहल से भरा हुआ मेरा हृदय पक कर फट जाने वाले अनार के समान (फटना) चाहता है।

राजा- (तदभिमुखमवलोक्य) अये चारायण सखे, कथं न कथयामि। सुहृत्सचारित रहस्यं हि चेतः संविभक्तचिन्ताभारमिव लघूभविष्यति'।

राजा - (उसकी ओर देख कर) अरे चारायण ! मित्र क्यों न कहुगा क्योंकि अपना रहस्य मित्र पर प्रकट कर देने से चिन्ता का भार बंट जाता है और इस प्रकार मन हलका भी हो जाता है।

विदूषक - अवहितोऽस्मि (अच्छा मैं तैयार हूँ)

राजा- जाने स्वप्नविधौ ममाद्य-चुलकोत्सेक्यं पुरस्तादभूत् प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासपत्नं महः।
तस्यान्तर्नखनिस्तुषीकृत-शरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै र्दष्टा काप्यबला बलात् कृतवती सा मन्मथं मन्मथम्।।[23]

अर्थात् मुझे अच्छी तरह भान है कि आज भोर में ही अपने स्वप्न में मंडलाकार वाली एक ऐसी दीप्ति प्रकट हुई जो चन्द्रिका की प्रतिद्वन्द्वी थी। उस प्रभामण्डल में नखों से स्वच्छ किये गये शरद् ऋतु के चन्द्रमा की प्रभा के समान कमनीय अंगो वाली एक अंगना दिखलाई दी, जिसने मन्मथ को बलपूर्वक मन्मथ (मेरे हृदय को मथने वाला) बना डाला। इस प्रकार यहाँ पर विदूषक और राजा के मध्य अत्यन्त सामीप्य का सम्बन्ध दिखलाकर नाटककार ने नाटिका के धर्म का मण्डन किया है। महाराज विद्याधरमल्ल के द्वारा चारायण और विदूषक की सहायता से नायिका की प्राप्ति के लिये किये गये उद्योग 'यत्न' है। तृतीय अंक में नायक-नायिका के मिलन प्रसंग में 'प्राप्त्याशा' है। नाटिका के चतुर्थ अंक में महाराजविद्याधरमल्ल को मृगांकावली तथा कुवळयमाला से विवाह होने एवं चक्रवर्तिपद की प्राप्ति होने पर 'नियताप्ति' एवं 'फलागम' हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार ही इसमें आरम्भ के साथ 'बीज' का, यत्न के साथ के विन्दु आदि का संयोजन भी मिलता है। इसके अतिरिक्त चारायण द्वारा मिथ्याविवाह का उपक्रम तथा मेखला जीवन-दान के प्रसंगों से 'प्रकरी' का स्पष्ट दर्शन होता है। फलागम में 'कार्य' का व्यवस्थित संयोग दिखलाई देता है। नाटिका में स्थित सन्धिचतुष्टय की भी यहाँ योजना स्पष्ट है जहाँ आरम्भतथा बीज के सहद्द योग से मुखसन्धि, यत्न और विन्दु से 'प्रतिमुखसन्धि', प्राप्त्याशा तथा प्रकरी से 'गर्भसन्धि' तथा नियताप्ति और फलागम के कार्य के साथ सहयोग से 'उपसंहृति' की योजना की गयी है जो शास्त्र सम्मत है।

नाट्य या अभिनेय वस्तु को पात्र का आधार लेकर ही प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार आंगिक , वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनयों का सम्यक यहाँ प्रयोग किया गया है। इस रूप में यहाँ अभिनय का मुख्य आधार रस ही है। जिसे अभिनय के माध्यम से अभिनेता को प्रस्तुत करना अभीष्ट होता है। यह अभिनेता जिस भाव को (उपस्थापित कर) प्रस्तुत करता है उसे ही रसमयता की प्राप्ति होती है, क्योंकि भाव पात्र का आधार लेकर ही प्रदर्शित होता है। इस तरह यहाँ पर मुख्य रस शृंगार के साथ वीर, हास्य आदि रसों का सन्निवेश किया गया है। शृंगार रस का यथा प्रयोग द्रष्टव्य है –

चन्द्रं चन्दनकर्दमेन लिखितंयन्मार्ष्टि दष्टाधरः कामः पुष्पशरः किलेति समनोवर्ग लुनीते च यत् ।
बन्धं निन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वाग्रहस्ताङ्गुली स्तत् कामं सुभग त्वया बरतनुर्वातूलता लम्भिता।।[24]

अर्थात् हे नायक, तुम्हारे विरह में वह नायिका चन्दन के रस से चन्द्र की आकृति बनाकर अपने ओठों से काटती हुई क्रुद्ध होकर उसे नष्ट करती है। सभी पुष्पों को कामदेव का बाण समझ कर चारों ओर तोड़कर उन्हें बिखेर देती है। वह अपनी अंगुलियों को मरोड़ कर कामदेव को कोसती है। अरे सुभग, तुसने उस सुन्दरी को उन्माददशा की इस सीमा तक अपनी इच्छा भर पंहुचा दिया है। यहाँ नाटिका में, कैशिकी सात्वती, आरभटी और भारतीवृत्तियों में कैशिकी वृत्ति का प्राधान्य है। आचार्य धनञ्जय ने कैशिकी वृत्ति के विषय में इस प्रकार किया है –

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिचतुर्धा, तत्र कैशिकी। गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः।।[25]

अर्थात् उस (नायक) के व्यापार (अर्थात् मानसिक, वाचिक, तथा कायिक व्यापार) को ही वृत्ति कहते हैं। यह चार प्रकार की होती है। उन चारों में 'कैशिकी' वृत्ति उसे कहते हैं, जो नृत्य, गीत एवं विलासादि शृङ्गारिक चेष्टाओं से सुकुमार समन्वित होती है। प्रवृत्तिरूप नायक के व्यापार का स्वभाव ही 'वृत्ति' है।

(अर्थात् 'वृत्ति' नायक का ऐसा स्वभाव है जिससे प्रेरित होकर वह किसी व्यापार विशेष की ओर उन्मुख या प्रवृत्त होता है। चारों वृत्तियों में से गीत, नृत्य, विलास कामक्रीडा आदि से समन्वित तथा कोमल व काम के फल से युक्त नायक का शृङ्गारिक व्यापार 'कैशिकी' वृत्ति कहलाता है। अभिनवगुप्त का मत है कि वृत्ति का प्रदर्शन करना केवल रूपक का ही उद्देश्य नहीं है वरन् काव्य का भी है। क्योंकि काव्य में उन मानवीय स्थायी भावों को प्रकट किया जाता है जो मनुष्य जीवन के चार प्रतिष्ठित पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि की ओर ले जाने में मानसिक, शारीरिक एवं वाचिक व्यापारों के रूप में सहायक होते हैं। वृत्ति केवल वही नहीं है जिसका शरीर के विभिन्न अंगों से प्रदर्शन किया जाय, अपितु मन तथा वाग् इन्द्रिय का व्यापर भी वृत्ति के अन्तर्गत आता है - व्यापारः पुमर्थसाधिनी वृत्तिः। यद्यपि कायिक, वाचिक तथा मानसिक चेष्टाएँ सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है तथा प्रवाहरूप में सतत् संचरणशील भी है, तथापि ये त्रिविध वृत्तियों विशिष्ट हृदयावेश से युक्त होकर ही नाट्य की उपकारिणी होती हैं। अतएव शरीर अर्को, वागिन्द्रिय एवं मन के व्यापार के अतिरिक्त वृत्ति और कुछ भी नहीं है। वृत्तियों दर्शक सामाजिक के अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होती है तथा इसी रूप में रसानुभव के विषय का अंश बन जाती है। आचार्य भरत के अनुसार जो आकर्षक वेश के कारण सुरुचिपूर्ण हो, जिसमें स्त्रीपात्र तथा अनेक प्रकार के नृत्यों तथा गीत वाद्यों का समावेश हो तथा जिसमें प्रणस व्यापार तथा विलास आमोद बहुप्रसङ्गों का समावेश हो तो वह कैशिकी वृत्ति है- **या श्लक्ष्णनेपथ्यविचित्रचित्र स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता । कामोपभोग प्रभवोपचारा तां कैशिकी वृत्तिमुदाहरन्ति।।** [26]

इसी रूप में विद्धाशालभंजिका में कैशिकी वृत्तिका प्रयोग किया गया है –

कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे कार्पूरमच्छं रजः। सान्द्रं चन्दनमङ्गके वलयिताः पाणौ मृणालीलताः।
तन्वी नक्तमियं चकास्ति शुचिनीश्चीनांशुके विभ्रती शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः।।[27]

अर्थात् इसके कण्ठ में मोतियों की मालाएँ, उरोज के चारों ओर किया हुआ कर्पूर का उज्ज्वल लेप, शरीर पर चन्दन का किया गया गाड़ा लेपन, दोनों हाथों पर लिपटी हुई कमल नाल की लताएँ, उत्तम धारण किये गये रेशमी वस्त्रों से युक्त यह सुन्दरी इस रात्रि में नभोमण्डल में ऊपर चढ़ते हुए चन्द्र से निकलने वाली अधिष्ठात्री देवी के समान चमक रही है। यह कथन राजा का है तथा राजा का मित्र भी विदूषक भी नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करता है जिससे कैशिकी वृत्तिके पूर्ण स्वरूप का परिचय मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशेखर प्रणीत विद्धाशालभंजिका नाटिका में नायक, नायिका, संधि, अर्थोक्षेपक, वस्तु, विदूषक, सूत्रधर, कैशिकी वृत्ति आदि का सम्यक विवेवचन से नाट्यधर्म का उच्चतम् स्वरूप प्रकाशित हुआ है। राजशेखर जिस दृश्यात्मक को काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे इस नाटिका के द्वारा उन्हें उद्देश्य में केवल सफलता ही नहीं मिली है अपितु पात्र जनित रस परिपाक की पूर्णता भी हुई है।

सन्दर्भ-

1. *साहित्यदर्पण , 6/4-6*
2. *वही , 6/272 के अनंतर , मोती लाल बनारसीदास , दिल्ली , 1977 , पृष्ठ – 221*
3. *विद्धशालभंजिका, 1/5 के अनन्तर*
4. *द्विवेदी डा.पारसनाथ, नाट्यशास्त्र का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2017 ,पृष्ठ -399*
5. *साहित्यदर्पण, 6/ 269-272*
6. *दशरूपक , 2/3*

7. विद्धशालभंजिका, 1/22
8. वही, 3/5
9. साहित्यदर्पण, 3/58
10. विद्धशालभंजिका, 1/14
11. वही, 1/32 के अनन्तर संवाद, चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी , 20 01 , पृष्ठ-31
12. वही, 1/33
13. वही, 1/36
14. वही, 1/40
15. वही, 1/41
16. वही, 3/2
17. वही, 3/17 के अन्तर , चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 20 01 , पृष्ठ- 111
18. वही, 3/21 के अनंतर , चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 20 01, पृष्ठ 116-117
19. वही, 4/20
20. साहित्यदर्पण , 6/44
21. दशरूपक , 1/59
22. वही ,1/60
23. विद्धशालभंजिका, 1/14 के अनन्तर का भाग और 1/15
24. वही , 2/20
25. दशरूपक , 2/47
26. नाट्यशास्त्र , 20/53
27. विद्धशालभंजिका, 3/16

50

'विद्धशालभञ्जिका' की कथा-योजना में स्त्री-पात्रों का नाट्यात्मक योगदान

*निधि सिंह *, प्रमोद कुमार सिंह ***

नाट्यपरम्परा में नाटिका का स्थान अत्यन्त समादृत है। आचार्य धनंजय ने अवस्था के अनुकरण को नाट्य माना है–''**अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्**''[1]। नाटक केवल मनोरञ्जन का साधन न होकर लोकजीवन का अनुकीर्तन और समाज का दर्पण भी है। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने नाटिका को संकीर्ण उपरूपक स्वीकार किया है। उनके अनुसार नाटिका की कथा प्रकरण और नाटक से भिन्न एवं कवि-कल्पित होती है। इसमें नायक प्रख्यात और धीरललित राजा होता है, मुख्य रस शृङ्गार होता है और स्त्री-पात्रों की प्रधानता होती है-

''लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये। तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः।
प्रख्यातो धीरललितः श्रृंगारोऽङ्गी सलक्षणः। स्त्रीप्रायश्चतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्यते।।''[2]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में भी प्रायः नाटिका की यही परिभाषा दी है—

''नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्त्रीप्राया चतुरङ्किका।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।।''[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नाटिका में स्त्री-पात्रों की प्रधानता होती है, और कथा-प्रवाह में उनकी केन्द्रीय भूमिका होती हैं। इन लक्षणों से पूर्णतः व्याप्त होने के कारण ही आचार्य विश्वनाथ ने रत्नावली के साथ विद्धशालभञ्जिका को भी नाटिका का प्रामाणिक उदाहरण माना है- **''नाटिकामुदाहरति-यथा रत्नावली–विद्धशालभञ्जिकाऽऽदिः।''**[4]

नाटिका के शास्त्रीय स्वरूप के आधार पर आचार्य राजशेखर (9वीं–10वीं शती ई.) की विद्धशालभञ्जिका पर चिन्तन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि यह कृति केवल हास्य-विनोद की प्रस्तुति मात्र नहीं है, अपितु तत्कालीन समाज का यथार्थपरक चित्रण भी करती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें स्त्री-पात्र केवल गौण या अलंकारात्मक रूप में उपस्थित नहीं हैं, अपितु कथा-प्रवर्तन, नाटकीय-परिवर्तन, रहस्योद्घाटन और रसोत्पत्ति की वास्तविक धुरी भी हैं। इसमें एक ओर जहाँ ज्येष्ठा नायिका मदनवती का कथा

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025
** शोधच्छात्रा-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली*
*** सहाचार्य-संस्कृत विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय) नई दिल्ली*

के संयोजन और दिशा-निर्देशन में सक्रिय भागीदारी है, तो उपनायिका कुवलयमाला अपने सौन्दर्य और प्रतिस्पर्धात्मक वृत्ति से कथा में नाटकीय मोड़ लाती है। मुख्या नायिका मृगाङ्कावली प्रेमकथा का केन्द्र और घटनाओं की प्रेरिका के रूप में प्रतिष्ठित है, तो विचक्षणा, सुलक्षणा और मेखला जैसी परिचारिकाएँ रहस्योद्घाटन और हास्य-व्यङ्ग्य का वातावरण निर्मित करती हैं। इनके साथ विदूषक की पत्नी पिङ्गलिका एवं सेविकाएँ, प्रतिहारी और अन्य स्त्री-पात्र भी प्रसङ्गानुकूल प्रवेश कर कथा की पूर्ति और विस्तार में महान् योगदान करती हैं।

इस प्रकार आचार्य राजशेखर ने विद्धशालभञ्जिका में स्त्री-पात्रों को केवल शोभा-वर्धिनी न बनाकर कथा-योजना की प्राणशक्ति बना दिया है। यही कारण है कि यह नाटिका संस्कृत नाट्यपरम्परा में स्त्री की केन्द्रीय भूमिका और उसके नाट्यात्मक योगदान को समझने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित होती है। इन तथ्यों का सप्रमाण उपस्थापन आगे के विन्दुओं में किया जा रहा है।

विद्धशालभञ्जिका की कथा-योजना में स्त्री-पात्रों का अवदान

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नायिकाओं का विशद् विवेचन मिलता है। आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक में स्वकीया नायिका के तीन भेदों का उल्लेख किया है- **''मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्''**[5]**।** स्वकीया नायिका वह है - जो पतिव्रता, कुटिलता रहित (आर्जवयुक्ता), लज्जावती और पति की सेवा में निपुण होती हैं –**''शीलं सुवृत्तम्, पतिव्रताऽकुटिला लज्जावती पुरुषोपचारनिपुणा स्वीया नायिका''**[6]**।** स्वकीया नायिका तीन प्रकार की होती है- मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। इन शास्त्रीय सन्दर्भों के आलोक में आचार्य राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका स्वकीयाभिधान नायिकाओं की बहुलता से विशिष्ट स्त्री-पात्र प्रधान एक नाट्यकृति है। यहाँ स्त्रियाँ केवल सौन्दर्य-वर्धक या गौण भूमिका तक सीमित नहीं हैं, अपितु कथा-प्रवर्तन, नाटकीय मोड़, रहस्योद्घाटन, हास्य-व्यंग्य और रसोत्पत्ति की अनिवार्य धुरी के रूप में चित्रित हैं। वस्तुतः इस नाटिका का केन्द्रीय आकर्षण उसके विविध स्त्री-पात्र ही हैं- जो कभी संयोजिका बनकर कथा को दिशा प्रदान करती हैं, तो कभी प्रेमकथा का केन्द्र बनकर घटनाओं की प्रेरिका बनती हैं, कभी प्रतिस्पर्धा का स्रोत बनकर नाटकीय आकर्षण उत्पन्न करती हैं, और कभी रहस्योद्घाटन एवं हास्य-व्यंग्य के माध्यम से प्रसङ्गों को उद्घाटित करती हैं। गौण स्त्री-पात्र भी प्रसङ्ग की पूर्ति और कथा-विस्तार में सहायक सिद्ध होती हैं। आगे हम इस नाटिका के विभिन्न स्त्री-पात्रों-मदनवती, मृगाङ्कावली, कुवलयमाला, परिचारिकाएँ तथा अन्य गौण स्त्रियों के कथा-विस्तार एवं कथा-योजना में विशिष्ट योगदान का विशद् विवेचन करेंगे।

(i) मदनवती

विद्धशालभञ्जिका की ज्येष्ठा नायिका मदनवती, नायक विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी होकर सम्पूर्ण कथा–योजना में नाट्य–संयोजिका एवं कथा–विकास की सहायिका के रूप में प्रतिष्ठित होती है। उसका स्वरूप आचार्य धनञ्जय द्वारा निर्दिष्ट प्रगल्भा नायिका के लक्षणों से युक्त है। दशरूपक में प्रगल्भा का स्वरूप इस प्रकार वर्णित है-

''यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके। विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽचेतना[7]**।।''**

अभिप्राय यह है कि प्रगल्भा नायिका परिपक्व यौवन के गर्व में निडर और निःसंकोच होती है। यहाँ 'यौवनान्धा' का तात्पर्य यह है कि वह नायिका अपने सौन्दर्य और यौवन में इस प्रकार निमग्न रहती है कि उसे लज्जा या संकोच का कथमपि अनुभव नहीं होता है। 'स्मरोन्मत्ता' पद इंगित करता है कि वह कामदेव के प्रभाव

से आत्मविश्वासी और निडर होकर व्यवहार करती है। रतिकाल में प्रियतम के साथ उसकी आत्मीयता इतनी प्रगाढ़ होती है कि वह मानो अपने अस्तित्व को भी विस्मृत कर बैठती है। इन लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो मदनवती का चरित्र नाटक में प्रगल्भा नायिका की मूर्तिमान अभिव्यक्ति के रूप में उपस्थित है। प्रथम अङ्क में उसकी सामाजिक और राजकीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए उल्लिखित है- **''इतोऽपि देवी मदनवती अशेषपरिवाराऽऽलिखिता[8]।''** यहाँ देवी मदनवती सम्पूर्ण परिजनों सहित चित्रित की गई है, जिससे उसकी प्रधान महिषी की गरिमा अभिव्यञ्जित होती है। इसी अंक में विदूषक उसकी उपस्थिति का अप्रत्यक्ष संकेत करता है-**''इतोऽपि चित्रगता साऽस्त्येव। मृगाङ्कप्रतिबिम्बमालाभिर्विप्रलब्धोऽस्मि[9]।''** अर्थात्, देखो, चित्र में वह महारानी उपस्थित है; मैं तो मृगाङ्क के प्रतिबिम्बों से ठगा गया हूँ। यह प्रसङ्ग उसकी अप्रत्यक्ष छवि और नायक–नायिका के सम्बन्धों की जटिलता को उजागर करता है।

महारानी का क्रोध भी कथा में नाटकीय तनाव और वातावरण का निर्माण करता है। विदूषक कहता है- **''भो अपसरापसर, भूतान्तरं खलु किमप्येतत्। तदनेन परिकुपितदेवीभ्रूलताभङ्गकुटिलेन दण्डकाष्ठेन तडिति ताडयिष्यामि[10]।''** अर्थात्, हटो हटो, यह तो कोई भूत है; इसे क्रुद्ध हुई देवी की भौंहों के समान टेढ़े डण्डे से मैं मार डालूँगा। यहाँ केवल महारानी के क्रोध का स्मरण ही भय और संकोच उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ है। इसी अंक में महारानी मदनवती की निर्णायिका की स्थिति का परिचय भी मिलता है- **''त्वरिततरमपक्रान्ता सा, यतोऽसमञ्जसा इतो देवीवासभवनाभिमुखी पदपरिपाटी दृश्यते[11]।''** अर्थात्, वह (नायिका) शीघ्र भाग गई, क्योंकि यहाँ से देवी (महारानी) के भवन की ओर जाने वाले पदचिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। यह उद्धरण दिखाता है कि कथा की दिशा और गति पर महारानी का प्रभूत प्रभाव और अत्यधिक नियन्त्रण है। इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में भी मदनवती का क्रोध उसके संयोजिका स्वरूप को सुस्पष्ट रूप में समुद्घाटित करता है। महाराज चन्द्रवर्मा अपने प्रधान अमात्य भागुरायण से कहते हैं कि देवी क्रोध से तमतमायी नहीं; मृगाङ्कावली और कुवलयमाला दोनों प्राप्त हुईं, और सेनापति के पराक्रम से चक्रवर्ती पद भी प्राप्त हो गया है -

''देवी कोपकषायितं न गमिता लब्धा मृगाङ्कावली, प्राग् गूढापि मयाद्य कुन्तलपतेः पुत्री च पाणौ कृता।
युष्मन्नीतिबलेन तस्य च महासेनापतेर्विक्रमैः, सञ्जाता मम चक्रवतिपदवी किन्नाम यत् प्राप्यते''[12]।।

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि मदनवती का चरित्र कथाविस्तार हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अतीव उपयोगी है। वह एक ओर अधिकार और मर्यादा की संरक्षिका के रूप में उपस्थित होती है, तो दूसरी ओर ईर्ष्या और संशय से युक्त मानवीय भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व करती है। नाटक की कथा–योजना में उसकी मुख्य भूमिका द्विविध है-एक ओर वह नायक–नायिका के सम्बन्धों में अवरोध उत्पन्न कर नाटकीय संघर्ष को सघन बनाती है, तो दूसरी ओर अपनी प्रगल्भता तथा संयोजिका-दृष्टि से घटनाओं को सम्यक् दिशा भी प्रदान करती है। इस प्रकार वह विद्धशालभञ्जिका की ज्येष्ठा नायिका ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण कथा–विकास की अनिवार्य प्रेरिका सिद्ध होती है।

(ii) मृगाङ्कावली

विद्धशालभञ्जिका की कथा-योजना का वास्तविक केन्द्रबिन्दु नायिका मृगाङ्कावली है, जो सम्पूर्ण नाटक में प्रेमकथा और नाट्यगत घटनाओं की प्रेरक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती है। यह मुग्धा नायिका के लक्षणों से युक्त मुख्या नायिका है। आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक में मुग्धा नायिका का लक्षण इस प्रकार दिया है- **''मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि[13]।''** अर्थात् नवयौवनारूढ़ा, रति में लज्जावती, क्रोध करने पर

भी कोमल रहने वाली स्त्री ही मुग्धा नायिका कहलाती है। वस्तुतः मुग्धा वह नायिका है, जिसके भीतर यौवन और काम की भावना का प्रथम अवतरण हुआ हो। वह अभी इस नए अनुभव से अभिभूत है, किन्तु पूर्णतः अनभिज्ञ भी है। रतिक्रीड़ा के प्रसङ्ग में उसका स्वभाव प्रायः संकोची और विपरीत होता है, वह आलिंगन और चुंबन जैसे प्रेमपूर्ण व्यवहारों में सहज रूप से सम्मिलित नहीं हो पाती है, फलतः लज्जा से भरी रहती है। उसका क्रोध भी कृत्रिम और कोमल होता है–**''प्रथमावतीर्णतारुण्यमन्मथा रमणे वामशीला सुखोपायप्रसादना मुग्धनायिका''**[14]। विद्धशालभञ्जिका की मृगाङ्कावली इन लक्षणों का मूर्तिमान स्वरूप है, जो नाटक की प्रेम प्रधानता को सशक्त करती है।

कथानक के प्रारम्भ से ही उसका रहस्य कथा की धुरी बन जाता है-**''एष यो मृगाङ्कवर्मा सा मृगाङ्कावली अस्ति**[15]**।''** अर्थात् 'यह जो मृगाङ्कवर्मा है, वही वास्तव में मृगाङ्कावली है'। इस उद्घोष से स्पष्ट है कि नाटिका का सम्पूर्ण घटनाक्रम मृगाङ्कावली की पहचान और उससे जुड़ी परिस्थितियों पर भी केन्द्रित है। इसी प्रकार तृतीय अङ्क में उसका उल्लेख नायक के नवीन अनुराग का आधार बनता है-**''नव्यं नूतनं मृगाङ्कावलीविषयमिति यावत् प्रेम कर्तुरन्तरायं न सहते**[16]**।''** अर्थात् मृगाङ्कावली से सम्बन्धित नवीन प्रेम किसी भी प्रकार का अवरोध सहन नहीं कर सकता। यह उद्धरण उसकी प्रेमशक्ति और नाटकीय प्रेरणाशीलता का स्पष्ट प्रमाण है।

नाटिका में उसकी भावुकता और मुग्धा-स्वभाव अपने शुद्ध रूप में प्रकट होता है, जब वह स्मरण का अभिनय करती हुई कहती है- **''अनुष्याननाटितकेन तदेव 'तापोऽम्भः' इत्यादि पठति**[17]**।''** यहाँ मृगाङ्कावली नाट्याभिनय करते हुए उसी पद्य का उच्चारण करती है, जिसमें विरहजन्य ताप का वर्णन है। इस प्रसङ्ग से उसकी भीतरी संवेदनाएँ उजागर होती हैं। वह स्वयं नायिका होते हुए भी, अभिनय के माध्यम से अपने ही अन्तर्मन की व्यथा और प्रेम-विरह की व्याकुलता को प्रकट करती है। यह प्रसङ्ग उसके नवयौवनारूढ़ा, रति में लज्जावती होने का द्योतक है। एक प्रसङ्ग मिलता है, जिसमें उसका कोमल चरित्र न केवल नायक के साथ मिलन का अवसर प्रदान करता है, अपितु सम्पूर्ण कथा को चरमोत्कर्ष तक ले जाता है। उसका यह वचन इसका साक्षात् प्रमाण है -**''कुवलयमाले परिरंभस्सु मं कलत्तं भविअ सवत्ती संबुत्ता''**[18]**-**अर्थात् अरी कुवलयमाला! मुझे गले से लगा आये तुम मेरी पत्नी होते-होते मेरी सपत्नी बन गई हो-उसकी सरलता, निष्कपटता और सौभाग्यवती स्वभाव को उद्घाटित करता है।

इन प्रसङ्गों के अतिरिक्त भी अनेक स्थल ऐसे हैं, जहाँ मृगाङ्कावली कथा की दिशा और नायक के भाग्य को निर्णायक रूप से प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, राजा के प्रधान अमात्य भागुरायण की योजना में स्पष्टतः निर्दिष्ट है कि यह मृगाङ्कावली से विवाह ही है, जिसके द्वारा नायक विद्याधरमल्ल सम्पूर्ण भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट् होगा- **''एष यो मृगाङ्कवर्मा...ततस्तां परिणीय महाराजश्रीविद्याधरमल्लदेवेन महीतलचक्रवर्तिना भवितव्यम्**[19]**।''** इससे यह सिद्ध होता है कि न केवल नाटक की प्रेमकथा, अपितु राजकीय, ज्योतिषीय और दार्शनिक लक्ष्य भी मृगाङ्कावली की उपस्थिति से ही पूर्ण होते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण नाटिका में स्पष्टतः परिलक्षित होता है कि मृगाङ्कावली केवल भावुकतापूर्ण एवं लज्जाशील नायिका ही नहीं है, वरन् सम्पूर्ण कथा-प्रवाह की वास्तविक प्रेरणाशक्ति है। उसके मुग्धानायिका जन्य स्वभाव से उत्पन्न लज्जा, नवीन अनुराग, सहज भावुकता और कोमल मनोवृत्ति शृङ्गार-रस की समृद्धि को सुदृढ़ बनाते हैं। वह न केवल कथा के सूत्रपात का कारण बनती है, अपितु संघर्ष की भूमि भी तैयार करती

है, और अंततः वही समाधान तक कथा को पहुँचाती भी है। इसीलिए विविध प्रसङ्गों और उद्धरणों से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि मृगाङ्कावली ही इस नाटिका की प्रेमकथा का केन्द्रबिन्दु और घटनाओं की प्रधान प्रेरिका है।

(iii) कुवलयमाला

विद्धशालभञ्जिका की कथा-योजना में कुवलयमाला नाटकीय मोड़ एवं प्रतिस्पर्धा का प्रधान स्रोत है। उसका रंगमंचीय प्रवेश कथञ्चित् सीमित है, तथापि उससे सम्बद्ध घटनाक्रम नाटिका की दशा एवं दिशा को परिवर्तित करता है। वह अनुपम सुन्दरी एवं नाटिका की उपनायिका है। उसका चारित्रिक वैशिष्ट्य नायिका–उपनायिका के बीच तनाव एवं प्रतिस्पर्धा का सशक्त वातावरण निर्मित करता है। वस्तुतः कुवलयमाला का चरित्र वह केन्द्रबिन्दु है, जहाँ से नाटक की विविध जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। कुवलयमाला कुन्तलनरेश चण्डमहासेन की सुपुत्री थी, जो पराजय के कारण अपना राज्य गँवाकर राजा विद्याधरमल्ल की शरण में आया था। उसकी कन्या कुवलयमाला को रानी मदनवती ने अन्तःपुर में सुरक्षित रखा, क्योंकि वह जानती थी कि किसी भी लावण्यवती कन्या को देखकर राजा आकर्षित हो जाते हैं। किन्तु संयोगवश नर्मदा नदी में स्नान के प्रसङ्ग में जब राजा ने कुवलयमाला को देखा, तो वह तत्काल उसके मोहपाश में बँध गये। इस दृश्य को विदूषक व्यंग्य के साथ प्रकट करता है-**''भोः सुष्ठु खलु त्वं महिलालम्पटो जातः। या सा त्वया नर्मदामज्जनोत्तीर्णा दृष्टा कुवलयमाला नाम[20]।''** यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि कुवलयमाला का सौन्दर्य नाटिका के प्रवाह को बदलने वाला निर्णायक प्रसङ्ग बन चुका था। स्वयं राजा भी उसके दर्शन के प्रभाव का स्मरण करते हुए कहता है कि 'हे बाले! तुम कौन हो, यहाँ क्यों आई हो, यह कहता हुआ मैं शीघ्र ही उसका रेशमी आँचल पकड़ने का प्रयत्न करता हूँ, किन्तु तभी वह नीलकमल सदृश कटाक्षों से मुझे रोकती हुई शीघ्र भवन से बाहर चली जाती है'-

''कथय किमिह बाले का त्वमित्युल्लपन्तां झटिति किल दुक्कुलस्याले धारयामि।
अगमदथ निकेतात् काप्यसौ सारयन्ती नवकुवलयमाला मांसलैर्हष्टिपातैः[21]।।''

इस प्रसङ्ग से न केवल नायक के अनुराग की तीव्रता प्रकट होती है, बल्कि नाट्यकथा में आगे चलकर उत्पन्न होने वाले नायिका–उपनायिका संघर्ष और प्रतिस्पर्धा का भी आधार निर्मित हो जाता है। यही सूत्र द्वितीय अङ्क में उसकी पृष्ठभूमि के उद्घाटन से और स्पष्ट होता है-**''अस्त्यत्र कुन्तलेशश्चण्डमहासेनो नाम राजा। तस्य निजराज्यपरिभ्रष्टस्येहागतस्य सुता कुवलयमाला नाम। सा नर्मदामज्जनोत्तीर्णा देवेन दृष्टा, हृदयं चास्य प्रविष्टा[22]।''** अर्थात् कुन्तलदेश का राजा चण्डमहासेन अपने राज्य से वञ्जित होकर यहाँ आया और उसकी कन्या कुवलयमाला को देव (विद्याधरमल्ल) ने नर्मदा से स्नान कर निकलते समय देखा, जिससे वह तत्काल उसके हृदय में प्रविष्ट हो गई। इससे ज्ञात होता है कि कुवलयमाला केवल एक सौन्दर्य-मूर्ति नहीं, बल्कि नायक के हृदय में नवीन अनुराग उत्पन्न करने वाली प्रेरणा-शक्ति भी है, जो कथा को नई जटिलताओं की ओर मोड़ती है। चतुर्थ अङ्क में विदूषक उसकी विडम्बनापूर्ण स्थिति का संकेत करते हुए कहता है-**''कुवलयमालायाः पूर्वमहाविडम्बनं यन्महिला महिलया परिणेतव्या[23]।''** यह हास्यपूर्ण व्यंग्य कथा में नवीन मोड़ उत्पन्न करता है और उपनायिका की भूमिका को और भी सशक्तता के साथ प्रमुखता प्रदान करता है। इसी अङ्क में मृगाङ्कावली और कुवलयमाला के मध्य भेद पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। विदूषक राजा से प्रश्न करता है कि मृगाङ्कावली और कुवलयमाला में क्या अन्तर है-**''मिअंकावली–कुवलअमालाणं किं अंतरं?[24]''** इसके प्रत्युत्तर में राजा कहता है- **''आस्ताम्, परकलत्रं हि सा वर्तते। यावदन्तरं मृगाङ्कावली–कुवलयमालयोः, तावदन्तरं दिनरात्रयोः[25]।"** यहाँ यह भेद उद्घाटित करता है कि मृगाङ्कावली नायक के जीवन का प्रणय रसात्मक बन चुकी है, जबकि कुवलयमाला प्रतिस्पर्धा और संघर्ष की कारक शक्ति है। इस प्रकार कुवलयमाला

का चरित्र मात्र एक गौण उपस्थिति नहीं, अपितु नाटकीय मोड़ और प्रतिस्पर्धा का प्रधान स्रोत है, जिसके कारण नायिका–उपनायिका संघर्ष प्रखर होता है, नायक का मन विचलित होता है और कथा नयी-नयी दिशाओं में विस्तार पाती है।

(iv) परिचारिकाएँ, सेविकाएँ और अन्य स्त्री-पात्र

विद्धशालभञ्जिका की कथा-योजना में आगत परिचारिकाएँ, सेविकाएँ और अन्य स्त्री-पात्र मात्र सहायक या गौण पात्र नहीं हैं, बल्कि रहस्योद्घाटन, संवाद-विन्यास, हास्य–व्यङ्ग्य और कथा-विस्तार की अनिवार्य अङ्ग हैं। इनमें विचक्षणा नायिका मृगाङ्कावली की विश्वस्त सखी और संरक्षिका है, जो भागुरायण की गुप्त योजनाओं को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उसका चरित्र कथा की सूत्रधारिणी के समान प्रतीत होता है। नायक–नायिका के हृदय में प्रेम-जागृत कराना, स्वप्नवत् मिलन का अवसर प्रदान करना और रहस्यों को गुप्त एवं नियन्त्रित रखना, ये सभी कार्य उसकी सूझबूझ से सुसम्पन्न होते हैं। उसकी सखी अपरा आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहती है-**''पियवअस्से, विअक्खणासि। किं णु क्खु अणभिण्णासि कंदप्पचरिआणं, जं दाणि णवं णवं कोऊहलं कामिजणे**[26]**।''** इसका भाव यह है कि 'प्रिय सखी! तुम्हारा नाम तो अवश्य ही विचक्षणा है, परन्तु तुम कामदेव की चेष्टाओं से अनभिज्ञ जान पड़ती होय देखो, कामी जनों में तो नित्य नया कौतूहल जन्म लेता है।' इस संवाद से यह स्पष्ट होता है कि विचक्षणा कथा की सूत्रधारिणी समतुल्या है, जो प्रेम और रहस्य दोनों को नियन्त्रित एवं संचालित करती है।

इसी प्रकार सुलक्षणा अपनी तीक्ष्ण दृष्टि और हास्य–व्यङ्ग्यपूर्ण प्रवृत्ति से नाटक में विनोद, कौतूहल और चञ्चलता का वातावरण तैयार करती है। विदूषक के साथ उसके संवादों में स्त्री-नीति और नारी-राजनीति (महिलाषाड्गुण्य) का संकेत स्पष्टतः परिलक्षित होता है। एक स्थल पर वह रूठते हुए विचक्षणा से कहती है-**''हला विअक्खणे, एत्तहमेत्ते वि सलिलसित्तसणगणगंठिगाढेऽपि सिणेहे कथमुद्विभण्णशिखाखंजरीटीव अदंसणा चिट्ठसि**[27]**।''** अर्थात् 'अरी विचक्षणे! जल से भीगी सन की रस्सी में पड़ी गाँठ की तरह हमारे बीच कितना भी गाढ़ा स्नेह क्यों न हो, तुम तो उस खञ्जन-पक्षी के समान दुर्लभ हो गई हो, जिसके शिर पर कलगी उग आती है।' इस संवाद से उसकी भावुकता, कृत्रिम रूठना और चंचल परिहासपूर्ण प्रवृत्ति प्रकट होती है, जो नाटक के गंभीर प्रसङ्गों में भी हास-परिहास का परिसंचरण करती है। मेखला, महारानी मदनवती की अत्यन्त विश्वासपात्र परिचारिका है, जो अपने कठोर और कुटिल स्वभाव के लिए जानी जाती है। उसकी भूमिका केवल सेविका की नहीं, अपितु राजनैतिक चालों में सक्रिय सहभागी की भी है। मिथ्या-विवाह की योजना में उसका प्रमुख योगदान है। वह विदूषक का उपहास कराकर महारानी को प्रसन्न करना चाहती है, किन्तु यही चाल अन्ततः उसके परिहास का कारण बन जाती है। इस प्रकार मेखला की कुटिलता और राजनीतिक वृत्ति कथा को नाटकीय तनाव एवं विस्तार प्रदान करती है और साथ ही उपहास एवं हास्य का भी साधन बनती है।

अन्य गौण स्त्री-पात्रों में पिङ्गलिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह विदूषक की पत्नी और महारानी की विश्वस्त परिचारिका होते हुए भी केवल एक बार रङ्गमञ्च पर आती है, किन्तु उसी अवसर पर निद्रावस्था में महारानी की गुप्त योजना का उद्घाटन (भण्डाफोड़) कर देती है। यह प्रसङ्ग कथा को निर्णायक मोड़ प्रदान करता है। विदूषक उसकी रक्षा करते हुए गर्व से कहता है- **''जइ अहं पिंगलिआवल्लहो गंधव्ववेअविअक्खणो रक्खको चिट्ठामि । तहि को कालो के कालपुरिसा का वा कालसिंखला**[28]**।''** इसका भाव यह है कि 'यदि मैं पिङ्गलिका का स्वामी और गन्धर्ववेद में निपुण रक्षक होकर खड़ा हूँ, तो समय कौन है,

कालपुरुष कौन हैं और उनकी जंजीरें भी क्या कर सकती हैं?' इस कथन से विदूषक की हास्यपूर्ण परन्तु दृढ़ रक्षा-भावना प्रकट होती है, और पिङ्गलिका का नाटिका के कथा-विस्तार में अत्यल्प किन्तु आवश्यक अवदान सामने आता है। इसके अतिरिक्त तरङ्गिका, कुरङ्गिका, हारयष्टि, कलकण्ठी, बसन्तलतिका, मङ्गलिका, कामकेलि, मृगाङ्कलेखा, परभृतिका, कल्पलतिका आदि स्त्रियाँ भी प्रसङ्गानुकूल प्रवेश कर कथा को दिशा देती हैं, और संवादों में विविधता भी लाती हैं। वहीं प्रतिहारी-द्वारपालिकाएँ राजमहल की मर्यादा और व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिससे कथा का प्रवाह और अधिक सुसंगठित एवं सुनियोजित बन जाता है।

इन सभी प्रसङ्गों एवं अनेकानेक उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि विद्धशालभञ्जिका की परिचारिकाएँ, सेविकाएँ और अन्य स्त्री-पात्र गौण या सहायिका मात्र नहीं हैं, अपितु कथा-विस्तार और नाटकीय विविधता के अनिवार्य आधारस्तम्भ हैं। विचक्षणा की सूझबूझ और रहस्योद्घाटन, सुलक्षणा की चपलता और हास्य, मेखला की राजनीतिक प्रवृत्ति, पिङ्गलिका का आकस्मिक रहस्य-प्रकाशन तथा अन्य स्त्रियों की अवसरप्राप्त उपस्थिति- इन सबके सम्मिलित योगदान से यह नाटिका जीवन्त, विविधविषयोपेत, चित्ताकर्षक और प्रभावशाली नाट्यकृति बन गयी है।

आचार्य राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका की कथा-योजना का समग्र अवगाहन करने पर यह तथ्य विदित होता है कि सम्पूर्ण नाट्य-प्रवाह स्त्री-पात्रों की सक्रिय उपस्थिति से संचालित होता है। आचार्य राजशेखर ने इस नाटिका में स्त्रियों को मात्र सौन्दर्यवर्धिनी या सहायिका की भूमिका तक सीमित न रखकर उन्हें कथा की सूत्रधारिणी, संघर्ष की कारणी और समाधान की प्रेरिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। ज्येष्ठा नायिका मदनवती प्रगल्भा-स्वभाव से युक्त पट्टमहिषी होकर नायक विद्याधरमल्ल की कथा को दिशा प्रदान करती है; उसका ईर्ष्या और क्रोध कथा में तनाव तो उत्पन्न करते हैं, किन्तु उसका संयम और दूरदर्शिता सम्पूर्ण घटनाओं को समाधान की ओर भी उन्मुख कर देते हैं। मुख्य नायिका मृगाङ्कावली मुग्धा नायिका के शास्त्रीय लक्षणों का साकार करती है। उसकी लज्जा, कोमलता और नवानुराग सम्पूर्ण प्रेमकथा का केन्द्र बनते हैं और नायक–नायिका के संयोग का सूत्रपात, संघर्ष और परिणति उसी के द्वारा सुसम्पन्न होते हैं। इसके विपरीत कुवलयमाला उपनायिका के रूप में नाटकीय मोड़ और प्रतिस्पर्धा का अनिवार्य स्रोत है। उसका सौन्दर्य और संयोगवश उत्पन्न परिस्थितियाँ नायक के मन को विचलित कर कथा में जटिलता एवं रोमाञ्च का सञ्चार करती हैं। इन प्रधान स्त्री-पात्रों के अतिरिक्त विचक्षणा, सुलक्षणा, मेखला और पिङ्गलिका जैसी परिचारिकाएँ तथा तरङ्गिका, कुरङ्गिका, हारयष्टि, कलकण्ठी, बसन्तलतिका, मङ्गलिका, कामकेलि, मृगाङ्कलेखा, परभृतिका, कल्पलतिका और प्रतिहारी जैसी अन्य स्त्रियाँ भी नाट्य-योजना में विविध स्तरों पर महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए कथा-विस्तार में महती भूमिका निभाती हैं। विचक्षणा की बुद्धिमत्ता और रहस्योद्घाटन, सुलक्षणा की चपलता और नारी-राजनीति, मेखला की कुटिलता और राजनीतिक प्रवृत्ति, तथा पिङ्गलिका का आकस्मिक रहस्य-प्रकाशन-इन सबके कारण नाट्यगत घटनाएँ समृद्ध और सुव्यवस्थित बन गई है। अन्य गौण स्त्री-पात्र प्रसङ्गानुकूल प्रवेश कर घटनाओं को दिशा प्रदान करते हैं, संवादों में विविधता लाते हैं और राजमहल की मर्यादा व व्यवस्था के प्रतीक बनकर कथा के प्रवाह को संयोजित भी करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्धशालभञ्जिका नाटिका वस्तुतः एक नारी-केंद्रित नाट्यकृति है, जहाँ प्रत्येक अङ्क में स्त्रियों की उपस्थिति कथा को गति, संघर्ष और समाधान प्रदान करती है। मदनवती की संयोजिका दृष्टि, मृगाङ्कावली की प्रेरक प्रेमशक्ति, कुवलयमाला की प्रतिस्पर्धा, और परिचारिकाओं का

रहस्योद्घाटन व हास्य- इनके समग्रतापूर्ण योगदान से यह नाटिका न केवल शृङ्गारप्रधान बहुरसात्मक नाट्यकृति के रूप में प्रतिष्ठित होती है, वरन् संस्कृत नाट्यपरम्परा में स्त्री-पात्रों के नाट्यात्मक योगदान को समझने का एक प्रामाणिक उदाहरण भी सिद्ध होती है।

सन्दर्भ-

1. *दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.-2*
2. *दशरूपक, 3.43-44*
3. *साहित्यदर्पण, 6.269*
4. *साहित्यदर्पण, 6.272, वृत्तिभाग*
5. *दशरूपक,2.15*
6. *दशरूपक,2.15, वृत्तिभाग*
7. *दशरूपक, 2.18*
8. *विद्धशालभ्ंजिका, प्रथम अङ्क, पृ.-38*
9. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.-38*
10. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क,पृ.-44*
11. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथमअङ्क, पृ.-44*
12. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पद्य-26*
13. *दशरूपक, 2.16 पूर्वार्द्ध*
14. *दशरूपक, 2.16पूर्वार्द्ध, वृत्तिभाग*
15. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.-82*
16. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.-92*
17. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.-106*
18. *विद्धशालभञ्जिका, भूमिका भाग, पृ.-18*
19. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.-82*
20. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पृ.-18*
21. *विद्धशालभञ्जिका, प्रथम अङ्क, पद्य-18*
22. *विद्धशालभञ्जिका, द्वितीय अङ्क, पृ.-50*
23. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.-126*
24. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.-138*
25. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.-138*
26. *विद्धशालभञ्जिका, चतुर्थ अङ्क, पृ.-142*
27. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क, पृ.-80*
28. *विद्धशालभञ्जिका, तृतीय अङ्क,पृ.-94*

51

राजशेखर की 'विद्धशालभञ्जिका' में विदूषक

रञ्जनलता *

महान् रूपककार राजशेखर द्वारा विरचित शास्त्रीय लघुनाटिका **विद्धशालभंजिका** चार अंको में विभक्त है। युवराजदेव प्रथम के काल में यह रूपक निर्मित किया गया था। कर्पूरमंजरी की तरह, इस कहानी का आधार भी एक प्रेम विवाह है। यहाँ राजा विद्याधारमल्ल का विवाह दो राजकुमारियों मृगांकावली और कुवलयमाला से होता है। इस विवाह में प्रारम्भ में रानी का विरोध तथा अंत में उसकी सहमति को दर्शाया गया है। यह श्रंगार पर आधारित एक रूपक है।

राजशेखर के दूसरे रूपक **विद्धशालभंजिका** का राजा विद्याधरमल्ल **कर्पूरमंजरी** का ही एक चरित्र है। यहां हम इसी रूपक के एक पात्र विदूषक चारायण के सम्बन्ध में विचार करेंगे।[1] नाट्यदर्पणकार के मत में नाटक में विदूषक का हास्य के निमित्त होता है।[2]

उसका स्वरूप इस प्रकार है कि वह असंगतता, अर्थहीन शब्दों और मौखिक विकारों द्वारा हँसी का पात्र बनता है। उनके मतानुसार वह खल्वाट रूप से, दन्त-कुब्ज-विकृति-आदि शारीरिक विकारों के द्वारा, आकाश-दृष्टि-गति-आदि मानसिक-विकारों द्वारा तथा असङ्गत, अनर्थक वाकादि वाचिक-विकारों के द्वारा हास्य उत्पन्न करता है।[3] हास्य के अतिरिक्त विदूषक झगड़ालू व ईर्ष्यालु के साथ अपने कर्तव्य के ज्ञाता के रूप में भी जाना जाता है।[4] विदूषक खल्वाट होता है।[5] विरहकाल में वह राजा को हंसाकर प्रसन्न करता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने यह भी कहा है कि विदूषक प्रेम व्यापार में राजा का अन्तरंग मित्र होता है। वह अपने कर्मस्वरूप तथा वाक् के माध्यम से हँसी को व्यक्त करता है।[6] यह रसिक भी होता है तथा एक पारखी मित्र भी होता है। विदूषक राजा का अन्तरंग मित्र भी हुआ करता है।[7] इसके अतिरिक्त विदूषक नायक के प्रेम के व्यवसाय में नायक के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हास्य करता है। इसके अतिरिक्त विदूषक पूर्वरंग में कथावस्तु को भी इंगित करता है। प्रारम्भ में यह त्रिगत के अवसर पर सूत्रधार का सहायक भी होता है। जिस प्रकार नायक के चतुर्विध भेद क्रमशः दिव्य, नृप, आमात्य व ब्राह्मण किए गये हैं उसी प्रकार विदूषक भी चतुर्विध हैं जो लिंगी, द्विज, राजजीवी तथा शिष्य के क्रम में हैं।[8] शारदातनय नामक ग्रन्थ में चारों प्रकार के नायकों के विदूषकों का उल्लेख मिलता है।[9] आचार्य भरत के मत में वह प्राच्य व प्राकृत दोनों का प्रयोग करने वाला होना चाहिए।[10]

ISSN : 2229-5550, UGC Care List Journal, S.N.17, अप्रैल 2025 - सितम्बर 2025

* *सहायक आचार्य-संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर*

विद्धशालभञ्जिका का विदूषक -

विद्धशालभञ्जिका में विदूषक को चारायण के नाम से जाना गया है। अकस्मात् वह मंच पर आता है और एक पहेली के रूप में बोलता है। फिर वह कुछ प्रश्न पूछता है। वह स्वप्न के रहस्य को जानने के लिए उत्सुक है। उदाहरण के लिए, स्वप्न में कौन था? तथा उससे बात करते समय राजा अपने स्वप्न के सम्बन्ध में जानकारी देता है। वह एक पारखी व्यक्ति भी है। राजा के मस्तिष्क को जानकर उसे समझाता है तथा उसके प्रेम-व्यवसाय में वह उसका सहायक भी होता है। विदूषक चारायण की कई अन्य विशेषताएं भी हैं। देखिए -

1. शिष्टपरिहासकर्ता - विदूषक चारायण राजा को देवी को भूल जाते हुए देखकर कहता है, ओह! अर्थात् अपनी सुन्दर प्रिय रानी को छोड़कर अन्य महिला पर आसक्त हो, ऐसा कहकर राजा का शिष्ट भाषा में उपहास करता है- **अहो ते अनागरिकत्वं किमिति त्वया पुरतोभूत्वा नानुतीता देवी ? कियच्चिरं वा चन्द्रे प्रसादित्तकरे अविस्पष्टोत्पला नीलोत्पलिनी। तिष्ठति।**[11]

2. सत्यवादी व निर्भीक - विदूषकः राजा की स्थिति को देखकर निर्भीकता से कहता है - **भोः सुष्ठु खलु त्वं महिला लम्पटो जातः। या सा त्वया नर्मदा मज्जनोत्तीर्णां दृष्टा कुवलयमाला नाम यावत्तद्गतं किमप्यनुसन्दधामि तावदेपोऽपरे गण्डस्योपरि स्फोटिकोद्भेदः। हुम् ततस्ततः।**[12] **'सत्यमेव एतत्कृतम्-नटे दृष्टे मुण्डिते उपविष्टः पतिर्मुण्डित इति।'**[13]

3. भीरु विद्रूपश्च - ब्राह्मण जातीय होते हुए विदूषक चारायण स्वभावतः अतिलोभी तथा भीरु भी है जो महारानी के आगमन की सूचना से ही भयभीत हो जाता है।

साथ ही वह विद्रूप भी है परन्तु वह अपने को किसी सुन्दर पुरुष अथवा कामदेव से कम नही मानता। जब राजा कहता है कि – **सखे ! तवमेषोभिलिखितः।** तब विदूषक कहता है कि – **'नाहं ज्ञातुं आलिखितुं, ब्राह्मणी जानाति या–शोऽहम्। सा मां भणति त्वं प्रत्यक्षः कामदेव इति।'**[14] तब राजा कहता है कि **'अये किंमुपवने शुको वदति'। विदूषकः- किमिव। राजा- 'अस्ति भवान् देवः किं पुनर्भृगरिटि।' विदूषकः - को दुर्जनवचानानां कर्ण ददाति।**[15]

4. स्त्रियेषु रतमनः - विदूषक अपनी कर्कषा ब्राह्मणी के साथ-साथ अन्य स्त्रियों को भी स्वीकार करने की इच्छा होती है क्योंकि वह अपने असत्य विवाह से प्रसन्न होकर राजा से बताता है कि देवी कहती है कि मेरा विवाह होगा -

शशशृङ्गमम श्वशुरः गृहिण्यस्य मृगतृष्णिका भविष्यद्गृहिणी च मे तद्दुहिता अम्बरमाला नाम।[16]

जब विवाह हो रहा होता है तो प्रसन्नमना कहता है कि –

'अयि द्वितीयब्राह्मणि, ध्रुवं सप्तर्षिमण्डलं च पश्य।'[17]

5. प्राच्यप्राकृतप्रयोगकर्ता - यहाँ नाटक के प्रारम्भ में विदूषक राजा के सपने को समझने के लिए संस्कृत तथा प्राच्य दोनों भाषा अपनाता है देखें -

'अहो अस्स हिअअक्खेचो ता किं णु खु एदं। (विचिन्त्य) भोदु अणुबन्धिस्सं। णहु अणुप्पीडिओ सहआरपिट्ठ-गंठी रस-सव्वस्सं मुञ्चदि। (पुरतः स्थित्वा) परिणामफुट्टिअं विअ दाडिमफलं फुट्टणभूइट्ठंवट्ठदि मे हिअअंकोदूहलेण, ता जधापत् युथं आचक्खं-तो कज-रहस्सेण संभावेदु मं पिअवअस्सो।'[18]

'अहो अस्य हृदयाक्षेपः। तस्मात् किं नु खल्वेतत्। भवतु अनुभन्त्स्यामि अनुबन्धं करिष्यामि। न खलु अनुत्पीडितः सहकारपृष्ठग्रन्थिः रस-सर्वस्वं मुञ्चति। परिणाम स्फुटितमिव दाडिमी फलं स्फुटनभूयिष्ठं वर्तते मे हृदयं कौतूहलेन, तस्मात् यथाप्रस्तुतं आचक्षाणः कार्यरहस्येन संमावयतु मां प्रिय वयस्यः।'[19]

6. कलहप्रिय - जब चारायण देवी की परिचारिकाओं से मिलकर यह जानता है कि उसे मूर्ख बनाकर उसका झूठा विवाह कराया गया है, तो वह सभी परिचारिकाओं से झगड़ता है और कहता है कि मुझे आप सबके द्वारा धोखा दिया गया है, इसलिए मैं अब आप सबको नहीं छोडूगा। अपनी रक्षा करें -

'आ आ दास्याः सुते! पुराणकुट्टिनि! मकरदंष्ट्रे! भ्रमरटेण्टे! टेण्टाकराले! कोशवर्धिनि! रथ्यालुण्ठिनि! त्रुटितसंघटिते! परपुत्रविद्रावणि! विषमकर्त्रि! वञ्चितोऽस्मि त्वया, तस्माद्रक्षाऽऽत्मानम्।'[20]

7. ईर्ष्यालु - विदूषक ईर्ष्या भी करता है। वह परिचारिका मेखला से कहता है – ओह! आप सब मुझमें बुराई देख रहे हैं। हे भावीकुट्टीनि! आप भी मुझ पर हंसती हो अतः मैं आपको एक कुटिल लकड़ी की छड़ी के साथ हराऊंगा।

आ दुष्टदासि! भविष्यत्कुट्टिनि! त्वमपि मामुपहससि, तस्मादमुना युष्मद्देशजनमनकुटिलेन दण्डकाष्ठेन शीर्यन्तडिति ताडयिष्यामि।[21]

अग्रे अपि तृतीय अंकेकथयति - 'मा समाधानभंगं मे कुरु। देवीपुरतो मेखला जीवयितव्या। अयि दुष्टदासि, दोषिणि! क्रुद्धश्चारायणःपीडयिष्यति।'[22]

8. प्रणयक्रोधे देवीं प्रसन्नकर्ता - विदूषक प्रणयक्रोध में क्रुद्ध देवी का प्रसन्नकर्ता भी होता है क्योंकि वह राजा को अवबोधित करता है - **'अहो ते अनागरिकत्वं किमिति त्वया पुरतो भूत्वा नानुतीता देवी ? कियच्चिरं वा चन्द्रे प्रसादित्तकरे अविस्पष्टोत्पला नीलोत्पलिनी तिष्ठति।'**[23] वह राजा को अपने कर्तव्य के प्रति जाग्रत करता है।

9. संस्कृत में निपुण कवि - जब विदूषक संस्कृत में वसंत का वर्णन करता है, तो राजा कहता हैः-

'इह हि नववसन्ते मञ्जरीपुञ्जरेणुच्छुरणधवलदेहाबद्धहेलं चरन्ति।
तरलमलिसमूहा हारिहुंकारिकण्ठा बहुलपरिमलाली सुन्दरं सिन्दुवारम्।।'
राजा (किञ्चिद्विहस्य) सखे! संस्कृतेऽपि प्रगल्भसे।[24]

अतः इस नाटक में विदूषक का प्रयोग मात्र राजा को हंसाने के लिए ही नहीं किया गया है। विदूषक का मुख्य कार्य राजा को हंसाने के साथ प्रेम व्यापार में राजा के अन्तरंग मित्र के रूप में उसकी सहायता करना भी है।

इस प्रकार हमें यह कहना चाहिए कि राजशेखर रचना पद्धति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। वे न केवल प्राचीन रूप को अंकित करते हैं, अपितु विद्धशालभञ्जिका में प्राकृतच्छाया का भी प्रयोग करते हैं। इस नाटक में एक सूत्रधार है, एक संस्थापक है और एक विदूषक है। विद्धशालभंजिका में विभिन्न प्राचीन रूप भी दिखाई देते हैं जो केवल दक्षिण भारत में ही प्रचलित हैं।

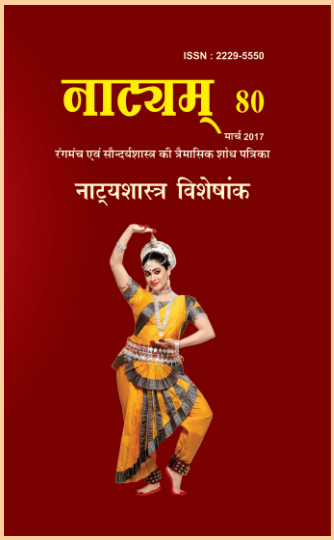
राजशेखर अपनी विद्वता के लिए अनेक कवियों के ऋणी हैं। उन पर कालिदास, हर्ष और भवभूति का प्रभाव स्पष्ट है। प्राकृत साहित्य में उनकी गहरी आस्था है। ऐसा इसलिए है क्योंकि राजशेखर सार्वजनिक जीवन से भी जुड़े हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में समाज के कोमल पक्ष को अभिव्यक्त किया है। प्रेम ही ईश्वर है, इसलिए प्रेम उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता है। विलासिता को देखकर इस नाटक द्वारा मध्य युग की समृद्धि का भी स्मरण किया जा सकता है। अतः राजशेखर संस्कृत और प्राकृत के प्रेमी कवि हैं जिनके नाटकों में विदूषक की भी महत्वपूर्ण भूमिका है और उनका विदूषक मात्र सेवकों की भांति अनुनय विनय न करके उनको उचित व अनुचित का भेद भी समझाता है परन्तु अपने मित्रत्व भाव को न त्यागते हुए सदा अपने मित्र की प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता मानता है।

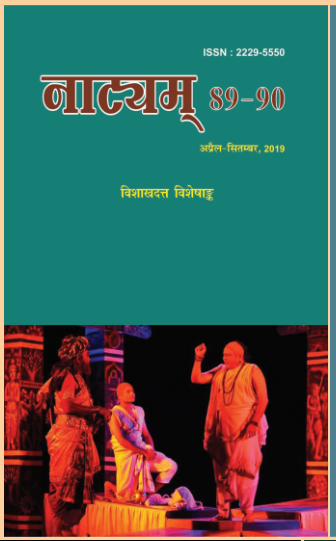
अतः कहा जा सकता है कि नाटिका में निदिष्ट विदूषक के स्वरूप का राजशेखर ने अत्यन्त सुन्दर तरीके से निरूपण किया है तथा वह इसमें पूर्णतया सफल भी रहे हैं।

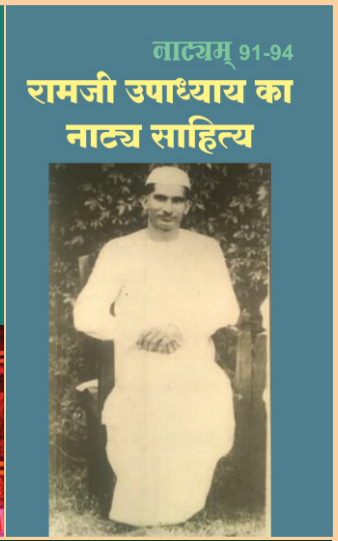
संदर्भ -

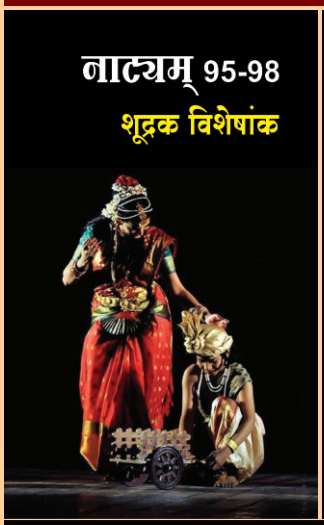
1. *विदूषकोहास्यनिमित्तंभवति (नाट्य दर्पण, पृ. १७७)*
2. *हास्यकृच्च विदूषकः। दशरूपक, धनञ्जय, ६वीं कारिका*
3. *वामनो दन्तुरोकुब्जो द्विजन्मनः विकृताननः।*
   खालती पिंगलाक्षश्च स विधेये विदूषकः।। नाट्यशास्त्र, अध्याय- 35-37
4. *हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मणः। साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृ.106*
5. *संस्कृत नाटक, ए.बी. कीथ, भाषान्तर, उदयभानुसिंह, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1965, पृ. 395*
6. *विद्धशालभंजिका, पृ.18*
7. *तथैव, पृ.18*
8. *नाट्यशास्त्र 34 अध्याय, 16-20*
9. *विद्धशालभंजिका, भूमिका, पृ.19*
10. *तथैव, तथा 'प्राच्या विदूषकादीनां' नाट्यशास्त्र, 18/38*
    नाटकलक्षणरत्नकोश, 'शौरसेनीमथप्राच्यामवन्ती कर्हिचित् पठेत'
11. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.12*
12. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.10*
13. *विद्धशालभंजिका, पृ.13*
14. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक, पृ. 22*
15. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ., 23*
16. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ. 38*
17. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.40*
18. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.9*
19. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.9*
20. *विद्धशालभंजिका, द्वितीय अंक पृ.41*
21. *विद्धशालभंजिका, द्वितीय अंक पृ.42*
22. *विद्धशालभंजिका, तृतीय अंक पृ.65*
23. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.12*
24. *विद्धशालभंजिका, प्रथम अंक पृ.19*

नाट्यम् - विशेषांक शृंखला

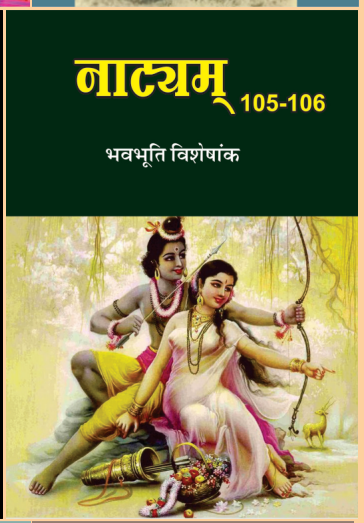


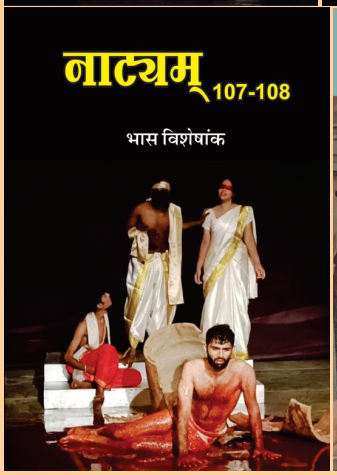


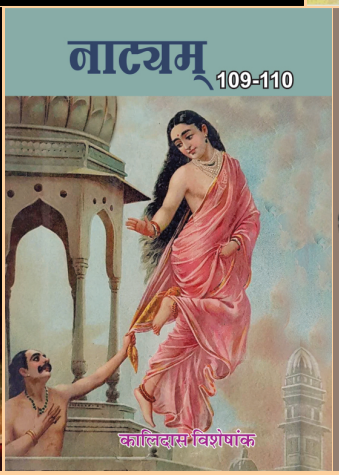


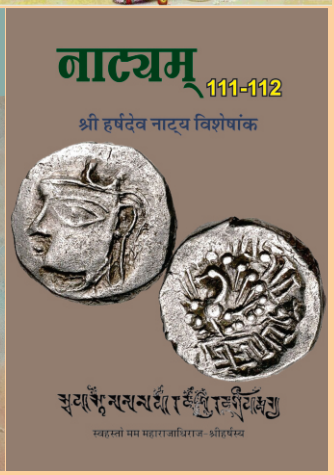












Peer Reviewed and
UGC Care Listed Journal, S.N.17

ISSN : 2229-5550.

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ।।[4]

पूर्व काल में वाल्मीकि नामक कवि हुए, पुनः पृथिवी पर भर्तृमेण्ठ नाम से प्रकट हुए, पुनः भवभूति नाम से विख्यात हुए, वही महाकवि इस समय राजशेखर हैं ।

- बालरामायणम्

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर (म. प्र.) पिनकोड - 470003